बिहार के कटिहार प्रखण्ड में भूमि उपयोग परिवर्तन प्रतिरूप

शोध-प्रबन्ध-सार

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० (भूगोल)
उपाधि हेतु प्रस्तुत

निर्देशक
डा० ब्रह्मानन्द सिंह
प्रवक्ता, भूगोल विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

शोधकर्ता
दीन बन्धु

भूगोल विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

1993

बिहार के कटिहार प्रखण्ड में भूमि-उपयोग परिवर्तन प्रतिरूप
का
शोध प्रबन्ध-सार

भूमि-उपयोग सर्वेक्षण भौगोलिक अध्ययन का एक महत्वपूर्ण पहलू है । इसकी संकल्पना गत्यात्मक है । मानव अपने आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु दो प्रकार की सांस्कृतिक प्रक्रियाएँ सम्पन्न करता है । प्रथमत नये-नये क्षेत्रों (भूमि) की खोज तथा दूसरा भूमि उपयोग की गहनता में वृद्धि । विश्व स्तर पर बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण भूमि-उपयोग संबंधी अध्ययन की उपादेयता और अधिक बढ़ गयी है । बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण-पोषण के लिए वनों के कटान के फलस्वरूप भूमि बन्ध्या होती जा रही है । आज का मानव तकनीकी विकास के मद में चूर होकर इस बात को भूल बैठा है, और वह प्रकृति पर विजयश्री प्राप्त करने की होड़ में अपने अस्तित्व को ही संकट में डाल लिया है । मानव का सर्वांगीण विकास एवं कल्याण प्रकृति के साथ सामंजस्यता पर ही निर्भर है, उसपर विजय प्राप्त करने में नहीं ।

मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भूमि का उपयोग विविध रूपों में करता है । भूमि संबंधी इस प्रकार के उपयोग के फलस्वरूप अनेक समस्याएँ और अधिक बढ़ जाती है । जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप मृदा की उत्पादकता में ह्रास की समस्या और गम्भीर हो जाती है । अत मानव-कल्याण हेतु भूमि-उपयोग में परिवर्तन आवश्यक एवं अपरिहार्य हो जाता है, जिसके लिए वर्तमान एवं सम्भाव्य भूमि-उपयोग का मूल्यांकन अनिवार्य है । भूमि-उपयोग संकल्पना मुख्यतः किसी प्रदेश में प्राप्त संसाधनों आवश्यकताओं और प्रयत्नों के मध्य निरन्तर अन्तर्क्रियाओं का प्रतिफल है तथा भूमि-प्रबन्ध की कुशलता अथवा अकुशलता का विकास एवं विनाश दोनों ही सम्भव है । जनसंख्या वृद्धि, तीव्र औद्योगीकरण, नगरीकरण के फलस्वरूप कृषि भूमि में निरन्तर ह्रास हो रहा है । इस ह्रास के कारण पारिस्थितिकीय तन्त्र में असन्तुलन तेजी से बढ़ रहा है । भूमि-उपयोग की अज्ञानता के कारण भूमि दुरूपयोग तेजी से बढ़ रहा है । अत भूमि के लिए भूमि-संबंधी सर्वेक्षण एवं उसका मूल्यांकन आवश्यक है, जो प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं तकनीकी दशाओं के संदर्भ में अध्ययन किया जाना चाहिए ।

भूमि-उपयोग संबंधी अध्ययन में भूमि-उपयोग के प्रतिरूप के साथ ही इसको प्रभावित करने वाले समस्त प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों का जनसंख्या के सन्दर्भ में विश्लेषण एवं व्याख्या होना चाहिए । भूमि उपयोग संबंधी अध्ययन में कृषि के स्वरूप एवं प्रतिरूप संबंधी अध्ययन भी महत्वपूर्ण है । इस अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि कितनी कृषि भूमि किस उपयोग में है ? साथ ही इस बात का भी ज्ञान हो जाता है कि किस प्रदेश में भूमि-संबंधी क्या समस्याएँ हैं - जैसे - मृदा अपरदन, उर्वरता में ह्रास आदि । किस प्रदेश में भूमि-उपयोग उपयुक्त नहीं है ? कहाँ पर गहन कृषि की सम्भावनाएँ हैं ? किसी फसल विशिष्ट का कहाँ विस्तार हो सकता है ? आवश्यक सुविधाओं का प्राविधान कर किन भागों में भूमि को द्वि-फसली में परिणत किया जा सकता है ? अतः भूमि-उपयोग संबंधी अध्ययन कृषि नियोजन की पहली सीढी है, क्योंकि कृषि नियोजन के पूर्व यह विदित होना चाहिए कि किस प्रकार की भूमि है ? उसकी क्षमता कितनी है और कहाँ तक विस्तार की सम्भावनाएँ हैं ?

भूमि उपयोग संबंधी अध्ययन में उसका प्रादेशिक वितरण स्वरूप तो प्रदर्शित होता ही है , साथ ही कृषि प्रणाली, कृषि पद्धति, शस्य स्वरूप एवं उसका वितरण, घास के मैदान (चारागाह), बाग-बगीचों संबंधी तथ्यों के प्रादेशिक वितरण का भी ज्ञान होता है । इसके साथ ही भूमि-उपयोग संबंधी अध्ययनों से कृषि प्रादेशीकरण के निर्धारण में भी सहायता मिलती है । भूमि-उपयोग सर्वेक्षण से भूमि की उर्वरता, उत्पादकता एवं गहनता आदि की दृष्टि से भूमि के वर्गीकरण में सहायता मिलती है । इसके आधार पर भूमि का सही मूल्यांकन होता है -तदनुरूप भूमि का उपयोग किया जाता है, जैसे कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोगों - अधिवास, उद्योगों, बाग-बगीचों एवं अन्य सांस्कृतिक उपयोगों आदि के लिए भूमि का उपयोग संभव होता है । इस प्रकार भूमि-उपयोग संबंधी अध्ययन उन देशों के लिए और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जहाँ जनसंख्या सघन है एवं उनके भरण-पोषण हेतु कृषि उत्पादों की विशेष माँग है ।

वर्तमान शोध-प्रबन्ध में कटिहार प्रखण्ड में भूमि-उपयोग परिवर्तन प्रतिरूप का विवेचन इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान मे रखकर किया गया है जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है -

प्रथम अध्याय भूमि-उपयोग की संकल्पनात्मक पृष्ठभूमि से संबंधित है, इसके अन्तर्गत भूमि-उपयोग का अध्ययन क्षेत्र, उद्देश्य, सर्वेक्षण और शोध में अन्तर, भूमि और भूमि संसाधनों की भौगोलिक संकल्पना, भूमि-प्रयोग, भू-उपयोग और भूमि-संसाधन उपयोग में अन्तर, भूमि शब्दावलियाँ, कृषि विकास एवं सामाजिक व्यवस्थाओं के साथ ही भूमि - उपयोग से संबंधित अनेक संकल्पनाओं का विस्तृत उल्लेख किया गया है । भूमि-उपयोग से संबंधित इन संकल्पनाओं में भूमि-उपयोग की आर्थिक संकल्पना, भूमि-उपयोग की क्षमता की संकल्पना, सर्वोत्तम या अनुकूलतम भूमि उपयोग की संकल्पना, भूमि-उपयोग के तुलनात्मक लाभ की संकल्पना, भूमि-उपयोग में क्षेत्रीय संतुलन की संकल्पना, दूरी की संकल्पना, व्यावहारिक संकल्पना तथा भूमि-उपयोग में प्रत्यक्ष स्थान तथा प्रतिबिम्ब संबंधी संकल्पना को विस्तृत रूप में विवेचित किया गया है । इन उपर्युक्त संकल्पनाओं से ज्ञात होता है कि भूमि उपयोग का अर्थ बहुत ही व्यापक एवं विस्तृत है । इसका स्वरूप मानव सभ्यता के विकास और मानव के आवश्यकतानुसार परिवर्तित होता रहा है और होता रहेगा । यह परिवर्तन कृषि विकास अवस्थाओं के रूप में लक्षित हुआ है और होता रहेगा । कृषि कार्य की विविधता एवं विशिष्टता भूमि-उपयोग के विकास कार्यक्रम को व्यक्त करती हैं जो व्यक्ति के जीवन-यापन की आवश्यकताओं से लेकर उसकी आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास को पूर्णतया प्रभावित किये हुए है । अध्ययन क्षेत्र के जन-जीवन में 'भूमि-उपयोग' का मुख्य अर्थ कृषि कार्य से है जो इस ग्राम्य-प्राधान्य क्षेत्र की अर्थव्यवस्था की मुख्य कुंजी है ।

भूमि-उपयोग सर्वेक्षण और उसके अध्ययनों से सम्भावित तकनीकी ज्ञान को विकसित करने में जी0पी0 मार्स, सी0ओ0 सौर, डब्ल्यू0डी0 जोन्स एवं वी0सी0 फिन्च प्रवृत्ति विद्वानों ने विशेष योगदान दिया है, परन्तु भूमि उपयोग संबंधी विस्तृत योजना के कार्य का श्रेय स्ट्रैम्प, बक, एस0 वान वाल्केन वर्ग, एस0पी0 चटर्जी, वी0, एल0, एस0 प्रकाश राव, ओ0पी0 भारद्वाज एवं प्रो0 एम0 शमी जैसे भूगोल विदों को जाता है, जिनके अथक परिश्रम के फलस्वरूप भूमि उपयोग अध्ययन एवं नियोजन के क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक स्वरूप को समझने में विशेष सहायता मिलती है ।

अब तक व्यवहृत पद्धतियों में अमेरिकी पद्धति, चीनी पद्धति एवं ब्रितानी पद्धति विशेष उल्लेखनीय है । उनके द्वारा किसी भू-भाग के सर्वाधिक उपादेयता वाले उपयोग,

प्रतिदर्श विधि द्वारा कृषि-नीति-निर्धारित करने के लिए जीवन-स्तर, जनसंख्या और विपणन के संदर्भ में गहन अध्ययन के प्रयास किये गये हैं । उपर्युक्त तीनों पद्धतियों का समन्वयात्मक दृष्टिकोण भारतीय भूगोल वेत्ताओं द्वारा प्रस्तुत किया गया है । भूमि-उपयोग अध्ययनों के अन्तर्गत कृषि क्षमता, कृषि गहनता, कृषि कुशलता, शस्य साहचर्य, शस्य सम्मिश्रण, शस्य सन्तुलन आदि विभिन्न पक्षों को समाहित किया गया है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य ग्राम्य-प्राधान्य कटिहार प्रखण्ड के भूमि उपयोग की समुचित व्याख्या को प्रस्तुत करना है, जिससे भौतिक, मानवीय और ऐतिहासिक कारकों के सन्दर्भ में भूमि-उपयोग की क्षेत्रीय एवं कालिक विशिष्टताओं की समुचित व्याख्या, सम्भाव्य क्षमता का मूल्याकंन तथा प्रखण्डवासियों की आवश्यकता एवं उनके आर्थिक स्तर के उन्नयन हेतु भूमि-उपयोग के समन्वित वैज्ञानिक नियोजन हेतु कुछ कार्यक्रम प्रस्तावित किए जा सकें ।

शोध-प्रबन्ध की पूर्णता हेतु सर्वेक्षण एवं आँकड़ों का संग्रह तीन उपक्रमों में किया गया है जिनके माध्यम से प्रखण्ड एवं ग्राम्य स्तर पर 'भूमि-उपयोग' संबंधी तथ्यों को एकत्रित किया गया है । शोध क्षेत्र में सर्वेक्षण का कार्य जुलाई 1991 से जून 1993 के बीच सम्पन्न किया, जिसके माध्यम से प्रखण्ड एवं चयनित गाँवों के भूमि-उपयोग एवं शस्य-प्रतिरूप सम्बन्धी आँकड़ों का संग्रह किया गया । इन गाँवों का चयन भिन्न-भिन्न विशेषताओं के आधार पर किया गया है ।

शोध-प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में अध्ययन क्षेत्र के भौतिक स्वरूप का वर्णन किया गया है । कटिहार प्रखण्ड का विस्तार $25^{0}28'$ उत्तरी से $25^{0}44'$ उत्तरी अक्षांश एवं $87^{0}32'$ से $87^{0}43'$ पूर्वी देशान्तरों के मध्य 26,807 हेक्टेअर क्षेत्र पर फैला हुआ है । 1991 की जनगणना के अनुसार इसकी कुल जनसंख्या 1,27,683 थी । प्रशासनिक दृष्टि से कटिहार प्रखण्ड के अन्तर्गत 20 न्याय-पंचायत एवं 126 ग्राम सम्मिलित है ।

उच्चावच की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र नदियों द्वारा लाई गई जलोढ़ मिट्टी द्वारा निर्मित समतल मैदान है, जिसकी तल से ऊँचाई लगभग 31.2 मी0 है । क्षेत्र का सामान्य

ढाल उत्तर से दक्षिण एवं उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूरब की ओर है । इस मैदान को भौतिक दृष्टि से दो भागों में बाँगर क्षेत्र, कछारी क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है । अध्ययन क्षेत्र कोशी और उसकी सहायक नदियों के अपवाह तन्त्रों के अन्तर्गत आता है । जिसमें कोशी धार, फरही, गिदरी, कमला, मोनाली आदि नदियाँ मुख्य हैं । अत्यधिक वर्षा एवं मन्द ढाल के फलस्वरूप अध्ययन क्षेत्र का लगभग 45% भू-भाग प्रतिवर्ष बाढ़ों एवं जल-जमाव से प्रभावित होता है । बाढ़ का विशेष प्रभाव इसके उत्तर में बहने वाली कोसी नदी एवं उसकी सहायक नदियों की घाटी क्षेत्र में परिलक्षित होता है । बड़ी बाढ़ों के समय 85 गाँव बरसात में जलमग्न हो जाते हैं ।

संरचनात्मक दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र कोशी मैदान का एक भाग है जो मध्यवर्ती गंगा मैदान के पूर्वी भाग में सम्मिलित है । इसका निर्माण होलोसीन युग से लेकर अद्यतन जमाव के परिणामस्वरूप हुआ है । जलवायु की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र की स्थिति आर्द्र-उपोष्ण मानसूनी प्रकार की है जहाँ औसत वार्षिक तापमान 24.4^{0} से0 एवं औसत वार्षिक तापान्तर 8.10^{0} से0 पाया जाता है । यहाँ जनवरी माह में सर्वाधिक वायुभार 1032 मिलीवार पाया जाता है । वायु-प्रवाह की दिशा पूरब से पश्चिम की होती है, जिसे 'पुरवा' हवा कहते हैं । औसत वायु-गति लगभग 5.48 कि0मी0 प्रति घंटा है । औसत मासिक सापेक्षिक आर्द्रता लगभग 43% -85% के बीच पाई जाती है । वर्षा का वार्षिक औसत 196.24 से0मी0 है । अध्ययन क्षेत्र के मौसम को प्रमुख तीन ऋतुओं 1. शीत 2. ग्रीष्म एवं 3. वर्षा में विभाजित किया जा सकता है जिनका स्पष्ट प्रभाव भूमि-उपयोग एवं फसल प्रतिरूपों पर देखा जाता है ।

कटिहार प्रखण्ड के मिट्टियों को दो प्रमुख प्रकारों एवं 6 उपविभागों में विभाजित किया जा सकता है । भूमि-उपयोग क्षमता का अध्ययन मुख्यतः चार शीर्षकों - अति उत्तम कोटि, उत्तम कोटि, मध्यम कोटि तथा निम्न कोटि के भूमि के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है । बाढ़ों एवं जलमग्न क्षेत्रो के कारण मृदा अपरदन अध्ययन क्षेत्र की एक मुख्य समस्या है जिसके रोकथाम एवं भूमि -संरक्षण हेतु कारगर व्यवस्था की आवश्यकता है । प्रखण्ड की मूल वनस्पति मानवीय क्रियाओं के कारण लगभग समाप्त कर दी गई है । आज

वनस्पति के रूप में आम, जामुन, अमरूद, महुआ, कटहल, नींबू, नारियल, ताड़ आदि के वृक्ष, मूँज, कूश आदि घासें पाई जाती हैं । दलदली स्थानों पर बाँस, नरकल (खरही) आदि देखने को मिलतें हैं ।

तृतीय अध्याय में अध्ययन क्षेत्र के भू-आर्थिक संसाधनों पर प्रकाश डाला गया है । इसमें सबसे महत्वपूर्ण कारक जनसंख्या है, जिसके विभिन्न पक्षों-वृद्धि, वितरण, घनत्व साक्षरता, व्यावसायिक संरचना आदि का अध्ययन किया गया है । जनसंख्या बहुलता की दृष्टि से कटिहार प्रखण्ड को प्रमण्डल में प्रथम स्थान प्राप्त है । वर्ष 1941-91 की अवधि (50 वर्षों) में प्रखण्ड के अन्तर्गत कुल वृद्धि 285.69% की हुई है । वर्ष 1981-91 की अवधि में इसकी जनसंख्या में 28.28% की वृद्धि पाई गयी है । अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या की वृद्धि एवं वितरण में असमानता मिलती है । ग्रामीण क्षेत्र में औसत घनत्व 476 व्यक्ति, नगरीय क्षेत्र कटिहार का औसत घनत्व 4281 तथा अध्ययन क्षेत्र (नगरीय और ग्रामीण) में 927 व्यक्ति प्रति वर्ग कि0मी0 जनघनत्व मिलता है । सामान्य जनघनत्व 6.3 व्यक्ति प्रति हेक्टेयर एवं कृषि-घनत्व 2.26 व्यक्ति प्रति हेक्टेयर पाया जाता है । यौन अनुपात 1991 की जनगणना के अनुसार प्रति हजार पुरूषों पर महिलाहों की संख्या 923 पाई गयी है । नगरीकरण की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र में एक नगरपालिका (कटिहार) है । 1991 की जनगणना के अनुसार कटिहार प्रखण्ड में 18.74% जनसंख्या शिक्षित है, जिसमें स्त्रियों की साक्षरता 23.7% पुरूषों की साक्षरता 76.23% की तुलना में बहुत ही कम है ।-

कार्यरत श्रमिकों का 95.74% भाग प्राथमिक वर्ग के उत्पादन में लगा हुआ है जिसमें 18% कृषक , 25.03% खेतिहर मजदूर, एवं 0.16% पशुपालन है । इसके विपरीत द्वितीय वर्ग एवं तृतीय वर्ग के अन्तर्गत काम करने वालों का प्रतिशत बहुत ही कम है ।

पशु-संसाधनों में गो-पशु, भैंस, बकरियाँ , सूअर, कुक्कट, बत्तख, मुर्गी, कबूतर एवं भेड़ों का महत्व है जिसके नस्लों में सुधार की अति आवश्यकता है । साथ ही पशु संसाधनों पर आधारित उद्योगों को विकसित कर अध्ययन क्षेत्र के आर्थिक विकास की गति को तीव्र किया जा सकता है । -

खनिज-सम्पदा की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र विपन्न है । नदियों के किनारे बालू, बाँगर क्षेत्र में कंकड़ तथा रेह का उपयोग क्रमशः गृह-निर्माण, सड़क-निर्माण तथा कपड़ों की धुलाई आदि कार्यों में किया जा सकता है ।

परिवहन साधनों में रेल एवं सड़क प्रमुख है जिनके कारण अध्ययन क्षेत्र प्रदेश के प्रमुख स्थानों से जुड़ा है । कटिहार एन0एफ0 रेलवे का मुख्यालय है तथा राष्ट्रीय राजमार्ग 31 इसके मध्यवर्ती भाग से गुजरती है ।

सिंचाई के साधनों में नहरों एवं नलकूपों का प्रमुख स्थान है । नलकूपों में सरकारी एवं व्यक्तिगत दोनों ही पाए जाते हैं । अध्ययन क्षेत्र में विशेष रूप से बाँस-बोरिंग का प्रचलन देखने को मिलता है । क्षेत्र के 64.28% गाँवों में विद्युत की सुविधा प्राप्त है । कृषि-यन्त्रों में लकड़ी के हल, लोहे का हल, ब्लेड, हैरो, ट्रैक्टर, सीड डीवर, प्लेन थ्रेसर, पंख थ्रेसर एवं दवा छिड़कने वाली मशीनों आदि का प्रयोग विगत दो दशकों से प्रारम्भ हुआ है । खाद एवं उर्वरक के लिए सभी न्याय-पंचायत स्तर पर खाद गोदाम उपलब्ध है । खाद, बीज का वितरण मुख्यतः सहकारी समितियों के द्वारा किया जाता है । उद्योगों की दृष्टि से पटसन उद्योग का प्रखण्ड के आर्थिक विकास में मुख्य योगदान है । इसके अतिरिक्त फ्लावर मिल्स, राइस मिल्स, सिलकेट इन्डस्ट्री बड़े पैमाने पर उत्पादन करते हैं । लघु एवं कुटीर उद्योगों में तेल पेरने , धान कूटने, आटा चक्की, चूड़ा मिल्स आदि केन्द्र सभी न्याय - पंचायत स्तर पर देखने को मिलते हैं । कटिहार नगर में कोल्ड-स्टोरेज, आइस फैक्ट्री, बिस्कुट फैक्ट्री एवं अनेक प्रकार के उद्योगों का विकास हुआ है । अध्ययन क्षेत्र भविष्य में एग्रो इन्डस्ट्री से संबंधित लघु उद्योगों का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बन सकता है ।

चतुर्थ अध्याय में भूमि उपयोग सिद्धान्तों का आलोचनात्मक परीक्षण किया गया है । इसमें वानथ्यूनेन, ओलोफ, जौनसन, ओ0ई0 बेकर, आगस्ट लॉस, वाल्टर इजार्ड, आर0 बी0 मण्डल (ध्रुवीय, प्रति ध्रुवीय विचारधारा), भूमि-उपयोग से संबंधित मैकार्टी एवं लिंडवर्ग तथा डेविड रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित अनुकूलतम भौतिक दशाओं, अनुकूलतम आर्थिक दशाओं एवं सीमाओं के सिद्धान्त का अध्ययन किया है ।

वानथ्यूनेन ने कुछ मानक दशाओं एवं मान्यताओं के आधार पर कृषि-भूमि उपयोग को आठ पेटियों में विभक्त किया है । उनके द्वारा परिलक्षित कृषि पेटियों का स्वरूप वास्तविकता में कहीं परिलक्षित नहीं होता है, वास्तव में परिवहन आदि साधनों के विकास के कारण भारत जैसे घने आबाद एवं गहन कृषि वाले देश में ये पेटियाँ करीब-करीब सन्दर्भहीन हो गयी है । -

वानथ्यूनेन की भाँति जौनसन की पेटियाँ भी नगर क्षेत्र से दूरी को ध्यान में रखकर संकल्पित की गई है, जो आज के परिवेश में लुप्त पाई जाती है । बेकर के आर्थिक सन्दंर्भों को ध्यान में रखते हुए कृषि के स्थायीकरण का सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया है, जो भौगोलिक दृष्टि से समुचित प्रतीत नही होता है । लॉश और क्रिस्टालर के सिद्धान्त षट्कोणीय प्रतिरूप से संबंधित है । इस सिद्धान्त में आधारभूत प्रतिरूप को षटकोणों के समुच्चयों द्वारा तथा उनके अन्तर्गत त्रिभुजीय प्रतिरूप में बिन्दुओं (गाँवों) द्वारा प्रस्तुत किया जाता है । मध्य में वह केन्द्रीय गाँव स्थित माना जाता है जहाँ बाहरी सभी गाँव के बाजार केन्द्र हैं । विद्वत है द्वारा प्रतिपादित मॉडल स्थिर प्रकृति के हैं । इन दोनों ने ही यह नहीं बताया है कि समय परिवर्तन के साथ इनमें किस प्रकार का परिवर्तन आ सकता है । इस प्रकार की स्थिति काल्पनिक है, जबकि परिवर्तन एक वास्तविकता है ।

वाल्टर इजार्ड का सिद्धान्त भी निर्माण क्रियाओं के सन्दर्भ में है, तथापि उन्होंने प्रक्षेप अर्थव्यवस्था के अन्य पक्षों का भी विश्लेषण किया है । आधुनिक कृषि विशेष सन्दर्भों में विनिर्माण उद्योगों की परिप्रेक्षता प्राप्त करने लगा है और इसलिए औद्योगिक अवस्थिति सिद्धान्त के विवेचनों से समादृत होने लगा है । वस्तुत. आधुनिक कृषि भी उद्योग समप्राय ही है । कृषि में भी सस्ते श्रम और सस्ते परिवहन लागत का वैसा ही प्रभाव पड़ता है जैसाकि विनिर्माण उद्योग में परिलक्षित होता है । इस प्रकार इजार्ड महोदय ने भूमि उपयोग में औद्योगिक एवं कृषि उपयोग को मिलाने का अच्छा प्रयास किया है ।

आर०बी० मंडल द्वारा प्रतिपादित भूमि उपयोग से संबंधित ध्रुवीय, प्रति-ध्रुवीय विचारधायें भी मध्य गंगा मैदान के लिए काल्पनिक प्रतीत होती हैं क्योंकि इनके द्वारा प्रतिपादित

ध्रुवीय विचारधारा भूमि उपयोग की दृष्टि से बहुत ही सरलता लिए हुए है जबकि विश्व में भूमि-उपयोग मे बहुत जटिलता मिलती है । साथ ही प्रतिध्रुवीय विचारधारा भी मात्र काल्पनिक ही प्रतीत होती है । भूमि उपयोग संबंधित नवीनतम सिद्धान्त के अन्तर्गत कृषि अवस्थिति के आधुनिक सिद्धान्तों के अन्तर्गत प्राकृकि वातावरण एवं भूमि की संसाधन की प्रादेशिक विभिन्नताओं को विशेष महत्व दिया गया है । इन सिद्धान्तों में विभिन्न कृषि उत्पादों की अवस्थितियों को समझने के लिए उन अनुकूलतम भौतिक एव आर्थिक क्षेत्रों को सीमाकित करने का प्रयास किया जाता है जिनमे विभिन्न फसलों का उत्पादन संभव है । इस प्रकार फसल के लिए अनुकूलतम प्राकृतिक एवं आर्थिक लक्षणों वाले प्रदेशों का सीमांकन करके कुल लागत पर प्रति एकड अधिक उत्पादन प्राप्त किया जाता है ।

भूमि-उपयोग से सम्बन्धित अन्य व्याख्याताओं मे आर0ओ0 बुचानन, हार्टशोन एवं डिकेन, चिशोम, ग्रोटवाल्ड, ह्विटलसी, डडले, स्टैम्प, मैकार्टी, लिंडवर्ग के योगदान विशेष उल्लेखनीय है ।

अध्ययन क्षेत्र के सन्दर्भ मे यह पाया गया है कि भूमि उपयोग से सम्बन्धित किसी सर्वमान्य एवं सर्वव्यापी विधि तन्त्र के विकास मे अनेक कठिनाइयाँ है । वास्तव में भूमि-उपयोग भौगोलिक आर्थिक, सामाजिक आदि ऐसे विचारकों से प्रभावित होता है जो निरन्तर परिवर्तनशील है ।

पाँचवां अध्याय भूमि-उपयोग के परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप से सम्बन्धित है । भूमि-उपयोग की विभिन्न अवस्थाएँ क्षेत्र विशेष की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक व्यवस्था की द्योतक होती है । अध्ययन क्षेत्र का अर्थतन्त्र कृष्येत्तर संसाधनों के अभाव में कृषि-संसाधनों पर आधारित है । इस क्षेत्र के भौगोलिक अध्ययन में भूमि उपयोग का सर्वाधिक महत्व है । कटिहार प्रखण्ड का भूमि उपयोग प्रारूप सामान्य जीवन-निर्वाहक अवस्था से गहन जीवन निर्वाहक अवस्था की ओर अग्रसर है क्योंकि अध्ययन क्षेत्र के अधिकांश गाँवों मे भूमि-उपयोग अपनी सम्भाव्य अवस्था तक पहुँच चुका है ।

अध्ययन क्षेत्र का कुल क्षेत्रफल 26807 हेक्टेयर है जिसका तीन-चौथाई 75.56% कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत है । कृषि अप्राप्य एवं कृष्य बंजर के अन्तर्गत क्रमश 14.74% एवम् 5 45% क्षेत्र सम्मिलित है । शेष 4 25% बाग-बगीचों के अन्तर्गत है । कृषि अप्राप्य भूमि के अन्तर्गत अधिवास, परिवहन-मार्ग, औद्योगिक सस्थान, बाजार, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्थान आदि के अन्तर्गत भूमि प्राप्त है । वर्ष 1951 में इनके अन्तर्गत 10.69% क्षेत्र था, जो 1991 मे 14 74% हो गया । विगत चार दशकों मे इसमें ह्रास एवं वृद्धि की प्रवृत्ति रही । 1951-91 की अवधि में कृषि अप्राप्य के प्रतिशत परिवर्तन में गाँव स्तर पर पर्याप्त भिन्नता मिलती है । अध्ययन क्षेत्र के लगभग तीन-चौथाई (72.2%) मे वृद्धि तथा शेष एक चौथाई (24 8%) मे ह्रास की प्रवृति पाई जाती है ।

वर्ष 1951 में सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र का 26.28% कृष्य बंजर (पुरानी परती, नई परती, घास, कँटीली झाड़िया, दलदल, ऊसर एव बंजर) के अन्तर्गत था, जो घटकर 1991 मे मात्र 5 45% रह गया है । यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि कृष्य बंजर का क्षेत्रफल विगत चार दशकों मे 1/5 (20.00%) हो गया है । इसमें ह्रास का मुख्य कारण बाढ, विभीषिका पर यथा सभव नियंत्रण, नवीन कृषि यंत्रों, रासायनिक उर्वरकों, उन्नतशील बीजो के प्रयोग के साथ ही जनसख्या वृद्धि के कारण कृषकों द्वारा अत्यधिक उत्पादन प्राप्त करने हेतु जागरूकता एवं अथक परिश्रम रहा है । वर्तमान मे कृष्य बंजर का क्षेत्र अतिसीमित है । अनुकूल परिस्थितियो मे कृष्य बंजर को कृषित क्षेत्र में परिवर्तित किया जा सकता है।

वर्ष 1951 मे अध्ययन क्षेत्र का 12.28% बाग-बगीचों के अन्तर्गत था जो 1991 मे घटकर मात्र 4 25% रह गया है । उल्लेखनीय है कि बाग-बगीचों का क्षेत्रफल विगत चार दशकों में एक चौथाई हो गया है । अध्ययन क्षेत्र में बाग-बगीचों के अन्तर्गत क्षेत्रफल मे ह्रास पुराने पेड़-पौधों तथा अपेक्षाकृत अल्प आर्थिक आय के कारण काटकर उनके स्थान पर केले और जूट की कृषि के क्षेत्रो में परिवर्तन कर लिए हैं । बाग-बगीचों में यह शोषण जनसख्या की तीव्र वृद्धि के फलस्वरूप हुआ है । कटिहार प्रखण्ड के पारिस्थितिकीय तन्त्र को व्यवस्थित रखने हेतु पुनः प्रखण्ड में हरीतिमा का प्रसार आवश्यक है ।- शुद्ध कृषिगत क्षेत्र-

भूमि उपयोग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक है । इसके उपयोग की विभिन्न अवस्थायें मानव के सामाजिक, सॉस्कृतिक एवम् आर्थिक विकास स्तर का परिचायक है । वर्ष 1951 में शुद्ध बोया गया क्षेत्र 50 75% था, जो बढकर 1991 में 75.56% हो गया है । ग्राम्य स्तर पर भी विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि वर्ष 1991 में शुद्ध बोये गए क्षेत्रफल के अन्तर्गत 50 गॉवों में 80% से ऊपर कृषित क्षेत्र पहुँच चुका है । अध्ययन क्षेत्र के श्रेणीगत वितरण से स्पष्ट है कि 1951 मे 60% से कम कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत 71% गॉव सम्मिलित थे, जबकि 1991 मे 60% कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत 75% गॉव सम्मिलित है । इस प्रकार 1951 और 1991 की अवधि मे शुद्ध बोये गए क्षेत्र के अन्तर्गत 24.81% की वृद्धि हुई है । ग्राम्य स्तर पर ह्रास एवं वृद्धि दोनों ही प्रकृति मिलती है । कटिहार सेवा केन्द्र के निकट एवम् नदियों के तटवर्ती गांवों के समीपस्थ क्षेत्रो में ह्रास हुआ है । शहरी क्षेत्र के निकट के गांवों में आवास, दुकानें, उद्योगों, प्रशासनिक कार्यालयों तथा सामाजिक, सांस्कृतिक प्रतिष्ठानों एवं परिवहन मार्गों का निर्माण कृषित क्षेत्रों पर हुआ है ।

अध्ययन क्षेत्र के लगभग 95% गांवों मे शुद्ध बोये गए क्षेत्रफल में वृद्धि की सम्भावनायें समाप्त प्राय है। शेष गॉव विभिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण शुद्ध कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत उच्च प्रतिशत को प्राप्त नहीं कर सकते है । ग्रामीण विकास में कृषि पर आधारित लघु उद्योगो का विकास परिवहन की बढ़ती हुई सुविधाएँ तथा सेवा केन्द्रों के सतत् विकास के परिणाम स्वरूप शुद्ध कृषिगत क्षेत्र में ह्रास अवश्यम्भावी है ।

भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले कारकों मे सिंचाई के साधनों का विशिष्ट स्थान है । 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक विरल जनसंख्या, विस्तृत जीवन-निर्वाह, परम्परागत कृषि पद्धति तथा जलवायुविक विशेषताओं (अत्यधिक वर्षा, जलप्लावन, जल-जमाव, एवं अत्यधिक आर्द्रता युक्त भूमि) के कारण कृषि मे सिंचाई का महत्व कम था । कालान्तर में जनसंख्या वृद्धि के परिणाम स्वरूप कृषिगत क्षेत्र में विस्तार एवम् पारम्परिक कृषि के स्थान पर नवीन कृषि पद्धति के विकास के सन्दर्भ में सिंचाई का महत्व तेजी से बढ़ा है । 1951 में शुद्ध कृषिगत क्षेत्र का मात्र 15 7% क्षेत्र सिंचित था जो आज बढ़कर 1991 में 38.01% हो गया है । वर्ष 1951 में सिंचाई के साधन के रूप में कुआँ, तालाब, पोखरा, नदी आदि महत्वपूर्ण

थे । वर्तमान मे सिंचाई के साधन के रूप मे 'नहर, नलकूप (सरकारी तथा व्यक्तिगत) के फलस्वरूप सिंचित क्षेत्र में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है ।

दो फसली क्षेत्र का उच्च प्रतिशत भूमि उपयोग गहनता का सूचक है । वर्तमान मे शुद्ध बोये गए क्षेत्रफल का 51 65% दो फसली है । ग्राम्य स्तर पर इसमें पर्याप्त भिन्नता मिलती है । अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत दो फसली क्षेत्र का श्रेणीगत् वितरण प्रतिरूप के अन्तर्गत 40% से नीचे 60 गाँव, 40-60% के मध्य 15 गाँव, 60-80% के मध्य 15 गाँव तथा शुद्ध कृषित क्षेत्र के 80% से ऊपर 10 गावों में दो फसली क्षेत्र का विस्तार मिलता है । वर्ष 1951 में शुद्ध बोये गए क्षेत्रफल का 17 9% दो फसली था जो 1991 में बढ़कर 41.65% हो गया है ।

अध्याय षष्ट्म शस्य-प्रतिरूप से सम्बन्धित है । शस्य प्रतिरूप एवम् उनकी गहनता का विश्लेषण कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था की जीवन्तता के आँकलन मे सहायक होता है । अध्ययन क्षेत्र में भदई, अगहनी, रबी एव गरमा का क्रमश 25.74%, 40.77%, 21.02%, एवं 12.47% क्षेत्र सम्मिलित है । अध्ययन क्षेत्र की सर्वाधिक महत्वपूर्ण फसल अगहनी (धान) है, जो सकल कृषित क्षेत्र का 40 77% प्राप्त है । न्यूनतम क्षेत्रफल गरमा फसल का 12.47% है ।

धान की फसल अध्ययन क्षेत्र में भदई, अगहनी एवं गरमा तीनों ही मौसमी फसलों में उत्पन्न की जाती है । यह अध्ययन क्षेत्र की सर्वाधिक महत्वपूर्ण फसल है, जिसके अन्तर्गत सकल कृषित क्षेत्रफल का 46 9% भू-क्षेत्र सम्मिलित है । मक्के का उत्पादन भी भदई, रबी एवं गरमा फसलों के अन्तर्गत किया जाता है जिसका प्रतिशत 11.15 है । दलहन के अन्तर्गत भदई, अगहनी, रबी एवं गरमा चारों ही मौसमी फसलों में क्रमश· अरहर, मूँग, उडद, कुल्थी, चना, मटर, लतरी (खेसारी) आदि सकल कृषित क्षेत्र के 14.84% क्षेत्र पर उत्पन्न की जाती है । मूँग की फसल भदई एवं गरमा दोनों मे ही उत्पन्न की जाती है।

ज्वार-बाजरा की कृषि भदई फसल के अन्तर्गत की जाती है जिसके अन्तर्गत 1.08% भू-क्षेत्र सम्मिलित है । भदई फसल के अन्तर्गत तीसरी महत्वपूर्ण फसल पटसन है जिसका उत्पादन 3.98% भू-क्षेत्र पर की जाती है । हरी-साग सब्जियों के अन्तर्गत 8.08% क्षेत्र सम्मिलित है ।

रबी की सबसे महत्वपूर्ण फसल गेहूँ है जो सकल कृषित क्षेत्र के 9.75% क्षेत्र पर उत्पन्न की जाती है । फलों की खेती गरमा फसल के अन्तर्गत की जाती है, जिसमें सकल कृषित क्षेत्र का 2.77% भू-भाग सम्मिलित है । फलों में केले की खेती सबसे महत्वपूर्ण है । अध्ययन क्षेत्रवासी आम और केले के उत्पादन के प्रति विशेष रूप से जागरूक है । मक्का, दलहन एवं हरी सब्जियाँ उभयनिष्ठ है, जिनका क्षेत्रफल भदई अगहनी तथा गरमा में सम्मिलित है । अध्ययन क्षेत्र का शस्य स्वरूप खाद्यान्नोंत्पादन प्रधान : जीवन-निर्वाहक-मूलक कृषि व्यवस्था का प्रतीक है । बोये गए क्षेत्रफल के लगभग 68.07% भू-क्षेत्र पर खाद्यान्नोत्पादन होता है । पटसन, केला तथा तिलहन मुख्य मुद्रादायिनी फसलें है जिनके अन्तर्गत 8.2% क्षेत्र सम्मिलित है । अध्ययन क्षेत्र की चारों फसलें (भदई, अगहनी, रबी एवं गरमा) के परिवर्तन विश्लेषण हेतु 1951-91 के आँकड़ों के आधार पर परिवर्तन प्रतिरूप को प्रदर्शित किया गया है ।

चार दशकों में फसलों के प्रतिरूप में तीव्र परिवर्तन देखने को मिलता है । भदई फसल के अन्तर्गत वर्ष 1951 में सकल कृषित क्षेत्र के 24.04% (4796 एकड़) पर व्याप्त था जो बढ़कर 1991 तक 190.38% (13927 एकड़) को प्राप्त कर लिया है । अगहनी फसल के अन्तर्गत सकल कृषित क्षेत्र का वर्ष 1951 में 63.78% (10973 एकड़) पर विस्तृत थी जो 1991 तक 101% परिवर्तन वृद्धि (2261 एकड़) में व्याप्त है । सर्वाधिक वृद्धि रबी फसलों के अन्तर्गत देखने को मिलती है । वर्ष 1951 में सकल कृषित क्षेत्र 6.83% (1356 एकड) पर विस्तृत थी । इसके अन्तर्गत चार दशकों में 738.93% वृद्धि देखने को मिलती है । गरमा फसलों के भू-क्षेत्र में भी तीव्र परिवर्तन देखने को मिलता है । वर्ष 1951 में सकल कृषित क्षेत्र का 5.35% (1034 एकड़) क्षेत्र विद्यमान था जो वर्ष 1991 तक इसके अन्तर्गत 552.7% परिवर्तन देखने को मिलता है । इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से सर्वाधिक वृद्धि रबी फसलों के अन्तर्गत हुआ है । दूसरा स्थान गरमा फसलों का है । रबी एवं गरमा

फसलों के अन्तर्गत यह वृद्धि सिंचाई की सुविधाओं , नवीन कृषि पद्धति, उन्नतिशील रासायनिक उर्वरकों, उन्नतिशील बीजों आदि की सुविधा के कारण है । वरीयता क्रम में तीसरा और चौथा स्थान क्रमशः भदई एवं अगहनी फसलों का है जिसके अन्तर्गत क्रमशः 190.38% एवं 101.04% की वृद्धि हुई है । चूंकि इन फसलों के अन्तर्गत पहले से ही सर्वाधिक क्षेत्र सम्मिलित था जिसके कारण तुलनात्मक दृष्टि से कम वृद्धि हुई है । ग्राम्य स्तर पर भी रबी , गरमा, भदई एवं अगहनी फसलों के अन्तर्गत प्रतिशत वृद्धि परिवर्तन में भिन्नता देखने को मिलती है ।

अध्ययन क्षेत्र की शस्य गहनता 1951 में 53.39% थी, जो बढ़कर 1991 में 130% हो गयी है । न्याय पचायत एवं ग्राम्य स्तर पर इसमें पर्याप्त भिन्नता मिलती है वर्ष 1951 के ग्राम्य स्तर पर सम्भावित आँकड़ों के अभाव में प्रखण्ड स्तर पर शस्य गहनता का आँकलन कर अन्तर के आधार पर प्रतिशत वृद्धि की गणना की गई है । शस्य गहनता में सर्वाधिक वृद्धि न्याय - पंचायत दोआसे मे 227.44% देखने को मिला एवं न्यूनतम शस्य गहनता में वृद्धि रघैली में 24.43% प्राप्त है । 1991 में ग्राम्य स्तर पर भी शस्य गहनता में अन्तर मिलता है । सबसे कम गहनता ग्राम कजरी में 70% (जो अध्ययन क्षेत्र के उ0पू0 भाग) में महमदिया न्याय पंचायत) है । वही उच्च गहनता 229% ग्राम नीमा (न्याय पंचायत बोरनी गोरगामा) में प्राप्त है । वर्ष 1991 के आँकड़ों के आधार पर ग्राम्य स्तर पर पाँच श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है । उच्च गहनता (160% से अधिक) के अन्तर्गत 33.6% (42 गाँव), उच्च गहनता (140-160%) के अन्तर्गत अध्ययन क्षेत्र 8.8% (11 गाँव), मध्यम गहनता (120-140%) के अन्तर्गत 20.8% (26 गाँव), निम्न गहनता (100-120%) के अन्तर्गत 26.4% (33 गाँव) तथा निम्नतम गहनता (100%) के अन्तर्गत 10.4% (13 गाँव) प्राप्त है ।

इस प्रकार शस्य गहनता सम्बन्धी अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत लगभग 42% गाँव उच्च एवं उच्चतम कृषि गहनता वाले हैं । उच्च गहनता से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कटिहार प्रखण्ड के अधिकांश गाँवों में बहुफसली कृषि के कारण शस्य गहनता का प्रतिशत उच्च एवं उच्चतम श्रेणी में आ गया है ।

उच्चतम कोटि को भी नवीन कृषि तकनीकी की सुविधा प्रदान कर उच्च श्रेणी के बदला जा सकता है ।

सातवें अध्याय में प्रतिदर्श गाँवों के भूमि उपयोग सम्बन्धी समस्याओं का सम्यक् अध्ययन किया गया है कटिहार प्रखण्ड के अन्तर्गत आठ ऐसे प्रतिदर्श गाँवों का चयन भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि विशेषताओं को ध्यान में रखकर किया गया है जिससे निम्न तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है ।

अधिकांश गाँवों में कृषित क्षेत्र का विकास अपनी चरमावस्था पर पहुँच चुका है , गाँवों में कृष्य-बंजर (परती, उबड़, खाबड़, बीहड़, चारागाहों, झाड़ियों एवं दलदली क्षेत्र आदि) का क्षेत्रफल उत्तरोत्तर ह्रासोन्मुख है जबकि कृषि अप्राप्य भूमि का क्षेत्रफल क्रमशः बढ़ रहा है । बाग-बगीचों का क्षेत्र विस्तार सिकुड़ता जा रहा है । यदि गाँवों में इस हरीतिमा के सिकुड़ाव को न रोका गया तो निकट भविष्य में पर्यावरण के सन्तुलन में गम्भीर संकट उत्पन्न हो जाने की पूर्ण संभावना है । सिंचाई एवं नई कृषि पद्धतियों के विकास के साथ-साथ दो फसली एवं बहुफसली क्षेत्रों में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है । चयनित गाँवों में भी फसल प्रतिरूप के अन्तर्गत तेजी से परितर्वन हो रहा है । अध्ययन क्षेत्र में भदई, अगहनी एवं गरमा फसलों में धान की खेती पर्याप्त क्षेत्रों पर हो रही है । अत. इसके अन्तर्गत क्षेत्र का विस्तार अब बहुत ही मन्द गति से हो रहा है । भदई मौसम में मक्के और ज्वार-बाजरे के कृषि में भी ह्रास देखने को मिला । रबी फसल में गेहूँ, दलहन, तिलहन तथा हरी-साग-सब्जियों के अन्तर्गत क्षेत्र विस्तार तेजी से हो रहा है । रबी की ही भाँति गरमा फसलों के अन्तर्गत दलहन एवं हरी साग-सब्जियों का विस्तार सिंचाई की सुविधा के फलस्वरूप तेजी से हो रहा है । गैर आबाद गाँवों में भूमि उपयोग प्रतिरूप में परिवर्तन का प्रतिशत आबाद गाँवों की तुलना में कम है ।

अधिकांश चयनकृत गाँवों में पारम्परिक कृषि की प्रधानता पाई जाती है । कृषकों की गरीबी, अशिक्षा आदि के कारण नई कृषि पद्धतियों के विकास को पर्याप्त अवसर नहीं मिल पा रहा है । कृषि में खाद्यान्न फसलों की प्रधानता है , जो वास्तव में जीवन-निर्वाहक कृषि का एक अंग है । कृषकों को व्यापारिक स्तर भी देने की आवश्यकता

है । कृषि की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए सिंचाई की सुविधा, तकनीकी विकास, नई कृषि प्रकृति के अवलम्बन की आवश्यकता है ।

अष्टम अध्याय में कटिहार प्रखण्ड के भूमि-उपयोग के नियोजन हेतु कुछ ठोस सुझाव प्रस्तावित किये गये हैं । अध्ययन क्षेत्र में बाढ़ एवं जल-जमाव आदि प्राकृतिक समस्याओं कें निराकरण हेतु कोशी धार, कमला, गिदरी मोनाली, सौरा नदी के तटबन्धों को मजबूत करने तथा इनके विशर्पों को सीधा करने की आवश्यकता है । ऊसर सुधार हेतु जिप्सम एवम् पैराइट के प्रयोग को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए । इसी प्रकार सामाजिक, आर्थिक समस्याओं के समाधान हेतु भूमि उपयोग के वर्तमान स्वरूप में सुधार करके अध्ययन क्षेत्र की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ किया जा सकता है ।

अध्ययन क्षेत्र मे कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत 75.56% भू-भाग सम्मिलित है । कृष्य बंजर के अन्तर्गत 5.45% क्षेत्र है । कृष्य बंजर क्षेत्र को आधुनिक सुविधाओं के विकास के परिणाम स्वरूप कृषि क्षेत्र में बदला जा सकता है । कृष्य बंजर का 3% क्षेत्र कृषित क्षेत्र में सुगमतापूर्वक परिवर्तित किया जा सकता है । इस प्रकार कृषित क्षेत्र का विस्तार लगभग 80% क्षेत्र पर हो जायेगा । सर्वेक्षण से यह विदित हुआ कि अध्ययन क्षेत्र में तालाब पोखरों को व्यवस्थित कर इनमें मत्स्य-पालन, सिंघाड़े की खेती तथा मखाना आदि का उत्पादन किया जा सकता है ।

क्षेत्रान्तर्गत 4.25% क्षेत्र बाग-बगीचों में सम्मिलित है । अध्ययन क्षेत्र के सर्वेक्षण से यह ज्ञात हुआ कि बाग-बगीचों के पेड़-पौधे पुराने हो चुके हैं, सूख रहे हैं, उनसे भरपूर फलों का उत्पादन सम्भव नहीं हो पा रहा है, अत इनके अन्तर्गत धीरे-धीरे परिवर्तन आवश्यक है । बगानों मे हर तरह के नये पेड़ पौधों को लगाने की आवश्यकता है । इसके साथ ही देखने को मिला कि अप्राप्य भूमि जो अधिवासों, सड़कों, रेलवे लाइन, नहरों या विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक उपयोगों में सम्मिलित है, वहाँ भी बहुत भूमि बेकार पड़ी है । अतः इस प्रकार की भूमि पर आवश्यकतानुसार वृक्षारोपण कर अध्ययन क्षेत्र की हरीतिमा को बढ़ाई जा सकती है ।

अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत 38.01% क्षेत्र सिंचित है । सिंचाई की सुविधा को बढ़ाकर इसमें 12% तक की वृद्धि की जा सकती है । साथ ही खाद, उर्वरक, उन्नतशील बीज, नवीन कृषि यन्त्र तथा नवीन पद्धति के परिणामस्वरूप दो फसली क्षेत्र का भी विस्तार किया जा सकता है । इन सुविधाओं के प्राविधान से 15% तक दो फसली क्षेत्र में विस्तार किया जा सकता है । इसके साथ ही शस्य स्वरूप, फसल चक्र, बहुफसली कृषि तथा गहन कृषि आदि को समुचित प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए । एतदर्थ ग्राम्य स्तर को इकाई मानकर किया गया नियोजन अधिक सफल हो सकता है ।

इस अध्ययन में भूमि-उपयोग से संबंधित अनेक सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है । भूमि नियोजन अथवा कृषि भूमि उपयोग या कृषि विकास में आने वाले व्यवधानों के नियंत्रण के लिए प्रयासों का निरूपण किया गया है ।- कृषि उत्पादन में विपणन समस्या की भी समीक्षा की गयी है और उसमें उपस्थित समस्याओं के समाधान का विवेचन भी किया गया है ।

भूमि उपयोग संबंधी अध्ययन में नवीन पद्धतियों का भी विश्लेषण किया गया है, जिसके अन्तर्गत भूमि सक्षमता, उत्पादकता, बहुफसली कृषि, कुशलता एवं गहनता आदि पक्षों का समावेश किया गया है । भूमि की सक्षमता, उत्पादकता तथा गहनता बढ़ाने के लिए कुछ प्रमुख उपायों का भी उल्लेख किया गया है ।

अध्ययन क्षेत्र के विभिन्न पक्षों को ध्यान में रखकर भूमि उपयोग में हो रहे दुरूपयोगों या हानियों को रोका जा सकता है ।

अध्ययन क्षेत्र कटिहार नगर पालिका को छोड़कर पूर्णतः ग्रामीण क्षेत्र है । अतः इसके विकास के लिए उच्चतम भूमि उपयोग क्षमता एवं अधिकतम कृषि उत्पादन हेतु योजनाबद्ध प्रयास आवश्यक है । अध्ययन क्षेत्र में अनुकूलतम भूमि उपयोग की स्थिति की प्राप्ति में भौतिक कारकों के साथ ही साथ आर्थिक एवं सामाजिक कारक अवरोध उपस्थित करते रहते हैं । अध्ययन क्षेत्र के समन्वित विकास की प्रक्रिया को दृढ़तर बनाने के लिए

प्रकृतिक विपदाओं एवं सामाजिक आर्थिक समस्याओं के निवारण हेतु कुछ सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं ।

(अ) प्राकृतिक विपत्तियों में जल-प्लावन, जल-जमाव, नदी परिवर्तन एवं रबी तथा गरमा के मौसम में जलाभाव विशेष उल्लेखनीय है ।

जल-जमाव की समस्या के निराकरण हेतु :-

1. जल निकासी की सुविधा का प्राविधान ।
2. अध्ययन क्षेत्र के तालाबों पोखरों को गहरा कर उसकी जल ग्रहण क्षमता में वृद्धि । -
3. अध्ययन क्षेत्र में जहाँ जल-तल ऊँचा है वहाँ भूमिगत जल का अधिकाधिक उपयोग किया जाय ।
4. नहरों, नदियों, सड़कों, रेलवे लाइनों के किनारे सघन वृक्षारोपण किया जाय ।

कोसी धार, कमला, मोनाली, गिदरी आदि नदियों के बाढ़ नियंत्रण हेतु :-

1. बाँधों का निर्माण ।
2. नदी विसर्पों को सीधा किया जाय ।
3. नदियों में रेत, बालू, को निकालकर घाटी को गहरा किया जाय ।
4. स्थानीय बाढ़ का प्रभावकारी नियन्त्रण सम्बन्धी सुझाव प्रस्तावित है ।

(ब) सामाजिक आर्थिक समस्याओं के समाधान हेतु :-

1. भूमि उपयोग के वर्तमान स्वरूप में सुधार ।
2. भूमि उपयोग के परिवर्तन हेतु आवश्यक सुविधाओं का प्राविधान ।
3. कृष्येत्तर ग्रामीण उद्योग की स्थापना ।
4. स्थानीय जनसंख्या के जीवन-यापन स्तर में सुधार सम्बन्धी योजनाएँ प्रस्तावित की गयी है ।

शुद्ध बोये गए क्षेत्र में वृद्धि आवश्यक है । लेकिन इसके लिए पारिस्थितिकीय सन्तुलन के मानकों को भी ध्यान में रखना होगा । कृष्य बंजर क्षेत्र को नई कृषि पद्धतियों,

सिंचाई की सुविधा, उर्वरकों , उत्तम बीजों के प्रयोग द्वारा कृषिगत क्षेत्र में परिवर्तित किया जा सकता है । इसी भाँति दो फसली क्षेत्र की वृद्धि भी सम्भव है ।

नवीन कृषि पद्धति, सिंचाई, उन्नतशील बीज, उर्वरक तथा अच्छी फसल चक्र के माध्यम से कृषि उत्पादकता में भी वृद्धि की जा सकती है । बिखरे हुए छोटे-छोटे खेतों का दोषपूर्ण भूस्वामित्व यंत्रीकरण के लिए बाधक है, अतः अध्ययन क्षेत्र में चकबन्दी आवश्यक है साथ ही सरकारी तन्त्र के सहयोग से भारी कृषि यन्त्रों (ट्रैक्टर, पम्पिंग सेट आदि) की सुविधा निम्नतम ऋण पर उपलब्ध होनी चाहिए । स्थानीय कृषि उत्पादनों पर आधारित चावल, दाल, आटा एवं तेल मिलों की स्थापना सभी न्याय पंचायत स्तर पर होनी चाहिए । कटिहार शहर में जूट, फ्लावर मिल की स्थापना पटसन एवं गेहूँ की स्थानीय खपत पर आधारित है। अत' इसके उत्पादन पर जोर दिया जाय । न्याय पंचायत मुख्यालयों पर कृषि यंत्रों के मरम्मत हेतु कृषि वर्कशाप की स्थापना के साथ ही आइसक्रीम, हैण्डलूम, जूता, टोकरी, रस्सी, मिट्टी के बर्तन हेतु लघु इकाइयों की स्थापना की जानी चाहिए । मुर्गी पालन, मत्स्य पालन को प्रश्रय मिला चाहिए । अध्ययन क्षेत्र में आलू, प्याज के भण्डारण हेतु प्रशीतक (कोल्ड स्टोरेज) की स्थापना का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया है ।

अध्ययन क्षेत्र में सड़के टूटी-फूटी अवस्था में है । अत राष्ट्रीय मार्ग, राज मार्ग के साथ ही जनपद स्तरीय एवं विकास खण्ड स्तरीय सड़कों को भी पक्की सड़क के निर्माण का सुझाव दिया गया है ।

अध्ययन क्षेत्र के चतुर्दिक विकास हेतु प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, जच्चा-बच्चा, प्रजनन केन्द्र, परिवार नियोजन केन्द्र, पशु चिकित्सालय सम्बन्धी सुविधाओं का प्राविधान न्याय पंचायत स्तर पर प्रस्तावित है ।

इन उपर्युक्त सभी सेवाओं के प्रसार तथा वृद्धि के लिए सरकारी प्रयास एवं क्षेत्रीय जनता की जागरूकता अति आवश्यक है ।

बिहार के कटिहार प्रखण्ड में भूमि उपयोग परिवर्तन प्रतिरूप

शोध-प्रबन्ध

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० (भूगोल)
उपाधि हेतु प्रस्तुत

निर्देशक
डा० ब्रह्मानन्द सिंह
प्रवक्ता, भूगोल विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

शोधकर्त्ता
दीन बन्धु
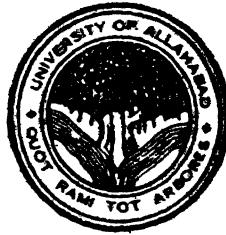
भूगोल विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

1993

प्राक्कथन

मनुष्य का भूमि से सम्बन्ध उसके अस्तित्व से ही प्रारम्भ होता है । आदि काल में तो मनुष्य की भूमि उपयोगिता केवल वन्य जीवों के शिकार तक ही सीमित रही होगी । किन्तु मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप विभिन्न देश और काल मे भूमि का उपयोग बदलता रहा । कालान्तर में विज्ञान और तकनीकी विकास एव मानवीय आवश्यकताओं की विविधता के कारण इसका असंतुलित उपयोग होने लगा, जिसकेकारण आज सम्पूर्ण पर्यावरण ही क्षति-ग्रस्त अवस्थिति की ओर बढ़ रहा है। इस विभीषिका से बचने के लिए आज आवश्यक हो गया है कि विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भूमि के सुसंतुलित उपयोग को प्रतिष्ठित किया जाए ।

भूमि से सम्बन्धित मनुष्य की मुख्य आवश्यकताओं को हम मूलतः तीन भागों मे विभाजित कर सकते है - सांस्कृतिक, कृषि एवं प्राकृतिक सम्पत्ति । जिनमें सांस्कृतिक एवं कृषि कार्य ही भूमि उपयोग प्रतिरूप मे परिवर्तन लाने वाले प्रमुख कारक है । सांस्कृतिक उपयोग मे आवास, कार्यस्थल, परिवहन मार्ग इत्यादि तथा कृषि-उपयोग में विभिन्न शस्य, बाग-बगीचे आदि आते है । भौगोलिक परिस्थितियों तथा मानवीय आवश्यकताओं के साथ-साथ इसके स्वरूप में परिवर्तन आता जाता है । अत इससे उत्पन्न समस्याओं के समाधान के लिए वृहद स्तर से लेकर लघुत्तम स्तर के प्रदेशों में भूमि उपयोग प्रतिरूप में परिवर्तन का अध्ययन आवश्यक हो जाता है, ताकि इससे उत्पन्न होने वाली समस्याओं का एक उपयुक्त नीति के साथ समाधान प्रस्तुत किया जा सके । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध इसी सन्दर्भ के निमित है । इसके अन्तर्गत **कटिहार प्रखण्ड** को अध्ययन की एक इकाई के रूप में लिया गया है । उसमें भूमि उपयोग के मौलिक सिद्धान्तों, वर्गीकरण, उपयोग तथा इससे उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर तथ्यों के साथ विचार करते हुए, उसके समाधान से सम्बन्धित भूमि उपयोग में एक उपयुक्त नीति क्या हो, इस पर प्रकाश डाला गया है ।

कटिहार प्रखण्ड बिहार राज्य के उत्तरी-पूर्वी भाग से संलग्न है । इसकी भूमि का निर्माण विभिन्न नदियों (कोसी, गंगा, महानंदा) द्वारा लायी गयी मिट्टी से हुआ है । अशिक्षा, गरीबी एवं रूढ़िवादिता के कारण अध्ययन क्षेत्र काफी पिछड़ा है जिसके फलस्वरूप

वर्तमान भूमि का सही ढग से उपयोग नहीं हो सका है । इस क्षेत्र की सबसे बडी समस्या प्रतिवर्ष अतिवृष्टि, बाढ एव सूखे से होने वाली कृषि की क्षति है । चूँकि यहाँ की अर्थव्यवस्था मूलत कृषि पर ही आश्रित है । अत इसका प्रभाव लोगों के आर्थिक, सामाजिक एव सांस्कृतिक जीवन पर पडता है । अध्ययन क्षेत्र मे चार फसलों (भदई, अगहनी, रबी एव गरमा) का उत्पादन होता है । अगहनी यहाँ की प्रधान फसल है । मुद्रादायिनी फसलों में यहाँ पटसन, केला का उत्पादन किया जाता है, किन्तु इसमे उल्लेखनीय सुधार नहीं हो सका है । किसानों मे इसके प्रति विशेष अभिरूचि उत्पन्न किए बिना इसमे अपेक्षित सुधार नहीं लाया जा सकता।

अध्ययन क्षेत्र मे घनी आबादी होने के कारण तथा भूमि का अनियोजित तथा अव्यवस्थित रूप से उपयोग होने के कारण अनेक समस्याओं ने जन्म लिया है, जिसके सबसे अधिक शिकार यहाँ के भूमिहीन कृषि मजदूर है । प्रस्तुत क्षेत्र में कृषि पर आधारित लघु उद्योगों के विकास की प्रबल सम्भावना है, किन्तु इसके लिए सक्रिय प्रयास एवं सरकारी सहयोग आवश्यक है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मे कटिहार प्रखण्ड मे भूमि उपयोग के विभिन्न पक्षों को विश्लेषित करने के लिए उपयुक्त मानचित्रों एवं रेखाचित्रों का समावेश किया गया है । प्रतिदर्श रूप में आठ गाँवों के विशेष अध्ययन से जो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों और भिन्न-भिन्न पक्षों का प्रतिनिधित्व करते हैं, इस अध्ययन के प्रायोगिक पक्ष को भी परिपुष्ट करने का प्रयास किया गया है। शोधकर्ता ने भरपूर प्रयास किया है कि वास्तविक तथ्य, यथा-सम्भव परिलक्षित किया जाय, जिससे भूमि-उपयोग का व्यावहारिक स्वरूप सार्थकता पूर्ण विवेचित हो सके । यद्यपि कहीं-कही उचित आँकडों के सुलभ न होने से उक्त विश्लेषण अधिक तर्क संगत नहीं हो सका है , फिर भी विश्लेषण मे सजगता एवं प्रवाहमयता बनाये रखने का यथोचित प्रयास किया गया है ।

उक्त शोध प्रबन्ध एक भौगोलिक प्रयास के रूप में प्रस्तुत है । उद्देश्य पूर्ति में यह प्रयास कितना सफल है, इसे विद्वजन ही बता सकते हैं । यदि मेरे इस शोध कार्य से उद्देश्य पूर्ति में आंशिक भी सफलता मिलती है, तो मेरा प्रयास सार्थक होगा एवं भरपूर संतोष की प्राप्ति होगी ।

"दीनबन्धु"

आभारोक्ति

गुरू के प्रति एक शिष्य किन रूपों मे आभार व्यक्त करे, जिनके ज्ञान के आलोक पुँज से ही वह अस्तित्व पाता है एव उसका व्यक्तित्व प्रकाशमान होने के साथ पूर्णता को प्राप्त करता है, फिर भी पूज्य गुरू के प्रति दो शब्द न अर्पित करूँ तो यह मेरी धृष्टता होगी । अत चिर प्रेरणा स्रोत गुरूप्रवर डा0 ब्रह्मानद सिह (प्रवक्ता, भूगोल विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद) का मै हृदय से आभारी हूँ । आपके व्यस्तम क्षणों में भी जिस उदारता से हमें कुशल मार्गदर्शन, स्नेह एवं आर्शीवाद प्राप्त होता रहा है, उसके लिए श्रद्धापूरित शीश स्वमेव ही चरणों मे झुक जाता है । आपके आर्शीवाद से प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध पूर्णता को प्राप्त कर सका । शोध कार्य के दौरान श्रीमती सुमति सिंह के योगदान को भूल जाउँ तो यह मेरी कृतघ्नता होगी, जो अपने पारिवारिक जीवन में व्यस्त रहकर भी मुझे क्षण-प्रतिक्षण धैर्य एवं प्रोत्साहन देती रहीं । पूज्य गुरूदेव डा0 माधव प्रसाद पाण्डेय, एम0 ए0 डी0लिट0, का हृदय से आभारी हूँ , जिनके सतत् प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से शोध कार्य सम्भव हो सका ।

डॉ0 सविन्द्र सिंह, (अध्यक्ष, भूगोल विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद), डॉ0 आर0 एन0 सिंह, रीडर एवं डॉ0 आर0 सी0 तिवारी, रीडर सहित भूगोल विभाग के उन सभी विद्वजनों के प्रति आभारी हूँ, जिनके अपूर्व स्नेह से मुझे शोध कार्य करने का सुअवसर मिला । साथ ही डॉ0 सुधाकर त्रिपाठी के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनसे समय-समय पर मार्गदर्शन सम्बन्धी लाभ प्राप्त होता रहा ।

डॉ0 राजेन्द्र नाथ मण्डल (प्राचार्य के0 बी0 झा महाविद्यालय कटिहार) का आभारी हूँ जिन्होंने सदैव मुझे प्रेरणा एवं प्रोत्साहन दिया । श्री राजेन्द्र नारायण चौधरी (रीडर, दर्शनशाह महाविद्यालय, कटिहार) एवं डा0 श्री कृष्ण चन्द्रा (अध्यक्ष, कृषि रसायन विभाग, बिहार कृषि कालेज सबौर) तथा डा0 लोकनाथ शर्मा, श्री ज्ञान प्रकाश, श्री वी0 पी0 वर्मा (जिला सचिव, स्काउट - गाइड, कटिहार) सहित समस्त स्काउटर, गाइडर के प्रति कृतज्ञता अर्पित करता हूँ जिनसे विविध रूपों में रचनात्मक सुझाव प्राप्त होते रहे ।

शोध कार्य के दौरान अनन्य मित्र श्री जनार्दन प्रसाद मण्डल के सहयोग एवं प्रोत्साहन के लिए किन शब्दों में अपना उद्गार प्रगट करूँ, जिन्होनें विषम परिस्थिति के क्षणों में मेरा उत्साहवर्धन करते हुए इस रचनात्मक कार्य के लिए सदा प्रेरित किया साथ ही श्री शिवशंकर शाही के भातृत्व सहयोग के लिए भी मैं हृदय से आभारी हूँ । विद्यालय परिवार के प्रधानाध्यापक (श्री शिव चन्द्र सिन्हा) सहित सभी शिक्षक बन्धुओं के प्रति मैं अपना हार्दिक आभार प्रगट करता हूँ जिनका सुझाव एवं सहयोग शोध कार्य के दौरान प्राप्त होता रहा ।

डॉ0 धर्मवीर सिंह, पुलिस उपाधीक्षक, शोध छात्र भूपेन्द्र वीर सिंह एवं चन्द्र भूषण मिश्रा तथा शोध छात्रा कु0 प्रभा सिंह के प्रोत्साहन एव सहयोग के लिए धन्यवाद प्रगट करता हूँ शोध छात्र सतीश कुमार सिंह के प्रति धन्यवाद प्रगट करता हूँ जिन्होनें शोध लेखन कार्य में शैक्षिक समस्याओं के निवारण हेतु रचनात्मक सुझाव दिया । इसके साथ ही राजेश कुमार सिंह एवं सुजित कुमार सिंह को हार्दिक धन्यवाद देना चाहूँगा जिन्होनें मुझे पुनर्लेखन आदि कार्य में सक्रिय सहयोग प्रदान किया जिससे शोध कार्य को पूरा करने में मेरा प्रयास सफल हो सका । श्री वीरेन्द्र कुमार ओझा, जय प्रताप सिंह, अभिजीत सेन, सत्येन्द्र कुमार सिंह को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने ऑकड़ों के संकलन में सहयोग प्रदान किया । मैं अपनी पूज्यनीया माता सहित समस्त परिवारजनों का जिनके त्याग, प्रेरणा एवं स्नेह ने मुझे इस योग्य बनाया, आजीवन ऋणी रहूँगा ।

अन्त में मैं श्री एस0 के0 सिन्हा (सी0आई0 कटिहार, प्रखण्ड) के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होनें प्रखण्ड एवं जनपद कार्यालयों से आवश्यक अभिलेख एवं तथ्यों की प्राप्ति में विशेष सहयोग प्रदान किया । इसके साथ ही डॉ0 राजमणि त्रिपाठी (कार्टोग्राफर), रामनाथ सिंह एवं गोविन्द दास को धन्यवाद देना चाहूँगा जिन्होनें शोध-प्रबन्ध का मानचित्र तथा टंकण कार्य अति शीघ्र पूर्ण करने में सहयोग प्रदान किया । मैं उन सभी संस्थाओं, पुस्तकालयों, औद्योगिक प्रतिष्ठानों तथा व्यक्तियों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होनें विविध प्रकार से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में शोधकर्ता को सहायता प्रदान करके शोध-प्रबन्ध को पूर्ण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी ।

(दीनबन्धु)
शोध छात्र, भूगोल विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
(उ0प्र0)

इलाहाबाद

29 नवम्बर, 1993

कार्तिक पूर्णिमा

अनुक्रम

LIST OF ILLUSTRATIONS

****

xxxxxxxx
xxxxxxxxxxxxxxx

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

अध्याय - प्रथम

संकल्पनात्मक पृष्ठभूमि

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

xxxxxxxxxxxxxxxx
xxxxxxxxx

संकल्पनात्मक पृष्ठभूमि

1.1 प्रस्तावना:

भूमि उपयोग सर्वेक्षण भौगोलिक अध्ययन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। यह एक गत्यात्मक सांस्कृतिक संकल्पना है, जो भूमि के अभाव का प्रतिफल है। इस अभाव की पूर्ति हेतु मानव दो सांस्कृतिक प्रक्रियायें सम्पन्न करता है। **प्रथम** - नये-नये क्षेत्रों (भूमि) की खोज तथा **दूसरा** - भूमि उपयोग की गहनता में वृद्धि। विश्व स्तर पर बढती हुई जनसंख्या के कारण भूमि उपयोग संबंधी अध्ययन की उपादेयता और अधिक बढ़ गयी है। वन तेजी से कट रहे हैं। वनों के इस कटान के फलस्वरूप धीरे-धीरे भूमि बन्ध्या होती जा रही है।

मानव का सर्वांगीण विकास प्रकृति के साथ सामंजस्तया पर ही निर्भर है, उस पर विजय प्राप्त करने मे नहीं। आज मानव तकनीकी विकास के मद में चूर होकर इस बात को भूल बैठा है और प्रकृति पर विजयश्री प्राप्त करने की होड़ में अपने अस्तित्व को ही संकट में डाल लिया है जिसमें अंधाधुंध वनों की कटाई, कारखानों तथा चिमनियों एवं मोटर वाहनों से निकलती विषैली गैसें, नदियों में गिरता शहर का विषैला कचड़ा आदि कारक सम्पूर्ण पर्यावरण को प्रदूषित करते जा रहे हैं। जिसका शिकार समस्त जीव मण्डल तो क्या हमारी सांस्कृतिक धरोहरें भी हो रही हैं। इसका परिणाम आज भी हमारे समक्ष ओजोंन-क्षरण, हरित-गृह प्रभाव, पृथ्वी का तापन आदि रूपो में आने लगा है। आश्चर्य तो तब होता है जब इन परिणामों की भयावहता से विज्ञ होते हुए भी मानव इस दिशा में कोई कदम उठाने में उदासीन है। इस विषय पर श्री ज्ञानेन्द्र कुमार दत्त (निदेशक, राष्ट्रीय एटलस मानचित्रण संगठन) ने सन् 1988 में अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी (भूमि उपयोग मूल्यांकन एवं मानचित्रण) के अवसर पर अपने स्वागत भाषण में निम्न रूप में अपनी चिन्ता जताई। 'हमें मालूम नहीं कि हम क्या कर रहे हैं ? आज सम्पूर्ण विश्व अपने इस कृत्य से चिंतित और व्याकुल है कि अगर इसे समय से न रोका गया तो आगे चलकर भयंकर परिणाम होंगे। आश्चर्य तो इस बात का है कि यह सब जानते हुए भी पर्यावरण रक्षा के लिए कोई ठोस उपाय नहीं किया जा रहा है। इसका मूल कारण है कि हमें यह नहीं ज्ञात है कि कहां, क्या करना है?'[1]

मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भूमि का उपयोग विविध रूपों में बेहिचक करता चला जा रहा है। भूमि-संबंधी इस प्रकार के उपयोगों के फलस्वरूप अनेक समस्याएँ

और अधिक बढ जाती है । जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप मृदा की उत्पादकता में ह्रास की समस्या और गंभीर हो जाती है । अत. मानव कल्याण हेतु भूमि उपयोग में परिवर्तन आवश्यक एवं अपरिहार्य हो जाता है । जिसके लिए वर्तमान एवं सम्भाव्य भूमि उपयोग का मूल्यांकन अनिवार्य है । भूमि उपयोग संकल्पना मुख्यतया किसी प्रदेश में प्राप्त संसाधनों, आवश्यकताओं और प्रयत्नों के मध्य निरन्तर अन्तर्क्रियाओं का फल है तथा भूमि प्रबंध की कुशलता अथवा अकुशलता पर विकास एवं विनाश दोनों संभव है । इसलिए भूमि उपयोग को स्थिर श्रेणियों में विभक्त करना भ्रांतिमूलक है ।[2] जनसंख्या वृद्धि, तीव्र औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के फलस्वरूप कृषि भूमि में निरंतर ह्रास हो रहा है । इस ह्रास के कारण परिस्थिति की असंतुलन में तेजी से वृद्धि हो रही है । भूमि-उपयोग की अज्ञानता के कारण भूमि-दुरूपयोग तेजी से बढ़ रहा है । बहुत ही कम भूमि सभी उत्पादनों के लिए सर्वोत्तम है । साथ ही वैसी भूमि भी बहुत ही कम है, जिसका कोई उपयोग न होता हो । अत· भूमि के लिए भूमि संबंधी सर्वेक्षण एवं उसका मूल्यांकन आवश्यक है, जो प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं तकनीकी दशाओं के संदर्भ में अध्ययन किया जाना चाहिए । भूमि की उपादेयता केवल कृषि के लिए आवश्यक नहीं अपितु इसके साथ ही मानव के सर्वांगीण विकास हेतु ग्रामीण एवं नगरी भूमि-उपयोग के सभी पक्षों के समाकलित अध्ययन द्वारा ही पर्यावरण एवं सामाजिक, आर्थिक समस्याओं का हल किया जा सकता है ।[3]

भूमि-उपयोग संबंधी अध्ययन में भूमि-उपयोग के वर्तमान प्रतिरूप के साथ ही इसको प्रभावित करने वाले समस्त पारिस्थिति की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों का जनसंख्या के संदर्भ में विश्लेषण एवं व्याख्या होना चाहिये - भूमि उपयोग सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त तथ्यों के प्रतिवेदन के अन्तर्गत भूमि-उपयोग संबंधी विभिन्न मानचित्रों का निर्माण कर रूचिकर तथ्यों का विश्लेषण होता है । सर्वेक्षक एवं शोधकर्ताओं द्वारा प्रदत्त भूमि-उपयोग प्रतिवेदन को महत्व प्रदान कर प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर उसका उपयोग कर लाभ प्राप्त किया जा सकता है । - अतः आज के संदर्भ में भूमि का समुचित उपयोग, सर्वांगीण विकास और वातावरण को प्रदूषण रहित रखने के संदर्भ में अति आवश्यक है । भूमि संसाधनों के अध्ययन और उनके निश्चित उपयोग पर ही हमारा उन्नत आर्थिक भविष्य निर्भर करता है ।

भूमि-उपयोग संबंधी अध्ययन में कृषि के स्वरूप एवं प्रतिरूप संबंधी अध्ययन भी महत्वपूर्ण है । विश्व के वे देश जहाँ प्राचीन काल से कृषि कार्य हो रहा है, वहाँ के कृषकों ने मूल एवं सुधार अथवा सतत् प्रयोगों के द्वारा भूमि उपयोग को स्थानीय भौगोलिक तत्वों के अनुकूल बना लिया है । फसलों की प्रकृति के अनुरूप कृषि कार्य सम्पन्न करते हैं। अत इन क्षेत्रों का भूमि उपयोग वहाँ की कृषि क्षमता या कृषि दृष्टि से भूमि की उपयुक्तता की ओर संकेत करता है । भूमि-उपयोग संबंधी अध्ययन में यह ज्ञात होता ही है कि कितनी कृषि-भूमि किस उपयोग मे हैं, साथ ही इस बात का भी ज्ञान हो जाता है कि किस प्रदेश में भूमि संबंधी क्या समस्यायें हैं, जैसे - मृदा अपरदन, उर्वरता में ह्रास आदि । किस प्रदेश में भूमि-उपयोग उपयुक्त नहीं है ? कहाँ पर गहन कृषि की संभावनाये हैं ? किसी फसल विशिष्ट का कहाँ विस्तार हो सकता है ? आवश्यक सुविधाओं का प्रावधान कर किन भागों में भूमि को दो फसली में परिणत किया जा सकता है ? अत, यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि भूमि उपयोग सबधी अध्ययन कृषि नियोजन की पहली सीढ़ी है क्योंकि कृषि नियोजन के पूर्व यह विदित होना चाहिये कि किस प्रकार की भूमि है ? उसकी क्षमता कितनी है और कहाँ तक विस्तार की संभावनायें हैं ? -

भूमि-उपयोग संबंधी अध्ययन से उसका प्रादेशिक वितरण प्रतिरूप तो प्रदर्शित होता ही है, साथ ही कृषि प्रणाली, कृषि पद्धति, शस्य स्वरूप एव उसका वितरण, घास के मैदान (चारागाह) बाग-बगीचों सबंधी तथ्यों के प्रादेशिक वितरण का भी ज्ञान होता है । इसके साथ ही भूमि-उपयोग संबंधी अध्ययनों से कृषि प्रादेशिकीकरण के निर्धारण में भी सहायता मिलती है । जैसे इसके माध्यम से उन प्रदेशों का सीमांकन बहुत ही सुगमतापूर्वक हो जाता है कि उस क्षेत्र विशेष में कृषि का आधार फसलें है, अथवा मिश्रित कृषि फसलोत्पादन एवं पशुपालन या क्षेत्र विशेष में पशुपालन मुख्य उद्यम है ।

भूमि-उपयोग सर्वेक्षण से भूमि की उर्वरता, उत्पादकता एवं गहनता आदि की दृष्टि से भूमि के वर्गीकरण में सहायता मिलती है । इसके आधार पर या उक्त तथ्यों के आधार पर भूमि का सही मूल्यांकन होता है । तद्नुरूप भूमि का उपयोग किया जाता है, जैसे कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोगों -उद्योग, अधिवास, एवं अन्य सांस्कृतिक उपयोगों आदि के लिए

भूमि का उपयोग सभव होता है । इस प्रकार भूमि-उपयोग संबधी अध्ययन उन देशों के लिए और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जहाँ जनसंख्या सघन है एवं उनके भरण-पोषण हेतु कृषि उत्पादानों की विशेष माँग है ।

भारत जैसे विकासशील देश जिसकी 80% जनसंख्या गाँवों में निवास करती है जीवन-निर्वाहन का मुख्य आधार कृषि है । अत इस स्थिति में भूमि उपयोग संबंधी अध्ययन की महत्ता और अधिक बढ जाती है । भूमि उपयोग का जो वर्तमान स्वरूप है उसे किस प्रकार और बेहतरीन बनाया जा सकता है, इसके लिए न केवल दृष्टि विकसित करनी होगी, बल्कि दिशा भी निर्धारित करनी होगी, और निरंतर उस दिशा में प्रतिबद्ध रूप में बढने का प्रयास भी होना चाहिये, तभी हम भूमि का सतुलित विकास कर बहुआयामी उपयोग स्वस्थ ढंग मे करने में सफल हो सकते है और आने वाली मानवता के लिए संकट विहीन, वैभवपूर्ण-विहान प्रदान कर सकते है ।[4]

1.2 भूमि-उपयोग का अध्ययन क्षेत्र :-

भूमि-उपयोग का तात्पर्य मानव द्वारा धरातल की विविध रूपों (पर्वत, पठार, रेगिस्तान, दलदल, खदान, यातायात मार्ग, आवास, कृषि एवं पशुपालन आदि) में प्रयोग किये जाने वाले कार्यों से है । मनुष्य का भूमि से संबध उसके अस्तित्व से ही प्रारंभ होता है । मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप विभिन्न देश और काल में भूमि के उपयोग बदलते रहे हैं । वर्तमान में भूमि का प्रमुख उपयोग फसलों के उत्पादन के लिए किया जाता है । इसका अन्य उपयोग यातायात, मनोरंजक, आवास, उद्योग तथा व्यवसाय आदि जैसे कार्यों के लिए भी होता है । प्राय भूमि का सघन उपयोग बहुद्देशीय हुआ करता है, यथा - वन की भूमि का उपयोग चारागाह के रूप में तो होता ही है, साथ-ही-साथ उसे मनोरंजन के लिए भी प्रयोग मे लाया जाता है । विज्ञान और तकनीकी विकास एवं मानवीय आवश्यकताओ की विविधता के कारण भूमि के उपयोग में अनेक समस्यायें आ गई है तथा संपूर्ण पर्यावरण असंतुलित स्थिति की ओर बढ रहा है । इस विभीषिका से बचने के लिए आज आवश्यक हो गया है कि विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भूमि के संतुलित उपयोग को प्रतिष्ठित किया जाय ।[5] अतः भविष्य को ध्यान में रखते हुए यह देखना आवश्यक है

कि भूमि के किसी भाग का दुरूपयोग भी न हो और यदि ऐसा है तो उपयोग योग्य बनाया जाय । ऐसे भाग जो अकृष्य पड़े हुए हैं, उन्हें कृषि योग्य बनाया जाय ताकि बढती हुई जनसंख्या का भरण-पोषण सुगमतापूर्वक हो सके।

शर्मा[6] के शब्दों में भूमि-उपयोग के अध्ययन क्षेत्र को निम्न प्रकार परिभाषित किया जा सकता है - *"this subject matter deals with the examination and the explanation of the man's use of land in relation to the various factors of environment, including the elaboration of the possibilities of its better use."*

ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसे शोधों का अध्ययन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे संस्थापित प्रवृत्तियों का विशेष परिचय मिल सके। इन प्रवृत्तियों के अन्तर्गत भू-उपयोग की विभिन्न स्थितियों एवं विशेषताओं का आकलन तथा उनका निरीक्षण भी निहित होगा; जिससे भूमि उपयोग के लिए उत्पन्न प्रतिस्पर्धा एवं उसके विभिन्न वर्गों में हो रहे तथा होने वाले प्रयोग के विश्लेषण एव विवेचन को पर्याप्त प्रोत्साहन मिल सके। इन प्रवृत्तियों का उद्देश्य वर्तमान भू-उपयोग प्रणाली को प्रभावित करने वाले विभिन्न ऐतिहासिक, आर्थिक, मानवीय और भौतिक तथ्यों के प्रभारों के समुचित मूल्याकन से है।[7] इन्हीं उद्देश्यों के अन्तर्गत भूमि उपयोग का ऐसा वर्णन और संश्लेषण भी अपेक्षित है जो भूमि उपयोग की भू-आर्थिक समस्याओं को स्पष्ट रूप में चित्रित कर सके।

भूमि उपयोग की योजना भूमि को अधिक प्रभावी, विचार संगत और सुधरे उपयोग की संम्भावनाओं और उनमें सन्निहित विभिन्न क्षमताओं का आकलन मात्र तक ही सीमित न हो, बल्कि वह अधिक व्यावहारिक हो जो अगली पीढी के लिए भी संपोषण की क्षमता बनाये रखने के उद्देश्य से प्रेरित हो सके और जो व्यक्ति एवं समाज दोनों की खुशहाली बढ़ाने मे सक्षम हो।

इस प्रकार भूमि उपयोग योजना की परिकल्पना में ये सभी प्रवृत्तियां एवं सम्भावनायें सन्निहित है। किसी भी क्षेत्र की भूमि उपयोग सम्बन्धी योजना ऐसे प्रयासों से प्रेरित होनी चाहिए जिससे उस क्षेत्र की भूमि के चप्पे-चप्पे का अधिक लाभप्रद उपयोग किया जा सके। भूमि का ऐसा उपयोग उस भूभाग की क्षमता पर निर्भर होगा कि वह क्षेत्र विशेष जनसंख्या का निर्वाहन भलीभांति करने में सक्षम हो और यह तभी सम्भव है जब क्षेत्र विशेष का भूमि उपयोग सर्वोत्तम हो। इसके साथ ही भूमि उपयोग की योजना में भूमि को वैज्ञानिक एवं सुव्यवस्थित उपयोग मे सन्निहित वास्तविक क्षमताओं का निश्चय करना भी आवश्यक होता है जिससे उसके अधिकतम सम्भाव्य उपयोग का निर्धारण किया जा सके।

1.3 भूमि उपयोग सम्बन्धी शोध का उद्देश्य :

भूमि उपयोग सर्वेक्षण का प्रथम लक्ष्य भूमि उपयोग की प्रविधि जानने के अतिरिक्त यह ज्ञात करना कि अतीत मे उसका उपयोग किस प्रकार होता रहा है। इसके साथ ही यह भी जानकारी आवश्यक है कि इसकी अतीत कालिक विधि क्या थी ? तथा इसकी वर्तमान विधि क्या है और उनमें क्या अन्तर है? भूमि उपयोग के बदलते हुए वितरण का ज्ञान भी वांछनीय है। तात्पर्य यह है कि केवल खोज पूर्ण अध्ययनात्मक सर्वेक्षण ही हमारा लक्ष्य नहीं होना चाहिए बल्कि हमारा लक्ष्य ऐसा सर्वेक्षण होना चाहिए जो व्यवस्थात्मक तथा निदानात्मक हो; जिससे की हम यह समझ सकें कि वर्तमान भूमि उपयोग को बदल कर कैसे अधिक लाभप्रद बनाया जा सकता है।

इस प्रकार जब हम भूमि उपयोग के सन्दर्भ में विचार करते हैं तब हमें यह भी देखना आवश्यक होगा कि भूमि के अन्तर्गत वे कौन से तत्व है जिनके सर्वोत्तम उपयोग के सम्बन्ध में तथ्यों को प्रगट करना है और देश-काल तथा परिस्थितियों के अनुरूप नीति निर्धारित करनी है।

भूमि उपयोग सर्वेक्षण के अन्य लक्ष्यों की दृष्टि से हमें यह भी ज्ञात करना है कि उसके उपयोग में आए हुए दोषों का निराकरण कैसे किया जाय तथा दुरूपयोग और अनुपयोग कैसे रोका जाय एवं परीक्षण तथा विश्लेषणों से प्राप्त ज्ञान के आधार पर भूमि उपयोग में सुधार कैसे किया जाय। भूमि उपयोग के अध्ययन का अंतिम लक्ष्य ऐसी योजना का कार्यान्वयन

है जो भविष्य में उसके उपयोग का विस्तृत आधार कर सकें।[8] अत भूमि उपयोग के किसी भी योजना या सम्बन्धित कार्यक्रम का उद्देश्य राष्ट्रीय समृद्धि एवं व्यक्तिगत खुशहाली प्राप्त करने की उपायों की उपलब्धि से है जो उस प्रदेश के लोगों और संस्थितियों के अनुकूल हो। इस प्रकार भूमि के भू-आर्थिक उपयोग को ध्यान मे रखते हुए उस योजना का क्रियान्वयन भी एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। इस दृष्टिकोण से हमारी भूमि उपयोग सर्वेक्षण योजना इन उद्देश्यों तक पहुंचने का एक सक्षम साधन या मार्ग होना चाहिए जो सिद्धान्त निरूपण के लिए भी निदेशक बन सके। वास्तव में भूमि उपयोग सर्वेक्षण शोध कर्त्ता के लिए स्वयं में पूर्ण लक्ष्य नहीं है, बल्कि उसका उद्देश्य तो भूमि उपयोग के निश्चित एवं लाभप्रद योजना भी तैयार करना है।

•

प्रो0 डडले स्टैम्प[9] के शब्दों मे ऐसी योजना द्वारा भूमि की प्रत्येक इकाई के अनुकूलित उपयोग को निर्धारित किया जाता है। इसी उद्देश्य से योजना लोचदार तथा समय समय पर बदलती परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तन शील होनी चाहिए। भूमि उपयोग शोध का प्रमुख उद्देश्य भूमि उपयोग प्रकारो के साथ ही शस्य-प्रतिरूपों एवं उनमें संतुलन स्थापित करना है जिससे भूमि का विशिष्ट भाग किस प्रकार के उपयोग के लिए सर्वाधिक अनुकूल है ? उसका निर्णय किया जा सके। उपर्युक्त तथ्यो के साथ ही यह भी ज्ञात करना हमारा उद्देश्य होता है कि कृषित भूमि के प्रत्येक इकाई के लिए उपयुक्त फसलों को अपना कर उत्पादकता मे कैसे वृद्धि की जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भूमि उपयोग की सम्भाव्यता तथा क्षेत्र विशेष के निवासियों की आवश्यकताओं का विवेचन भी हमारे कार्यक्रमों का भाग वन जाता है।

प्रो0 चटर्जी[10] ने सत्य ही कहा है कि भारत में भी भूमि उपयोग सर्वेक्षण उद्देश्यों की पूर्ति के अनुसार ही रचनात्मक और निदेशात्मक होना चाहिए । वह वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, व्याख्यात्मक, निदानात्मक, तुलनात्मक और सांख्यिकीय विधियों मे परिपुष्ट हो, परन्तु सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि सर्जनात्मक और पुनर्स्थापनात्मक भी हो। भूमि उपयोग में सुधार और उसके उद्देश्य ऐसी ही संभावनाओं से निर्मित एवं प्रेरित होने चाहिए ।

1.4 भूमि उपयोग संबंधी सर्वेक्षण और शोध:

भूमि उपयोग सबंधी सर्वेक्षण एवं शोध दोनों पक्षों को प्राय. अध्ययनकर्ता समान महत्व देता है, परन्तु आज के वैज्ञानिक अध्ययनों मे भूमि उपयोग सबंधी सर्वेक्षण और शोध के बीच स्पष्ट अन्तर कर दिया गया है। भूमि उपयोग सर्वेक्षक और शोधकर्ता दोनों ही भूमि के अधिकतम उपयोग से सबंधित कार्यों से जुड़े रहते हैं। इन दोनों ही अध्येताओं के दृष्टिकोण और अध्ययन प्रवृत्ति में अंतर होता है। सर्वेक्षक भूमि-उपयोग सबंधी तथ्यों को प्राप्त करने में विशेष रूचि रखता है, ताकि वह वर्तमान भूमि उपयोग की कमियों में सुधार लाकर सर्वोत्तम भूमि उपयोग के लिए सुझाव प्रस्तुत कर सके। परन्तु भूमि-उपयोग शोधकर्ता एक ऐसे ज्ञानावली का सृजन करना चाहता है जो भौगोलिक सिद्धान्तों का विकास कर सके इसके साथ ही वह ऐसे सिद्धांतों का निरूपण भी करता है जो देशकाल की सीमाओं से आबद्धन होकर भूमि उपयोग संबंधी यथोचित नियम प्रस्तुत कर सके। शर्मा [11] ने सर्वेक्षक एवं शोधकर्ता के कार्यों का स्पष्ट शब्दों में विश्लेषण किया है। उनके अनुसार भूमि उपयोग सर्वेक्षक का कार्य समय और स्थान की सीमा से आबद्ध होता है। सम्बन्धित, विश्लेषण, सुझाव और तथ्यों के संदर्भ में समय और स्थान की अपेक्षा नही कर सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सर्वेक्षक का कार्य समय और स्थान की सीमा से बंधा होता है। उसे अपने उस निश्चित अध्ययन क्षेत्र से सम्बन्धित तथ्यों को एक निश्चित काल अवधि में प्रस्तुत करना पड़ता है। लेकिन भूमि उपयोग शोधकर्ता का कार्य तो किसी भी परिवसगत संस्थिति मे भूमि उपयोग सम्बन्धी ऐसे सिद्धान्तों का निर्माण करना है जो भूमि उपयोग सर्वेक्षण का समन्वय करता हो और शास्वत तथ्यों को आभाषित करता हो तथा उन्हें समयानुकूल सम्पन्न करता हो। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सर्वेक्षण कार्य शोध का ही एक अंग है, उसे क्षेत्रीय शोध के रूप में ही व्यक्त किया जा मकता है क्योंकि यह ऐतिहासिक या पुस्तकीय शोध से पूर्णत· भिन्न होता है।

1.5 भूमि और भूमि संसाधनों की भौगोलिक संकल्पना

भूमि उपयोग सम्बन्धी अध्ययनों में आधारभूमि संकल्पनाओं और पदों का सही-सही ज्ञान आवश्यक है। भूमि की भौगोलिक संकल्पना को निम्न रूपों में व्यक्त किया जा सकता है -

(अ) भूमि

'भूमि पद प्राय धरातल के ठोस भाग को यक्त करने के लिए प्रयुक्त होता है। सामान्य बोल-चाल में धरातल और मिट्टी को कोई ऐसी वस्तु माना जाता है जिस पर मनुष्य ठहर सकता हो, मकान बना सकता हो, या बाग-बगीचे लगा सकता हो, परन्तु भूगोल वेत्ताओं या अध्येताओं द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली 'भूमि' की तकनिकी संकल्पना तो बहुत ही व्यापक है,जो उसकी सामान्य अर्थ में प्रयोग आने वाली संकल्पना से पूर्णत भिन्न है।

भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में 'भूमि' शब्द का जो अर्थ विकसित हुआ वह कालक्रम के अनेक परिवर्तनों से गुजरा है। ऐसा प्रतीत होता है कि यांत्रिक क्रान्ति आने के पूर्व सम्भवतः इसका अधि प्रचलित अर्थ लगभग एक ही था।[12]

'भूमि' साधारणतया मकानों, सडकों आदि के रूप में दिखाई देने वाला वह धरातल समझा जाता है, जिस पर मनुष्य ठहरता या चलता था। 'भूमि' का दूसरा अर्थ मिट्टी लगाया गया, जिसका संबंध खेतों, चारागाहों, जंगलों आदि से था, जो कृषि उत्पादन के साधन या सह-साधन के रूप मे प्रयुक्त थे। 'भूमि' शब्द का तीसरा अर्थ खनिजों के स्रोत के रूप में भी लगाया गया, जैसे - बालू, मिट्टी, पत्थर आदि पदार्थ जिसके उपयोग मकानों और सडकों आदि के लिए होता था। इसमें अधात्विक खनिज, जैसे - चूना, फास्फेट आदि भी सम्मिलित है, जिनका उपयोग उर्वरक के रूप में होता था। इस प्रकार एक संकुचित सीमा तक उन धातुओं के स्रोत के रूप में भी भूमि को माना जाता था।

यान्त्रिक क्रांति ने पृथ्वी की ऐसी सतहों का उपयोग भी प्रारंभ कर दिया जो इससे पहले मनुष्य की पहुच के बाहर थे। अब अधोभौमिक क्षेत्र से कोयला, पेट्रोलियम जैसे ईंधन और कुछ धातुएं प्राप्त की जाने लगीं। मनुष्य ने अपने शोषण की दिशाओं को ऊपर की ओर भी फैलाया । अतः वायु अब नेत्रजन के रूप में प्रयोग आने लगी है। सौर्य-प्रकाश भी अब उपयोग में लाया जाने लगा है। मनुष्य ने भूमि के शोषण को न केवल नीचे की ओर विकसित किया, बल्कि उसने इसे अवकाश की ओर भी विकसित किया है। इस प्रकार भूमि केवल ठोस धरातल पर्याय ही बनकर नहीं रह गयी बल्कि इसका विस्तार मिट्टी की पतली

परत और धरातल के नीचे खनिजों तक हो गया ।

इस प्रकार भूमि वायु एवं जल जैसे पदार्थों से भी संलग्न हो गई। अतः इसका विस्तार तीसरी बीमा में भी हो गई है। केवल पशुपालन और कृषि से 'भूमि' शब्द का जो तादात्म स्थापित किया जाता था, वह अब समाप्त हो गया। 'भूमि' के अन्तर्गत अब अधोभौमिक खनिज तथा वायुमण्डलीय पदार्थ भी आ गये। इस प्रकार भूमि एक तृविभात्मक प्रत्यय के रूप में विकसित हो गई है।

भौगोलिक सन्दर्भ में 'भूमि' की परिभाषा धरातल, वायुमण्डल, और समुद्र के त्रिविध के रूप में की जा सकती है।[13]

भूमि का यह व्यापक अर्थ न केवल धरातल, जल, और हिम आदि को ही व्यक्त करता है बल्कि यह भवनों, खेतों, खनिज-संसाधनों, जल-संसाधनों, वायु-संसाधनों के गुणों को भी समाहित करता है, जैसे - हवा, सौर्य प्रकाश, पवन, वर्षा, तापमान, वाष्पन, आदि। ये सभी कारक किसी न किसी प्रकार 'भूमि' के अन्तर्गत ऐसे सुधार और विकास भी सम्मिलित किए जा सकते है जो मनुष्य द्वारा विकसित किए गये है और जो धरातल को प्रभावित करते हैं तथा जिन्हे हम आसानी से भूमि से पृथक नहीं कर सकते। मनुष्य द्वारा निर्मित किए गए गुण सामान्यत प्रकृति के गुणों के समान ही व्यवहार करते है जैसे - मनुष्य द्वारा समतल की गई भूमि भी प्रकृति द्वारा प्रदत्त समतल भूमि के समान ही गुणों और लक्षणों से युक्त होती है। इसी प्रकार पौधों मे दिए जानी वाले मानव-निर्मित पोषक पदार्थ भी प्रकृति द्वारा प्राप्त पोषक पदार्थों की भांति ही कार्य करते है और लाभप्रद सिद्ध होते हैं। अत भूमि शब्द से आशय अनेकानेक सम्भावनाओं से युक्त आक्षुण्ण तथा अनश्वर माना जाता है जिसका स्वरूप मानव की आवश्यकता के सन्दर्भ में परिवर्तन शील है।

(ब) भूमि-संसाधनः

'भूमि' उपयोग का सम्बन्ध संसाधनों के अध्ययन मात्र से ही नहीं है, बल्कि इसका अर्थ अधिक व्यापक है। 'भूमि' शब्द के अर्थ पर प्रायः सहमत न होने के कारण ही इसके

लिए 'भूमि संसाधन' शब्द को अधिक सार्थक माना गया है। इस प्रकार भूमि के सामान्य अर्थ को स्पष्ट करना सरल हो जाता है और उसे अधिक विस्तृत करने की आवश्यकता नहीं होती है।

भूमि संसाधन को धरातल के मौलिक दशाओं से प्राप्त साधनों और मानव कल्याण के लिए उसके सन्निहित विशेषताओं के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है।[14]

इस प्रकार भूमि संसाधन धरातल पर मनुष्य द्वारा किए गए सभी प्रकार के विकास को अपने में समाहित करता है। अब उसका वह संकुचित अर्थ नहीं रह गया है जिसमें वह प्रकृति द्वारा प्रदत्त ससाधनों को ही अपने अन्दर ग्रहण करता हो।

(स) 'भूमि प्रयोग' 'भूमि-उपयोग' और 'भूमि-संसाधन उपयोग' में अन्तर :

यद्यपि ये सभी पद प्राय एक दूसरे के पर्याय के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। परन्तु इनके बीच सूक्ष्म अन्तर प्राप्त है। ये सब क्रमश अंग्रेजी के ***Land use, Land utilisation,*** और ***Land resource utilisation*** शब्दों के हिन्दी रूपान्तर है। अर्थशास्त्री और भूगोल - विद् इनकी अलग-अलग व्याख्याऐं प्रस्तुत करते हैं। प्राकृतिक परिवेश में भूमि प्रयोग एक तत्सामयिक प्रक्रिया है, जबकि मानवीय इच्छाओं के अनुरूप अपनाया गया भूमि-उपयोग एक एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है।[15] इससे सतत् एवं क्रमबद्ध विकास का स्वरूप परिभाषित होता है। अतः 'भूमि-उपयोग' शब्द एक प्रक्रिया की ओर इंगित करता है और यह स्वयं से वर्णनात्मक है। वुड[16] के अनुसार भूमि प्रयोग केवल प्राकृतिक भू-दृश्य के सम्बन्ध में ही नहीं, अपितु मानवीय क्रियाओं पर आधारित उपयोगी सुधारों के रूप में भी प्रयुक्त होना चाहिए । वैनजटी[17] भी उपर्युक्त विद्वानों के विचारों से पूर्ण रूपेण सहमत हैं और उन्हीं के कथन की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि - 'भूमि-उपयोग' प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक दोनों ही उपादानों के संयोग का प्रतिफल है।' सिंह[18] के अनुसार कृषि से पूर्व की अवस्था के लिए (जिसके अन्तर्गत प्राकृतिक परिवेश का पूर्णतया अनुसरण किया जाता हो); 'भूमि-प्रयोग' शब्द अधिक उपयुक्त होगा परन्तु जब मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भूमि के उचित या अनुचित उपयोग के पश्चात् लाभप्रद भूमि-उपयोग अपनाता है, तो उस अवस्था को 'भूमि-

उपयोग' कहना अधिक सगत होगा। फॉक्स[19] ने 'भूमि-प्रयोग' एवं 'भूमि-उपयोग' में अन्तर स्पष्ट करते हुए यत व्यक्त किया है कि 'भूमि-प्रयोग' का अर्थ उस भू-भाग से है जो प्रकृति प्रदत्त विशेषताओं के अनुरूप प्रयुक्त हो रहा हो जबकि 'भूमि-उपयोग' भूमि-उपयोग की शोषण प्रक्रिया है, जिसमे भूमि का व्यावहारिक उपयोग किसी निश्चित उद्देश्य से सम्बन्धित होता है।' अत इस संकल्पना को स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि प्राकृतिक परिवेश के अनुरूप 'भूमि-प्रयोग' एक बिन्दु मात्र है, जबकि मानवीय इच्छाओं के अनुरूप अपनाया गया भूमि-उपयोग एक रेखा के समान है। अत 'भूमि-उपयोग' एक दीर्घकालीन प्रकिया को व्यक्त करता है, जिसमे सतत् एव क्रम बद्ध विकास का आभास होता है ।

अर्थशास्त्रियों ने 'भूमि-उपयोग' के स्थान पर 'भूमि-संसाधन उपयोग' शब्द का प्रयोग किया है। इस सदर्भ में उनका कथन है कि जब मनुष्य भूमि का उपयोग अपनी आवश्यकताओं एव इच्छाओं के अनुरूप करने में सक्षम हो जाता है, तो उस समय भूमि एक संसाधन के रूप में परिणित हो जाती है। दूसरे शब्दों मे हम कह सकते हैं कि जब किसी क्षेत्र का 'भूमि-उपयोग' वहां की आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में क्षेत्र विकास हेतु मानव इच्छानुसार सम्पन्न हो रहा हो और प्राकृतिक पर्यावरण का नियंत्रण कम हो रहा हो तो उस अवस्था को 'भूमि-संसाधन उपयोग' कहा जा सकता है।

बारलों[20] के अनुसार, 'भूमि-संसाधन उपयोग' भूमि समस्या एवं उसके नियोजन की विवेचना की वह धुरी है जिसके अध्ययन के लिए उन्होंने पांच महत्वपूर्ण दृष्टिकोण बताये हैं : -

1. आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न समाज की स्थापना
2. भूमि संसाधन उपयोग की अवस्था तथा अनुकूलतम उपयोग का निर्धारण
3. विभिन्न लागत कारकों (जैसे - पूंजी, श्रम आदि) के अनुपात में भूमि से अधिकतम लाभ की योजना
4. फसलगत भूमि के उपयोग में मांग, मूल्य एवं लाभ के आधार पर लाभदायक सामंजस्य तथा परिवर्तन संबंधी सुझाव

5. किसी क्षेत्र के लिए अनुकूलतम एवं बहुध्येयी भूमि उपयोग की विवेचना करना तथा उसके सुझाव को क्षेत्रीय अंगीकरण हेतु समन्वित करना ।

सारिणी 1.1

भूमि शब्दावलियां, कृषि विकास एवं सामाजिक व्यवस्थाएं

क्रम संख्या	शब्दावलियां	कृषि विकास की अवस्थाएं	प्रमुख सामाजिक व्यवस्थाएं
1.	भूमि-प्रयोग	कृषि से पूर्व की अवस्था	आखेट-फल एकत्रीकरण व्यवस्था
2.	भूमि-उपयोग (विस्तृत)	स्थानान्तरणशील एवं जीवन निर्वाहन अवस्था	जन-जातीय व्यवस्था
3	भूमि-उपयोग (गहन)	जीवन निर्वाहन कृषि अवस्था	परम्परागत सामाजिक व्यवस्था
4.	भूमि-संसाधन उपयोग	व्यापारिक कृषि अवस्था	विकसित एवं आधुनिक सामाजिक व्यवस्था
5.	नगरीय भूमि-संसाधन उपयोग (प्रारम्भिक)	गहन व्यापारिक कृषि अवस्था	अधिक विकसित एवं आधुनिक सामाजिक व्यवस्था
6	नगरीय-भूमि संसाधन उपयोग(आदर्श)	आवासीय एवं व्यावसायिक कृषि अवस्था	सर्वाधिक विकसित व्यवस्था

कैरियल[21] महोदय के अनुसार 'भूमि-प्रयोग' 'भूमि-उपयोग' एवं 'भूमि-संसाधन उपयोग' तीनों ही पद भूमि विकास के विशिष्ट परिस्थितियों के द्योतक है। इन परिस्थितियों का सम्बन्ध भूमि उपयोग के विकास की तीन भिन्न भिन्न अवस्थाओं से है जो क्रमशः अलग-अलग समयों में सम्पन्न होते हैं। सिंह[22] ने इन अवस्थाओं को उपर्युक्त सारणी द्वारा व्यक्त

किया है।

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि कृषि-कार्य प्रारम्भ होने से पूर्व वन, मरू भूमि, पर्वत, पठार जैसी भ्वाकृतियों का आधिपत्य था। इस दशा में भूमि प्रयोग (न्यूनतम लाभदायी भूमि-उपयोग) ही सम्भव था। इस अवस्था में जहां कहीं अनुकूल दशायें सुलभ थी, अस्थाई कृषि का प्रादुर्भाव हुआ। तीव्र गति से जनसंख्या बढ़ने के फलस्वरूप कृषि क्षेत्र में वृद्धि हुई और अकृष्य क्षेत्र उत्तरोत्तर सिकुड़ता गया। इस प्रकार के कृषि को हम 'जीवन निर्वाहक कृषि' कह सकते हैं। धीरे-धीरे कृषित क्षेत्र बढ़ता गया और अकृष्य क्षेत्र में कमी आती गयी। जहां कहीं दोनों में अधिकतम संतुलन होगा वहीं भूमि उपयोग को अनुकूलतम अवस्था प्राप्त होगी। ऐसी दशा में कृषि अप्राप्य क्षेत्र में वृद्धि एवं कृषित क्षमता में ह्रास होगा परन्तु शस्य क्रम गहनता में एवं कृषि क्षमता में वृद्धि होगी। इस अवस्था में कृषकों का झुकाव यान्त्रिक कृषि पद्धति की ओर तथा मांग एवं पूर्ति पर आधारित मुद्रादायिनी फसलों की कृषि की ओर अधिक होगा। इस अवस्था को कृषि विकास की व्यापारिक अवस्था या भूमि-संसाधन उपयोग कहा जा सकता है। नगरीय 'भूमि-उपयोग' की अवस्था में कृषि अप्राप्य क्षेत्र की अपेक्षा कृषित क्षेत्र कम होता जाता है तथा तीव्र गति से नगरी करण के फलस्वरूप उसमें क्रमश कमी होती जाती है। 'भूमि-उपयोग' मानव उपयोगिता के आधार पर एक महत्वपूर्ण आर्थिक संसाधन के रूप में प्रस्तुत होता है। अन्य विषयो की भांति ही इसकी कुछ विशिष्ट संकल्पनाएं हैं, जो इसके विषय वस्तु को स्पष्ट करती हैं उनमे मुख्य निम्न प्रकार है -

1. भूमि संसाधन की आर्थिक सकल्पना ,
2. भूमि उपयोग क्षमता की संकल्पना ,
3. सर्वोत्तम या अनुकूलतम भूमि-उपयोग की संकल्पना ;
4. भूमि-उपयोग के तुलनात्मक लाभ की संकल्पना ;
5. भूमि-उपयोग में दूरी की संकल्पना,
6. भूमि-उपयोग में क्षेत्रीय संतुलन की संकल्पना ,
7. भूमि-उपज की व्यावहारिक संकल्पना ;

8 भूमि-उपयोग अध्ययन में प्रत्यक्ष ज्ञान और प्रतिविम्ब संकल्पना ।

संक्षेप में उपर्युक्त सकल्पनाओं का वर्णन निम्न प्रकार है : -

1. **भूमि-उपयोग की आर्थिक संकल्पना :**

भूमि पद का अर्थ भिन्न-भिन्न विषय वर्गों में उद्देश्य एवं दृष्टिकोण पर आधारित होता है। जैसे - अर्थशास्त्री भूमि को पूंजी के रूप में देखता है, जबकि भूगोलवेत्ता के लिए भूमि एक क्षेत्र है जो मानवीय उपयोगिता के सदर्भ मे आर्थिक संसाधन बन जाती है। इस प्रकार भूमि शब्द का उपयोग प्राय क्षेत्र, प्रकृति, उत्पादन-कारक, उपभोग-पदार्थ, स्थिति, सम्पत्ति तथा पूंजी के रूप में प्रयोग किया जाता है। भूगोल-वेत्ता के लिए भूमि एक क्षेत्र है, जो अनश्वर है, जिसे धरातल, मृदा पृथ्वी के रूप में प्रयोग करता है और आवश्यकतानुसार उपभोग करता है। इस प्रकार भूमि उपयोगिता की दृष्टि से आर्थिक - संसाधन बन जाती है।

प्रायः देखने को मिलता है कि धरातल पर जो क्षेत्र अविकसित और आर्थिक दृष्टि से महत्वहीन है, वह कल लाभप्रद सिद्ध होता है। इस प्रकार यह भूमि की विपरीत अवस्था है। इसी प्रकार जब भूमि को प्रकृति के रूप में मूल्यांकित करते हैं तो उसका अर्थ प्राकृतिक वातावरण से संबद्ध होता है, यथा - सौर्य प्रकाश, वर्षा, हवा, वाष्पीकरण तथा मृदा एवं धरातलीय दशाएं भूमि की उपयोगिता को प्रभावित करती हैं।

मानव भूमि को आर्थिक संसाधन हेतु उनके अनेक विशेषताओं को परिभाषित करता है। इस स्थिति में भूमि को उत्पादन कारक के रूप मे प्रयोग में लाते हैं। इसलिए अर्थशास्त्री भूमि को उत्पादन कारक के रूप में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं।

मानव जब भूमि का प्रयोग उत्पादन कारक के रूप में करता है जब भूमि-प्रकृति प्रदत्त सह-साधनयुक्त मानी जाती है, जिससे भोज्य पदार्थ, उर्जा, संसाधन तथा उद्योग धन्धों के लिए कच्चे माल की प्राप्ति होती है - जिसका उपयोग मानव अपने आर्थिक विकास हेतु करता

है। इसी प्रकार भूमि को उपयोग पदार्थ के रूप में मान्यता दी जाती है। मानव भूमि का उपयोग अनेक रूपों, यथा - निवास-स्थान, पार्क, चारागाह, मनोरंजन मैदान आदि स्थल अन्य उपभोग पदार्थों की ही भांति है।

आधुनिक युग में भूमि को स्थिति के रूप में विशेष मान्यता प्रदान की जा रही है। इस अवधारणा का संबंध बाजार, यातायात तथा अन्य भौतिक एवं संस्कृतिक स्वरूपों के संदर्भ में किसी स्थान की स्थिति से है। भूमि का महत्व, मूल्य एवं उपयोग उसकी भौतिक स्थिति तथा पहुच से ही नही निर्धारित होती, अपितु उसके स्थिति विशेष के कारण भी उसके महत्व का आकलन किया जाता है। वर्तमान अर्थतन्त्र में राजनैतिक स्थिति, सामरिक स्थिति आदि कारकों का महत्वपूर्ण स्थान है -

भूमि को सम्पति के रूप में मान्यता विधि-सम्मत है। भूमि का सम्पत्ति के रूप में मानव की धारणा मौलिक है, जबकि संस्थागत सम्पति समय के साथ परिवर्तनशील है। यह प्राय: देखने को मिलता है कि जब तक संस्था या प्रबंध तंत्र, जिसकी देख-रेख में सम्पत्ति रहती है, वह शक्तिशाली होता है। इसका सम्पति के रूप में अधिक उपयोग एवं मूल्य होता है। अन्यथा यह महत्वहीन हो जाती है।

भूमि उत्पादन कारक के रूप में पूंजी है। मानव अपनी आवश्यकतानुसार उसका आर्थिक दृष्टि से उपयोग करता है। भूमि के आर्थिक उपयोगों के अनेक पक्ष हैं, जैसे - भूमि जब तक प्रकृति प्रदत्त विशेषताओं के अनुरूप होती है, उस भूमि का आर्थिक महत्व कम होता है, लेकिन जब मनुष्य अपनी इच्छानुसार उसका उपयोग करता है तो वह भूमि पूंजी बन जाती है। इसलिए अर्थशास्त्री भूमि की पूंजी के रूप में देखता है।

2. भूमि-उपयोग क्षमता का संकल्पना ·

भूमि उपयोग क्षमता से आशय भूमि संसाधन इकाई की उत्पादन क्षमता से है जिसमें उत्पादन लागत की अपेक्षा शुद्ध लाभ अधिक होता है। शुद्ध लाभ से ही अनेक इकाईयों की भूमि उपयोग क्षमता ज्ञात की जाती है। भूमि उपयोग क्षमता का निर्धारण किसी निश्चित समय

एवं उपलब्ध तकनीकी स्तर के सन्दर्भ में किया जाता है। इसकी व्याख्या कृष्य और सकल कृषित क्षेत्र तथा प्रति एकड़ उत्पादन के माध्यम से किया जाता है ।

3. **सर्वोत्तम या अनुकूलतम भूमि उपयोग की संकल्पना:**

प्राय यह देखने को मिलता है कि एक इकाई क्षेत्र का उपयोग अनेक रूपों में होता है। उपयोगकर्त्ता भूमि के अनेक उपयोगों में से किसी एक उपयोग को निर्धारित करते समय आर्थिक आय की विचार धारा से प्रभावित होता है। अतः भूमि इकाई का उपयोग इस रूप में होना चाहिए जिससे किसी निश्चित अवधि में उससे अधिकतम लाभ हो, वह उपयोग जिससे सर्वाधिक आय प्राप्त होती है, उसे अनुकूलतम उपयोग कहते हैं। भूमि का उपयोग उस समय सर्वोत्तम माना जाता है, जब उसका उपयोग एक या अनेक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सर्वाधिक शुद्ध लाभ की दृष्टि से किया जाता है। अत· यह संकल्पना तुलनात्मक लाभ के सिद्धान्त से निर्धारित होती है।

4. **भूमि उपयोग के तुलनात्मक लाभ की संकल्पना :**

भूमि उपयोग सम्बन्धी अध्ययन में तुलनात्मक लाभ की संकल्पना विशेष महत्वपूर्ण है। यह संकल्पना निर्णयकर्त्ता के भूमि के अनेक उपयोगों में से तुलनात्मक लाभ के सिद्धान्त पर आधारित है। निर्णयकर्त्ता ऐसा उपयोग अपनाता है जिससे किसी निश्चित अवधि में सर्वाधिक शुद्ध आय होती है। प्राय· किसी भी क्षेत्र में भूमि उपयोग विशिष्टता इसी सिद्धान्त के अनुरूप मिलती है। कृष्य प्रादेशिकरण में भी तुलनात्मक लाभ की दृष्टि से ही फसलों का चयन करते है। यथा भूमि उत्पादकता के आधार पर चावल उत्पादन के लिए दक्षिणी भारत में उत्तरी भारत की अपेक्षा तुलनात्मक लाभ अधिक है। समान श्रम एवं पूंजी लागत में प्रति एकड़ चावल का उत्पादन उत्तरी भारत की अपेक्षा अधिक होता है, अर्थात उत्तरी भारत की अपेक्षा दक्षिणी भारत में उत्पादन लागत की तुलना मे लाभ अधिक है। यह अन्तर भूमि संसाधन के गुणात्मक पहलू से सम्बन्धित है।

5. **भूमि उपयोग में क्षेत्रीय संतुलन की संकल्पना :**

भूमि उपयोग के व्यावहारिक अध्ययन का यह एक महत्वपूर्ण पक्ष है। किसी

भी भू-भाग का भूमि-उपयोग क्षेत्रीय मांग तथा पूर्ति सिद्धान्त के अनुरूप सन्तुलित होना चाहिए। प्राय भूमि उपयोग संतुलित होने पर भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले कारक भी स्थाई होते हैं। इस से सम्बन्धित स्थाई चरों मे बाजार मांग मूल्य का स्वभाव यथा यातायात शुल्क मुख्य होते हैं।

भूमि उपयोग में सन्तुलन की प्राप्ति भी इस समय होती है जब इससे सम्बन्धित तत्वो के प्रभाव मे अन्तर नही होता है। इस दशा में संतुलन स्थाई होता है तथा क्षेत्रीय मांग के अनुरूप होता है। वह भूमि उपयोग सन्तुलन जो क्षेत्रीय मांग के अनुरूप नहीं होता है आंशिक सन्तुलन कहलाता है। यदि भूमि उपयोग अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार तथा अन्य पदार्थों के मांग के अनुरूप सन्तुलित है तो ऐसी दशा में भूमि उपयोग को पूर्ण संतुलित कहा जायेगा। विकासशील अर्थव्यवस्था को अधिक गतिशील बनाने हेतु इस प्रकार के भूमि उपयोग का संतुलित अध्ययन अनिवार्य होता है।

6. **भूमि उपयोग में दूरी की संकल्पना :**

ग्रामीण भूमि उपयोग विश्लेषण में दूरी एक महत्वपूर्ण संकल्पना है। दूरी एक आर्थिक इकाई है जिसका प्रभाव भूमि उपयोग पर पड़ता है। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान वान थ्यूनेन ने सर्वप्रथम ग्रामीण भूमि उपयोग तथा दूरी के सम्बन्धों को सैद्धान्तिक रूप दिया। ऐसा देखा जाता है कि बाजार तथा शहरी केन्द्रों से दूरी बढ़ने के साथ-साथ भूमि उपयोग के स्वरूप में अन्तर तथा ह्रास होने लगता है। कृषक के घर से जैसे-जैसे खेत की दूरी बढ़ती जाती है भूमि उपयोग में अन्तर मिलता है तथा शुद्ध लाभ की दर मे भी कमी हो जाती है। इसी प्रकार मुख्य यातायात साधनों से भूमि इकाई की दूरी बढ़ने के साथ उत्पादकता तथा शुद्ध लाभ में ह्रास हो जाता है तथा भूमि उपयोग में भी अन्तर मिलता है। इस प्रकार भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले अनेक कारकों में दूरी का स्थान सर्वोपरि है।

7. **भूमि उपयोग की व्यावहारिक संकल्पना :**

इस संकल्पना का सम्बन्ध निर्णयकर्ता के व्यवहार एवं उस परिस्थिति से है जिसके अन्तर्गत वह भूमि उपयोग संबंध निर्णय लेता है जिसके अन्तर्गत वह भूमि उपयोग संबंधी निर्णय

लेता है। सामान्यतया कृषक फसल बोने के पूर्व कई बार निर्णय लेता है। इस निर्णय में उसका व्यवहार तीन विशेष पक्षों (क) उपयोगिता (ख) सक्रमकता तथा (ग) व्यक्तिनिष्ठ संभाव्यता से प्रभावित होता है।

कृषक या भूमि उपयोग कर्ता निर्णय से पूर्व प्रयुक्त लागत तथा आशान्वित आय को समान तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाकर मूल्यांकन करता है। इस मूल्यांकन के अन्तर्गत उत्पादकता की मात्रा, लागत, लाभ एवं बाजार को ध्यान मे रखा जाता है। आर्थिक दृष्टि से बाजार भी महत्वपूर्ण पक्ष है। इसीलिए कुछ अर्थशास्त्रियों का कथन है कि यदि बाजार मूल्य के स्थान पर व्यक्तिगत उपयोगिता का प्रयोग किया जा सके तो उपयोगिता संकल्पना का व्यावहारिक महत्व बढ़ जायेगा, लेकिन आगे यह समस्या उत्पन्न होती है कि यदि व्यापारिक कृषि में मूल्य का निर्धारण नही किया गया है तो उपयोगिता का मापन अधिक विकट हो जाऐगा।

8. **भूमि उपयोग में प्रत्यक्ष स्थान तथा प्रतिबिम्ब संकल्पना :**

भूमि उपयोग अध्ययन में प्रत्यक्ष स्थान तथा प्रतिबिम्ब अत्यन्त जटिल संकल्पना है। उपयोग निर्णय में निर्णयन - पर्यावरण का महत्वपूर्ण स्थान है। निर्णय क्रिया प्रत्यक्ष तथा प्रतिविम्बित स्थान से प्रभावित होती है जिसके आधार पर निर्णयन पर्यावरण निर्धारित होता है। भूमि उपयोग सम्बन्धी निर्णय व्यक्ति विशेष के अनुभव तथा व्यक्तियों के बाह्य साधनों द्वारा निर्धारित होती है।

मानव भूमि-उपयोग के सन्दर्भ में जब निर्णय लेता है तो निर्णय कार्य सीधे प्रत्यक्ष स्थान से प्रभावित होता है। भूमि-उपयोग स्वरूप को समझने के लिए मानव निर्णय क्रिया के आवश्यक पक्षों को भी समझना आवश्यक है।

उपर्युक्त संकल्पनाओं से ज्ञात होता है कि 'भूमि-उपयोग' का अर्थ बहुत ही व्यापक एवं विस्तृत है। 'भूमि-उपयोग' का स्वरूप मानव सभ्यता के विकास और मानव के आवश्यकतानुसार परिवर्तित होता रहा है और होता रहेगा। यह परिवर्तन कृषि विकास अवस्थाओं के रूप में

लक्षित हुआ है और होता रहेगा। कृषि कार्य की विविधता एवं विशिष्टता भूमि उपयोग के विकास कार्य एव क्रम को व्यक्त करती है, जो व्यक्ति के जीवन-यापन की आवश्यकनाओं से लेकर उसके आर्थिक सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास को पूर्णतया प्रभावित किए हुए है। शोधगत क्षेत्र के जीन जीवन में भूमि-उपयोग का मुख्य अर्थ कृषि कार्य से है, जो इस ग्राम्य-प्राधान्य क्षेत्र की अर्थव्यवस्था की मुख्य कुजी है।

1.6 भौगोलिक खोज के रूप में भूमि उपयोग सर्वेक्षण:

भूमि उपयोग सर्वेक्षण मूलत एक महान भौगोलिक उपलब्धि है, जो सर्वेक्षण की विशिष्ट विधियों से सम्बन्धित है। कृषि अर्थशास्त्री, वन-रक्षक, भूमि-संरक्षक, अनुसंधानकर्त्ता, प्रशासक तथा भूगोल के सामान्य छात्र और कुछ विशेष प्रकार वैज्ञानिक भी भूमि उपयोग की विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित रहते है, परन्तु उनका उद्देश्य विशेष प्रकार का होता है, जो भूगोल के शोध छात्र से पृथक है। भौगोलिक सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त ज्ञान भूमि उपयोग सम्बन्धी अध्ययनों से अधिक लाभप्रद होता है। भूगोल मनुष्य की क्रियाशीलता को विकसित करता है जिससे वह वातावरण की समस्याओं को समझाने में दक्षता प्राप्त करता है। इससे उसकी अनुभूति व्यापक बन जाती है। भूगोल का शोधकर्ता भूमि उपयोग की अनुकूलतम स्थिति तक अग्रसारित करने में सभी सम्भव दिशाओं से पहुंचने का प्रयास करता है, क्योंकि वह भू-दृश्यावली को विशिष्ट दृष्टिकोणों से विश्लेषण करने में अभ्यस्त होता है।[23]

भूमि के प्रति भूगोल वेत्ता का दृष्टिकोण दार्शनिक और संगठनात्मक दोनों ही होता है। इसलिए वह अपने अध्ययन के विभिन्न पक्षों को सुदृढ़ बनाने के लिए अन्य विषयों जैसे - भू-गर्भशास्त्र, जलवायु विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, मानविकी शास्त्र, सांख्यिकीय, इतिहास आदि से निकल का सम्बन्ध स्थापित करता है। वह मनुष्यों, घटनाओं तथा वस्तुओं को उनके क्षेत्रीय सम्बन्धों के परिवेश के जानने में सक्रिय हो जाता है।[24] प्रशासक तथा अन्य विशेषज्ञ जो भूमि उपयोग सर्वेक्षण में कार्यरत होते हैं, वे सभी कारकों को ध्यान में रखकर सर्वांगीण संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करने में प्रायः असफल रहते हैं। भूमि उपयोग में क्षेत्रीय तथा सामाजिक पर्यावरण को समझना भी अत्यन्त आवश्यक होता है। इन सभी दृष्टिकोणों से निश्चय ही भूगोल के शोधकर्त्ता का योगदान सराहनीय होता है, क्योंकि उसका विवेचन समाकलित एवं

सन्निकट तथ्यपरक होता है, जिसमें वह भूमि के उपयोग एवं दुरूपयोग के साथ ही उनसे सम्बद्ध समस्याओं की भी समीक्षा करता है। भूगोल वेत्ता स्वभावत असंबद्ध तथ्यों के बीच भी सह-सम्बन्ध खोजने का प्रयास करता है, और इस कार्य में वह भौतिक तथ्यों जैसे - उच्चावच शैल-संस्तर, मिट्टी, भूमिगत-जल, मौसम, एवं जलवायु आदि तथा मानवीय तथ्यों जैसे - जनसंख्या, बाजार, यातायात आदि के साथ भूमि उपयोग के सम्बन्धों को मानचित्र द्वारा प्रस्तुत करता है, और उनका अध्ययन करता है। वह सामाजिक तथा आर्थिक तथ्यों को जो निश्चय ही भूमि उपयोग से सम्बन्धित हैं पूर्णत समझने के लिए उनके आंकडे एकत्रित करता है तथा उनका विश्लेषण करता है। भूमि उपयोग अध्ययन में भूगोल वेत्ता का मुख्य कार्य वातावरण पर मानव की क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं के प्रभावों एवं प्रभारों का निर्धारण करना है, जिससे कृषि कार्य के क्षेत्र परिरिमित होते है।

कभी-कभी भूगोल वेत्ता पर अधिक व्यापक दृष्टिकोण अपनाने के लिए दोषारोपण किया जाता है किन्तु वास्तव में यह सभी तथ्यों के सन्निहित विश्लेषण के लिए आवश्यक है। कभी-कभी यह सामान्यीकरण भी प्रस्तुत करता है जिसमें प्रतिरूपण या परिनियमन आवश्यक हो जाते हैं। शोध कर्त्ता के लिए अधिक महत्व की बात तो यह है कि वह धैर्य पूर्वक विस्तृत विवेचन करे और अपने अध्ययनों में सूक्ष्म दृष्टिकोणों वैज्ञानिक विधियों तथा मौलिक आधारों को अपनायें।[25]

1.7 भूमि-उपोग सर्वेक्षण पद्धतियां:

भूमि उपयोग सर्वेक्षण और उसके अध्ययनों से सम्बन्धित तकनिकी ज्ञान को विकसित करने में जी0पी0 मार्स[26] सी0ओ0 सौर्य[27] डब्लू0डी0 जोन्स एवं वी0सी0 फ्रेन्च[28] विद्वानों ने विशेष योगदान दिया है। इस अर्थशास्त्र के विद्वानों ने अपनी पुस्तकों एवं आर्थिक भूगोल की पत्रिकाओं में अनेक लेख प्रकाशित कर भूमि उपयोग सम्बन्धी अध्ययन की आधार शिला रखी। परन्तु भूमि उपयोग सम्बन्धी विस्तृत योजना का कार्य तो स्टैम्प एवं बक जैसे भूगोल के विद्वानों द्वारा ही प्रतिस्थापित किया गया है जिनके अथक परिश्रम के फलस्वरूप भूमि उपयोग के अध्ययन एवं नियोजन के क्रम बद्ध, एवं वैज्ञानिक स्वरूप को समझने में विशेष सहायता मिली है। प्रो0 एस0वान वाल्केन वर्ग की अध्यक्षता में अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक संघ के लिरन्बन

महाधिवेशन में एक आयोग का गठन किया गया था, जिसमे विश्व के सभी देशों के लिए भूमि उपयोग सर्वेक्षण की योजना प्रस्तावित की गई थी और उसकी सफलता के लिए विभिन्न देशों में सरकारी तन्त्र एवं अन्य संस्थाओं के सहयोग से सर्वेक्षण के कार्य प्रारम्भ किए गए थे। ऐसे सर्वेक्षणों के फलस्वरूप अनेक देशों में प्रशासनिक तन्त्रों द्वारा या शोध संस्थानों द्वारा या व्यक्तिगत स्तरों पर अध्ययनों द्वारा प्राप्त परिणामों को प्रकाशित किया गया। जिसमें विश्व भूमि उपयोग सर्वेक्षण हेतु प्रस्तावित रूप रेखा को सशोधित भी किया गया। भूमि उपयोग सर्वेक्षण में अब तक प्रयुक्त विभिन्न विधियों या पद्वतियों को निम्न तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

(अ) **ब्रितानी पद्धति :**

भूमि उपयोग की प्रथम पद्वति ब्रितानी पद्वति कही जाती है। वास्तव में यह प्रो० स्टैम्प[29] द्वारा निर्देशित पद्वति है 'जिसका लक्ष्य ब्रिटेन में भूमि-सर्वेक्षण शोधों द्वारा प्राप्त भूमि के विविध उपयोगों का तथ्यात्मक अंकन करना है। 'यह सर्वेक्षण छ इन्च परिलक्षक एक कील वाले मापक (। ।060) के आर्डिनेन्स मानचित्रों के आधार पर ऐच्छिक कार्याक्त्ताओं द्वारा सम्पन्न किया गया था। भूमि-उपयोग सर्वेक्षण का तत्सम्बन्धी प्रतिवेदन 92 भागों में प्रकाशित किया गया। भूमि उपयोग के इस सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त तथ्यों को । 63360 के मापक के मानचित्र पर दर्शाया गया। प्रत्येक मानचित्र भूमि-उपयोग से सम्बन्धित विश्लेषण पर आधारित भौतिक पृष्ठभूमि का चित्र प्रस्तुत करता था जिसमें भूमि उपयोग के क्षेत्रों का विभाजन भी सम्मिलित था।

यह सर्वेक्षण लन्दन विश्वविद्यालय में किन्स कालेज के डा० एलाइस कोल मैन के तत्वाधान में पुन सम्पन्न किया गया। इसमें मानचित्रों का नया क्रम व्याख्यात्मक साहित्य सहित प्रस्तुत किया गया है; जो अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है इसमें 7:25000 की मापनी का उपयोग सहायक हुआ है।

(ब) **अमेरिकी पद्धति :**

संयुक्त राज्य अमेरिका मे भूमि उपयोग सर्वेक्षण या तो क्षेत्रीय होते हैं या राज्य

स्तरीय टेनसी वैली एथार्टी' द्वारा अत्यधिक विस्तृत भिन्नात्मक सूचकांक विधि से भूमि उपयोग सर्वेक्षण किए गए । कालान्तर में संयुक्त राज्य अमेरिका में भूमि संरक्षण सेवाओं ने देश के विभिन्न भागों के विस्तृत भूमि उपयोग मानचित्रों की एक श्रृंखला ही तैयार कर दी जो भू-क्षरण, मृदा प्रकार धरातलीय ढाल और नवीन भूमि-उपयोग पद्वतियों के अनुसार सघन सर्वेक्षणों पर आधारित था। वर्तमान समय में कृषि विभाग, संयुक्त राज्य अमेरिका ने भूमि-क्षमता सम्बन्धी सर्वेक्षणों पर विशेष बल दिया है (स्मिथ, 1961, पृ0 80-81) । सामान्यतया संयुक्त राज्य अमेरिका ने सर्वेक्षणों का पूर्व उद्देश्य केवल निश्चित समय पर किसी चयनित भूमि की इकाई की उपयोगिता सम्बन्धी आख्या तैयार करना था तथा साथ ही साथ वातावरण तथा प्राकृतिक गुणों पर आधारित भूमि के ऐसे उपयोग की ओर इंगित करना भी था जो उस भूमि की इकाई के लिए सर्वाधिक उपयुक्त हो सके। तात्पर्य यह है कि अमेरिकी सर्वेक्षण भूमि की अधिकतम उपयोगिता की क्षमता को ज्ञात करने के लिए किया जाता है।

(स) चीनी पद्वतिः

जे0एल0 बक द्वारा चीन में प्रयुक्त भूमि उपयोग सर्वेक्षण पद्वति एक तीसरी उल्लेखनीय पद्वति है। बक महोदय के सर्वेक्षण का उद्देश्य चीन की खेती के विषय में सुलभ ज्ञान प्राप्त करना था जो राष्ट्रीय कृषि नीति के लिए एक आधार पर प्रस्तुत कर सके।[30] इस सर्वेक्षण के उद्देश्य से ली जानी वाली सूचनाएं 22 प्रान्तों के 154 जिलों के 168 क्षेत्रों (लोकेलीटीज) के 16,789 कृषि फार्मों से प्रतिदर्श रूप में प्राप्त की गयी थी। इन सभी 168 क्षेत्रों का सर्वेक्षण अधिक सूक्ष्म और गहन विधि से किया गया था जिसमें जनसंख्या, योजन स्वरूप, जीवन स्तर और विपणन जैसे कारकों को भी सम्मिलित किया गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक संघ द्वारा 1946 में स्थापित भूमि उपयोग आयोग द्वारा प्रस्तुत संस्तुतियों के परिणाम स्वरूप विश्व-भूमि उपयोग सर्वेक्षण संस्था ने न केवल यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका में बल्कि उष्णकटिबन्धीय देशों में भी बडे पैमाने पर भूमि उपयोग सर्वेक्षण किया। इस सर्वेक्षण का प्रथम उद्देश्य विश्व के सभी भागों के वर्तमान भूमि उपयोग के सम्यक वर्गीकरण की पद्वति का संकेत प्रस्तुत करना तथा तथ्य-विश्लेषणों के आधार पर उनका प्रयोग करना था। भूमि-उपगोग के वर्गीकरण के प्रयोग को अधिक महत्व दिया गया था। मानक

भूमि-उपयोग वर्गीकरण नौ प्रकार की मुख्य कोटियों मे विभक्त किया गया है, जिनके अन्तर्गत अनेक उपकोटियां भी है।[31] इस सम्बन्ध में 'सामयिक पत्रक' और 'क्षेत्रीय मोनो ग्राफ' जिन्हें प्रो0 स्टैम्प ने प्रकाशित किया था, मुख्य है।

इस प्रकार अब तक व्यवहृत पद्वतियों में या तो किसी विशेष भू-भाग के सर्वाधिक उपादेयता वाले उपयोग को महत्व दिया गया (अमेरिकी पद्वति) या प्रतिदर्श विधि द्वारा किसी देश विशेष की कृषि नीति निर्धारित करने के लिए जीवन स्तर, जनसंख्या और विभाजन की सुलभ क्षेत्रीय सुविधाओं के सन्दर्भ मे गहन अध्ययन किया गया (चीनी पद्वति) या केवल भौतिक (धरातलीय) पृष्ठभूमि के आधार पर भूमि उपयोग की स्वतन्त्र व्याख्या की गयी (ब्रिटानी, पद्वति) । किन्तु इन तीनो पद्वतियो मे भारत के लिए कोई भी पद्वति पूर्णत उपयुक्त नहीं प्रतीत होती। भारत की वर्तमान जनसंख्या एवं विविधताओं को ध्यान में रखते हुए अगर कोई भी पद्वति सीमित रूप में उपयुक्त लगती है तो वह किसी भी भूखण्ड की सर्वाधिक उपयोगिता के आधार पर भूमि उपयोग सर्वेक्षण विधि वाली अमेरिकी पद्वति ही हो सकती है, क्योंकि इस कृषि प्रधान देश मे भूमि की प्रत्येक इकाई मे जो भी अधिकतम उत्पादन सम्भव हो सकता है उसे प्राप्त करना बडी जनसख्या के भरण-पोषण के लिए अत्यावश्यक है, साथ ही साथ भारत के लिए प्रयोग मे आने वाली भूमि उपयोग पद्वतिया समन्वयात्मक भी होनी चाहिए जो कारकों को सन्दर्भ में विशिष्ट हो सके।

(द) **भारतीय पद्वति .**

भारत में दो प्रकार के अध्यायों द्वारा भूमि उपयोग सर्वेक्षण किए जाते हैं। भारत सरकार के राष्ट्रीय प्रतिदर्श विधि द्वारा सम्पूर्ण भारत में भूमि उपयोग सर्वेक्षण और फसल उत्पादन आकलन की योजना चलाई जा रही है।[32] इसके द्वारा देश में रबी और खरीफ फसलों के मुख्य अन्नो के सम्पूर्ण उत्पादन का और उसके अन्तर्गत कृषि भूमि का विशेष विधि द्वारा आकलन किया जाता है। परन्तु राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण द्वारा जनपद फसलों का अभी भी कोई आकलन नही किया गया है। भारत सरकार की केन्द्रीय मृदा संरक्षण परिषद द्वारा बड़ी-बड़ी नदी घाटी योजनाओं के क्षेत्रों में भूमि उपयोग और मृदा उपयोग का सर्वेक्षण किया जा रहा है जिसका मुख्य लक्ष्य मृदा सर्वेक्षण द्वारा भूमि क्षमता का वर्गीकरण करना है।[33]

भारत में भूमि उपयोग सर्वेक्षण का कार्य भारतीय भूगोल वेत्ताओं द्वारा भी किया गया है जो मुख्यत प्रो0 स्टैम्प द्वारा ब्रिटेन मे प्रयुक्त की गयी भूमि उपयोग सर्वेक्षण सम्बन्धी शास्त्रीय विधि द्वारा प्रेरित हुआ है ।[34] अन्य देशों की भाँति भारत में भी भूमि उपयोग के कई पक्षों जैसे कृषि क्षमता, कृषि गहनता, कृषि कुशलता आदि पर अनेक लेख प्रकाशित हुए हैं । देश में सर्वप्रथम भूमि उपयोग सर्वेक्षण एवं शोध कार्य का सूत्रपात प्रो0 एस0 पी0 चटर्जी (1945-1952)[35] द्वारा पश्चिमी बंगाल के चौबीस - परगना और हावडा जिलों में किया गया था । उनके द्वारा इन जिलों में किया गया विस्तृत भूमि उपयोग सर्वेक्षण हमारे लिए एक आदर्श बन गया है । प्रो0 वी0 एल0 एस0 प्रकाश राव ने (1947-56)[36] गोदावरी नदी घाटी के क्षेत्र में भूमि उपयोग का शोधपूर्ण सर्वेक्षण एवं विवेचनात्मक अध्ययन किया है । प्रो0 ओ0 पी0 भारद्वाज ने (1960-61-64)[37] जालन्धर जिले के पूर्वी भाग में भूमि अपरदन समस्या का विस्तृत अध्ययन किया है तथा उन्होनें व्यास एवं सतलज नदियों के द्वाब क्षेत्र में भूमि उपयोग का भी विशेष अध्ययन किया है । प्रो0 एम0 शफी ने (1960)[38] पूर्वी उत्तर प्रदेश में भूमि उपयोग का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है । ये सभी कार्य महत्वपूर्ण है जो शोध छात्रों के लिए मार्गदर्शन प्रस्तुत करते है । इन भूगोल विदों ने भारत में भूमि उपयोग सम्बन्धी शोध कार्य का जो मार्ग प्रशस्त कियाहै, वह सराहनीय और प्रेरणात्मक है । नये भूगोल वेत्ता इन मार्गो के साथ ही साथ अब नई दिशाओं का भी विकास करने लगे हैं जो उनके सफल प्रयासों के द्योतक हैं ।

1960 के पश्चात भारत में कृषि क्षमता, कृषि गहनता, शस्रू स्वरूप, शस्य साहचर्य तथा शस्य समिश्रण से सम्बन्धित अनेक लेख प्रकाशित हुए । कृषि क्षमता के निर्धारण में शफी[39] भाटिया[40], जसवीर सिंह[41], चौहान [42],सिंह[43] एवं त्यागी[44] के कार्य विशेष महत्वपूर्ण रहे हैं । शस्य समिश्रण एवं शस्य साहचर्य से सम्बन्धित शोध कार्य के सन्दर्भ में - हरिपाल सिंह[45], बी0 के0 राय[46], त्रिपाठी एवं अग्रवाल[47], शर्मा[48], नित्यानन्द[49] एवं सिंह[50] आदि भूगोल वेत्ताओं के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

शस्य संयोजन तथा विश्लेषण की दृष्टि से भाटिया[51] एवं मजीद हुसैन[52] के लेख विशेष महत्वपूर्ण है । इसी अवधि में शस्य स्वरूप एवं कृषि प्रादेशीकरण से सम्बन्धित अनेक शोध

पत्र भी प्रकाशित जो भूमि उपयोग से सम्बन्धित शोध कर्ताओं के लिए विशेष सहायक है । प्रो0 जसवीर सिंह[53] तथा तिवारी[54] द्वारा प्रकाशित कृषि मानचित्रावलीयाँ भी भूमि उपयोग के क्षेत्र में अध्ययन कर्ताओ के लिए विशेष उपयोगी है । इन सभी शोध प्रबन्धों एवं शोध प्रपत्रों द्वारा भूगोल वेत्ताओं द्वारा भूमि के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण किया गया है । इन भूगोल विदों ने पुरानी परिकल्पनाओं की पुष्टि या उनका संशोधन करते हुए नये विधि तन्त्र का भी विवेचन किया है । साथ ही साथ इन्होनें परिवर्तनशील प्रतिमानों के सन्दर्भ में भूमि उपयोग की व्याख्या एवं विश्लेषण करने हेतु अधिक व्यवहारिक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता पर भी विशेष बल दिया है । इन प्रयत्नों से भूमि उपयोग का अध्ययन अवश्य ही अधिक लाभप्रद हो गया है ।

1.8 वर्तमान शोध प्रबन्ध का उद्देश्य एवं अध्ययन विधि -

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य कृषि प्रधान एवं पूर्ण रूपेण ग्रामीण कटिहार प्रखण्ड के भूमि-उपयोग की समुचित व्याख्या प्रस्तुत करना है जिससे भौतिक, मानवीय एवं ऐतिहासिक कारकों के सन्दर्भ में -

1. भूमि उपयोग के क्षेत्रीय एवं कालिक विशिष्टताओं की समुचित व्याख्या की जा सके ।
2. वर्तमान भूमि उपयोग एव उसकी सम्भाव्य क्षमता का मूल्यांकन किया जा सके तथा
3. प्रखण्डवासियों की आवश्यकताओं एवं उनके आर्थिक स्तर के उन्नयन हेतु भूमि उपयोग के समन्वित वैज्ञानिक नियोजन हेतु कुछ ठोस कार्यक्रम प्रस्तावित किए जा सकें ।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के निम्न प्रमुख लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं ।

अध्ययन क्षेत्र की भौतिक, मानवीय एवं जैविक सम्पदाओं का अध्ययन करना जिन पर क्षेत्र का आर्थिक विकास अवलंबित है ।

क्षेत्रीय विशेषताओं के समुचित अध्ययन हेतु अध्ययन क्षेत्र के वर्तमान भूमि उपयोग के प्रतिरूप का अध्ययन करना ।

अतीत एवं वर्तमान भूमि उपयोग प्रतिरूपों के क्षेत्रीय विशेषताओं के आधार पर परिवर्तन प्रतिरूप का अध्ययन करना तथा शस्य प्रतिरूप एवं शस्य गहनता के माध्यम से वर्तमान कृषि पद्धति एवं शस्य प्रकारों का निर्धारण करना ।

जनसंख्या अधिवास एव जनसंख्या वहन क्षमता का निर्धारण करना ।

जनसंख्या एवं भू-संपदा के सन्तुलन को ध्यान में रखते हुए भूमि-उपयोग के आधुनिकीकरण एव व्यवसायीकरण हेतु समन्वित - नियोजन की रूपरेखा तैयार करना ।

उपर्युक्त लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु शोधकर्ता ने परिकल्पनाओं को आधार बनाया है ।

1. भूमि सम्पदा से सम्पन्न होते हुए भी अध्ययन क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से राज्य का एक पिछडा हुआ अंचल है जहाँ के भूमि उपयोग में पारम्परिक पद्धतियों की प्रधानता है ।

2. अध्ययन क्षेत्र के कृषि-भूमि उपयोग में खाद्य फसलों की प्रधानता है जिनके उत्पादन में वैज्ञानिक कृषि पद्धति, रसायनों, खादों, कीटनाशक पदार्थो, उन्नतिशील बीजों आदि का बहुत कम उपयोग किया जाता है ।

3. यद्यपि सिंचाई आदि साधनों के विकास के कारण सकल क्षेत्र एवं शस्य गहनता में हाल के वर्षो में वृद्धि हुई परन्तु बढती जनसंख्या हेतु आवासों के निर्माण एवं परिवहन-संचार के साधनों में वृद्धि आदि के कारण शुद्ध बोया गया क्षेत्र उत्तरोत्तर घटता जा रहा है ।

4. नगरों एवं परिवहन मार्गों की समीपता के कारण कृषि भूमि उपयोग में व्यवसायीकरण को प्रोत्साहन मिल रहा है तथा नई कृषि पद्धतियों से मुद्रादायिनी फसलों के उत्पादन पर बल दिया जा रहा है ।

5. अध्ययन क्षेत्र के कृषि भूमि-उपयोग में समुचित सुधार कर क्षेत्र के निवासियों के आर्थिक स्तर को ऊपर उठाया जा सकता है ।

अध्ययन की सुविधा हेतु शोध प्रबन्ध को नौ अध्यायों में बॉटा गया है । इनमें से जहाँ प्रथम अध्याय में भूमि उपयोग की संकल्पना, उसकी अध्ययन विधि, भूमि उपयोग शोध का महत्व, अध्ययन प्रणाली आदि के बारे में जानकारी प्रदान करता है वहाँ दूसरे और तीसरे अध्यायों में अध्ययन क्षेत्र की भौतिक एवं भू-आर्थिक विशिष्टताओं का मूल्यांकन किया गया है । चौथे अध्याय में भूमि उपयोग का सैद्धान्तिक विवेचन एवं पाँचवे अध्याय में क्षेत्र के सामान्य भूमि उपयोग का परिवर्तनशील वितरण प्रारूप सम्बन्धी विवेचन है - जबकि पाँचवे अध्याय में भूमि उपयोग तथा छठे अध्याय में शस्य प्रतिरूप (रबी, खरीफ एवं जायद फसलों) के अन्तर्गत शस्यों का विशेष अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । सातवें अध्याय में भूमि उपयोग गहनता, प्रवणता सम्बन्धी अध्ययन प्रस्तुत है । आठवें अध्याय में प्रतिदर्श गावों में सामान्य भूमि उपयोग के साथ ही परिवर्तन प्रतिरूप एवं तद्जनित समस्याओं का सम्यक अध्ययन दिया गया है । नवें अध्याय में अध्ययन क्षेत्र में भूमि उपयोग का निष्कर्ष एवं उसमें सुधार हेतु भावी योजनाओं का प्रारूप प्रस्तुत किया गया है ।

(अ) शोध सर्वेक्षण एवं आँकड़ों का संग्रह :

इस शोध सर्वेक्षण का क्षेत्र बिहार राज्य के उत्तरी पूर्वी भाग में स्थित कटिहार जनपद की कटिहार प्रखण्ड है जो भौगोलिक दृष्टि से मध्य गंगा मैदान के कोशी अंचल का एक अभिन्न भाग है । इस सर्वेक्षण में उन सभी कार्यों का विवरण प्रस्तुत किया गया है जिनके द्वारा शोध कर्ता ने आवश्यक तथ्य एवं आँकड़े गाँव - गाँव एवं न्याय पंचायत स्तर पर घूम-घूम कर तथा प्रखण्ड और जनपद एव राज्य के मुख्यालयों से प्राप्त किए हैं । इन विवरणों को सुविधा की दृष्टि से तीन उपक्रमों में विभाजित किया जा सकता है जो निम्न प्रकार है:-

(1) प्रथम अध्याय .

इसके अन्तर्गत प्रखण्ड, जनपद और राज्य के मुख्यालयों से प्राप्त विभिन्न प्रकार के कार्यालय अभिलेखों, प्रतिवेदनों, साख्यिकीय आँकड़ों, पाण्डुलिपियों, डायरी में लिखित तथ्यों तथा राजस्व विभाग से उपलब्ध तत्सम्बन्धी विवरणों को शोधपूर्ण परीक्षण एवं विवेचन हेतु प्राप्त किया गया है । भूमि उपयोग से सम्बन्धित अपेक्षित सॉख्यिकीय आँकड़े मुख्यतः राजस्व अभिलेखों

तथा पंजियों से प्राप्त किए गए हैं । भूमि उपयोग की परिभाषा और वर्गीकरण की विधि जो प्रखण्ड के राजस्व अधिकारियों द्वारा निर्धारित की गयी है, उनसे पारस्परिक बातचीत के माध्यम से जानी गयी है ।

कटिहार प्रखण्ड जो इस शोध अध्ययन का क्षेत्र है, बिहार राज्य के ऐसे भागों में से एक है जिन्हें राजस्व अधिकारियों द्वारा समस्याओं से उलझा हुआ (जैसे- बाढ़, गरीबी, अधिक जनसंख्या, अविकसित यातायात, बेरोजगारी, उद्योगों का अभाव, निम्न जीवन स्तर तथा निम्न शिक्षा स्तर आदि से पूर्णरूपेण ग्रसित) माना गया है । इस प्रकार के सर्वेक्षण के लिए ग्रामीण क्षेत्रों के सन्दर्भ में राजस्व विभाग के अभिलेखों द्वारा प्रमुख स्रोत सुलभ है । इन अभिलेखों में भूमि-उपयोग एवं कृषि कार्य से सम्बन्धित सॉख्यकीय ऑकड़े प्रस्तुत किये गये हैं जो इस प्रखण्ड के 20 ग्राम सेवक (लेखपाल) तथा क्षेत्रीय निरीक्षक के माध्यम से प्राप्त किए गये हैं । भूमि-उपयोग सम्बन्धी आंकड़ों का मुख्य स्रोत ग्राम सेवक (लेखपाल) का विवरण होता है । इस विवरण को प्रखण्ड का क्षेत्रीय निरीक्षक ग्राम सेवकों (लेखपालों) से प्राप्त कर संग्रहीत करता है । यह राजस्व विभाग का बहुत ही महत्वपूर्ण भूमि उपयोग अभिलेख होता है । ग्राम सेवक खेतों के निरीक्षण के आधार पर चार फसलों का जिन्सवार (विवरण) तैयार करता है । जो निम्न प्रकार है :-

(क) भदई का जिन्सवार - (भदई में बोयी जाने वाली फसलों का विशेष विवरण)

(ख) अगहनी का जिन्सवार - (अगहन में बोयी जाने वाली फसलों का विशेष विवरण)

(ग) रबी का जिन्सवार - (रबी में बोयी जाने वाली फसलों का विशेष विवरण)

(घ) गरमा का जिन्सवार - (गरमा में बोयी जाने वाली फसलों का विशेष विवरण)

ग्राम सेवक (लेखपाल) अपने निरीक्षणों का विवरण खसरा (निरीक्षण-पुस्तिका) में लिखता है , जिसमें वह सिंचाई के साधन, सिंचित क्षेत्र, असिंचित क्षेत्र आदि के साथ ही साथ फसलों के बाढ़, सूखा आदि द्वारा क्षतिग्रस्त क्षेत्र का भी उल्लेख करता है । ये विवरण खसरा एवं खतियान से सुलभ हो जाते हैं । पूरे गाँव के लिए विभिन्न प्रकार के भूमि उपयोगों का विवरण एवं उनका योग भी खसरे में दिया रहता है । खरीफ फसलों (भदई एवं अगहनी) का विवरण अक्टूबर तक, रबी फसलों का विवरण मार्च तक एवं गरमा फसलों का विवरण मई तक तैयार किया जाता है ।

क्षेत्रीय निरीक्षक, ग्राम सेवक द्वारा प्रस्तुत इन फसल विवरणों का परीक्षण करता है और जब वह सन्तुष्ट हो जाता है कि ये विवरण ठीक है और उपयुक्त ढंग से तैयार किए गये हैं तथा विचलनों का सावधानी पूर्वक विवेचन किया गया है और अंकों के योग भी सही है तो वह उन विवरणों पर अपना हस्ताक्षर करता है । तदुपरान्त वह उन्हें क्षेत्रीय निरीक्षक के समक्ष प्रस्तुत करता है । इससे पूर्व क्षेत्रीय पदाधिकारी भी यह जाँच कर लेता है । कि लेखापालों द्वारा प्रस्तुत फसलों तथा अन्य प्रकार के क्षेत्रफलों का विवरण सही ढंग से प्रस्तुत किया गया है अथवा नहीं और क्षेत्रीय निरीक्षक द्वारा उनका समुचित ढंग से परीक्षण किया गया है अथवा नहीं । वह आवश्यकतानुसार सुधार भी करता है । इस प्रकार भूमि उपयोग के आँकड़े ग्राम सेवक, क्षेत्रीय निरीक्षक एवं क्षेत्रीय पदाधिकारी के माध्यमों से तैयार किये जाते हैं । इन आँकड़ों को विश्वसनीय समझा जाता है । प्रत्येक वर्ष ग्राम सेवक एक मिलान खसरा (जो विशेष क्षेत्रफल विवरण पुस्तिका है) अपने सर्वेक्षणों द्वारा बनाये गये खसरे के आधार पर तैयार करता है । जब खसरे में सभी प्रविष्टियाँ पूर्ण हो जाती है तब भूमि के प्रत्येक प्रकार के क्षेत्रफल का वितरण विशेष विवरण के रूप में प्रदर्शित किया जाता है और उनसे सम्बन्धित पूरे गाँव के योग भी दिये जाते हैं । इन सभी तथ्यों का पुनर्निरीक्षण समुचित ढंग से तथा गंभीरतापूर्वक क्षेत्रीय निरीक्षक द्वारा किया जाता है । क्षेत्रीय निरीक्षक अपने क्षेत्रफल विवरण में (भूमि-अभिलेख पंजी) विभिन्न प्रकार के भूमि उपयोगों के अन्तर्गत प्रत्येक गाँवों के सभी योगों को अंकित करता है । वह पूरे प्रखण्ड के संदर्भ में भी ऐसे क्षेत्रफलों के विवरणों के लिए योगांकन करता है । राजस्व विभाग द्वारा ये सभी आँकड़े पूर्णतया शुद्ध एवं विश्वसनीय कहे जाते हैं ।

ग्राम्य स्तर पर 1952 तथा 1991-92 सत्र के भूमि उपयोग प्रतिरूप और मुख्य फसलों के अन्तर्गत भूमि उपयोग संबंधी आँकडे क्षेत्रीय निरीक्षक के कार्यालय, प्रखंड कटिहार से प्राप्त किये गये हैं । ये भूमि उपयोग और फसली संबंधी आँकड़े प्रखण्ड में 126 ग्राम पंजियों से जिनमें 1952 तथा 1992 तक प्रत्येक गाँव के योगों के भी विवरण हैं, लिये गये हैं । 03.10.73 को कटिहार जनपद पूर्णिया से अलग हुआ है । पूर्णिया का अनुमंडल कटिहार जनपद जो ग्यारह (11) प्रखण्डों (कटिहार - आजमनगर, कढ़वा, प्राणपुर, मनिहारी, अमदाबाद, फलका, बरारी, कोढ़ा, बारसोई, बलरामपुर को मिलाकर बनाया गया । इस जनपद को बाद में दो अनुमंडल

(कटिहार तथा बारसोई) में विभाजित किया गया । आवश्यकतानुसार, अनुमंडल के क्षेत्रों का पुनर्निधारण भी किया गया ।

इस अध्ययन में वर्ष 1951 तथा 1991 की जनगणना के आधार पर इस प्रखंड के सभी गॉवो को जनसंख्या का विवरण लिया गया है । ग्राम पंजिका क्षेत्रीय निरीक्षक द्वारा प्रत्येक वर्ष के भूमि उपयोग के क्षेत्रफलों के विवरणों से तैयार की गई सांख्यिकीय पंजी होती है, जिन्हे केवल वार्षिक स्तर पर ही संकलित किया जाता है । -

इसी प्रकार प्रखण्ड एवं अनुमण्डल पंजिकाए भी होती है जो उस क्षेत्र के कृषि कर्म का इतिहास व्यक्त करती है । इनसे भूमि उपयोग के आँकड़ों में होने वाले परिवर्तनों का विवेचन करना सरल हो जाता है । इन पंजिकाओं में अंचल पदाधिकारी (सी0ओ0) द्वारा ऐसी आख्याएँ एवं ऐसे अभिलेख दिये जाते हैं जो किसी निश्चित क्षेत्र में स्थानीय महत्व की फसलों के विभिन्न प्रकारों, उनके वर्गो एवं उन फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफलों के वार्षिक समाकलनों का उल्लेख करते हैं । इनमें खाद्य, अखाद्य एवं मुद्रादायिनी फसलों का भी विवरण होता है । अन्य राजस्व अभिलेख जिनका निरीक्षण किया गया है उनमें लेखपाल दैनन्दिनी (डायरी) खतौनी, क्षेत्रीय निरीक्षक द्वारा प्रस्तुत करदाताओं और भूमि अधिकारियों से सम्बन्धित विवरण अन्य राजस्व विवरण, राज्य सम्पत्ति पंजी (कृषित - भूमि, भवनों से संलग्न भूमि, राजकीय मार्ग, नहरों की भूमि आदि) आकस्मिक घटनाओं के अभिलेख, सहायक क्षेत्रीय निरीक्षक द्वारा प्रस्तुत विवरण क्षेत्रीय निरीक्षक और अंचल पदाधिकारी तथा परगनाधिकारी द्वारा प्रस्तुत समीक्षात्मक विवरण और प्रखण्ड में कृषि दशाओं के विषय में लिखे गये मासिक तथा सामयिक अभिलेख (जैसे भूकम्प, सूखा, अतिवृष्टि, आंधी, तूफान, ओलावृष्टि, बाढ़ आदि से सम्बन्धित विवरण) तथा बगीचों और झाड़ियों से सम्बन्धित पंजी गॉवों के आवास कर या लगान सम्बन्धी अभिलेख आदि सम्मिलित हैं ।

16" इन्च प्रदर्शित करता है । मील (1:3960) की मापनी पर निर्मित कटिहार प्रखण्ड के नौ चयनित गॉवों के मानचित्र प्रखण्ड कार्यालय के नजारत विभाग से प्राप्त किए गये हैं । इन्हें प्रदर्शित गांवों के रूप में अध्ययन किया गया है । उनका चयन यादृच्छिक प्रतिचयन विधि से किया गया है । इन प्रदर्शित गॉवों के मानचित्रों पर खेतों की सीमाएं उनकी

संख्या, मार्ग नहरों की शाखाएं, कुएँ, आबादी के क्षेत्र तथा अन्य सलग्न विवरण प्रदर्शित रहते हैं । शोध कार्य में ये बहुत ही उपयोगी पाये गये हैं ।

भारत सरकार के सर्वेक्षण विभाग द्वारा निर्मित धरातलीय पत्रक भी प्रयोग में लाये गये हैं जो इस कार्य में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं । इनसे उच्चावचन, प्रशासनिक सीमा, आवासों की स्थितियाँ आदि के अध्ययन में विशेष सहायता मिलती है ।

धरातल के स्वरूप, उच्चावच, ढाल, अपवाह, सिंचाई, बाग और झाड़ियों आदि से सम्बन्धित विश्वसनीय और उपयोगी ऑकड़े कटिहार जनपद में स्थित विभिन्न सरकारी कार्यालयों से प्राप्त किये गए हैं जो उस कार्यालय द्वारा निर्मित योजना और सर्वेक्षण मानचित्र पर आधारित है ।

(2) **द्वितीय उपक्रम** :

इस उपक्रम में इस क्षेत्र का गहन निरीक्षण किया गया है । इस कार्यक्रम के अन्तर्गत इस क्षेत्र में रबी की फसल कट जाने के बाद 1992 के मई माह में कटिहार प्रखण्ड में स्थित चयनित (प्रतिदर्शी) गांवों तथा कई अन्य गांवों का निरीक्षण किया गया । भूकर मानचित्रों, खसरा के विस्तृत विवरणों, विभिन्न अभिलेखों आदि के आधार पर तथ्यों का अध्ययन किया गया तथा आवश्यकतानुसार ट्रेन, बस, सायकिल तथा कभी-कभी पैदल चलकर भी इन तथ्यों का परीक्षण किया गया, जिससे सत्यता का भरपूर बोध हो सके । उदाहरण के लिए गंगा, कोसी, महानन्दा तथा सहायक नदियों एवं नालों के तटों पर विभिन्न मार्गों द्वारा पहुँचकर उनके किनरों, जल प्रवाहों,अपरदन कार्यो तथा मोड़ों आदि का तथा इनसे परिवर्तित भौतिक स्वरूपों का विस्तृत सर्वेक्षण किया गया । इस कार्य में धरातलीय पत्रकों का सहयोग विशेष उल्लेखनीय था । कई स्थानों पर रेखाचित्रों द्वारा भौतिक विवरणों का आरेखण भी किया गया ।

इस प्रकार राजस्व विभाग के कार्यालयों से प्राप्त आंकड़ों तथा निजी निरीक्षणों पर आधारित तथ्यों की सहायता से भूमि के अकृषित उपयोगों जैसे - आवासों से संलग्न भूमि, जलाशय,

बंजर (परती एवं कृषि अनुपयोगी भूमि) बाग खरपतवार भरे क्षेत्र आदि का तथा कृषित भूमि का विवेचनात्मक अध्ययन किया गया । इन सभी तथ्यों और आंकड़ों को मानचित्रों की सहायता से सावधानी पूर्वक विश्लेषित किया गया । भूमि उपयोग और भूमि दुरूपयोग तथा भूमि का अधिक लाभदायक और संतुलित प्रयोग समझने के लिए उपर्युक्त सभी तथ्यों के विषय में स्थानीय कृषकों तथा अन्य लोगों से विचार-विमर्श भी किये गए ।

स्थानीय लोगों से निर्मित प्रश्नावली के आधार पर प्रत्यक्ष रूप से पूछ-ताछ की गयी (जैसे - सरपंच, मुखिया तथा जमींदारों आदि) जिससे भूमि उपयोग की वर्तमान स्थिति समझने के लिए ऐतिहासिक सांस्कृतिक आर्थिक और भौगोलिक तथ्यों के विषय में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया गया । इस क्षेत्र के भूमिगत जल संसाधन का ज्ञान कई गांवों में घूमकर किये गये निरीक्षणों द्वारा प्राप्त किया गया । यह कार्य पूर्व-पश्चिम एवं उत्तर-दक्षिण दिशा में लिये गये चयनित आधारो के माध्यम से सम्पादित किया गया । बाढ़ से प्रभावित भूमि का विवरण सर्वेक्षणों द्वारा प्राप्त किया गया जिसका तत्सम्बन्धी पूर्व अभिलेखों से तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया ।

(3) तृतीय उपक्रम :

इस उपक्रम में प्रतिदर्श गांवों का विशेष अध्ययन किया गया है । उनका गहन भूमि उपयोग सर्वेक्षण किया गया जिसमें कृष्येत्तर भूमि संसाधनों का निरीक्षण भी सम्मिलित था । इस कार्य को सम्पादित करने के लिए शोधकर्ता ने जुलाई 1992 से जून 1993 तक के प्रत्येक मौसमी फसलों की अवधि में (बोने से काटने तक के उपक्रम में) प्रत्येक प्रतिदर्श गाँव का लगभग तीन-चार बार निरीक्षण किया । -

इनमें से कुछ गांवों का अन्तिम अवलोकन मई के प्रथम सप्ताह में किया गया। इन गांवों के आकड़ों का संकलन प्रश्नावली के आधार पर तथा राजस्व अभिलेखों के माध्यम से किया गया और उनका अध्ययन क्षेत्र में किए गये सत्यापन के उपरान्त सावधानी पूर्वक किया गया ।

इन गांवों में बगीचों झाडियों (खरपतवार आदि) बंजर (नई परती एवं पुरानी परती) भूमि आदि के विवरण भी उन्हीं के माध्यमों से प्राप्त किये गये हैं, और उनका विश्लेषण भूकर मानचित्रों की सहायता से किया गया है । इन कार्यों का विस्तृत उल्लेख चयनित गांवों के भूमि उपयोग सम्बन्धी अध्याय में किया गया है ।

कृषि क्षेत्रों का विस्तृत सर्वेक्षण मुख्यत. प्रतिदर्श गांवों के कृषि क्षेत्रों तथा उनके फसल चक्रों के सम्बन्ध में) प्रत्येक प्रतिदर्श गांव के सर्वेक्षण एवं निरीक्षण के समय किया गया था । इनका विशेष विवरण शोध प्रबन्ध में संदर्भित स्थानों पर दिया गया है । इन सर्वेक्षणों के अवसर पर प्रतिदर्श गांवों के कुछ किसानों से साक्षात्कार भी किया गया है जिनसे भूमि के उपयोग और दुरूपयोग के कारणों का ज्ञान प्राप्त करने में सहायता मिली है जिससे तथ्यपरक मानचित्रों को तैयार करने में भी सहायता मिली है । शोधकर्ता कृषकों द्वारा प्राप्त सूचना पर ही पूर्णत: अवलम्बित नहीं रहा है, बल्कि उसने अपने सर्वेक्षणों में कृषिगत भूमि के उपयोगों का भी व्यक्तिगत रूप से निरीक्षण किया है और इस प्रकार अपने विचारों को परिपुष्ट किया ।

प्रतिदर्श गांवों के कृषकों से जो जानकारी कृषि विधियों के सम्बन्ध में प्राप्त की गयी थी , उनमें जुताई, खाद, बुआई, गुड़ाई, बीज, सिंचाई, कटाई, मडाई आदि की सूचनाएँ विशेष उल्लेखनीय है ।

उपर्युक्त सर्वेक्षणों से यह भली-भांति ज्ञात होता है कि इस प्रखण्ड में बाढ़, मृदाक्षरण एवं अल्प क्षेत्र पर ऊसर की समस्याएं हैं । मृदा-क्षरण को रोकने के लिए इस क्षेत्र में जनचेतना उत्तरोत्तर - जागृत हो रही है । जनता में मृदा को अधिक बुद्धिमत्ता पूर्वक बचाने के लिए जागरूकता बढती जा रही है । इस शोध प्रबन्ध में बाढ़ एवं मृदाक्षरण की दृष्टि से रक्सा गांव को चयनित गांव के रूप में विशेष अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । यह गांव कारी कोशी नदी के अपवाह क्षेत्र में स्थित है । बाढ़ एवं भूक्षरण की समस्याओं से यह गांव प्रति वर्ष संकटमय रूप से प्रभावित हो जाता है । मृदा क्षारीयता भी इस क्षेत्र की एक बड़ी समस्या है । इससे सम्बन्धित क्षेत्रों में भूमि उपयोग की दूसरी बड़ी समस्या है । नहरों से सिंचित क्षेत्र में कई भागों

में भूमि पर मृदाक्षारता की मात्रा तीव्र गति से बढ़ रही है जिसके फलस्वरूप खेती का कार्य शिथिल पड़ता जा रहा है । ऐसी भूमि कालान्तर में ऊसर क्षेत्र के रूप में परिवर्तित हो जाती है . इस क्षेत्र में ऊसर भूमि छोटे - छोटे भूखण्डों के रूप में विशेषकर इस प्रखण्ड के दक्षिणी पशिचमी भाग विखरी पडी हुई है । ऊसर क्षेत्र का कुछ भाग उत्तर में पायी जाती थी किन्तु विशेष प्रयत्नों से अब धीरे-धीरे उसकी क्षारीयता प्राय समाप्त हो गई है । दक्षिणी एवं उत्तरी पूर्वी का क्षेत्र विशेषकर बरसात के मौसम में जलप्लावित हो जाता है क्योंकि इसका क्षेत्र निम्न पडता है इनमें मुख्य रूप से रकसा प्रतिदर्श गांव है ।

इस प्रकार विभिन्न सर्वेक्षण अभियानों के अन्तर्गत इस क्षेत्र में भूमि-उपयोग को प्रभावित करने वाले मुख्य कारकों से सबंधित सभी सूचनाएं संग्रहीत करने का प्रयास किया गया है । भूमि उपयोग का प्रचलित विधियों और अतीत एवं वर्तमान भूमि उपयोग में पाये जाने वाले क्षेत्रों का भी पर्याप्त ज्ञान किया गया है । भूमि उपयोग में कालिक परिवर्तनों के अध्ययन हेतु संपूर्ण क्षेत्र (प्रखण्ड) का एवं चयनकृत गाँवों का वर्ष 1951-1952 तथा 1992-93 (किसी - किसी दशा में 1991-92)में विशेष तुलनात्मक विवरण प्राप्त किया गया है ग्राम स्तर पर भूमि उपयोग संबंधी एवं शस्य स्वरूप संबंधी 1951-1952 एवं 1992-93 वर्षों के तथ्यों का माप चित्रण किया गया है । परिवर्तनों की व्याख्या हेतु 1951-52 तथा 1992-93 के आंकड़ों को आधार मानकर 40 (चालीस) वर्ष की अवधि के ऐसे ऑकडों से तुलना कर विशेषणात्मक परीक्षण किया गया है । इस प्रकार के परीक्षणों से कई महत्वपूर्ण परिवर्तनों का बोध हुआ है जो इस शोध प्रबन्ध के यथावश्यक स्थानों पर दर्शाये गये हैं ।

(ब) सर्वेक्षण अवधि :

भूमि-उपयोग संबंधी विवरणों को प्राप्त करने के लिए पूरे एक वर्ष की अवधि का चक्र ध्यान में रखा गया है । यह अवधि इस उद्देश्य से ली गई है ताकि मौसमी परिवर्तनों के फलस्वरूप भूमि उपयोग में होने वाले अंतरों का सही-सही ज्ञान प्राप्त किया जा सके । ऐसी कोई विधि जो एक वर्ष से कम की अवधि के आधार पर कोई भी निष्कर्ष प्राप्त करना चाहते हैं , वह अवश्य ही तथ्यात्मक विश्लेषण को प्रस्तुत करने में असमर्थ हो जाती है । इसीलिए कम से कम पूरे एक वर्ष की अवधि ही ग्रामीण भूमि उपयोग से संबंधित आँकड़ों का

संकलन करने के लिए एवं उन पर आधारित तथ्यों का विश्लेषण करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है । बिहार के इस भाग में ग्रामीण भूमि उपयोग से सम्बन्धित अनेक आधारभूत तथ्य ऐसे है जो भूमि उपयोग के अध्ययनों की तकनीकी पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव डालते है ।

इस शोध क्षेत्र में भूमि सर्वेक्षण का कार्य नवम्बर 1991 से जुलाई 1993 के बीच सम्पन्न हुआ है । यह अवधि दो कृषि वर्षो की है । 1991 के सितम्बर माह के अन्तिम सप्ताह में जबकि ग्रामीण भूदृश्यावली में खरीफ की कटाई के बाद लगभग पूर्णतः नग्नता में आ गई थी, भूमि के भौतिक स्वरूप का सर्वेक्षण प्रारम्भ किया गया जो बाढ़ के वर्षो में पूरा किया गया । फसलों से सम्बन्धित आँकड़ों के वितरण भी बीच-बीच में प्राप्त किये गये और तत्सम्बन्धी सर्वेक्षण भी किये गये । इस प्रदेश के इस भाग में भूमि उपयोग के चक्र का सही और पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए एवं तत्सम्बन्धित विभिन्न कार्य-कलापों का पूर्ण क्रम समन्वित करने की दृष्टि से विभिन्न फसलों के मौसमों में निरीक्षण किया गया था ।

प्रतिदर्श गांवों के सन्दर्भ में दो वर्ष की अवधि में इस प्रकार कई बार निरीक्षण किये गये । शोध कर्ता को प्रत्येक तीन महीने बाद ऐसे निरीक्षण करने पड़े थे, जिससे वर्ष के समस्त मौसमों में विशिष्ट फसलों और उनके कृषि कर्मो का तथ्यात्मक अध्ययन किया जा सके । कुछ फसलें ऐसी भी है जो तीन महीने से कम की अवधि तक ही खेतों में रहती है उनकी जानकारी के लिए भी प्रतिदर्श गांवों का निरीक्षण तीन महीने में कम से कम एक बार करना आवश्यक हो गया था, जिसे तत्परता पूर्वक किया गया । विवरणों को प्राप्त करने में कम से कम त्रुटि हो इसका ध्यान रखा गया । सर्वेक्षण वर्षो में संयोग से एक सामान्य वर्ष का जिस वर्ष मौसमी दशाएँ तथा कृषि उत्पादन सम्बन्धी दशाएं मूलतः सामान्य थी । कृषि उत्पादन तथा पशुओं से प्राप्त उत्पादन भी सामान्य थे । साथ ही वर्षा की मात्रा भी सामान्य रही । इन दो वर्षो में संकलित तथ्य तथा परिलक्षित दशाएँ भूमि उपयोग का विशिष्ट चित्र प्रस्तुत करने में बहुत अधिक सहायक हुई है । प्रतिदर्श गांवों में भूमि-उपयोग के वार्षिक चक्र से सम्बन्धित अध्ययनों के लिए पूरे दो वर्ष की सर्वेक्षण अवधि ली गयी थी जिससे उस चक्र का पूरा ज्ञान मिल सके । ऐसा इसलिए भी आवश्यक था जिससे परिवर्तनशील दशाओं में होने वाले ग्रामीणी भूमि उपयोग के विभिन्न पहलुओं का सही-सही प्रारूप प्राप्त किया जा सके । प्रतिदर्श

गांवों के संदर्भ में फसल चक्र की जानकारी के लिए एक मुख्य कृषि वर्ष तथा सह-कृषि वर्षों का विधिवत् अध्ययन किया गया जिनसे कई पूरक तथ्यों का बोध होता है ।

भूमि उपयोग निरीक्षणों के लिए समुचित समय चुना जाना आवश्यक है । भू-दृश्यावली का अवलोकन करने के लिए फसलों की बुआई समाप्त होने पर सर्वेक्षण कार्य प्रारम्भ करना चाहिए जिससे सभी भू-दृश्य स्पष्ट रूप से दिखाई दे सके । फसल सम्बन्धी निरीक्षण के लिए जब तक फसल खेत में लगी है तब तक ही निरीक्षण का कार्य करना चाहिए । इस प्रकार के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर ही कृषि भूमि उपयोग सम्बन्धी सर्वेक्षण कार्य जुताई, बुआई, गुड़ाई, कटाई, मड़ाई तथा ओसाई आदि अवसरों पर सम्पन्न किया गया था । इन सन्दर्भो में कृषकों से आवश्यक सूचनाएं भी प्राप्त की गयी थी जिनसे तथ्यों की शुद्धता की जांच करने में बड़ी सहायता मिली है ।

(स) प्रतिदर्श गांवों का चयन :

भूमि उपयोग सम्बन्धी अध्ययनों में शोध कर्ता को या तो सर्वव्यापी विधि अपनानी पड़ती है जिसमें किसी विशेष क्षेत्र की सभी इकाईयों का सर्वेक्षण किया जाता है । जो अपने आप में एक विस्तृत कार्य है अथवा उसे सर्वेक्षण की प्रतिदर्श विधि अपनानी पड़ती है जिसमें कुछ प्रतिनिधि इकाईयों के चयन के आधार पर ही सर्वेक्षण का कार्य पूरा किया जाता है और उस क्षेत्र के विस्तृत सर्वेक्षण के लिए उपयुक्त मानक सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया जाता है । इनसे प्राप्त परिणामों को सम्पूर्ण क्षेत्र के लिए सही और संतोषप्रद मान लिया जाता है। वास्तव में यह प्रतिनिधित्व विधि है । सम्पूर्ण क्षेत्र की भूमि उपयोग का सर्वव्यापी सर्वेक्षण सम्पन्न करने के लिए प्रत्येक खेत का कम से कम तीन से चार बार तक निरीक्षण करना अपेक्षित होता है जिससे वर्ष में प्रत्येक क्षेत्र की सम्पूर्ण फसल चक्र को अध्ययन करने की सुविधा मिल सके । ऐसा करना अकेले शोधकर्ता के लिए सम्भव नहीं है क्योंकि इसमें बहुत अधिक समय लगता है । इसीलिए त्याज्य समझा जाता है । सम्पूर्ण क्षेत्र सर्वव्यापी सर्वेक्षण पूरा करने का ऐसा कोई दूसरा संतोषप्रद विकल्प भी नहीं ज्ञात हो सका है जिसमें प्रत्येक गांव का मौलिक स्वरूप प्रस्तुत किया जा सके । प्रत्येक गांव की अपनी निजी समस्याएं होती है, जिनका पृथक रूप में अध्ययन करना चाहिए , परन्तु जब समय और श्रम को ध्यान में

रखा जाता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि यादृच्छिक प्रतिदर्श विधि का कोई दूसरा संतोषप्रद विकल्प नहीं है । किसी एक शोधकर्ता की परिस्थितियाँ ऐसी होती है जिनसे वह समय श्रम और द्रव्य व्यय की सीमाओं से बंध जाता है । अतः उसे प्रतिदर्श विधि जैसी ही आवश्यकता है जिसमें वह प्रतिदर्श क्षेत्रों के आंकड़ों के अध्ययन द्वारा ही किसी विस्तृत क्षेत्रीय इकाई के लिए सामन्यीकरण प्रस्तुत करता है परन्तु ऐसा करने से अध्ययन की व्यापकता, गहनता और विश्वसनीयता बहुत कुछ क्षीण हो जाती है । फिर भी यादृच्छिक प्रतिदर्श - विधि या इससे मिलती-जुलती अन्य विधि कई विज्ञानों में व्यापक रूप में प्रयोग में लायी जा रही है । अत भूगोल के अध्ययन में भी प्रतिदर्श विधि विस्तृत पैमाने पर अपनायी जाने लगी है । इस विधि में प्रतिदर्श भाग किसी सम्पूर्ण क्षेत्र का चुना हुआ छोटा अंश मात्र होता है । उसे समुचित नियमों के आधार पर सावधानी से चुना जाता है । वह सम्पूर्ण क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है तथा उसके विवेचन के लिए मान्य और पर्याप्त समझा जाता है । इस अध्ययन में प्रतिदर्श विधि निम्न रूप में प्रयोग में लायी गयी है -

(अ) प्रतिदर्श विधि की चयन प्रक्रिया :

प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण के लिए जो प्रतिदर्श गाँव चुने गये है उन्हें मुख्यत. निम्न आधार पर लिया गया है -

1. प्रतिदर्श गांवों का चयन सम्पूर्ण क्षेत्र में भौतिक पक्षों एवं आर्थिक उपक्रमों को ध्यान मे रखकर किया गया है । इनमें तत्सम्बन्धी स्तरीकरण भी निहित है ।

2. प्रतिदर्श गाँव सम्पूर्ण क्षेत्र के सन्दर्भ में विभिन्न पक्षों के सन्तुलन को ध्यान में रखकर चुने गए हैं ।

(ब) चयन की प्रक्रिया के पूर्व प्रारम्भिक जाँच ·

प्रतिदर्श विधि को अपनाने से पूर्व किए जाने वाले निरीक्षणों में क्षेत्र में प्राप्त होने वाले सभी सम्भव तथ्यों एवं आंकड़ों के आधार पर भूमिगत जल स्तर, अपवाह, मृदा, प्राकृतिक, वनस्पति, जनसंख्या, सिंचाई, कृषित भूमि तथा अकृषित भूमि आदि का आलोचनात्मक परीक्षण किया गया है - जिसमें तथ्यों को तालिकाबद्ध करके आंकड़ों को मानचित्रित करके आवश्यकतानुसार जांच पड़ताल किया गया है । नीचे की तालिका में अध्ययन क्षेत्र में चयनित प्रतिदर्श गांवों

के प्रकार और उनकी चयन प्रविधि दर्शायी गयी है -

क्र0सं0	- प्रतिदर्श गांवों के प्रकार	- यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन विधि
1.	शुद्ध कृषित भूमि -	इसके अन्तर्गत प्रतिदर्श गाँव के रूप में 'बौरा' का चयन किया गया है । यह गाँव शुद्ध कृषित भूमि का उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है । इस गांव का कुल क्षेत्रफल 102 4 एकड है जिसका 93.69% भाग शुद्ध कृषित भूमि के अन्तर्गत आता है ।
2.	कृष्य बंजर भूमि -	वह भूमि जिस पर वर्तमान में कृषि नहीं की जाती है, परन्तु पूर्व में कृषि की जाती थी । भविष्य में कृषि के क्षेत्र में तकनीकी विकास, या उपकरणों तथा कृषि साधनों के विस्तार के फलस्वरूप ऐसी भूमि कृष्य भूमि में परिवर्तित हो सकती है । ग्राम - गोपालपुर कृष्य बंजर-भूमि का एक उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है । इस ग्राम का कुल क्षेत्रफल 342 एकड़ है, जिसका 20.64% भाग कृष्य बंजर भूमि के अन्तर्गत है । इत· इसे इस कोटि में रखा गया है ।
3.	कृषि हेतु अप्राप्य भूमि -	अध्ययन क्षेत्र के जितने भू-भागों पर आवासीय या सांस्कृतिक क्षेत्र, जल क्षेत्र का विस्तार है उसे कृषि हेतु अप्राप्य भूमि के अंतर्गत रखा गया है । कटिहार जनपद के कटिहार प्रखण्ड, जो कि अध्ययन क्षेत्र है, के अतर्गत ' कजरो ' ग्राम इस प्रकार का एक उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है । जिसका क्षेत्रफल 211 एकड़ है तथा कुल भूमि का 24.67% भाग कृषि हेतु अप्राप्य भूमि के अंतर्गत है । अतः इस गाँव को इस श्रेणी में रखा गया है ।

4. **दो फसली भूमि -** इस गाँव का चयन मुख्य रूप से रवी एवं खरीफ फसलों के अन्तर्गत दो फसली क्षेत्र के आधार पर किया गया है । प्रतिदर्श गांव के रूप में ' **शंकरपुर** ' दो फसली भूमि का उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है, क्योंकि इस गाँव का कुल क्षेत्रफल 107.63 एकड है, जिसका 90 32% भाग दो फसली भूमि के अन्तर्गत आता है ।

5. **सिंचित क्षेत्र -** इस कोटि के लिए प्रतिदर्श गाँव के रूप में **'परियाग दह'** का चयन किया गया है । मौसमी फसल रवी के अन्तर्गत सिंचित क्षेत्र का निरीक्षण किया गया जिसमें ग्राम 'परियाग दह' के शुद्ध कृषि क्षेत्र 143.79 एकड़ का 43.35% भाग सिंचित है । इस दृष्टि से ग्राम **'परियाग दह'** को इस श्रेणी में रखा गया है ।

6. **गैर आबाद गाँव -** गैर आबाद गाँव का चयन प्रखण्ड के प्रतिदर्श गैर आबाद गांवों के फसल समिश्रण के आधार किया गया है । इस परीक्षण में यह पाया गया है कि जो गाँव गैर आबाद होते हैं वहां फसलों का समिश्रण प्रायः नहीं होता है या होता भी है तो कम । इस दृष्टि से ग्राम **'सहसिया'** को उपयुक्त पाया गया है ।

7. **अभ्यन्तर गाँव -** वह गाँव जो मुख्यालय से दूरस्थ स्थित हो तथा आने जाने की कोई सुविधा नहीं हो (तात्कालिक सुविधाओं से वंचित हो) ऐसे गाँव को दूरस्थ स्थित गांव के श्रेणी में आते हैं । इस गाँव के चयन में शोधकर्ता ने अपने निरीक्षणों से प्राप्त अनुभवों का भी प्रयोग किया है - इस श्रेणी में कटिहार प्रखण्ड के गाँव **"फरही"** को चुना गया है ।

8. **बाढ़ग्रस्त गाँव** - सरकारी अभिलेखों एवं व्यक्तिगत निरीक्षणों के फलस्वरूप फसलों का बाढ से क्षतिग्रस्त हो जाने के कारण बाढ प्रभावित गाँव के रूप में **'रकसा'** गाँव को चुना गया है, क्योंकि इस गाँव की खरीफ की फसल बाढ से पूर्णतया नष्ट हो जाती है ।

9. **यातायात उन्मुख गाँव** - यातायात उन्मुख प्रतिदर्श गाँव का चयन व्यापार के आधार पर किया गया है । इसका निर्धारण कटिहार से **बारसोई** जाने वाली सडक एवं रेलमार्ग के निकट स्थित गाँवों के अन्तर्गत व्यापार करने वाले व्यक्तियों के आधार पर किया गया है क्योंकि दुकाने एवं अन्य व्यापारिक कार्य कहीं अधिक होगें जहाँ यातायात की विशेष सुविधा होगी । इस दृष्टि से कटिहार प्रखण्ड के ग्राम **'खेरा'** को प्रतिदर्श के रूप में चुना गया है ।

1.9 विषय वस्तु से सम्बन्धित प्रत्यय एवं परिभाषाएँ :

इस अध्ययन क्षेत्र में विषय-वस्तु से सम्बन्धित कई प्रत्यय एवं परिभाषाएं प्रयोग में लायी गयी है । उनका परम्परागत प्रयोग निम्न प्रकार है -

(अ) ग्राम :-

ग्राम शब्द का प्रयोजन उस निश्चित भू भाग से है जो भूकर सवेक्षणों द्वारा प्रदर्शित प्राय: किसी एक केन्द्रीय और नियमित बस्ती से सम्बन्धित कृषि भूमि या सहक्रिया के प्रयोग पर निर्भर है । ऐसे प्रत्येक भू भाग का 'ग्राम' के रूप में अलग-अलग संकेतांक होता है । इनमें आबादी के स्थानों को तत्सम्बन्धी बस्ती के नाम से पुकारा जाता है । ग्राम की यह परिभाषा यूरोपीय प्रत्यय से भिन्न है । यूरोप में (मुख्य रूप से ब्रिटेन में) कृषि क्षेत्र में किसी भी बाजार को जो अंशत: औद्योगिक तथा अंशत: आवासीय केन्द्र होता है , गाँव कहते हैं । •यह कस्बे से छोटा होता है । गाँव से बाहर कृषि भूमि पर खेती का कार्य करने वाले लोग खेतों में अपने छोटे-छोटे घर बनाकर बस जाते है

तथा बिखरे होते हैं और इन्हें 'कृषि झोपड़ियों' की संज्ञा दी जाती है ।[55]

इस अध्ययन क्षेत्र में भारतीय गांव का प्रत्यय प्रयुक्त हुआ है जिसमें गांव निर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत एक सुसंगणित कृषि क्षेत्र है। इस प्रखण्ड में प्रतिदर्श गांवों का विस्तार 36.42 एकड़ से लेकर 408.95 एकड़ तक पाया जाता है। यहां यूरोप जैसे कृषि कुटीर अधिवास की भांति गांव खेतों में बिखरे हुए नहीं होते बल्कि वे एक सुसंगठित इकाई के रूप में प्राय एक ही स्थान पर सघन रूप में बसे होते हैं जिनमें भू-स्वामी और कृषि श्रमिक भी साथ-साथ उसी अधिवास में निवास करते हैं। भारतीय जनगणना की व्याख्या के अनुसार 'गांव' •भवन सर्वेक्षणों द्वारा निर्धारित सीमाओं वाला एक भू-भाग है। कुछ घरों के एक समूह को स्थानीय नाम दे दिया जाता है। उसे गांव कहा जाता है। लेकिन सर्वदा ऐसा नहीं होता।[56] क्योंकि कभी-कभी गांव के साथ पुरवे भी मिले होते हैं। ऊपर की परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि गांव एक सामाजिक इकाई या आबादी सम्बन्धी इकाई के लिए प्रयुक्त नहीं होता। यह एक ऐसी इकाई को व्यक्त करता है जो प्रधानत· राजस्व या प्रशासनिक इकाई है। यद्यपि यह सच है कि साधारणतया गांव आबादी की एक ऐसी इकाई को कहते हैं जिसमें कुछ घरों का एक या अनेक समूह कृषिगत भूमि के बीच में स्थित होता है और जो निश्चित सीमाओं को व्यक्त करता है किन्तु कभी-कभी ऐसा नहीं भी होता है। गांव अपने आकार के समरूप महत्वपूर्ण इकाई को तो व्यक्त करता ही है, साथ ही साथ वह अपना भिन्न अस्तित्व की प्रस्तुत करता है। गांव का एक राजस्व मौजा[x] होता है। इस प्रखण्ड में गांवों की कुल संख्या 126 है जिसमें आबाद गांवों की संख्या 113 तथा गैर आबाद गांवों की संख्या 13 है।[57]

(ब) टोला (ग्राम खण्ड)

कुछ घरों का एक समूह जो राजस्व मौजे की आबादी या बस्ती का एक अंश होता है, 'टोला' कहलाता है। कभी-कभी टोला मुख्य गांव से कुछ दूर पर होते हैं। एक से अधिक टोले एक ही राजस्व मौजे में मुख्य गांव से कुछ दूरी पर पाये जाते हैं, उनमें से केन्द्रीय और प्रारम्भिक बस्ती को मुख्य गांव कहते हैं और उसके निकट की बस्तियों को टोला कहते हैं। जब मुख्य गांव बड़ा होता है तो उसके भिन्न-भिन्न भागों को भी टोले कहते हैं। कभी-

---

x 'मौजा' उर्दू का शब्द है जो एक गांव का भाग होता है। इसका अब भी प्रयोग किया जाता है।

कभी टोले से उसी गाव में भिन्न-भिन्न जातियों के अधिवास का भी बोध होता है।

(स) **खेत (उप सर्वेक्षण क्षेत्र या उप कृषि क्षेत्र)**

किसी भी गांव में सम्पूर्ण क्षेत्र छोटे-छोटे भू-खण्डों में विभक्त रहते हैं और इसका संदर्भ - राजस्व अभिलेखों जैसे खसरा एव खतौनी में और तत्सम्बन्धी मानचित्रों में अंकित रहता है। प्रत्येक खेत का अपना एक संकेतांक होता है, जिसको खसरों का क्षेत्रांक का सर्वेक्षण क्षेत्रांक कहते हैं।

(द) **अधिकृत भूमि (भूमि पर कानूनी या व्यावहारिक अधिकारी)**

सम्पूर्ण भूमि चाहे वह कृषि योग्य हो या न हो एक या एक से अधिक लोगों द्वारा प्रयोग में लायी जाती है या उसके अधिकार में होती है। कभी-कभी वह सरकारी या संस्थाओं के अधिकार में या प्रयोग में भी होती है। इन सभी प्रकार के अधिकारों या व्यावहारिक प्रयोगों का यथा सम्भव शीर्षक के अनुसार व्यक्तियों, संस्थाओं या सरकार के नाम से अभिलेख रखा जाता है। ऐसे अभिलेखों मे भूमि का एक चप्पा हो सकता है जो एक ही गांव में स्थित हो या भूमि के बहुत से चप्पे (टुकड़े) भी हो सकते हैं जो एक या अनेक गांवों में स्थित हो। आर्थिक या प्रशासनिक दृष्टि से उनका प्रबन्ध जिलाधिकारी के अन्तर्गत आता है। भूमि की कानूनी और व्यावहारिक अधिकार के अनुसार तीन प्रकारों में विभक्त किया जाता है- जो निम्न हैं:-

1. स्वामित्व प्रधान भूमि
2. उपयोग प्रधान भूमि
3. व्यावहारिक प्रयोग हेतु प्रबन्धाधिकरण द्वारा या अन्य स्रोतों द्वारा पट्टे पर दी गयी भूमि ,

यह ध्यान देने योग्य बात है कि प्रयोग में आने वाले कुछ खेत या चप्पे कृषि कार्य में नहीं लाये जाते, बल्कि वे अन्य कार्यों में प्रयुक्त होते हैं।

xxxxxxxxx

संदर्भ-सूचिका (REFERENCES)

1. **दत्त, ज्ञानेन्द्र कुमार** : भूमि उपयोग-मूल्यांकन एवं मानचित्रण राष्ट्रीय एटलस एवं थिमैटिक मानचित्रण संगठन- कलकत्ता 1988, पृ0. 1

2. **अग्निहोत्री एन0 के0 एवं अग्निहोत्री सुनीता** - भूमि उपयोग मानचित्रण, राष्ट्रीय एटलस एवं थिमैटिक मानचित्रण संगठन - कलकत्ता 1986, पृ0 1

3. उपर्युक्त पृ0 1

4. **गौरी शंकर,** भूमि उपयोग - मूल्यांकन एवं मानचित्रण राष्ट्रीय एटलस एवं थिमैटिक मानचित्रण संगठन, कलकत्ता 1988, पृ0 44.

5. **मिश्र सूर्यमणि** - भूमि उपयोग - मूल्यांकन एवं मानचित्रण राष्ट्रीय एटलस एवं थिमैटिक मानचित्रण ' संगठन, कलकत्ता 1988, पृ0 19

6. ***Sharma, S.C.*** *: Land utilization in Sadabad Tahsil (Mathura) U.P., India, Unpublished Ph.D. Thesis, Agra University 1966, p.5.*

7. **सिंह, बी0एन0** - देवरिया तहसील में कृषि भूमि उपयोग (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध) 1984, पृ0 1.

8. ***sharma, S.C.,*** *p.6.*

9. ***Stamp, L.D.*** *: The land of Britain : Its use and Misuse, 1962, p.426.*

10. ***Chatterjee, S.P.*** *: Land use survey in India, Proceedings of International Geography Seminar, Aligarh, India, 1956, Chatterjee, S.P. : Land use Survey in India, proceedings of Summer school in Geography, Simala India, 1962.*

11. ***Sharma, S.C.*** *: Land utilization in Sadabad Tahsil (Mathura) U.P., India, Unpublished Ph.D. Thesis, Agra University 1966, p.7.*

12. *Ibid, p.8.*

13. *Ibid, p.9.*

14. *Ibid, p.9.*

15. **Chauhan, D.S.** : *Studies in utilization of Agricultural land, Agrawal and Compeny, Agra, 1966, pp. 22-24.*

16. **Wood, H.A.** : *A Classification of Agricultural land use for Development planning, International Geog. (22nd I.G.U. Canada) Uni. of Toranto Press 1972, p.1106.*

17. **Vanzetti, C.** : *Land use and Natural vegetation in International Geography, Edited by W. Peter Adems and Fredrick, M. Halleiver, Toranto University 1972, pp. 1105 - 1106.*

18. **सिह, ब्रजभूषण** : कृषि भूगोल, तारा पब्लिकेशन, वाराणसी 1979, पृ0 105

19. *"Land use is the actual and specific use to which the land surface is put in terms of inherent land use characteresties. J.W. Fox, 1956.*

20. **Barlowe, R. and Johnson,** *V.W. Land Problems and Politicies, MC Graw Hill Book Company, Inc. New York, 1954, p. 99.*

21. **Kariel, B.G. and Kariel, P.E.:** *Explorations in Social Geog. Addision welsley Publishing Comp. 1972. p.172.*

22. **सिंह, ब्रजभूषण** : कृषि भूगोल पृ0 105.

23. **Sharma, S.C.** *"Land utilization in Sadabad Tahsil (Mathura) U.P. India, 1966. p.11.*

24. *Ibid - p.11.*

25. *Ibid - p. 12.*

26. **Marsh, G.P.** *: Man and Nature, Physical Geography As Modified, by Human Action New York, 1864.*

27. **Sauer, C.O.,** *Mopping. The Utilization of Land Geographical Recieve, Vol 4, 1919. New York.*

28. **Jones, W.D.,** *and Finch, V.C. Detailed Field Mapping of American Geographer, Vol. 15, 1925 nemmea Polis.*

29. **Stamp, L.D.,** *The land of Britain : its use and Misuse, 1962, p.21.*

30. **Buck J.L.:** *Land utilization in china, Nanking University Press, 1937, pp. 7-8.*

31. *A World Land use survey, Geographical Journal, Land on 1950, Vol C XV, pp. 223 - 226.*

32. *The National survey, Report No.3, Tables with notes on the Third Round August - Nov. 1951, submitted to the Govt. of India in Aug. 1953 and published in March 1954.*

33. *The standing technical sub-committee All India Soil Land use survey, Central Soil conservation Board, Soil surruy Manual India Agricultural Research Institute, New Delhi, 1960.*

34. **Chatterjee, S.P.** *: Field years of science in India, Indian Science Congress Association, Culcutta, 1963. p.145.*

35. **Chatterjee, S.P.** : *Land utilization ın the District of 24 Parganas, West Bengal, B.C. Law, Part 2, Calcutta, 1945.*

Chatterjee, S.P. : *Land utilızation survey of Howrah District, Geographical Review of India, 1954, 14(3).*

36. **Prakash Rao, V.L.S.** : *Soil Survey and Land use Analysis Indıan Geographical Journal 1947, 22(3).*

Prakash Rao, V.L.S. : *Land use Survey in India- Its Scops and Problems, Proceeding of International Geography Seminar India, 1956.*

37. **Bhardwaj, O.P.** : *Problems of Soil Erosion in East Jullunder Doab (Punjab) 1960, N.G.J.9. pp. 159-175.*

Bhardwaj O.P. : *Land use in the low land of beas in the Bist Jullunder Doab, 1961, N. G.J.9. Vol 4, pp.257-68.*

Bhardwaj, O.P. : *Land use in the low land of sutlaj in the Bist Jullunder Doab: Sample studies 1964 X.1 pp. 1-25.*

38. **Shafi, M:** *Land utilization in Eastern Uttar Pradesh, Aligarh, 1960.*

39. **Shafi M.** : *measurment of Agricultural Efficiency in Uttar Pradesh, Economic Geography 1960. Vol 36(4).*

Shafi, M. : *Agricultural Efficiency in Relation to Land use survey in Uttar Pradesh, Geographical outlook 1962, Vol. 3(1).*

40. **Bhatia, S.S.** : Pattern of Crop concentration and Diversification of in India, Economic Geogeraphy 1965, Vol, 44 pp. 39 - 56.

41. **Singh, Jasbir,** : "Spatial Temporal Development in land use Efficiency in Haryana state", Geographical Reveiw of India, Culcutta, 1972, Vol. pp. 312 - 326.

42. **Singh, Jasbir,** : A New Technique of Measuring Agricultureal Productivity in Haryana (India), The Geographer, 1952, Vol -19, pp. 14 - 33.

43. **Singh, B.B.** : "Land use Efficiency, stage and optimum land use." Uttar Bharat Bhoogol Patrika, Gorakhpur, 1971, Vol-7(2), pp. 85 - 101.

44. **Tyagi, B.S.** : "Agricultural Intensity in chunar Tahasil, Distt. Mirzapur, U.P. N.G.J.I.of India, 1972, Vol 18(1), pp. 42 - 48.

45. **Singh, Harpal** : "Crop Combination Regions in Malwa Tract of Punjab". Deccan Geographer, 1965, Vol.- 8(1) pp. 21 - 30.

46. **Ray, B.K.** : Crop Association and changing pattern of Crops in Ganga - Ghoghra Doab East N.G.J.I., 1967, Vol-13(4), pp. 144 - 207.

47. **Tripathi V.B. and Agrawal, V.** : Changing pattern of Crop Land use in lower Ganga Yamuna Doab,, The Geographer 1968, Vol-15, pp. 128 - 140.

48. **Sharma, T.C.,** : "Pattern of Crop land use in Uttar Pradesh". The Deccan Geographer 1972, Vol -34, pp. 46 -60.

49. **Nitya Nand,** : "Crop Combination RegionS in Rajasthan." Geographical Review of India 1972, Vol. -34 pp. 46 - 60.

50. **सिंह बी0 एन0** ,: देवरिया तहसील मे कृषि भूमि उपयोग (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध) 1984, पृ0 पृ0 316 - 322.

51. **Bhatia, S.S.** : "Pattern of Crop Concentration and Diversification in India." Economic Geography 1965, Vol, 41 pp. 39 - 56.

52. **Hussain Majid,** : "Pattern of Crop concentration in Uttar Pradesh," Geog. Review of India 1970, Vol. 32(3) pp. 169 - 185.

53. **Singh Jasbir,** : "Agricultural Atlas of India." KuruKhetra, 1974.

54. **Tiwari, P.S.,** : " Agricultural Atlas of Uttar Pradesh", 1970.

55. **Baron Meston** : The Geography of an Indian Village, Geography a quarterly Journal of the Geographical Association, Manchester, March 1955, No. 107, Vol.XX Part 1, pp. 1-2.

56. Census of Inaia, 1951, Part II a Demographic Table, p.2.

57. जनगणना पुस्तिका, जनपद कटिहार 1981.

xxxxxxxxxx

xxxxxxx
xxxxxxxxxxxx
xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

अध्याय - द्वितीय

भौतिक स्वरूप

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx
xxxxxxxxxxx
xxxxx

अध्याय - द्वितीय

भौतिक-स्वरूप

2.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :-

अध्ययन क्षेत्र बिहार राज्य के उत्तरी-पूर्वी भाग जनपद कटिहार का एक भूखण्ड है जो 3 अक्टूबर 1973 से पूर्व पूर्णिया जनपद का अनुमण्डल था । इस स्थान का नाम 'कटिहार' क्यों पड़ा ? इसकी पृष्ठभूमि में अनेक ऐतिहासिक तथ्य निहित है । इसका उत्तर तीन प्रकार से ढूढने का प्रयास किया जाता है । सर्वप्रथम कुछ लोग शिव और सती से संबंधित किवन्दती का हवाला देते है । कहा जाता है कि अपने पिता द्वारा पति की उपेक्षा से दुखित सती ने यज्ञ के हवन कुण्ड मे प्राणोत्सर्ग कर दिया और उसके शव को अपने कन्धे पर लाद शिव उद्भ्रान्त विचरण के क्रम में कटिहार के भू-भाग से होकर गुजरे थे । इस स्थान पर चूंकि सती की कटि का हार खंडित होकर गिर गया था,अत इस स्थान का नाम कटिहार पडा ।[1]

कटिहार के नाम करण का संबंध महाभारत की एक कथा से भी जोड़ा जाता है। कहते हैं कि दुर्योधन की शर्त के अनुसार पाचों पाण्डवों को बारह वर्ष का वनवास के बाद एक वर्ष अज्ञातवास करना पड़ा था । अज्ञातवास की अवधि को पाण्डवों ने मत्सराज विराट के यहाँ छद्मवेश में व्यतीत किया था । विराट पुत्री उत्तरा को नृत्य का प्रशिक्षण देने हेतु इन्द्र को अप्सरा मेनका के अभिशाप स्वरूप अर्जुन को बृहन्ला नाम धेयी नारी का रूप धारण करना पड़ा था । अपने पुरूषत्व के प्रतीक समस्त आयुधों एवं वस्त्रादि को अर्जुन ने कारी कोसी (कटिहार और सेमापुर के बीच प्रवाहित नदी) के तट पर स्थित समीवन (जिसका उल्लेख महाभारत में है तथा जिसके नाम पर आज सेमापुर है) के अन्तर्गत एक शमी वृक्ष पर अपने कटि में हार पहनकर नारी रूप धारण किया था । फलतः इस क्षेत्र एवं स्थान का नाम कटिहार पड़ा ।[2]

डा0 फ्रांसिस बुकानन एवं डा0 हण्टर महोदय का कथन है कि बहुत दिन पूर्व कोसी नदी कटिहार और कोढ़ा थाने के निकट से प्रवाहित होती हुई मनिहारी के पास गंगा नदी में मिल जाती थी । कोसी नदी के कछार पर बसने के कारण कटिहार क्षेत्र का भी नाम पहले 'कोसी कछार' या 'कोसी अरार' रहा होगा जो अप भ्रंश होकर अथवा जन-जिह्वा

LOCATION OF KATIHAR PRAKHAND
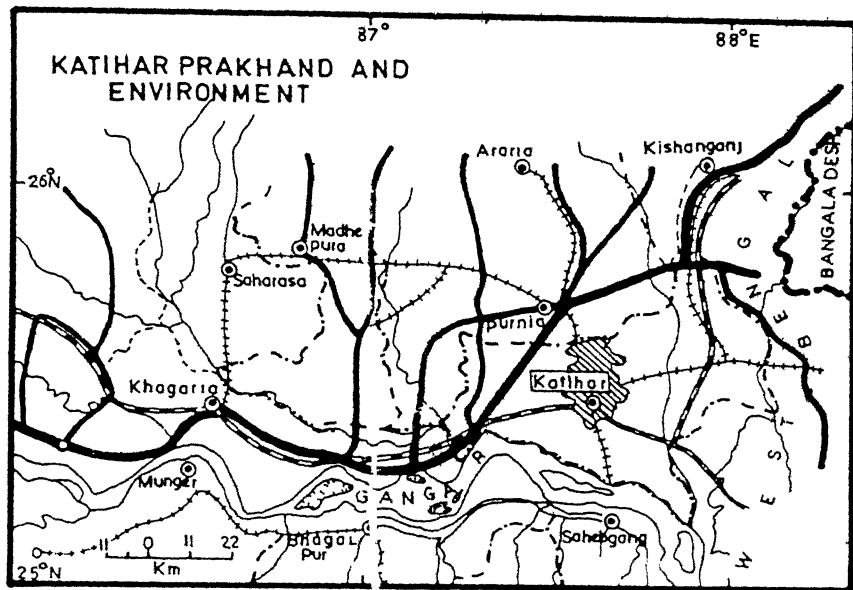
A

B

- NATIONAL BOUNDARY
- STATE BOUNDARY
- DISTRICT BOUNDARY
- PRAKHAND BOUNDARY
- NYAYA PANCHAYAT BOUNDARY
- VILLAGE BOUNDARY
- RAIL WAY LINE SINGLE
- RAIL WAY LINE DOUBLE
- NATIONAL HIGHWAY
- DISTRICT H Q
- PRAKHAN H O
- NYAYA PANCHAYAT H Q

Fig 2 1

पर घिसते-घिसते कोशियार या कशियार और पुन कटिहार के रूप में परिवर्तित हो गया होगा । ऐसे कटिहार का पहले नाम शैफगंज था । उस समय रेलवे स्टेशन नहीं था, जब रेलवे स्टेशन का नामकरण किया जाने लगा तो बगल में दीघी कटिहार गाँव के नाम पर क[illegible] स्टेशन रखा गया ।[3]

2.2 अध्ययन क्षेत्र की अवस्थिति .-

कटिहार प्रखण्ड का विस्तार 25°28' - 25°44' उत्तरी अक्षांश एवं 87°32' - [illegible] पूर्वी देशान्तरों के मध्य विस्तृत है । इससे जनपद के मध्य उत्तरी भाग मे प्रखण्ड [illegible] होता है । इसके दक्षिण पूर्व में आजमनगर, उत्तर पूर्व में कढ़वा, दक्षिण में प्राणपुर, दक्षिण पश्चिम में बरारी, उत्तरी-पश्चिमी भाग मे जनपद का कोढा प्रखण्ड तथा पूर्णिया जनपद स्थित है ।(चित्र सं0 1 एवं 2) ।

कटिहार प्रखण्ड की कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 26807 हेक्टेअर है । 1991 की जनगणना के अनुसार प्रखण्ड की कुल जनसंख्या 127683 थी जो जनपद में प्रथम जनसंकुल प्रखण्ड होने का श्रेय प्रदान करती है । प्रशासनिक दृष्टि से कटिहार प्रखण्ड के अन्तर्गत 20 न्याय पंचायत, (चन्देली भर्रा, जगन्नाथपुर, राजपारा, रामपुर, जवड़ा पहाडपुर, विजैली, डुमरिया, महमदिया, बलुआ, राजभवाड़ा, दलन, बेलवा, बौरनी, द्वाशे, सौरिया, डंड खोरा, रघैली, हफलागंज, मघेपुरा, परतेली), एक अचल पदाधिकारी एक प्रखण्ड विकास पदाधिकारी, एक क्षेत्रीय निरीक्षक, एक पचायत पर्यवेक्षक एवं 126 ग्राम सभाओं में विभाजित किया गया है। प्रखण्ड के अन्तर्गत 20 पंचायत-सेवक, 12 जनसेवक (हल्कावार) कार्यरत हैं ।

2.3 संरचना :-

अध्ययन क्षेत्र कोसी और उसकी सहायक नदियों के जलोढ़ मे निर्मित है । चटर्जी ए0 एवं राय आर0 के0 विद्वत द्वै ने अपने 1977-78 के सर्वेक्षण के आधार पर कटिहार को संरचनात्मक दृष्टि से निम्न भागों मे विभाजित किया है (सारणी 2.1) ।
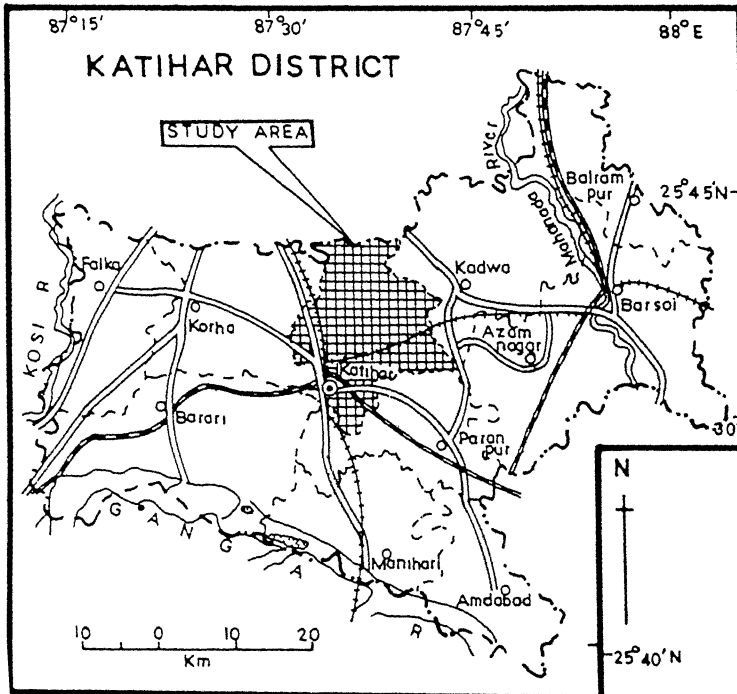
KATIHAR DISTRICT
STUDY AREA
87°15'
87°30'
87°45'
88°E
25°45'N
30'
Falka
Korha
Barari
Katihar
Kadwa
Balram pur
Barsoi
Azam nagar
Paran pur
Manihari
Amdabad
KOSI R
GANGA R
Mahananda River
Km
KATIHAR PRAKHAND
ADMINISTRATIVE DIVISIONS
N
87°35'
87°40'E
25°40'N
25°40'
35'
25°30'
PURNEA DISTT.
KADWA PRAKHAND
KORHA PRAKHAND
PRANPUR PRAKHAND
Chandeli
Para
Jagarnath pur
Mohamadia
Rampur
Balua
Daasi
Bhawara
Sauria
Raghelli
B Gorgama
Dalan
Katihar Prakhand
Belwa
Dandkhora
Vijaili
KATIHAR
Paharpur
Dumaria
Madhepura
Parfaili
Haflaganj
Km
NATIONAL BOUNDARY
STATE BOUNDARY
DISTRICT BOUNDARY
PRAKHAND BOUNDARY
NYAYA PANCHAYAT BOUNDARY
VILLAGE BOUNDARY
RAILWAY LINE SINGLE
RAILWAY LINE DOUBLE
NATIONAL HIGHWAY
DISTRICT H Q
PRAKHAND H Q
NYAYA PANCHYA H Q
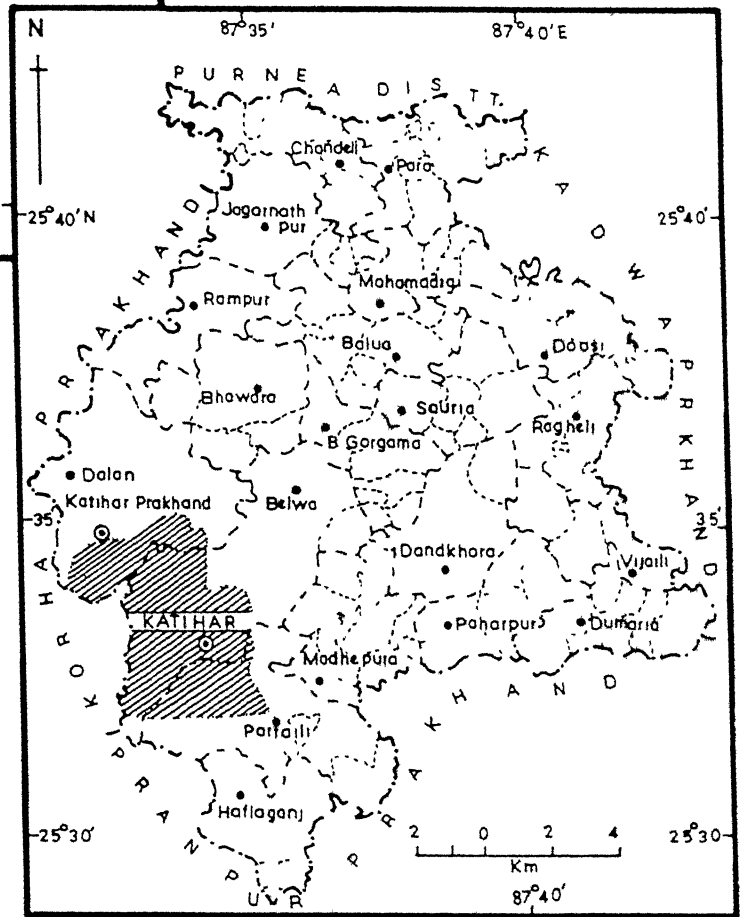
Fig. 2·2

सारणी - 2.1

Geological Time	Land System	Land Form
Recent	Active meander Bet	(i) Abandoned channel
		(ii) Aggraded/Partially aggraded channel
		(iii) Channel Bar
		(iv) Active Channel
		(v) Flood Plain
Recent to Holocene	Older Flood Plain	(i) Aggraded/Parlially Aggraded Channel
		(ii) Abandoned Channel
		(iii) Meander cut off Ox low lake
		(iv) Meander Scar
		(v) Swamp, reasonal
		(vi) Flood Plain
Holocene	Katihar Terrace	(i) Flood Plain
		(ii) Seasonal Swamp

स्रोत:-*E.R.G.S.I. Cal.D.O. No. 97/78 Survey map 1977-78*

संरचनात्मक दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र में होलोसीन युग से लेकर अद्यतन जमाव हुआ है । इन तीनों ही कालों में विभिन्न तरह की भू-आकृतियों का निर्माण हुआ है । क्षेत्र का उत्तरी भाग कोशी की सहायक नदियों द्वारा अद्यतन जमाव किया गया है । सामान्यतया इस क्षेत्र के ऊपरी भागों में मुलायम सगठन तथा मध्यम एवं निम्न धरातल वाले क्षेत्रों में कठोर

KATIHAR PRAKHAND
PHYSIOGRAPHY & DRAINAGE
PATTERN
87°35'
87°45'E
25°40'N
25°40'
35'
25°30'
40'
R. Kamala
R Monaly
R Farghi
R. Kosi dhar
R Kamala
R Gidri
100
HEIGHT IN METRES
UP >30
LOW 28 – 30
VERY LOW < 28
2 0 2 4
Km
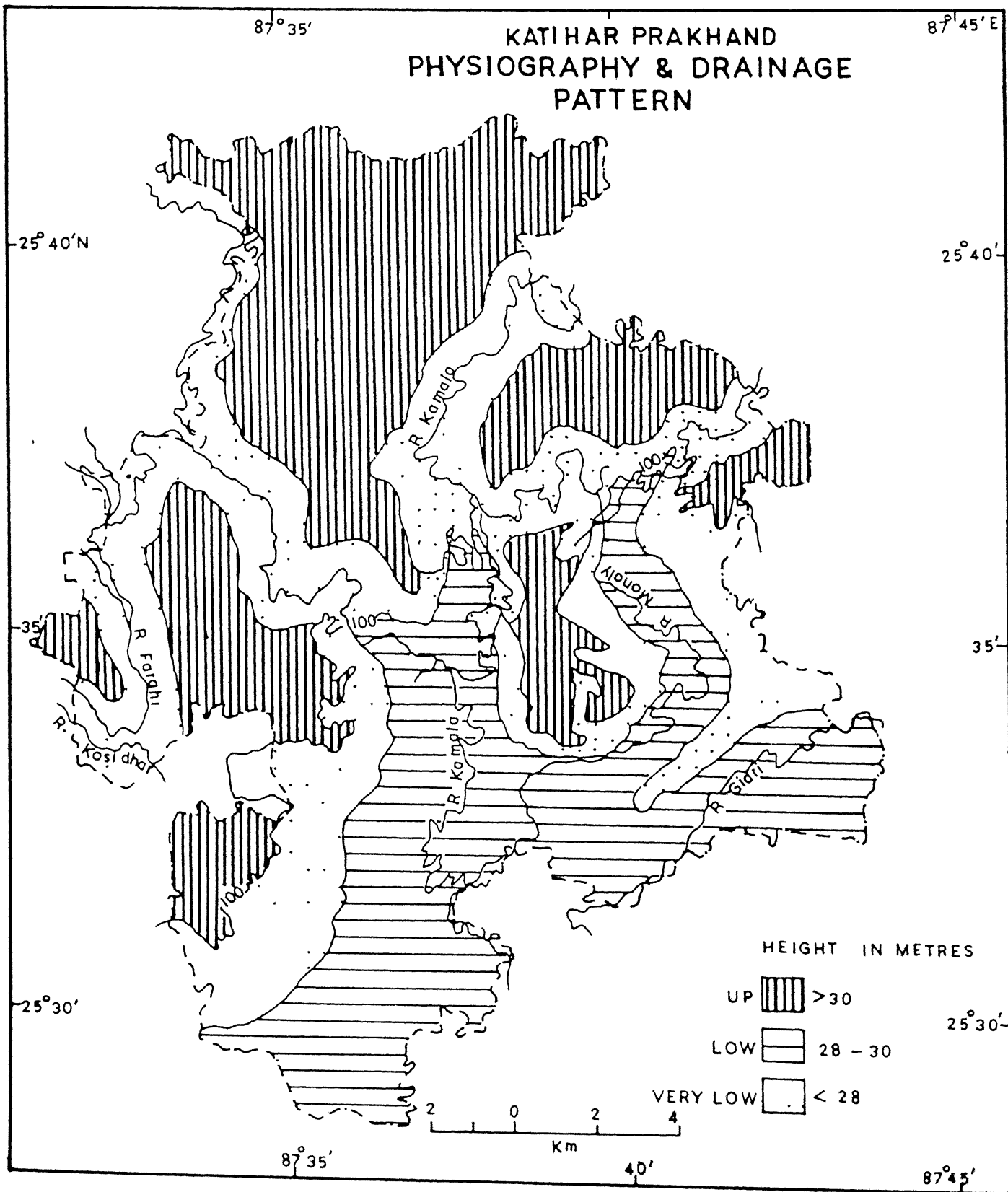
Fig 2·3

संगठन देखने को मिलता है। पूर्वी भाग में पतली पट्टी के रूप में उपरवार क्षेत्र है जहाँ पर धूस और भूरी धूस प्रकार की संरचना देखने को मिलती है । इस भाग में मध्यम से लेकर कठोर संगठन की संरचना देखने को मिलती है । यह भाग की मृदा लौह एवं मैंगनीज धातुओं से सम्पन्न है ।

दक्षिणी भाग की संरचना यत्र-तत्र उच्च भूमियों वाला है । इन उच्च भूमियों पर बाढ का जल नहीं पहुँच पाता है । इस भाग में भी हल्की से लेकर कठोर प्रकार की संरचना देखने को मिलती है ।[4]

लेकिन इस प्रखण्ड का दक्षिणी भाग निम्न धरातल वाला है और प्रत्येक वर्ष बाढ़ का जल इन भागों में पहुँच जाता है । भ्वाकृतिक दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है (चित्र सं0 3) ।

(1) ऊपरवार क्षेत्र

(2) निम्न क्षेत्र

(3) नदी बेसिन

ऊपरवार क्षेत्र का विस्तार लगभग 45% भाग में उत्तरी एव पश्चिमी भाग में है। निम्न संरचना का धरातल दक्षिणी तथा पूर्वी भाग में विस्तृत है । जबकि नदी बेसिन अध्ययन क्षेत्र में कोशी एवं महानदी की सभी सहायक नदियों के प्रवाह मार्गो में दोनों ही तरफ एक पतली पट्टी में विस्तृत हैं । इस भाग की नदियों ने क्षेत्र को भरपूर अपरदित किया है । ये नदियाँ अपने प्रवाह-मार्ग को इस भाग में हमेशा बदलती रहती है । यह अद्यतन जमाव का क्षेत्र है ।

2.4 उच्चावच :-

अध्ययन क्षेत्र नदियों द्वारा लाई गयी जलोढ़ मिट्टी द्वारा निर्मित समतल मैदान है जिसकी सागर तल से ऊचाई लगभग 31.2 मीटर है । क्षेत्र का सामान्य ढाल उत्तर से दक्षिण

तथा उत्तर-पश्चिम से दक्षिण पूरब की ओर है । अध्ययन क्षेत्र के अधिकाश न्याय-पंचायत उपरवार एव मध्यम कोटियों में है । उत्तरी भाग के पांच न्याय पंचायत निम्न धरातलीय क्षेत्र वाला है । उत्तरी भाग में पुरातन जलोढ़ मिलता है जिसके नीचे कंकड़ का जमाव मिलता है । जबकि दक्षिणी भाग के नये जलोढ़ भाग में औसत ऊँचाई लगभग 29 मीटर है जो उत्तर-पश्चिम में बढ़कर 33 मीटर हो जाती है । कारी कोसी नदी के प्रवाह मार्गो के परिवर्तन के फलस्वरूप अध्ययन क्षेत्र मे अनेक छोटी नदियाँ, छाड़न, झील तथा जलाशय निर्मित हो गए हैं जिनके कारण इस मैदान में कुछ हद तक व्यक्तिक्रम आ गया है । उच्चावचन ढाल प्रवणता, मृदा प्रकार, जल-प्रवाह आदि के आधार पर इस मैदान को दो भौतिक क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है जो निम्नवत् है -

(अ) बांगर क्षेत्र

(ब) कछारी क्षेत्र

(अ) बाँगर क्षेत्र :- बाँगर क्षेत्र को उच्चावच, ढाल प्रवणता के आधार पर पुनः दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है ।

(1) निम्न बाँगर क्षेत्र

(2) उच्च बाँगर क्षेत्र

(1) निम्न बाँगर क्षेत्र :-

अध्ययन क्षेत्र का यह भाग उत्तरी तथा पश्चिमी भाग में पूर्णिया जनपद एवं कदवा प्रखण्ड से लगा हुआ है । इसमे बलुआही मिट्टी की प्रधानता है, जो इस मैदानी भाग में अपेक्षाकृत नवीनतम जमाव के फलस्वरूप निर्मित हुई है । इस जमाव का विकास 'कोरी-कोशी' द्वारा हुआ है । यह नदी प्रधान 'कोसी-नदी' की शाखा है । इसके द्वारा बहाकर लाई गई मिट्टी से परत दर परत जमाव से निर्माण हुआ है । इस भाग में बालू का अंश अधिक है । निम्न बाढ़ों के समय यह क्षेत्र आंशिक रूप से जल प्लावित हो जाता है । इसके अन्तर्गत चन्देली

भर्रा, राजपारा, महमदीया, द्राशे, रघेली, विजैली न्याय पंचायत सम्मिलित है । नदियों के प्रवाह मार्गो के अनुसार इस क्षेत्र का सामान्य ढाल उत्तर - पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर है । इस भाग का सम्पूर्ण क्षेत्रफल 6822 हे0 है जो कटिहार प्रखण्ड के कुल क्षेत्रफल का लगभग 25.44 % है । यह क्षेत्र मक्का, बाजरा एवं कुल्थी की कृषि के लिए विशेष उपयुक्त है ।

(2) **उच्च बाँगर क्षेत्र** :-

इसका विस्तार अध्ययन क्षेत्र के मध्यवर्ती भाग में उत्तर से दक्षिण की ओर है । यह भाग अध्ययन क्षेत्र का हृदय स्थल है, जो प्राकृतिक आपदाओं (जैसे -बाढ़-सूखा आदि) से कम प्रभावित होता है । इसका विस्तार लगभग 7495 हे0 क्षेत्र पर है, जो इस प्रखण्ड के सम्पूर्ण भाग का लगभग 28% है । यह भाग प्राचीन जमाव वाली बाँगर (मटियार) मिट्टी से निर्मित हुआ है जहाँ बाढ़ का जल नहीं पहुँच पाता । यदि पहुंचता भी है तो बडी बाढ़ के समय, जिससे फसल की बर्बादी कम होती हैं । यह बहुत ही उपजाऊ क्षेत्र है , जो चावल की खेती के लिए विशेष उपयुक्त है । इसके अलावा केला, पटसन तथा रवी की फसल के लिए भी उपयुक्त है । इस क्षेत्र में जगन्नाथपुर, रामपुर, बलुआँ, राजभवाड़ा दलन तथा वेलवाँ न्याय पंचायत को सम्मिलित किया जा सकता है । इन क्षेत्रों में दो फसली फसलों का उत्पादन बड़े पैमाने पर होती है । यह धान तथा पटसन प्रधान उपजाऊ क्षेत्र है ।

(ब) कछारी क्षेत्र :- इस क्षेत्र का विस्तार अध्ययन क्षेत्र के नदी-घाटी क्षेत्र में न्याय पंचायत डुमरिया, जवड़ा पहाड़पुर, मधेपुर, परतेली एवं हफलागंज को सम्मिलित किया जा सकता है इस भाग में अपेक्षाकृत मन्द ढाल मिलता है । सामान्य ढाल उत्तर से दक्षिण है लेकिन दक्षिणी भाग का ढाल उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूरब की ओर है । यह क्षेत्र कोसी एवं उसकी सहायक नदिया कोसी धार, कमला, मोनाली, फरही नदियों द्वारा निर्मित नवीन जलोढ़ मिट्टी से बना है । इसको 'नवीन-खादर' का क्षेत्र भी कहा जा सकता है । यह अद्यतन जमाव का भू-भाग है । इसमें कई छोटी-छोटी नदी एवं नालें है । इस क्षेत्र से लगभग 40 किमी0 दक्षिण-पश्चिम में कोशी एवं गंगा नदी का संगम है जो अध्ययन क्षेत्र से बाहर है । वर्षा ऋतु में यह भाग जलमग्न हो जाता है । जिससे खरीफ की फसलें 80% से अधिक नष्ट हो जाती है ।

2.5 अपवाह तन्त्र :-

किसी भू-भाग के अपवाह का सीधा सम्बन्ध उसके धरातल के स्वरूप एवं संरचना होता है । यहाँ तक कि उस पर धरातल की ऊपरी सतह के व्यक्तिक्रमों और अधोभौमिक तलों की विशेषताओं का भी प्रभाव पड़ता है । इस सम्बन्ध में प्रो0 स्टैम्प का यह कथन बहुत ही प्रामाणिक और अनुकूल प्रतीत होता है कि धरातल की संरचना और उसके स्वरूप मे अत्यन्त निकट का सम्बन्ध होता है और वे धरातल के अपवाह को पूर्णत· प्रभावित करते हैं धरातलीय और अधोभौमिक अपवाहों के बीच भी अन्तर है । ब्रिटेन के सम्बन्ध में लिखते हुए उन्होंने बताया है कि इस देश के अधिक भाग पर अधिक वर्षा के फलस्वरूप अच्छे धरातलीय अपवाह की आवश्यकता प्रतीत होती है, जिसे सुविधा देने के लिए गढ़ढ़ों को काटकर तेज जल-प्रवाह उत्पन्न किया जा सकता है । परिणामस्वरूप मृदा अपरदन के होने वाले भायनक खतरे को तीव्र ढालों पर घास या जंगल उगाकर रोका जा सकता है । जंगलों से विशेष लाभ भी होता है । घासें स्पंज की भाँति कार्य करती है । पानी जब प्रवाहित होकर नीचे आता है तो ये घासें उसे अवरूद्ध करके धीरे-धीरे मुक्त करती है । इस प्रकार वे भूक्षरण को रोकने मे विशेष सहायक होती है । भारत तो ब्रिटेन से भी अधिक वर्षा वाला देश है । इस देश में भी जहाँ कहीं अधिक वर्षा होती है, वहाँ स्टैम्प महोदय द्वारा वर्णित ब्रिटेन की अपवाह समस्या से भी उग्र दशाऐं मिलती हैं ।

शोध क्षेत्र के अन्तर्गत प्रवाहित होने वाली कोसी एवं उसकी सहायक नदी कारी कोसी ने धरातल के अपवाह को कई प्रकार से प्रभावित किया है। इनमें नदी मोड़ें (मियाण्डर्स) विशेष रूप से विकसित हुए हैं।

वास्तव में अध्ययन क्षेत्र के अपवाह के विकास में मृदा सरचना का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है । क्षेत्र की बलुअर दोमट मिट्टी घुलनशील है, जिससे इसका अपरदन सरलता से होता है । यही कारण है कि अपवाह मार्ग जितनी सरलता से बनते हैं , उतनी ही सरलता से अवरोध के कारण परिवर्तित भी होते रहते हैं । कोसी एवं महानन्दा नदियों के मार्ग परिवर्तनों का यही मुख्य कारण है इसके विपरीत चिकनी मिट्टी और मटियार मिट्टी चिपचिपी एवं कम

घुलनशील होती है जिससे अपवाह मार्ग परिवर्तन में कठिनाई होती है । परन्तु जहाँ पर बलुआही मिट्टी मिलती है , वहाँ इसमे नदियों द्वारा अपरदन एव मार्ग परिवर्तन अधिक होते हैं । अध्ययन क्षेत्र में बडे-बडे तालाबों मे स्थानीय जल सचय होता रहता है जिनके उत्तरोत्तर छिछला होने के कारण वर्षा काल में स्थानीय जलप्लावन की समस्या उत्पन्न हो जाती है ।

इस क्षेत्र के अपवाह को मौसमी और स्थायी दो प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है । क्षेत्र का सम्पूर्ण जल कोरी कोसी के माध्यम से गंगा में सम्मिलित होता है । शुष्क मौसमों में प्राकृतिक अपवाह केवल बड़ी नदियो में ही दिखाई देता है जबकि छोटी नदियाँ प्राय सूखी मिलती है । इसके अतिरिक्त समय- समय पर सिचाई वाली नहरों में जल प्रवाहित होता है।

शोध क्षेत्र का सामान्य अपवाह उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की दिशा में पाया जाता है जो उत्तरी मैदान के सामान्य ढाल का ही अनुसरण करता है । इस क्षेत्र में निम्न नदियों द्वारा अपवाह-तन्त्र का निर्माण होता है ।

(क) कोसी धार

(ख) फरही नदी

(ग) कमला नदी

(घ) मोनाली नदी

(ङ.) गिदरी नदी

(क) कोसी धार :- यह कोसी नदी की सहायक है जो पश्चिमी भाग में कोढ़ा प्रखण्ड और अध्ययन क्षेत्र के मध्य की सीमा बनाती हुई कटिहार अंचल के दलन न्याय पंचायत में प्रवेश करती है । यह नदी कोसी नदी से निकलती है और पुन: उसी में मिल जाती है । इसी कोसी धार के तट पर कटिहार नगर बसा हुआ है । वर्षा ऋतु में कोसी धार भयावह हो जाती है जो अनेक मोड बनाती हुई अध्ययन क्षेत्र से बाहर जाकर कटिहार जनपद के प्राणपुर अंचल में प्रवेश कर जाती है । वर्षा ऋतु समाप्त होने के पश्चात कोसी धार में जल

की मात्रा बहुत ही कम जो जाती है जिसे आसानी से बिना नाव के पार किया जा सकता है । कोशी धार मे से पानी साफ कर शहर में आवश्यकता की आपूर्ति हेतु भेजा जाता है । यह नदी शहर के पश्चिमी-दक्षिणी किनारे से होकर बहती है । बरसात में जलाधिक्य के कारण कटिहार शहर में भी जल प्रवेश कर जाता है जिससे बाढ़ की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए वर्ष 1984-85 में बाँध का निर्माण किया गया । वर्ष 1987-88 में कोसी का बाँध टूट जाने से कोसी धार तथा अन्य छोटी नदियों में इतना अधिक जल हो गया था कि सम्पूर्ण शहर एवं अध्ययन क्षेत्र जलमग्न हो गया था ।

(ख) फरही नदी :-

यह नदी कोसी धार नदी की सहायक है । जो कटिहार प्रखण्ड से लगे मध्य-पश्चिमी सीमान्त-प्रदेश मे प्रवाहित होती है । यह नदी कटिहार प्रखण्ड के दलन गाँव में प्रवेश करती है और कटिहार शहर के समीप कोसी धार में मिल जाती है । इसकी दिशा उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर है । यह मौसमी नदी है । तीव्र वर्षा होने पर यह नदी उफान में आ जाती है अन्यथा सूखी रहती है । कटिहार प्रखण्ड में इस नदी की दूरी लगभग 25 कि0 मी0 के आसपास है ।

(ग) कमला नदी -

यह नदी हिमालय पर्वत से निकली कोसी की शाखा है जो अध्ययन क्षेत्र में महमदियाँ के पास प्रवेश करती है । यह नदी कटिहार प्रखण्ड के न्याय पचायत महमदियाँ, बलुवाँ, बोरनी, मधेपुरा से प्रवाहित होती हुई प्राणपुर प्रखण्ड और मनीहारी प्रखण्ड होती हुई गंगा में मिल जाती है । यह भी बरसाती नदी है । बरसात के दिनों मे पर्याप्त मात्रा में जल मिलता है और इसके पश्चात यह नदी शुष्क हो जाती है । यह नदी अनेक छोटे-छोटे झील, तालाब, तथा ढाल और जल्ला का निर्माण करती है । इस नदी के आस-पास के क्षेत्रों में गर्मा की फसल अच्छी होती है ।

(घ) मोनाली नदी :-

यह नदी कटिहार जनपद के कढवा प्रखण्ड में प्रवेश करती है और इसे पार

कर कटिहार प्रखण्ड के न्याय पंचायत द्वासे के 'खण्डरपाली' गाँव के समीप प्रवेश करती है । सौरिया, डंड खोरा, विजैली जबडा पहाडपुर होती हुई मधेपुरा न्याय पंचायत को पार कर प्रखण्ड प्राणपुर मनिहारी होती हुई गंगा नदी में मिल जाती है । यह भी बरसाती नदी है । इस नदी के आस-पास क्षेत्रों में गरमा धान तथा मखाना की अच्छी खेती होती है ।

(ड.) मिदरी नदी :-

यह भी नदी कोसी की शाखा है जो पूर्व में महानन्दा के समानान्तर बहती हुई जनपद कटिहार के बिजैली तथा डुमरियाँ न्याय पंचायत को पार कर प्रखण्ड प्राणपुर मनिहारी होती हुई गगा नदी में मनिहारी के पास मिल जाती है । यह नदी डुमरिया न्याय पंचायत गाँव कलसर, महेशपुर, सकरैली झुनकी बसन्ता होती हुई बहती है। इस नदी से समीपस्थ गाँव वर्षा ऋतु में जलप्लावित हो जाते हैं । इस नदीकेप्रवाह दिशा उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर है । कहीं-कही यह नदी अपने प्रवाह क्षेत्र में नाले तथा तालाबों का भी निर्माण करती है ।

यद्यपि कोसी नदी अध्ययन क्षेत्र मे प्रवाहित नहीं होती है लेकिन कोसी धार, फरही, मनाली, गिढरी, कमला आदि सभी सहायक नदियाँ इसी नदी के पुराने प्रवाह क्रम में प्रवाहित होती है और पुन उसी में मिल जाती है । वर्षा काल में कोसी में पर्याप्त जल के कारण ये सभी सहायक नदियाँ विशेष रूप से प्रभावित होती हैं । अत इन सहायक नदियों के साथ ही कोसी नदी का भी अध्ययन आवश्यक है जिसका प्रभाव अध्ययन क्षेत्र के सामाजिक आर्थिक तन्त्र पर पड़ता है ।

(च) कोसी नदी :-

कभी बिहार की 'शोक नदी' कहलाने वाली कोसी भारत की सबसे विचित्र नदी है । कोसी की धारा में लगातार परिवर्तन को देखते हुए कहा जाता है कि कोसी का नाम पौराणिक कथाओं मे वर्णित तपस्विनी 'कौशिकी' के नाम पर रखा गया है जो अपने ब्राह्मण प्रेमी द्वारा त्याग दिये जाने के कारण एक के बाद दूसरे पुरूष की ओर भटकती रही । कोसी

नदी तिव्वत से निकलकर नेपाल और भारत में 720 कि0 मी0 दूरी तय कर वर्तमान में कटिहार जनपद के कुरसेला के निकट गंगा नदी में मिलती है । जर्नल आफ हाइड्रालिक डिवीजन मे प्रकाशित अमेरिकन सोसाइटी आफ सिविल इन्जीनियर्स के मार्च 1966 की कार्यवाही में ई0 सी0 वी0 गाले एव ई0 एस0 वी0 चिताले ने कोशी नदी पर अपने शोध पत्र में इसका विस्तृत ब्यौरा दिया है ।[5]

कोसी - भूकम्पीय क्षेत्र में अवस्थित कम आयु के विखण्डित होते हुए चट्टानों के बीच में से गुजरने के कारण अपने तलछट को ढलवें सतह पर नीचे की ओर ढकेलता है, क्योंकि इसके प्रवाह के ऊपरी सतह पर कोई समतल घाटी नहीं है । हनुमान नगर के बाद इसकी धारा एकाएक समतल पर आ जाती है । यह अपने साथ काफी मात्रा में रेत, बालू लेकर बढती है जो अपने घाटी मे जमा करती जाती है । इस क्रिया में इस नदी के मुहाने पर त्रिभुजाकार नदी वाहित बालू की भूमि द्वीप (आईलेण्ड) बनाते हुए 1773 से 1963 के बीच 110 कि0 मी0 पश्चिम की ओर खिसक गई है । 1731 के सर्वे के अनुसार यह पूर्णिया जिले के पश्चिमी भाग से गुजरती थी और आज यह निर्मली के पास से गुजरती है । धारा खिसकने के क्रम में इसने 7000 वर्ग कि0 मी0 भूमि को बर्वाद किया एवं गावों तथा शहरों को भी क्षति पहुँचाई । विश्वास किया जाता है कि कोसी प्रारम्भ में महानन्दा में मिलती होगी ।[6]

O Mally महोदय ने गजेटीयर में इसके विषय में लिखा है कि इसकी सात शाखाओं के कारण इसे सप्त कोसी भी कहते हैं । इसकी सबसे प्रमुख शाखा 'सन-कोसी' है जो पूर्व से पश्चिम की ओर बहती है अन्य शाखाएँ क्रमशः -

(1) भोतिया कोसी (2) टाम्बे कोसी (3) लिखू (4) दूध कोसी (5) अरूण और (6) तामूर है ।[7] ***Barah Kshetra*** के पास यह तीक्ष्ण ढाल वाले और एक श्रृंखला में फैले पर्वतों से नीचे उतरती है और ***Chatra*** के पास यह मैदानी भू-भाग को छूती है । सबसे पहले यह सहरसा जिले के उत्तरी-पूर्वी भाग को स्पर्श करती है । जो प्रारम्भ में भागलपुर जिले मे शामिल था ।

सन् 1897 ई0 में अभियंताओं द्वारा कोसी की विभीषिका से मुक्ति की एक योजना तैयार की गयी थी परन्तु इसे कार्य रूप मे नहीं दिया गया। कोसी की बाढ एवं उसके द्वारा लाये गये बालू के कारण आजादी के पूर्व तक कृषि के सर्वथा अनुपयुक्त इस जिले के अधिकांश क्षेत्र को कृषि योग्य बनाने हेतु आजादी के पश्चात कोसी पर वराज का निर्माण, नहरों द्वारा सिंचाई की व्यवस्था एवं तटबन्धों के निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया गया जो 1963 में पूरा हुआ । हालांकि बाढ़ की विभीषिका से पूर्ण त्राण इस क्षेत्र को नहीं मिल सका है परन्तु इन योजनाओं के पूरा होने के फलस्वरूप इस जिले में कृषि के क्षेत्र में नये अध्याय का सूत्रपात हुआ ।

2.6 जलप्लावन :-

अत्यधिक वर्षा एवं मन्द ढाल के फलस्वरूप अध्ययन क्षेत्र का लगभग 45% भाग प्रतिवर्ष बाढ़ों या जल - जमाव से प्रभावित होता है । बाढ़ का विशेष प्रभाव इसके उत्तर में बहने वाली कोसी एवं उसके सहायक नदियों की घाटी क्षेत्रों में परिलक्षित होता है । इस प्रखण्ड का दक्षिणी एवं मध्यवर्ती भाग नीचा होने के कारण जल जमाव से विशेष रूप से प्रभावित होता रहता है । कटिहार जनपद की कटिहार अंचल बाढ से प्रभावित प्रखण्ड है, जहाँ 120 गावों मे लगभग 85 गाँव बाढ से प्रभावित रहते हैं । 85 गाँव बरसात मे जलमग्न हो जाते है (चित्र सं0 - 3) ।

राजस्व विभाग के अनुसार वर्ष 1991 में कटिहार प्रखण्ड में 8510 हेक्टेअर भूमि पर खरीफ की फसलें बाढ़ एवं जल जमाव के कारण नष्ट हो गयी थी । प्रतिवर्ष जलजमाव एवं अधिक वर्षा के कारण फसलें नष्ट हो जाती हैं ।

जलप्लावित भाग को निम्न दो वर्गो में विश्लेषित किया जा सकता है -

(अ) सामान्य बाढ से प्रभावित क्षेत्र

(ब) असामान्य या बडी बाढ़ से प्रभावित क्षेत्र

सामान्य बाढ़ से अध्ययन क्षेत्र का प्रतिवर्ष लगभग 25% भाग प्रभावित होता

है । इससे लगभग 4572 हे0 भूमि पर खरीफ की फसलें नष्ट हो जाती है ।

कभी-कभी कुछ वर्षो के अन्तराल के उपरान्त बहुत बडी बाढे भी आ जाती है जिनसे सामान्य बाढो की अपेक्षा 20% अधिक क्षेत्र प्रभावित हो जाता है । फलत· बड़ी बडी बाढ़ों के समय 3998 हेक्टेअर अतिरिक्त क्षेत्र जल प्लावित हो जाता है । बडी बाढों के समय कोसी नदी, महानन्दा तथा गंगा नदी जो अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी - पूर्वी तथा दक्षिणी भाग में प्रवाहित होती है इनकी सहायक नदियाँ जैसे - कोसी धार, फरही, कमला, मोनाली तथा गिढरी नदियों द्वारा बहुत बड़ा क्षेत्र जलमग्न हो जाता है । ऐसी बाढों से रकसा, रघैली, विजैली, डुमरिया, मधेपुरा, परतेली, हफलागंज न्याय पंचायत का बहुत बड़ा भाग प्रभावित हो जाता है । इसके अलावा इस प्रखण्ड का अन्य न्याय पंचायत भी इस बाढ से अछूता नहीं रह पाते हैं । वर्ष 1987 - 88 का बाढ इसका ज्वलन्त प्रमाण है । इस बाढ से कटिहार अंचल जलप्लावित हो गया था । लोग अपने तथा जानवरों को लेकर सड़कों और रेलवे लाइनों के किनारे कई दिनों तक खाना - बदोश की तरह समय व्यतीत किये । इन बडी बाढों से अपार धन - जन की हानि होती है ।

इस प्रखण्ड के उत्तरी और पश्चिमी भाग मे नहरों का जाल फैला हुआ है जिससे जल का निकास होता है लेकिन तीव्र बाढ़ से नहरो में बालू का जमाव हो जाता है और जल के प्रवाह क्रम में अवरोध उत्पन्न हो जाता है । कटिहार अंचल के चारों तरफ बाँध है लेकिन भयंकर वर्षा और कोसी के बाँध के कटाव के कारण छोटे-मोटे बाँध जल को रोकने में असमर्थ हो जाते हैं । बांधों में दरारे पड़ जाती है । फलस्वरूप बाँध टूट जाते है । इस प्रकार बांध टूटने के कारण चारों तरफ जल प्लावित हो जाता है और और बाँढ़ की भयंकरता और अधिक हो जाती है ।

अत· बचाव के लिए हमे निम्नबातों पर विशेष ध्यान देना जरूरी है ।

1- नहरों और नालों का निर्माण किया जाय ।

2- प्रतिवर्ष नहरों और नालों में जो जमें बालू के कण हो निकाला जाय, ताकि बांधों में जमा पानी आसानी से निकल जाय ।

3- बांधो पर वृक्षारोपण किया जाय ताकि बाध टूटे नहीं ।

4- बांधों की देख-रेख के लिए एक निगरानी समिति बनाई जाय ।

5- प्रतिवर्ष बांधों की मरम्मत वर्षाकाल के पूर्व करा दी जाय ।

उपर्युक्त बातों पर यदि ध्यान दिया जाय तो आशा है कि प्रतिवर्ष आने वाली बाढ की विभीषिका से बचा जा सकता है साथ ही नहरों की निर्माण हो जाने से एक फसली के जगह पर दो फसली तथा बहु-फसली का उत्पादन किया जा सकता है और प्रतिवर्ष बांध टूटने तथा उसकी मरमम्मत पर सरकार का करोडों रूपये बचाया जा सकता है । बिहार के मुख्यमंत्री एवं सिंचाई मंत्री ने भी क्षेत्र की बाढ़ों की रोकथाम हेतु बांध जलाशय आदि बनाकर जल संग्रह एवं उसका सिचाई हेतु सही ढग से उपयोग का सुझाव दिया है । बाढ़ मे गांवों की रक्षा के लिए छोट-छोटे बाधों के निर्माण की भी आवश्यकता है ।

2.7 भूमिगत जल :-

भूमिगत जल मिट्टी की बनावट से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है । मिट्टी की विभिन्न विशेषताएँ जैसे - संरचनात्मक स्वरूप (पोरसता आदि) घुलनशीलता, शोषण शक्ति, कठोरता, मृदुलता इत्यादि जल स्तर को विशेष रूप से प्रभावित करती है ।[8] इस शोध क्षेत्र के अन्तर्गत धरातलीय जल प्रवाह के रूप में कोसी धार, कमला, मोनाली तथा गिढरी नदियों का विशेष प्रभाव दिखाई देता है । इस क्षेत्र के उत्तरी भाग में कृत्रिम जल प्रवाह के रूप में नहरों का प्रभाव विशेष उल्लेखनीय है । वर्षा काल में जब नदी का जल ऊपर आ जाता है तथा नहरों में भी जल भरा रहता है तो गांवों में जलाशयों, कुओं आदि में भी अधोभौमिक जल स्तर ऊपर आ जाता है । इन दिनों जलस्तर ऊपरी भाग में 0.5 से 0.8 मीटर (परियाम ढह' मध्यवर्ती भाग में 1.2 - 1.6 मीटर (खैरा) तथा दक्षिणी भागों में 1.8 से 2.5 मीटर (गोपालपुर) पाया जाता है । पूर्व से पश्चिम की ओर भी जल-तल में पर्याप्त अन्तर मिलता है । इस क्षेत्र के पश्चिमी भाग में 1.8 मीटर से 2.1 मीटर (महदेई गाँव) मध्यवर्ती भाग में 1.5 मी0 से 1.8 मी0 (शंकरपुर) एवं पूर्वी भाग में 0.9 मी0 से 1.2 मी0 (महेशपुर)

के नीचे जल तल पाया जाता है । इससे स्पष्ट है कि वर्षा काल में इस क्षेत्र का औसत जल तल धरातल के नीचे । । से 2.2 मी0 के मध्य मिलता है । परन्तु ग्रीष्म काल में यह जल स्तर अधिक नीचे चला जाता है । इस अवधि में इन सभी गांवों मे कुओं का जल तल 1.3 मी0 से 3.4 मी0 तक नीचे चला जाता है ।[9] इस क्षेत्र के उत्तरी भाग में ग्रीष्म काल में यह लगभग 2 3 मी0 तक दक्षिणी भाग मे लगभग 3.4 मी0 तक नीचे चला जाता है ।

भूमिगत जल का कृषि कार्यो पर विशेष प्रभाव पड़ता है । अक्टूबर और नवम्बर के महीनों मे जब धरातलीय परतों में विशेष नमी निहित रहती है , तो उस समय खेतों में नमी अधिक होने के फलस्वरूप इन क्षेत्रों में कम सिंचाई पर भी रबी की फसलें भली-भाँति तैयार हो जाती है । परन्तु अप्रैल, मई व जून के महीनों में खरीफ की फसल के लिए खेतों को पहले से तैयार करने में बहुत अधिक कठिनाई उठानी पडती है । इस समय जल-तल के अधिक नीचे चले जाने से मिट्टी में नमी समाप्त हो जाती है । साथ ही इन महीनों में यहाँ गर्मा धान की फसलें अधिक मात्रा में उगाई जाती है जिससे इन्हें सिंचाई अधिक मात्रा में करनी पड़ती है। जहाँ जल स्तर अधिक नीचा नहीं होता वहाँ आसानी से बाँस बोरिंग हो जाती है जिससे किसानों को काफी सुविधा मिलती हे । फिर भी अधिक सिंचाई और श्रम की आवश्यकता पडती है। इसीलिए इस अवधि में खरीफ की फसलों के लिए खेतों की तैयारी में सिंचाई की अधिक आवश्यकता पडती है ।

2.8 जलवायु :-

भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले भौतिक कारकों में धरातल के बाद जलवायु का ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान है । इसके द्वारा कृषि के विभिन्न प्रकार एवं स्वरूप निर्धारित एवं नियन्त्रित होते हैं और उनका सह-संतुलन भी बदलता जाता है । आज के वैज्ञानिक युग में भी कृषि पर जलवायु का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है । इसीलिए इसे जलवायु पर आश्रित पेशा कहा जाता है । जलवायु के विभिन्न तत्व (जैसे - तापमान, वर्षा, आर्द्रता, पवन प्रवाह आदि) प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कृषि कार्यों पर अपना प्रभाव डालते है । भारतीय मौसम विभाग के अनुसार कृषि कार्यो पर 50 प्रतिशत से अधिक नियन्त्रण जलवायु

का ही होता है ।[10] अध्ययन क्षेत्र की जलवायु आर्द्र-उपोष्ण मानसूनी जलवायु क्षेत्र के अन्तर्गत आता है । इस क्षेत्र में मौसम के मुख्य तत्वों (चित्र - 4) का विश्लेषण निम्न प्रकार है :-

(अ) तापमान :-

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में औसत वार्षिक तापमान लगभग 24 4^0 से0 एवं औसत वार्षिक तापान्तर लगभग 10 8^0 से0 है । इस क्षेत्र में अप्रैल, मई का महीना सर्वाधिक शुष्क होता है । जबकि अधिकतम तापमान 36.8^0 से0 तक मई में पहुँच जाता है । जून माह के मध्य से ताप कम होने लगता है । इस क्षेत्र में जनवरी का महीना अधिक ठण्डा होता है इस महीने मे न्यूनतम तापमान 7.2^0 से0 तक हो जाता है । इस क्षेत्र में मई और जून के महीनों में औसत तापमान क्रमश प्राय 30 5^0 से0 और 30.3^{0}से0 होता है । किन्तु जनवरी एवं फरवरी महीनों में औसत तापमान क्रमश· प्राय· 12.1^0 से0 एवं 15.8^0 से0 तक ही रह जाता है । सर्वाधिक औसत दैनिक तापान्तर दिसम्बर माह मे पाया जाता है जो 14.1^0 से0 के लगभग होता है । सारणी 2.2 से स्पष्ट है ।

(ब) वायुभार :-

इस क्षेत्र में शीत ऋतु का आगमन नवम्बर माह के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है। इस महीने में वायुभार लगभग 1022.3 मिबार रहता है । आगे का मौसम क्रमशः अधिक ठण्डा होता जाता है । दिसम्बर महीने मे सर्वाधिक वायुभार लगभग 1028.3 मिलीबार पाया जाता है । जनवरी माह में वायुभार बढ़कर लगभग 1032.4 मिलीबार हो जाता है किन्तु फरवरी माह में तापमान बढने के साथ ही वायुदाब घटने लगता है । फरवरी के महीने में अधिकतम वायुभार लगभग 1030 मिलीबार मिलता है । मई माह में यह घटकर 985 5 मिलीबार तक पहुँच जाता है । जून एवं जुलाई माह में औसत वायुभार घटकर क्रमश· 980.4 मिलबार एवं 980.2 मिलीबार तक आ जाता है । इस प्रकार इस क्षेत्र में जनवरी माह का वायुभार (1032.4 मिलीबार) वर्ष में अधिकतम होता है तथा जुलाई माह में न्यूनतम वायुभार (980.4 मिलीबार) मिलता है ।
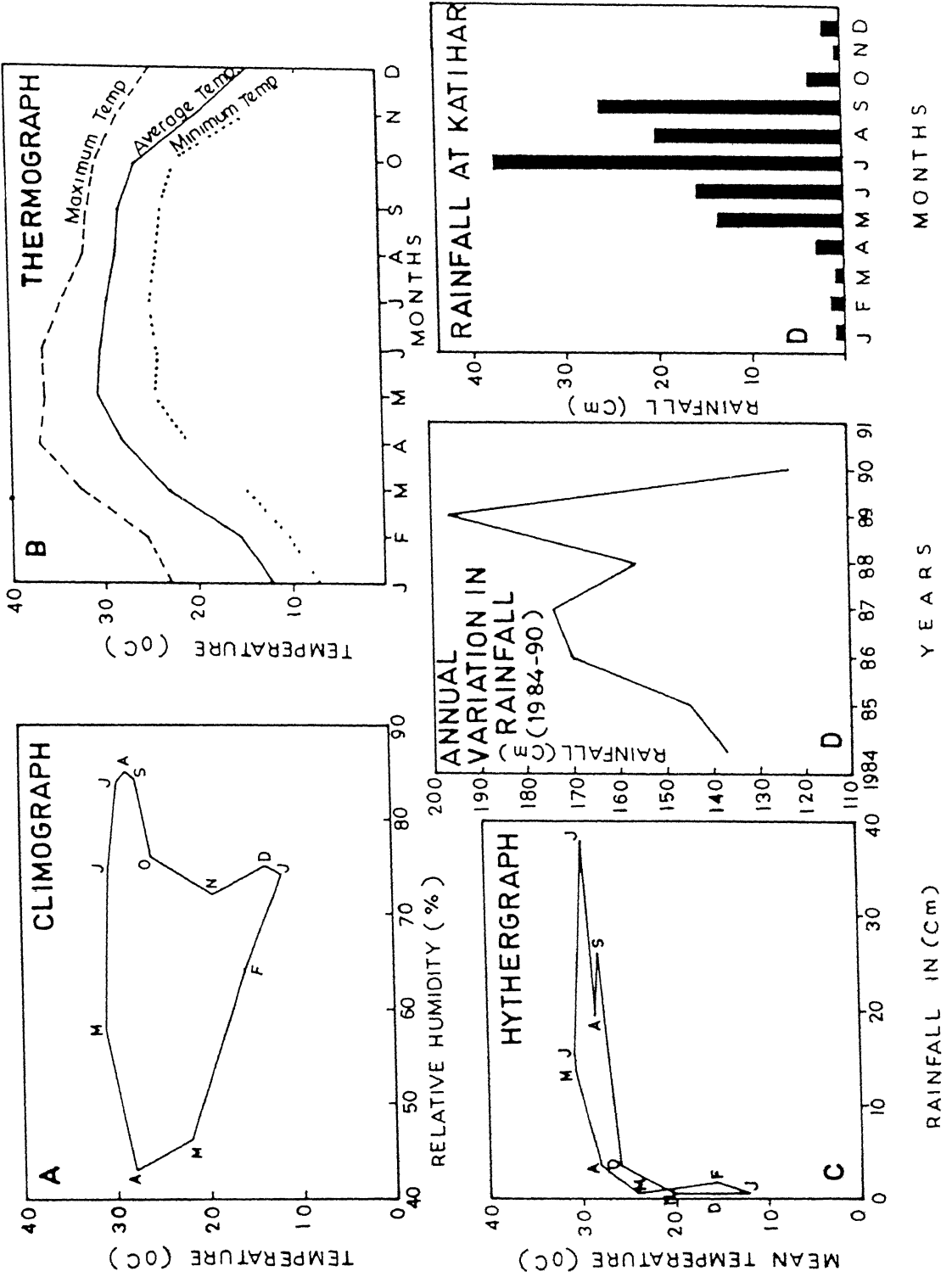
Table 2.2

CLIMATE DATA OF KATIHAR METROLOGICAL STATION (LAT. $25^0 30'$N LONG. $87^0 30'$)

MONTHS	MAX.TEMP. IN(^{0}C)	MIN.TEMP. IN (^{0}C)	AVERAGE TEMP. IN (^{0}C)	RELATIVE HUMIDITY IN (%)
JANUARY	23.3	7.2	12.1	74
FEBRUARY	25.7	10.8	15.8	64
MARCH	32.6	15.1	28.9	46
APRIL	37.3	20.9	28.2	43
MAY	36.8	24.3	30.5	58
JUNE	36.7	24.0	30.3	75
JULY	34.4	25.0	29.7	84
AUGUST	32.2	24.8	28.5	85
SEPTEMBER	31.8	24.0	27.9	84
OCTOBER	31.2	21.7	26.0	76
NOVEMBER	27.9	13.8	19.6	72
DECEMBER	24.3	8.8	14.1	75

स्रोत . जिला सांख्यिकीय कार्यालय कटिहार (बिहार) ।

(स) वायु दिशा :-

अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी भाग में हिमालय पर्वत निकट स्थित होने के कारण इस क्षेत्र में लगभग 40% दिनों में हवाएँ शान्त रहती है । अधिकतम 'पुरूवा' हवाएँ जो पूर्व से पश्चिम को प्रवाहित होती है जिसकी वर्ष भर में सख्या 75 दिन से कम नहीं होती है । यह हवा विशेषकर जुलाई महीने में प्रवाहित होती है । वर्ष में पश्चिम से प्रवाहित होने वाली 'पछुवा' हवा के दिनों की संख्या लगभग 45 होती है । पश्चिम से प्रवाहित होने वाली हवा के दिनों की सर्वाधिक संख्या अप्रैल माह में होती है, जो 12 है । शान्त दिवसों की संख्या लगभग 155 है । अक्टूबर से फरवरी माह तक शान्त दिवसों की संख्याएँ क्रमशः 21, 24, 26, 23 एवं 18 होती है और इन महीनों में शान्त दिवसों की मासिक औसत 22.4 दिन होती है । किन्तु अप्रैल माह से जुलाई माह तक शान्त दिवसों की संख्याएँ क्रमश· प्राय· 4, 5, 3 एवं 1 है जिनका मासिक औसत लगभग 3.25 दिन होता है । पूर्व व पश्चिम के अतिरिक्त शेष दिशाओं से क्षेत्र में हवाएँ कम चलती है । इस विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि अक्टूबर से फरवरी माह तक जब तापमान सापेक्ष रूप मे कम रहता है तो हवाएं प्राय· शान्त रहती है किन्तु तापमान के बढ़ने के फलस्वरूप अप्रैल से जुलाई माह तक ये हवाएं अधिक सक्रिय होने लगती है ।

(1) वायुगति :-

इस अध्ययन क्षेत्र में औसत वायुगति लगभग 5.48 कि0 मी0 प्रतिघण्टा है । नवम्बर माह में यह गति न्यूनतम (लगभग 3 0 कि0मी0 प्रतिघण्टा) होती है । अक्टूबर माह से जनवरी माह तक इसकी औसत गति लगभग 3 4 कि0 मी0 प्रतिघण्टा होती है । मई माह में वायुगति अधिकतम हो जाती है । इसमें हवा की गति लगभग 8.1 कि0 मी0 प्रतिघण्टा हो जाती है । इस क्षेत्र में अप्रैल, मई, जून एवं जुलाई के महीनों में औसत वायुगति लगभग 7.6 कि0 मी0 प्रतिघण्टा होती है । इन महीनों में कभी-कभी धूल भरी आंधियाँ भी चलती है । शीत ऋतु में कभी-कभी इस क्षेत्र में बहुत ठण्डी हवाएँ भी चलती है जिनसे शीत लहर का प्रकोप हो जाता है । शीत लहर के कारण तापमान में कमी आ जाती है।

(द) आर्द्रता :-

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में औसत मासिक सापेक्षिक आर्द्रता लगभग 43% से 85% के बीच है । अधिकतम सापेक्षिक आर्द्रता (लगभग 83%) अगस्त माह में एवं न्यूनतम सापेक्षिक आर्द्रता (लगभग 43%) अप्रैल माह में पायी जाती है । नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी एवं फरवरी के महीनों में औसत सापेक्षिक आर्द्रता क्रमश प्राय. 72%, 75%, 74% एवं 64% पायी जाती है । वार्षिक औसत सापेक्षिक आर्द्रता 77% (3.30 पी.एम.) तथा 65% (5.30 पी एम.) रहता है । अध्ययन क्षेत्र मे अधिकतम वार्षिक आर्द्रता लगभग 88.2% एवं न्यूनतम वार्षिक आर्द्रता लगभग 52.46% पायी जाती है । दोनों का वार्षिक औसत लगभग 70.37 प्रतिशत है ।

(य) वर्षा :-

हिमालय के समीप स्थित होने के कारण अध्ययन क्षेत्र में सामान्यतया अधिक वर्षा होती है । साथ ही साथ बंगाल के खाड़ी के मानसून का प्रभाव भी इस क्षेत्र पर वर्षा की मात्रा उत्तर पूर्व से दक्षिण पश्चिम की ओर क्रमश· कम होती जाती है । वर्ष 1989 में वार्षिक कुल वर्षा लगभग 1962.4 (मि0मी0) एवं सामान्य वर्ष 1357.8 (मि0मी0) होता है । वर्ष में वर्षा दिनों की कुल संख्या लगभग 56.6 दिन है । अधिकांश वर्षा मध्य जून से अक्टूबर तक होती है, यह वर्षा मानसूनी पवनों की सक्रियता पर निर्भर करती है । ये पवने कभी - कभी विलम्ब से तो कभी - कभी समय से पहले ही आता है । किसी वर्ष तो मानसूनी पवनें बहुत पहले ही अपना कार्य समाप्त कर देती है एवं कभी - कभी वे देर तक अपना कार्य जारी रखती है । कभी बरसात वर्षा ऋतु की मध्यावधि में वर्षा नहीं होती जिससे अध्ययन क्षेत्र सूखा से प्रभावित हो जाता है । अत यह स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में वर्षा की मात्रा एवं अवधि दोनों ही अनिश्चित है । अध्ययन क्षेत्र में अधिकतम वर्षा की मात्रा (481.2 मि0मी0) एवं वर्षा के दिनों की अधिकतम संख्या 15.6 जुलाई माह में पायी जाती है । दिसम्बर एवं जनवरी के महीनों में वर्षा की मात्रा एवं वर्षा के दिनों की संख्या सबसे कम होती है । इस प्रकार क्षेत्र में वर्षा की मात्रा में मासिक वितरण एवं वर्षा के दिनों की मासिक संख्या में बहुत अधिक विषमता है । उपर्युक्त विश्लेषणों के आधार पर अध्ययन क्षेत्र के मौसम को तीन प्रकारों में

या तीन प्रमुख ऋतुओं में विभाजित किया जा सकता है ।[11]

(र) **ऋतुएँ** :- अध्ययन क्षेत्र में निम्न तीन ऋतु मिलती है -

(1) शीत ऋतु (नवम्बर से फरवरी तक)

(2) ग्रीष्म ऋतु (मार्च से मध्य जून तक)

(3) वर्षा ऋतु (मध्य जून से अक्टूबर)

मौसमों का उपर्युक्त विभाजन कृषि कार्य को ध्यान में रखकर भी किया जा सकता है । शीत ऋतु रबी की फसलों के लिए वर्षा ऋतु खरीफ के लिए तथा ग्रीष्म ऋतु जायद की फसलों के लिए विशेष उपयुक्त होती है ।

(1) **शीत ऋतु** :- इसके अन्तर्गत नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी एवं फरवरी के महीने सम्मिलित किए जाते हैं । इस ऋतु में अधिकांश समय तक मौसम शान्त मेघरहित, स्वच्छ एवं सुहावना रहता है । कभी-कभी मेघाच्छादन, वर्षण एवं तीव्र पवनों की क्रियाएँ भी होती है । कुहरायुक्त प्रातःकाल, दोपहर की साधारण गर्मी एवं सन्ध्याकाल की बढ़ती हुई ठण्ड इस ऋतु की कुछ अन्य विशेषताएँ है । नवम्बर माह में औसत मासिक अधिकतम तापमान लगभग 30^0 से0 तथा औसत न्यूनतम तापमान लगभग 20.4^0 से0 रहता है । जो दिसम्बर माह में घटकर 24.9^0से0 तथा औसत न्यूनतम तापमान लगभग 8.6^0से0 हो जाता है । जनवरी का महीना सबसे शीतल होता है जिसमें औसत अधिकतम तापमान लगभग 22.5^0 से0 एवं औसत न्यूनतम तापमान लगभग 7.5^0से0 पाया जाता है । कभी-कभी जब इस महीने में (शीत लहर) चलती है तो तापमान 4.8^0से0 तक नीचे उतर जाता है । फरवरी माह से तापमान में क्रमशः वृद्धि होने लगती है । इस महीने का औसत अधिकतम तापमान 25.0^0से0 तक पहुँच जाता है । दिसम्बर एवं जनवरी के महीनों में औसत वायुभार क्रमशः 1008.2 मिलीवार एवं 1008.4 मिलीवार तक पाया जाता है जो फरवरी माह में कम होकर 1005.2 मिलीवार तक पहुँच जाता है ।

दिसम्बर एव जनवरी के महीनों में क्षेत्र में कभी-कभी शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात भी देखने को मिलते हैं । इनमें न्यून वेग से (लगभग 3 कि0 मी0 प्रतिघण्टा) ठण्डी

पछुआ हवाएँ प्रवाहित होती है जिसकी गति तीव्र भी हो जाती है जिसमें शीत लहर की स्थिति उत्पन्न हो जाती है ।

वर्षा की दृष्टि से यह ऋतु शुष्क होती है । इसमे आर्द्रता एवं वर्षा का प्रायः अभाव होता है परन्तु दिसम्बर एवं जनवरी में कभी - कभी वर्षा हो जाती है और कहीं - कहीं पाला भी पड़ता है पाला अधिक ठण्डी रातों मे पड़ता है । यह मटर, अरहर एवं आलू की फसलों के लिए हानिकारक होता है । पाला के प्रकोप से बचने के लिए कृषकगण अपने - अपने खेतों की सिंचाई कर देते है । इससे पाले का प्रभाव प्राय नहीं पडता । इस ऋतु में वर्षा यद्यपि कम होती है तथापि वह फसलों के लिए अधिक लाभदायक होती है और यह उस समय और अधिक लाभप्रद होती है जब पौधों में फूल आने लगते हैं ।[12]

इस सन्दर्भ में प्राचीन कृषि विशेषज्ञ 'घाघ' की निम्न सूक्ति पूर्णत सत्य प्रतीत होती है -

' धन्य वह राजा धन्य वह देश,
जहाँ बरसे अगहन शेष ।
' पूस में दूना माघ में सवाई
फाल्गुन बरसे घर न जाई ।।'

तात्पर्य यह है कि जहाँ दिसम्बर (अगहन) माह में वर्षा होती है वहाँ कृषि का भरपूर उत्पादन होता है । वर्षा होने पर जनवरी (पूस) में उत्पादन में दूना तथा फरवरी (माघ) में सवागुना की वृद्धि हो जाती है । परन्तु यदि वर्षा मार्च (फाल्गुन) में होती है तो खेत में डाला गया बीच भी घर नहीं लौट पाता । फाल्गुन माह मे फसलें पककर खेत में तैयार रहती है, कुछ काटकर खलिहान में भी आयी रहती हैं । ऐसे समय पर वर्षा से फसल, खेत एवं खलिहान दोनों में नष्ट हो जाती है । उपर्युक्त सूक्ति के समानान्तर एक दूसरी सूक्ति भी इस क्षेत्र में प्रचलित है जो निम्न प्रकार है :-

' पानी बरसे आधे पूस ।
आधा गेहूँ आधा भूस ।।'

इस अतिशयोक्ति का तात्पर्य यह है कि पूस माह के मध्य में वर्षा लाभ कर होती है । इस ऋतु में आकाश प्राय स्वच्छ रहता है एवं मौसम स्वास्थ्यवर्धक होता है । निम्न आर्द्रता, औसत तापमान, मन्द एवं शान्त वायु के कारण यह मौसम अनुकूल जलवायु का द्योतक है, जो मानवीय क्रियाशीलता के लिए अधिक प्रेरक प्रतीत होती है ।[13]

(2) **ग्रीष्म ऋतु** :- यह ऋतु मार्च से प्रारम्भ होकर अप्रैल, मई तथा मध्य जून तक रहती है । इस ऋतु में सूर्य की किरणे उत्तरी गोलार्द्ध में प्रखर हो जाती है । अत. तापमान में क्रमश· वृद्धि होने लगती है । इन दिनों अध्ययन क्षेत्र का औसत अधिकतम तापमान 37.7^0 से0 एवं औसत न्यूनतम तापमान लगभग 24.8^0 से0 रहता है । इस ऋतु में औसत तापान्तर लगभग 12.6^0 से0 रहता है । अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी भाग मे हिमालय की तराई होने से एवं नहरों के अधिक होने के कारण गर्मी की प्रचण्ड 'लू' का प्रभाव प्राय नहीं पडता है । इसीलिए देश के कई अन्य भागों की अपेक्षा यहां का तापमान सामान्य रहता है । मार्च माह का उच्चतम तापमान लगभग 32.5^0 से0 एवं न्यूनतम तापमान लगभग 15^0 से0 तक पाया जाता है (चित्र सं0 3) । यह उच्चतम तापमान अप्रैल और मई महीनों में बहुत अधिक बढ़ जाता है । अप्रैल माह का उच्चतम तापमान लगभग 37.5^0 से0 तथा न्यूनतम तापमान लगभग 21.5^0 से0 तक पाया जाता है । सुबह का मौसम अपेक्षाकृत कम उष्ण रहता है । दोपहरी मे तीव्र गर्मी के कारण तेज शुष्क पवनें चलती है जिससे घर से बाहर मानवीय क्रिया - कलापों को सम्पन्न करने में अधिक कठिनाई हो जाती है । मार्च माह से तापक्रम के क्रमश· बढ़ते रहने के कारण वायुभार कम होने लगता है । मार्च एवं जून के महीनों का औसत वायुभार क्रमश· 1002 मिलीवार एवं 989 मिलीवार के आसपास हो जाता है ।

ग्रीष्म ऋतु में इस क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली 'पुरूवा' हवा के दिनों की मासिक औसत संख्या लगभग 10 दिन तथा पछुवा हवा के दिनों की मासिक औसत संख्या लगभग 8 दिन होती है । वायु प्रायः औसत रूप में 6 कि0 मी0 प्रति घण्टा की गति से प्रवाहित होती है ।

ग्रीष्म ऋतु के अन्तिम समय में पूर्वी मानसूनी पवनों से ग्रस्त जन जीवन को इस

वर्षा से कुछ अस्थायी राहत मिल जाता है । साथ ही साथ खरीफ की फसलों की बुआई का कार्य भी शीघ्र प्रारम्भ हो जाता है , किन्तु जब पुरूवा हवा का तीव्र संचालन होता है तो आम, लीची की फसल को विशेष क्षति होती है ।[14] इस ऋतु में वर्षा के दिनों की संख्या 18 एवं औसत वर्षा मी मात्रा लगभग 30 से0 मी0 होती है ।

(3) **वर्षा ऋतु :-**

यह ऋतु मध्य जून से प्रारम्भ होकर अक्टूबर तक पायी जाती है । इस ऋतु में मौसम की मुख्य विशेषताओं में आकाश पर बादलों का आच्छादन तीव्र वायुगति तथा मेघ गर्जन एवं विद्युत की चमक के साथ ही तीव्र वर्षा विशेष उल्लेखनीय है । इस क्षेत्र में वर्षा प्रायः 15 से 20 जून के बीच आरम्भ हो जाती है । बंगाल की खाड़ी समीप होने के कारण कभी -कभी यहं वर्षा मई के अन्तिम सप्ताह से ही प्रारम्भ हो जाती है जो कभी - कभी अक्टूबर के अन्त तक एवं कभी पहले ही समाप्त हो जाती है । इस ऋतु के बीच में भी कभी - कभी लम्बे समय तक वर्षा नहीं होती । इन दिनों सापेक्षिक आर्द्रता में तीव्र वृद्धि हो जाती है और तापमान नीचे गिर जाता है । इस प्रकार देश के उत्तरी पश्चिमी भाग में ग्रीष्म काल में निम्न वायु भार केन्द्र धीरे - धीरे शिथिल पडने लगता है एवं उच्च वायु भार के केन्द्र में बदलने लगता है । इस ऋतु मे हवाए सागर से स्थल की ओर प्रवाहित होती रहती है जिन्हें पुरूवा हवा के नाम से पुकारा जाता है । इन्हीं पवनों द्वारा इस क्षेत्र की अधिकांश वर्षा प्राप्त होती है । 'घाघ' ने सत्य ही कहा है कि -

' भुइया लोटि चले पुरवाई
तब जानों वर्षा ऋतु आई ।।"

(अभिप्राय यह है कि लम्बी अवधि तक तीव्र गति से प्रवाहित 'पुरूवा' हवा से वर्षा के शीघ्र आगमन की सूचना मिलती है ।)

अधिक वर्षा के कारण तापमान क्रमशः कम होने लगता है जून तक अधिकतम तापमान जो 35.2^0से0 तथा औसत न्यूनतम तापमान 24.8^0से0 के आस पास पाया जाता है वह घटकर अक्टूबर में क्रमश। 30^0 से0 22.5^0 से0 हो जाता है । वर्षा ऋतु के प्रारम्भ

सारणी 2-3

वर्षा का अन्तराल (1984 - 90)

वर्षा (से0 मी0 में)

महीना	जिला का सामान्य वर्षापात	जिला की औसत वर्षा (1984 - 90)						
		1984	1985	1986	1987	1988	1989	1990
जनवरी	84	2 94	.09	.00	00	.22	2 42	08
फरवरी	1 91	4 19	00	10	08	.96	1.17	1 30
मार्च	1 02	.65	00	.00	70	1 70	31	86
अप्रैल	3 00	2 88	1 35	2 74	4 88	8.63	00	3 38
मई	9.21	21 34	10 54	15 88	6 58	11.35	27 56	13 71
जून	22 15	51 91	24 34	15 70	17.76	22 37	38.66	15 68
जुलाई	29.93	47.88	44.91	46 46	8.15	41.63	46.02	37 79
अगस्त	30 71	18.56	17.53	19.89	70.50	48 12	18.06	19.85
सितम्बर	26 03	19 42	26 29	37 61	29.43	17 52	55.43	26 23
अक्टूबर	9 91	3.43	19 73	31 20	4.57	3 77	5.90	3.50
नवम्बर	.85	00	.00	00	87	65	.00	.50
दिसम्बर	.22	.21	33	1.39	33	.31	.71	.21
	135.78	**173.41**	**145.12**	**171.37**	**183.85**	**156.23**	**196.24**	**123.03**

स्रोत :- जिला सांख्यिकी हस्तपुस्तिका, कटिहार, 1990 , पृ0 10.

Table 2.4

STATEMENT SHOWING KATIHAR DISTRICT AVERAGE

	Average No of Rainy day	Normal Rainfall in (C.M.)
1	2	3
June	5.6	15.68
July	15.6	37.79
August	7.3	19.85
September	7.6	26.23
South West Monsoon	36.1	99.55
October	4.3	3.50
November	2.3	0.5
December	1.0	0.21
North East Monsoon	7.6	4.21
Junuary	0.1	0.08
February	0.1	1.3
Winter Rain	0.2	1.38
March	0.7	0.8
April	0.6	3.38
May	11.4	13.71
Hot Weather Rains	12.7	17.89
Total	**56.6**	**123.03**

स्रोत : जिला सांख्यिकी कार्यालय, कटिहार (बिहार)

में तापान्तर 10^0 से0 के निकट पाया जाता है जो घटकर 8^0 तक हो जाता है। इस ऋतु के प्रारंभ - में वायु भार 990 मिलीवार के निकट रहता है परन्तु अन्त में वह बढ़कर 1002 मिलीवार के आसपास पहुँच जाता है ।

अध्ययन क्षेत्र में वार्षिक वर्षा का लगभग 92% भाग इसी ऋतु में प्राप्त होती है । अधिकतम वर्षा जुलाई के महीने में (लगभग 37.50 से0मी0) प्राप्त होती है । इन महीनों की वर्षा फसलों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होती है ।[15] परन्तु अधिक वर्षा होने के कारण इस क्षेत्र के निम्न भागो मे जल निकास में कठिनाई हो जाती है जिससे जल प्लावन एवं बाढ़ की समस्या उत्पन्न हो जाती है । इन दिनों क्षेत्र के कुछ भागों में 94 से0 मी0 से भी अधिक प्राप्त होती है (सारणी 2.3 एवं 2.4) ।

(ल) मौसम एवं फसलें :-

वर्षा ऋतु का मौसम खरीफ की कृषि के लिए अधिक उपयुक्त होता है । इसी कारण इसे कभी - कभी फसलों का मौसम भी कहते हैं ।[16] इसी प्रकार शीत ऋतु रबी की फसलों और ग्रीष्म ऋतु जायद की फसलों के लिए अनुकूल पाई जाती है ।

वर्षा के प्रारम्भ होते ही खरीफ की फसलों की बुआई शुरू हो जाती है। इस ऋतु में अनियंत्रित वर्षा के कारण कभी - कभी फसलों के उत्पादन में बहुत अधिक ह्रास भी हो जाता है । इसी प्रकार अनवरत वर्षा होने से इस क्षेत्र के कुछ भागों की मिट्टी आवश्यकता से अधिक नम हो जाती है एवं जल-जमाव के कारण फसलों को भारी क्षति उठानी पड़ती है । लम्बी अवधि तक वर्षा न होने के कारण भी फसलें सूख जाती हैं । अध्ययन क्षेत्र में खरीफ की फसल तो पूर्णतया मानसून पर ही आश्रित है । परन्तु वर्षा की मात्रा एवं अवधि में विशेष स्थिरता न होने से खरीफ की फसलों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पडता रहता है । सितम्बर व अक्टूबर में तो कभी कभी अनवरत वर्षा एवं तीव्र वायु के झोकों के कारण पटसन, अरहर, बाजरा, मक्का आदि फसलें विशेष रूप से क्षतिग्रस्त हो जाती है । ये फसलें कभी -कभी जमीन पर भी गिर पड़ती है जिससे उत्पादकता में कमी आ जाती है । अक्टूबर व नवम्बर में खरीफ की कुछ फसलों की कटाई व मड़ाई का समय होता है । उस समय जब वर्षा होती है तो ऐसी फसलें खेतों में या खलिहानों में नष्ट होने लगती है । इस समय अधिक

वर्षा होने पर रबी की फसल की बुआई भी पिछड जाती है ।

जनवरी माह की स्वल्प वर्षा गेहूँ , जौ, चना, अहरहर, आलू एवं पटसन की फसलों के लिए विशेष लाभदायक होती है । इस वर्षा से फसलों के उत्पादन में वृद्धि होती है ।[17] ग्रीष्म ऋतु में आगमन मार्च माह मे प्रारम्भ हो जाता है । यह रबी की फसलों की परिपक्वता का समय भी होता है । इस समय उष्ण एवं शुष्क वायु के प्रवाह के कारण खेत में लगी फसलें शीघ्र ही सूखने लगती हैं । तेजी से सूखने के कारण उत्पादन में भी कमी आ जाती है । किन्तु मार्च के अन्तिम सप्ताह में जब तीव्र गति से 'पछुआ' हवा बहने लगती है तो रबी की फसल की कटाई मड़ाई और ओसाई में विशेष सुविधा होती है । फसलों से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने में मौसम के विभिन्न कारकों का सहयोग आवश्यक होता है इसीलिए यह कहा जा सकता है कि अध्ययन क्षेत्र में कृषि उत्पादन मुख्यत मौसम पर ही आश्रित है ।

(व) जलवायु एवं मानव क्रियाएँ :-

मानवीय क्रिया-कलापों पर जलवायु का गहरा प्रभाव पडता है अध्ययन क्षेत्र के आर्थिक एवं मानवीय कार्यो पर जलवायु का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है । मानव का स्वास्थ्य एवं उसकी शक्ति भी इससे प्रभावित होती रहती है जीवन - चर्चा पर भी मौसम का प्रभाव पड़ता है । शीत काल में ठण्डक से सुरक्षा पाने के लिए लोगों को ऊनी कपड़े धारण करने पड़ते हैं । इसीलिए निर्धन लोगों के लिए यह मौसम बहुत ही कष्टदायी होता है । जब रात एवं सुबह में ठण्डक तीव्र हो जाती है तो गरीब लोग 'अलाव'* द्वारा अपना बचाव करते हैं । परन्तु सामान्यत· इस मौस्म में कार्य करने की क्षमता बढ़ जाती है । मार्च का महीना अधिक सुहावना होता है । इसमें सर्दी एवं गर्मी दोनों सामान्य होती है । अप्रैल, मई महीनों में गर्मी तीव्र हो जाती है । एवं दोपहरी में बाहर निकलना कठिन हो जाता है । इन दिनों लोग महीन, हल्के तथा सफेद कपडा पहनना पसन्त करते है । इस समय अधिक श्रम करना थकान दायक होता है ।

---

* लकड़ी जलाकर ' अलाव ' तैयार किया जाता है इसका स्थानीय नाम घूर तथा कउड़ा है ।

जून के तीसरे सप्ताह मे वर्षा प्रारम्भ हो जाती है । जब शुष्क भूमि को वर्षा का जल प्राप्त होता है तो मौसम उष्णार्द हो जाता है । ऐसी दशा में उमस बढ़ने लगती है । सावन माह में रिमझिम वर्षा का आनन्द लेने के लिए गांव की औरतें पेडों एवं घरों में झूला डालती है और कजली गाती है । अधिक वर्षा से ताल तलैया जलयुक्त हो जाती है । सरिताओं में अथाह जल प्रवाहित होने लगता है । किन्तु ऐसे मौसम में जल-मग्न क्षेत्रों में मच्छरों की वृद्धि बड़ी तेजी से होती है । कटिहार-प्रखण्ड में अधिक ताल-तलैया एवं पटसन को गड्ढों, नालों में सड़ाने के कारण मलेरिया जैसी बीमारियों का विशेष प्रकोप पाया जाता है । लोग मलेरिया-बुखार से पीड़ित होने के अलावें पेचिस, (डिसेन्ट्री) इत्यादि बीमारियों से भी ग्रसित होते रहते हैं । भूमिगत जल तल के वर्षा काल में ऊपर होने के कारण पानी की शुद्धता कम हो जाती है । जिससे पेट सम्बन्धी बीमारियों की बहुतायत देखी जाती है। इस प्रकार क्षेत्र के मानव स्वास्थ्य एवं उसकी क्रियाओं पर जलवायु का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है । इसी प्रकार आर्थिक साधनों पर भी जलवायु का गहरा प्रभाव दिखाई पड़ता है ।

2.9 मृदा एवं मृदा वर्गीकरण :-

मृदा एक आधारभूत संसाधन है जिस पर कृषि उत्पादन की क्षमता निर्भर है । यह खनिज एवं अन्य तत्व से निर्मित भू-पटल से उद्‌भूत होती है । इसमें खनिज तत्व, वायु एवं आर्द्रता की अतिरिक्त कार्बनिक पदार्थ भी मिले होते हैं । ये सभी पौधों के लिए पोषक शक्ति प्रदान करते हैं । मृदा चट्टानों और खनिज के दीर्घकालिक अपक्षय से बनती है ।[18]

मृदा की उत्पादन क्षमता उसके भौतिक एवं रासायनिक गुणों (नाइट्रोजन, पोटाश और फास्फेट पी0 एच0 आदि) पर निर्भर करती है (चित्र सं0 5) । इन गुणों को जानकर हम मृदा की उर्वरता के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । कृषि, सिंचाई और खाद से सम्बन्धित कार्य विधियां प्रमुख रूप से इन्हीं गुणों पर आधारित होती हैं । मृदा के भौतिक गुण उसके रंग, गठन और संरचना से सम्बद्ध होते हैं इसीलिए भूमि उपयोग एवं विशेषकर

N
KATIHAR PRAKHAND
SOIL FERTILITY
A
B
C
NITROGEN IN %
>0 · 07 HIGH
0·05 – 0 · 07 MEDIUM
<0 05 LOW
PHOSPHATE
>30·0 PPm HIGH
15·– 30 PPm MEDIUM
< 05–15 PPm LOW
PH LEGEND
MODERATLY ALKALINE 7·4 TO 8·5
NEUTRAL 6·6 TO 7·3
SLIGHTLY MODERATLY ACIDIC 5·6 TO 6·5
STRONGLY ACIDIC 5·5 & BELOW
2 0 2 4 6
Km
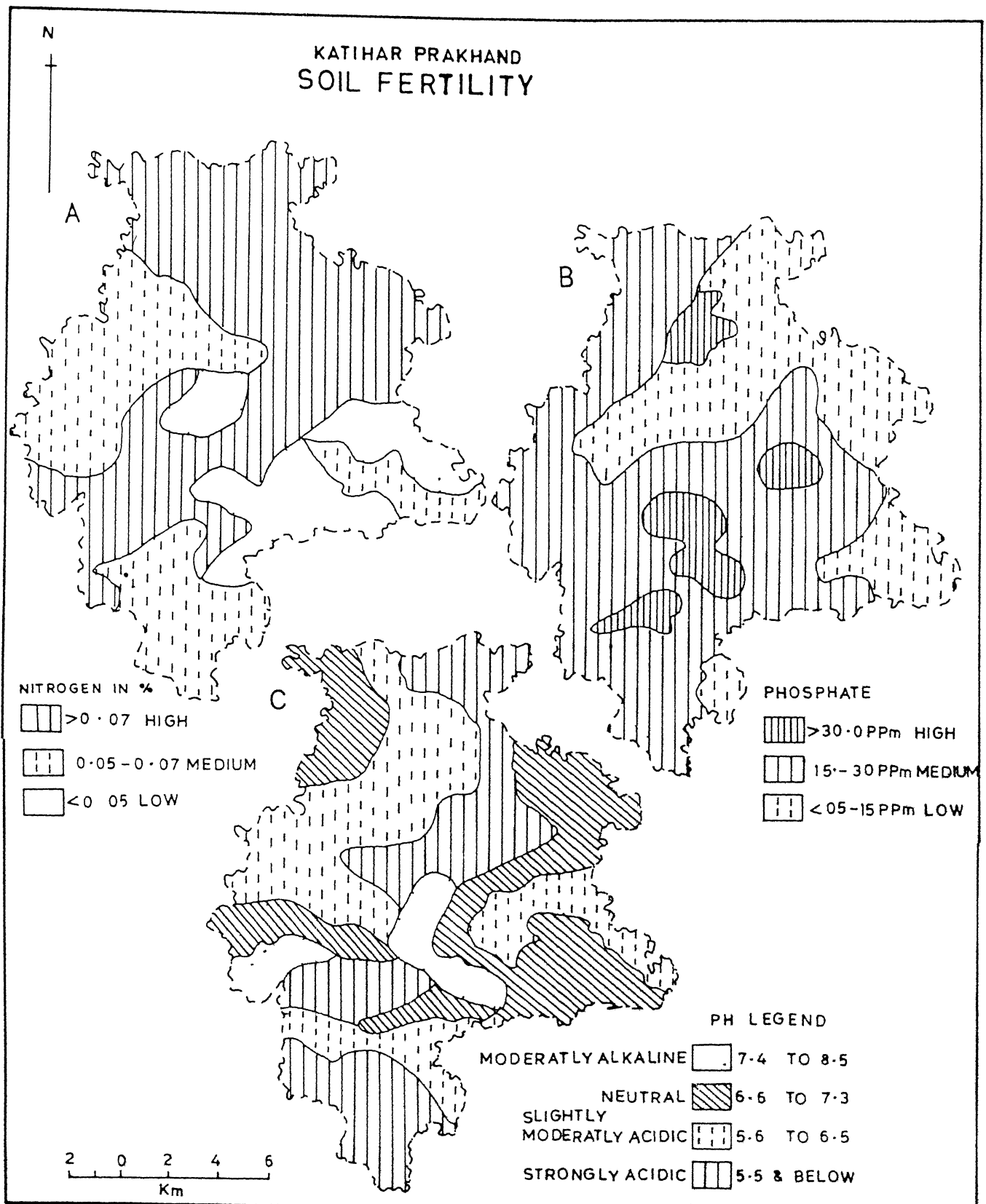
Fig·2·5

कृषि भूमि उपयोग से सम्बन्धित शोध कार्य के लिए मिट्टी की क्षमता एवं उपयोगिता का विश्लेषण सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । कृषक के लिए मृदा उसका वास्तविक धन श्रोत है। इसकी क्षमता के घटने पर अथवा इसके नष्ट होने पर उसे बहुत बड़ी क्षति उठानी पडती है। कृषि से प्राप्त सभी उत्पादन मृदा की क्षमता पर ही आधारित है । अत इस शोध से सम्बन्धित क्षेत्र की कृषि पर आधारित आर्थिक दशाओं का अनुमान लगाने के लिए मृदा का अध्ययन अति आवश्यक है । मृदा को गुणों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है और तत्सम्बन्धी विश्लेषणों द्वारा कृषि के लिए उनकी उपयुक्तता अथवा अनुपयुक्तता का ज्ञान प्राप्त किया जाता है । किन फसलों के लिए किस प्रकार की मृदा उपयुक्त होगी या उनको किस प्रकार के रसायनों द्वारा उर्बर बनाया जा सकता है , इसका भी विश्लेषण किया जाता है । इसीलिए मृदा को कृषि प्रधान देश का आर्थिक आधार बताया गया है । जिस प्रदेश की मृदा उपजाऊ नहीं होती, वहां भोजन की साधन प्राप्त करने की समस्या बनी रहती है ।

मृदा के भौतिक गुणों, रंग गठन एवं संरचना का कृषि के क्रिया-कलापों एवं फसलों के उत्पादन पर क्या प्रभाव पडता है ? इसका भी मूल्यांकन किया जा सकता है, और इन दृष्टिकोणों से मृदा का वर्गीकरण भी किया जाता है । अध्ययन क्षेत्र की मृदा को निम्न आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है ।

(अ) बालू के कणों की मात्रा के आधार पर, तथा

(ब) उर्वरता के आधार पर

(अ) बालू के कणों के आधार पर इस क्षेत्र की मिट्टी को निम्न लिखित तीन प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है ।

(1) बलुई मिट्टी :-

यह नदियों की घाटियों में अद्यतन जमाव वाले क्षेत्रों में पाई जाती है । इस मिट्टी में रेत, बालू की मात्रा अधिक होती है ।

(2) **बलुई - दोमट मिट्टी** :-

यह अपेक्षाकृत कम रेतीली मिट्टी में मुख्यतः उच्च बाँगर क्षेत्रों में मिलती है। इसमें बालू और काँप की मात्रा लगभग बराबर होती है ।

(3) **मटियार मिट्टी** :-

यह चिकनी मिट्टी जो मुख्यत निम्न भूमियों पर पाई जाती है इसमें बालू की मात्रा प्राय नही होती है । यह मिट्टी अधिक उपजाऊ होती है ।

(ब) **उर्वरा शक्ति** के आधार पर इस क्षेत्र की मिट्टी को निम्नलिखित तीन प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है - (इसी वर्गीकरण के आधार पर सरकार के राजस्व विभाग द्वारा भूमि का लगान निर्धारित किया जाता है ।)

(1) **गोयड़ मिट्टी** :- ऐसी मिट्टी गाँव या आबादी के निकट होती है । अधिक उर्वर होने के कारण इसमें खाद की कम आवश्यकता होती है । अधिक उपजाऊ होने के कारण यह कृषि की दृष्टि से विशेष उपयोगी होती है ।

(2) **मझार मिट्टी** :- यह गोयड मिट्टी की अपेक्षा कुछ दूरी वाले भागों में मिलती है । यह गोयड़ मिट्टी से कम उर्वर होती है ।

(3) **पालो मिट्टी** :- यह गाँव से अधिक दूर के भागों में मिलती है । इसकी उर्वरता अन्य दोनों मिट्टियों के अपेक्षा कम होती है ।

मृदा का एक नया वर्गीकरण बिहार प्रदेश के कृषि विभाग द्वारा की प्रस्तावित किया गया है । यह वर्गीकरण उत्पादित फसलों के आधार पर किया गया है । परन्तु इस क्षेत्र में कृषकों द्वारा मृदा की मुख्य तीन किस्में मानी जाती हैं ।

2.10 **अध्ययन क्षेत्र में मृदा का वर्गीकरण :-**

अध्ययन क्षेत्र की मृदा को दो भागों में बाँटा जा सकता है -

(1) बाँगर

(2) खादर

इन्हें पुन उप-विभाजित किया गया है -

(1) **बांगर** :- इस अध्ययन क्षेत्र में पाँच भागों में बाँटा जा सकता है ।

(क) दोमट

(ख) मटियार दोमट

(ग) मटियार मिट्टी

(घ) करैल मिट्टी

(ड) बलुअर दोमट

(2) **खादर**

(क) कछारी

इसका संक्षिप्त वर्णन निम्नवत् है ।

ये मिट्टियाँ धरातल और अपवाह के फलस्वरूप क्षेत्रीय विभाजनों के आधार पर वर्गीकृत की गयी हैं (चित्र सं0 6 ए) ।

(1) **बांगर मिट्टी** - बांगर शब्द पुरानी कॉप मिट्टी के ऊँचे क्षेत्र को व्यक्त करता है। इसमें कृषि कार्य करने के लिए सिंचाई की आवश्यकता होती है। बाँगर मिट्टी इस क्षेत्र के मध्यवर्ती भाग में कमला एवं मोनाली नदी के पश्चिमी भागों में मिलती है । इस प्रखण्ड के मध्यवर्ती भाग के उत्तरी पश्चिमी क्षेत्रों में भी यह मिट्टी पाई जाती है । बाँगर मिट्टी के इस विस्तृत जमाव क्षेत्र में जल-स्तर के आधार पर दोमट, मटियार और बलुई दोमट मिट्टियों का उपविभाजन किया जाता है । बागर मिट्टी अधिक पोरस होती है । शीतकालीन खेती के लिए इसमे सिचाई की अधिक आवश्यकता होती है । गर्मी के दिनों में तथा मानसून के समय से न आने पर इस मिट्टी में सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है । इस क्षेत्र में पाई जाने वाली मिट्टियों में कृषि कार्य के लिए सबसे उपयुक्त मिट्टी है । आर्द्रता और कणों की मोटाई के आधार पर इस मिट्टी के निम्नलिखित उपविभाग किए जाते हैं ।

(क) दोमट मिट्टी :- इस प्रकार की मृदा इस क्षेत्र के अतिरिक्त भागों में मिलती है । यह मिट्टी कटिहार प्रखण्ड के पारा, महमदिया, द्रोआसे, सौरिया (उ प. भाग) बलुआ, रामपुर (पूर्वी भाग) तथा भौरा (उ पू भाग) न्याय पंचायत मे मुख्य रूप मे मिलता है । इस मिट्टी की ऊपरी परत पीताम जैसे रंग की होती है । इससे स्पष्ट है कि ऐसे भागों में अपवाह अधिक रहा है । खुली हुई कण संरचना होने के कारण इस मिट्टी में जल धारण करने की क्षमता कम होती है । सिंचाई की सुविधाएँ प्रदान करने पर इसमें फसल उत्पादन करने की क्षमता अधिक बढ जाती है । यह मिट्टी गेहूँ एव आलू तथा केला की खेती के लिए विशेष लाभदायक होती है ।

(ख) मटियार - दोमट मिट्टी :- इसका विस्तार बाँगर मृदा के लगभग 12% भाग पर पाया जाता है । यह चन्देली, जगन्नाथपुर, रामपुर, दलन तथा बेलवा न्याय पंचायतों के कुछ भागों में फैली हुई है । इसका रंग भूरा होता है, किन्तु अधोभौमिक रूप में होने पर इसका रंग गाढ़ा भूरा हो जाता है । दोमट मिट्टी की तुलना में इसमें चिकनी मिट्टी के कण अधिक पाए जाते है और इसमे जल धारण क्षमता भी अधिक होती है । 0 5 से 0.7 मीटर गहराई पर इसमे चूना प्रधान जमाव पाया जाता है जिसके फल स्वरूप इसमें कंकड, बालू भी मिलते हैं । ऊपरी सतह पर पाया जाने वाला चूना जल क्रिया से भूमिगत हो जाता है और विभिन्न गहराईयों में पहुँचकर गाँठ के रूप में संचित हो जाता है जो धीरे- धीरे कंकड़ में परिणत हो जाता है । यह कंकड अधोभौमिक अपवाह में बाधा पहुचाता है और वर्षाकाल में इसके ऊपर ही अधोगत जल का जमाव होने लगता है । यह मृदा धान की खेती के लिए विशेष अनुकूल पायी जाती है ।

(ग) मटियार (धनखर) मिट्टी - यह मिट्टी कटिहार प्रखण्ड के दलन बेलवा, मधेपुरा, परतेली, दण्ड खेरा न्याय पंचायतों के भाग पर मिलती है । बाँगर मिट्टी के लगभग 9 प्रतिशत भूमि पर यह फैली हुई है । यह मृदा भूरी तथा हल्की काली रंग की होती है । इसकी संरचना ठोस और थक्केदार होती है । जब यह भीग जाती है तो अधिक चिपकदार हो जाती है परन्तु सूखने पर यह बहुत ही कड़ी हो जाती है । खेती के लिए यह मिट्टी व्यापक

रूप से प्रयोग में लाई जाती है । रोपित धान की खेती के लिए तो यह विशेष उपयुक्त पायी जाती है ।

(घ) **करैल मिट्टी** :- बोरनी गोरगामा, द0 सौरिया, द0 रफैली, उ0 विजैली और डण्डखोरा न्याय पंचायतो मे इस मिट्टी का विस्तार है । यह अपेक्षाकृत नीची भूमि मे पायी जाती है । इसका रग गाढ़ा भूरा होता है । इस मिट्टी की संरचना चीका प्रधान होती है । भीग जाने पर यह बहुत अधिक चिपकदार हो जाती है । इसी कारण वर्षाकाल में इसमें जल धारण की क्षमता अधिक होती है तथा यह मुख्य रूप से खरीफ की फसलों के लिए उपयुक्त होती है । इसमे अगहनी फसल के कटने के उपरान्त बिना जुताई किए ही तीसी (अलसी) लटरी आदि कम महत्व वाली रबी की फसलों का छिटकाव कर दिया जाता है क्योंकि बाद में इस मिट्टी के सूख जाने पर उसमें दरारे पड जाती है जिससे उसकी जुताई असम्भव हो जाती है ।

(ङ.) **बलुअर दोमट मिट्टी** :- इसका विस्तार बाँगर मृदा के अन्तर्गत सबसे अधिक क्षेत्रफल अर्थात 25 प्रतिशत भाग पर पाया जाता है । इसमें बालू के कणों की अधिकता होती है इसका विस्तार विशेषकर मधेपुरा, परतेली, हफलागज, पहाडुपुर एवं डुमरियां आदि न्याय पंचायतों में पाया जाता है । इस पर ज्वार, बाजरा, मक्का, अरहर, केला, पटसन, गेहूँ, धान गरमा धान, मुख्य रूप से उगाई जाती है । इसमें जल धारण करने की क्षमता अपेक्षाकृत कम होती है लेकिन कहीं - कहीं नीची जमीन होने से जल की मात्रा अधिक होती है । यदि सिंचाई के साधनों की सुविधा प्रदान की जाय तो इसमें शीघ्र तैयार होने वाले धान की उन्नतिशील किस्मे उत्पन्न की जा सकती है ।

बाँगर मृदा को 4 प्रतिशत क्षेत्रफल पर ऊसर का विस्तार पाया जाता है । यह मिट्टी मुख्यतः एक फसली मिट्टी है । इसमें खरीफ में केवल निम्न कोटि के धान की फसल तथा पटसन की फसलें उगाई जाती है । जब कभी खरीफ में वर्षा का लम्बा अन्तराल पड़ जाता है तो इस मिट्टी की सभी फसलें नष्ट हो जाती है, क्योंकि इसमें पहले से जल धारण करने की क्षमता बहुत कम होती है ।

(च) **कछारी मिट्टी** :- इस प्रकार की मृदा फरही, कमला, चोनाली तथा गिदरी नदी घाटी क्षेत्र में लगभग 08 प्रतिशत भाग पर फैली हुई है । सामान्यत 'कछार' शब्द का प्रयोग नदी घाटी की निचली भूमि के लिए किया जाता है । इस क्षेत्र की मिट्टी जो नीची भूमि में निर्मित हुई है या होती जा रही है, सामान्यत नवीन होती है । यह मिट्टी मुख्यत उर्वर बलुई मिट्टी होती है । इसमें यत्र-तत्र चिकनी मिट्टी के जमाव भी मिलते हैं । यदि नदी अपना मार्ग नही बदलती है, तो नदी घाटी में रेत की परतों पर निरन्तर निक्षेपण होता रहता है और कालान्तर में यही जमाव उर्वर मिट्टी के रूप में बदल जाती है । ऐसी मिट्टी रबी की फसल के लिए अधिक उपयुक्त होती है ।

कछारी मिट्टी का विस्तृत निक्षेपण कमला तथा मोनाली नदियों द्वारा हुआ है, जो कोसी की शाखा है । फरही नदी का कछारी भाग विशेष महत्वपूर्ण नही है क्योंकि उसमें निक्षपित रेत कंकड मोटे होते हैं और उनका अधिक उपयोग आवासों के निर्माण हेतु ही होता है । परन्तु जहाँ कहीं इसके ऊपर महीन रेत के कण पाये जाते हैं, वहां इस मिट्टी मे ककड़ी, खरबूजा तथा सब्जियों में परवल, लौकी तथा करेला आदि की खेती विशेष रूप से की जाती है ।

मध्यवर्ती एव उत्तरी पूर्वी भाग में यत्र-तत्र नाले हैं । ये अपने नितल में कीचड़ का जमाव करते रहते हैं, जिस पर ग्रीष्म काल में गरमा धान की खेती होती है। कोसी धार का कछारी क्षेत्र विस्तृत भू-भाग पर विस्तृत है । यह नदी अपना मार्ग भी परिवर्तित करती रहती है । इसीलिए इसकी घाटी मे स्थित कछारी मिट्टी में प्रौढता कम पाई जाती है ।

इस मिट्टी की जलोढ परतों का जमाव इस क्षेत्र की नदी प्रणाली से विशेष रूप से सम्बन्धित प्रतीत होती है । कमला एव मोनाली नदी घाटी में महीन जमाव अधिक पाया जाता है । इस प्रकार की मिट्टी रवी की फसलों के लिए अधिक उपयोगी होती है। यद्यपि इस सम्पूर्ण क्षेत्र की मिट्टी विशेष उत्पादक है, परन्तु इसमें अधिक वर्षा एवं बाढ के कारण खरीफ की फसलें प्राय नष्ट हो जाती है, किन्तु जहां ऐसी समस्या नहीं है, वहां इस मिट्टी में सुगमता पूर्वक वर्ष में दो फसले उगाई जाती है ।

KATIHAR PRAKHAND
N
SOIL CLASSIFICATION
LAND CAPABILITY CLASSIFICATION
A
B
U A
U A
DOMAT SOIL
MATIYAR DOMAT
MATIYAR
KARAIL SOIL
BALUAR DOMAT
KACHHARI SOIL
2 0 2 4 6
Km
QUALITY OF LAND
VERY GOOD
GOOD
MEDIUM
POOR
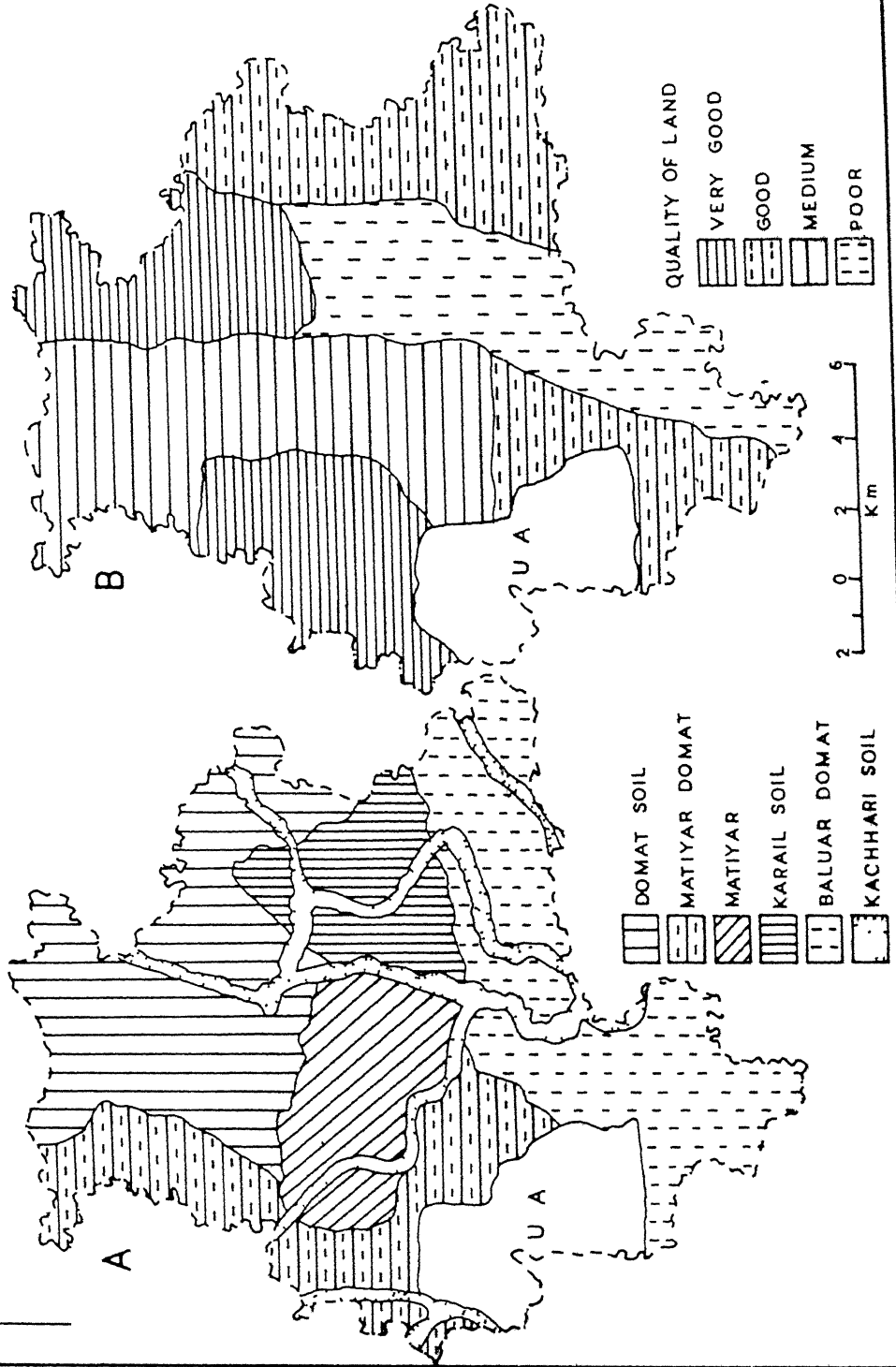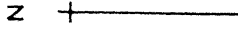
Fig 2·6

2.11 भूमि उपयोग क्षमता का वर्गीकरण .-

भूमि की व्यवहारिक एवं भौतिक विशेषताएं समान रूप से भूमि उपयोग क्षमता एवं उसके वर्गीकरण को प्रभावित करती है । भूमि उपयोग के वर्गीकरण का प्रथम उल्लेखनीय प्रयास संयुक्त राज्य अमेरिका में किया गया था, जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय मृदा संरक्षण सेवा एवं कृषि विभाग ने कुछ उद्देश्यों को ध्यान में रखकर भूमि की सक्षमता को निर्धारित करने का कार्य किया था जिनमे प्रत्येक एकड भूमि के वांछित प्रयोग का राष्ट्रीय आवश्यकताओं के सन्दर्भ मे अध्ययन करना मुख्य उद्देश्य था ।[19] ग्रेट ब्रिटेन में सन् 1930-31 में बडे पैमाने पर भूमि उपयोग के वर्गीकरण का कार्य प्रारम्भ किया गया ।[20] तत्पश्चात उत्तरी आयरलैण्ड मे खेतों के बिखराव के कारण तथा उनके प्रबन्ध में भिन्नता के कारण भूमि उपयोग पर पडे हुए प्रभावों का अध्ययन करने के लिए तथा भूमि की क्षमता का वर्गीकरण करने के लिए उसके क्षेत्रों में भूमि की साधारण विशेषताओं का विश्लेषण किया गया ।[21] ईराक में किया गया भूमि उपयोग क्षमता का वर्गीकरण मुख्यत मृदा पर ही आधारित था । यहाँ डब्लू0एल0 पावर्स ने मिट्टी की विशेषताओं, अपवाह दशाओं और प्राकृतिक वनस्पतियों को दृष्टि में रखकर ईराक को कई मृदा श्रेणियों में विभाजित किया था । भविष्य की भूमि विकास योजनाओं के सन्दर्भ में सिंचन सुविधा तथा उसकी उपयोगिता की दृष्टि से मृदा के पांच मुख्य वर्ग बनाए गये थे ।[22] संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि विभाग के मृदा संरक्षण सेवा द्वारा निर्धारित भूमि क्षमता के वर्गीकरण से इस देश के बहुत से शोधकर्ता एवं कृषक भी परिचित हो चुके है । यहाँ भूमि क्षमता के आठ वर्ग और चार उपवर्ग प्रचलित है ।[23] सोवियत संघ में प्रो0 वी0 वी0 डाकूचायेब और उनके शिष्यों ने वैज्ञानिक ढंगों के आधार पर कृषि भूमि का परिमाणात्मक मूल्यांकन किया है और इसी आकलन पर उन्होनें उस देश में कृषि भूमि का वर्गीकरण भी किया है ।[24]

उपर्युक्त प्रतिनिधि भूमि वर्गीकरणों के अतिरिक्त अनेक अन्य विद्वानों और संस्थाओं ने भी इस सन्दर्भ में कार्य किए हैं और उन्होनें अपने - अपने वर्गीकरण प्रस्तुत किए है । भारत में यह कार्य सरकारी प्रयासों एवं शोध छात्रों दोनों ही के द्वारा किया गया है झा ने बिहार के कटिहार प्रखण्ड के मृदा सक्षमता वर्गीकरण हेतु निम्न आधारों को लिया है ।[25] भूमि की संरचना, उच्चावच, अपवाह तथा वर्ष में उत्पादित फसलों के आधार पर अध्ययन क्षेत्र की भूमि

का गुणात्मक वर्गीकरण निम्न चार वर्गों के अन्तर्गत किया जा सकता है (चित्र स0 - 6 ब)।

(अ) **अति उत्तम कोटि की भूमि** :- इस प्रकार की भूमि गहन कृषि के लिए सक्षम होती है । अधिकांश भाग पर दोमट मिट्टी का विस्तार है । इस भाग मे यत्र-तत्र बलुअर दोमट मटियार दोमट भी मिलती है । यह मृदा अध्ययन क्षेत्र के पूर्वी, पश्चिमी तथा दक्षिणी भाग में मिलती है । इसके अन्तर्गत - दलन, रामपुर, भौरा, मधेपुरा और द्वोआसे में पायी जाती है । इसका उपयोग वर्ष में दो या तीन फसलों के उत्पादन के लिए किया जा सकता है । यह भूमि उत्तर पूर्व मे न्याय पचायत पारा, महमदिया, द्वोआसे से लेकर पश्चिम में बाँगर भूमि के मध्य क्षेत्र तक फैली हुई है । जिसमे दलन, भौरा, रामपुर तथा दोआसे न्याय पंचायत के क्षेत्र सम्मिलित है । अन्य न्याय पंचायतों में यह छिट-पुट रूप मे मिलती है । जिन क्षेत्रों में धरातल समतल है और जहाँ बाढ़ का प्रभाव बहुत कम पड़ता है, वहीं इस मिट्टी का प्रसार है । ऐसे क्षेत्रों में तीव्र अपवाह की समस्याएं नहीं होती जिससे मृदा का अपरदन कम होता है । कटिहार प्रखण्ड के उक्त न्याय पंचायतों में उर्वर दोमट मिट्टी, मटियार-दोमट तथा बुलअर-दोमट प्रकार की मृदा खरीफ और रबी की अच्छी फसलें उगाई जाती है । इस क्षेत्र की कृषिगत भूमि का लगभग 50 से 70 प्रतिशत भाग पर दो फसली कृषि के अन्तर्गत है । दो फसली कृषि क्षेत्रफल के अधिक होने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह भूमि उत्तम कोटि की है । वेलवा, दलन तथा दोआसे न्याय पंचायत की भूमि तो निश्चय ही सर्वोत्तम कोटि की है । इसके दक्षिणी भाग में बलुअर दोमट मिट्टी तथा इसके उत्तरी भाग में दोमट एवं मटियार दोमट मिट्टी एवं उच्च कोटि की उर्वर दोमट प्रकार की मृदा का बाहुल्य मिलता है । वेलवा, मधेपुरा न्याय पंचायत मे भी उर्वर दोमट मिट्टियां मिलती है जो कृषि के लिए उत्तम मानी जाती है । इस प्रखण्ड मे उत्तम कोटि के अन्तर्गत 60% भूमि आती है जिस पर वर्ष में सुगमता पूर्वक दो या अधिक फसलें उत्पन्न की जाती हैं ।

(ब) उत्तम प्रकार की भूमि :- इस कोटि के अन्तर्गत मृदा संतुलित प्रकार से लेकर कठोर गठन वाली होती है मिट्टी भुरभुरी प्रकार की है । मृदा में नमी की पर्याप्तता बनी रहती है । गहन उपयोग हेतु सक्षम है । पी0 एच0 मूल्य की दृष्टि से तटस्थ से सामान्य हल्की अम्लीय मृदा है ।

इस प्रकार की भूमि में दोमट, बलुअर दोमट, मटियार दोमट और मटियार प्रकारकी मृदा देखने को मिलती है । उर्वरता एवं उत्पादकता की दृष्टि से यह उत्तम प्रकार की मृदा है । इस प्रकार की भूमियों पर अधिकांश क्षेत्र दो फसली वाला है । इस प्रकार की भूमि भी सीमित क्षेत्र पर बाढ़ से प्रभावित होता है । इस कोटि में दोआसे, रघेली के दक्षिणी तटीय क्षेत्र को जिसमें विजैली, डुमरिया और पहाडपुर न्याय पंचायत सम्मिलित किए जा सकते हैं ।

(स) **मध्यम कोटि की भूमि :-** इस प्रकार की भूमि इस शोध अध्ययन क्षेत्र के बड़े भू-भाग पर फैली हुई है । इस प्रकार की भूमि मध्यवर्ती भाग में उत्तर में चन्देली से लेकर दक्षिणी महेशपुर तक मिलती है । वेलवा, गोरमामा, सौरिया, बलुआ, बुघेली, में भी मिलती है । इस भाग की मृदा मध्यम से लेकर कठोर संगठन वाली है । इस मृदा में 1/2 मात्रा में अति अम्लीयता से लेकर तटस्थ पी0एच0 मूल्य की मृदा है । यह मध्यम प्रकार की उर्वरता वाली है । मृदा बलुअर-दोमट प्रकार की है , विशेष प्रबन्ध करने पर बढिया उत्पादन मिलता है । इस भाग में अधिक उत्पादकता हेतु सिंचाई आवश्यक है । इन न्याय पंचायतों में भूमि अपेक्षाकृत नीची है और इसीलिए अपवाह भी धीमा है । वर्षाकाल में ऐसी भूमि जल जमाव से विशेष रूप से प्रभावित हो जाती है । इन न्याय पंचायतों में ऊँचे धरातलों पर उर्वर दोमट मिट्टी तथा निचली भूमि में मटियार मिट्टी पायी जाती है ।

सामान्यत: इस क्षेत्र की उर्वर मृदा उत्तम प्रबन्ध होने पर वर्ष में दो फसलें पैदा करने मे पूर्णत: सक्षम है, परन्तु धीमा अपवाह एवं जल जमाव के कारण निम्न भूमि वाले क्षेत्रों में दो फसली कृषिगत भूमि का प्रतिशत उनके सम्पूर्ण क्षेत्रफल का केवल 40% से 50% तक ही रह जाता है । इस प्रखण्ड मे मध्यम कोटि की कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल लगभग 25 प्रतिशत है । इस प्रकार की मृदा का सर्वाधिक दो फसली क्षेत्र दलन, वेलवा, मधेपुरा, पारा आदि न्याय पंचायतों मे पाया जाता हे । चन्देली भर्रा, पारा, जगन्नाथपुर न्याय पंचायत में दोषपूर्ण उच्चावच के कारण ही दो फसली भूमि का प्रतिशत कम है ।

(द) **निम्न कोटि की भूमि :-** इस प्रकार की भूमि अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी सीमान्त प्रदेशों में मिलती है । इसमें महमदियां पारा और भौरा न्याय पंचायत आता है । इस कोटि में मृदा

हल्की से लेकर मध्यम प्रकार की गठन वाली मिलती है । इस कोटि की भूमि में कमला, कोसी धार, मोनाली नदियों के ऊपरी और निम्न कछारी भू-भाग सम्मिलित किया जाता है । इस क्षेत्र मे बलुअर दोमट एवं बलुअर, मिट्टियाँ की प्रधानता है जो रबी की कुछ फसलों के लिए विशेष उपयोगी है परन्तु बाढ तथा मिट्टी भी रेतीली प्रकृति होने के कारण ये खरीफ की फसलों के लिए अनुपयुक्त पायी जाती है । इसीलिए इन क्षेत्रों में बाढ़ समाप्त हो जाने पर केवल रबी की फसल ही उगाई जाती है । बाढ तथा रेतीली भूमि की समस्या के अतिरिक्त इस क्षेत्र के कुछ भागों में खरीफ मिट्टी की समस्या भी है । जिसके कारण लगभग 10% भूमि ऊसर बन गयी है ।

2.12 मृदा अपरदन :- मृदा अपरदन एक ऐसी प्रक्रिया है, जिससे किसी क्षेत्र की मृदा वायु या बहते जल के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को स्थानान्तरित हो जाती है।[26] वर्षा की बूँदों की आघात से मृदा के कण पृथक हो जाते है और मृदा पकिल एवं ढीली हो जाती है । जल प्रवाह इस प्रकार की मृदा को सरलता से वहां ले जाता है और उसकी उपजाऊ ऊपरी सतह नष्ट हो जाती है । इस शोध अध्ययन क्षेत्र में मृदा अपरदन के दो प्रकार पाये जाते हैं जो निम्नवत् हैं -

(1) परत अपरदन

(2) अवनलिका अपरदन

यह परत अपरदन से होने वाली हानि क्रमिक रूप में धीरे - धीरे होती है । इस प्रकार का अपरदन मुलायम मिट्टी, ढीली मिट्टी, मन्द ढाल वाली भूमि तथा वनस्पति रहित भूमि में अधिक होता है । इस अपरदन की क्रियाशीलता बन्द होने से उसकी मात्रा का अनुमान शीघ्र नहीं लग पाता, परन्तु कुछ समय बाद मिट्टी की उपजाऊ सतह लुप्त होने लगती है तथा नीचे की कड़ी और चट्टानी सतह ऊपर आ जाती है । जिससे अपरदन का स्पष्ट आभास हो जाता है । इससे भूमि उपजाऊ हो जाती है ।

अवनलिका अपरदन को नालीदार अपरदन भी कहते हैं । इस प्रकार का अपरदन अत्यधिक वर्षा के कारण मुख्यतः वनस्पतिहीन भूमि पर पतली - पतली नालियों द्वारा होता है । ये नालिया निरन्तर गहरी होती जाती है ।

ऐसे दोनों प्रकार के अपरदन इस क्षेत्र में नदी घाटियों में विशेष रूप से मिलते हैं । इनका विशेष प्रभाव कमला, मोनाली तथा कोशी धार नदियों के तटवर्ती भागों में देखा जाता है । किन्तु सर्वाधिक प्रभाव कोसी धार के अपवाह क्षेत्र मे ही परिलक्षित होता है, क्योंकि आकस्मिक बाढों के समय इस नदी में पानी की बडी मात्रा तीव्र गति से बहती है जिससे उसके किनारे के कुछ भाग शीघ्र ही कट जाते हैं । तीव्र ढंग से बहने वाला पानी नदी के तल को भी काट देता है । जहाँ कहीं नदी में मोड होता है वहाँ जल प्रवाह में भी वक्र गति आ जाती है, जिससे नदी के तट अन्दर की ओर कट जाते है जब जल का वेग कम हो जाता है तो इस प्रकार से अपरदित मृदा नदी घाटी में प्रक्षेपित हो जाती है । बडी बाढों के समय नदियाँ अपनी दिशाएं भी बदल देती है । इस शोध अध्ययन क्षेत्र में मृदा अपरदन प्रमुख रूप से वर्षा की तीव्रता, भूमि के ढाल एवं मिट्टी की प्रकृति से प्रभावित होता है ।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त क्षेत्रीय भूमि का अवैज्ञानिक प्रयोग तथा अपरदन के प्रति असावधानी आदि में अपरदन मे सहायक सिद्ध होते हैं । अध्ययन क्षेत्र में चारागाहों पर अधिक चराई तथा वृक्षों की अनवरत कटाई तथा गहरी जुताई आदि के कारण अपरदन तीव्र होता जा रहा है और भूमि उत्तरोत्तर अनुपजाऊ होती जा रही है । जनसंख्या के निरन्तर वृद्धि आर्थिक विकास और कृषि योग्य भूमि की कमी को ध्यान में रखकर इसको रोकना अति आवश्यक है ।

2.13 मृदा संरक्षण :-

मृदा के संरक्षण हेतु किसी क्षेत्र की मिट्टी के अपरदन के घटकों, कृषकों की सूझ-बूझ, फसलों की किस्मों, वर्षा की मात्रा और वायु की गति आदि स्थानीय तत्वों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है । बिना इसके समुचित ज्ञान के मृदा संरक्षण की योजना सफल नहीं हो सकती । अध्ययन क्षेत्र में मृदा संरक्षण के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं जिससे मृदा की उत्पादकता भी बनी रह सकती है और इसका अपरदन भी कम किया जा सकता है -

तीव्र ढाल वाले भागों में वृक्षा रोपण ।

2 पानी के निकास की (वर्षा जल एव जल जमाव के निकास की) उचित व्यवस्था।

3 बाढ नियन्त्रण ।

4 बाँध निर्माण ।

5 समुचित फसल चक्र ।

6 मोंडे तथा हेज (*Hedge*) का निर्माण अधिक ढाल वाले क्षेत्रों में मृदा संरक्षण के लिए वृक्षरोपण आवश्यक है क्योंकि इसके द्वारा मिट्टी का ढीलापन कम हो जाता है, साथ ही पेड की जडे अधिक गहराई तक जाकर मिट्टी को बाँध लेती हैं । इससे जल का वेग कम हो जाता है और वह मिट्टी को बहाने में सक्रिय नहीं होता है । भूमि पर मूसला धार वर्षा का प्रभाव भी कम हो जाता है । इस प्रकार मृदा संरक्षण हेतु वृक्षा रोपण विशेष लाभदायक है ।

मृदा संरक्षण के लिए पानी के निकास की उचित व्यवस्था होना भी अति आवश्यक है । पानी निकास के लिए यदि नहरें बनायी जाये और इन्हें नदियों से जोड़ दिया जाय तो जल निकास तीव्र हो सकता है । बाढ नियन्त्रण के लिए नदी घाटी मे जल की मात्रा को संतुलित रखना भी अति आवश्यक है, इसके लिए ऐसे क्षेत्रों में फीडर नहरें बनायी जा सकती हैं । यदि खेतों में थोडी दूरी पर ऐसे मेडे बनाई जाय जिससे जल प्रवाह का वेग कम हो जाय तो इससे उपजाऊ मिट्टी बह कर जाने से रूक जायेगी । अध्ययन क्षेत्र में कोसी धार से एवं कमला नदी से निकाली गई नहरों की भाति ही अन्य नदियों से भी नहरें निकालना आवश्यक है । इससे बाढ को नियंत्रित भी किया जा सकता है और साथ ही साथ सिंचाई का कार्य सम्पन्न किया जा सकता है ।

इस क्षेत्र में मृदा की सुरक्षा के लिए बहते हुए जल के वेग को रोकना अति आवश्यक है । इसके लिए खेतों की मेड़ बन्दी की जाय, ढालूदार भूमि पर छोटे-छोटे सीढ़ी दार खेत बनाये जाय तथा थोडी - थोड़ी दूर पर हेज लगाये जाय और कुछ भागों में वनों का रोपण किया जाय तो जल का बहना धीमा हो सकता है और उपजाऊ मिटटी बहने मे बच सकती है बाढ़ का पानी सर्वत्र न फैल सके, इसके लिए उचित स्थानों पर बाँध बनाना भी आवश्यक है ।

उपर्युक्त उपायों के अतिरिक्त मृदा संरक्षण के लिए उचित फमल चक्र का होना भी लाभदायक है । ऐसे फसल चक्र से मृदा की उर्वरता में सुधार होता है तथा इससे अधिक उत्पादन प्राप्त करने में सहायता मिलती है ।इसमे फलीदार फसलों और दलहन फसलों का प्रयोग भी किया जाता है जिन्हें धान अथवा अन्य फसलों के साथ या मुद्रा दायिनी फसलों के साथ चक्रीय रूप में बोया जाता है । मृदा उर्वरता की दृष्टि से फसल चक्र से निम्नलिखित लाभ है -

1 इससे भूमि पर फसलों की झाकडीदार तथा मूसलादार जडे बदलती रहनी है जिम्मे उर्वरता बनी रहती है ।

2. इससे फसलों की जडें की पोषण शक्ति बनी रहती है ।

3 यह मृदा को उचित रूप मे नाइट्रोजन एव कार्बनिक पदार्थ प्रदान करता रहता है ।

4. यह मृदा की भौतिक दशा को भी विकसित करता है ।

बोयी गई फसल की प्रकृति पर विचार किए बिना उसी क्षेत्र में लगातार एक ही फसल बोते रहने से मृदा की संरचना में विघटन होने लगता है और फमल से पैदावार भी कम जो जाती है । द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे योजना आयोग द्वारा मृदा संरक्षण के सम्बन्ध में निम्न सुझाव प्रस्तावित किया गया था :-

"Socil Conservation measurss such as contour cultivation, strip, cropping, mutch forming, bunding terracing, qully, plugging and check demming can do much to arrest the deterionation of land. [27]

अध्ययन क्षेत्र में मृदा संरक्षण हेतु इन विधियों का प्रयोग लाभप्रद होगा ।

2.14 प्राकृतिक वनस्पति :-

कोसी तथा सहायक नदियों - कोरी कोसी, कोसी धार, कमला, मोनाली, तथा गिदरी नदियों के तटों पर कालान्तर में घने जंगल थे ।[28] मध्यम वर्षा एवं उपजाऊ भूमि होने के कारण वृक्षों की अधिकता थी । साल और शीशम के वृक्ष बहुतायत से पाये जाते थे । बाद में कृषि भूमि को बढाने के लिए वनों को निर्दयता-पूर्वक विदोहन किया गया । आजकल इस अध्ययन क्षेत्र में वनो की पेटियाँ समाप्त हो गयी है । केवल कुछ विखरे पेड तथा छोटी वनस्पतियां पायी जाती है । इस क्षेत्र में शीशम वृक्ष भी बहुतायत है । मध्यवर्ती उच्च भूमि मे नदियों के किनारे तटबन्धों पर स्थित 'उच्च' क्षेत्रों पर आम, जामुन, महुआ, सेमल आदि के वृक्ष मिलते हैं । दक्षिण में कमला एव मोनाली नदियों के अचल में बेर एवं बबूल तथा बाँस के वृक्षों की अधिकता है।

इस अध्ययन क्षेत्र में 1027 हे0 बाग-बगीचे पाये जाते हैं[29] ये मनुष्यों द्वारा रोपित हैं । इसका सर्वाधिक क्षेत्रफल चन्देली न्याय पंचायत में 150 हे0 तथा कम से कम क्षेत्रफल डुमरिया तथा विजैली न्याय पंचायत में लगभग 11 हे0 भूमि पर पाया जाता है । दोआसे रघेली तथा सौरिया में बाग - बगीचों की सख्या नगण्य है । इसके अलावा अन्य न्याय पंचायतों में क्रमश: जगन्नाथपुर 90 हे0 राजपारा में 100 हे0, रामपुर में 120 हे0, जयड़ा पहाड़पुर में 42 हे0, महमदिया में 102 हे, बलुआ में 21 हे0, राजभावडा मे 142 हे0, दलन मे 60 हे0, वेलवा में 49 हे0, चौसी गोरगामा में 21 हे0, दण्ड खेरा में 40 हे0, हफला गंज में 20 हे0, मधेपुरा में 16 हे0 तथा परतेली में 14 हे0 भूमि पर बाग-बगीचे पाए जाते हैं । ये सब निजी प्रयोग से लगाए गए हैं । इस सरकारी तन्त्र का ध्यान अब उन्मुख हुआ है । सडकों एवं रेल मार्गों, नहरों के किनारे तथा अन्य बेकार खाली जमीन पर वृक्षों के रोपण तीव्र गति से किया जा रहा है ।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि इस अध्ययन क्षेत्र में प्राकृतिक वनस्पतियों का क्षेत्रफल बहुत ही कम है । अब इनके क्षेत्रफल का विस्तार अति आवश्यक प्रतीत होता है इस अध्ययन क्षेत्र के डुमरिया, विजैली न्याय पंचायत में ही सबसे कम भूमि पर प्राकृतिक वनस्पति मिलती है जबकि तीन न्याय पंचायतों में दोआसे, रघेली तथा सौरिया में बाग बगीचों का क्षेत्रफल नगण्य है । इन न्याय पंचायतों में वृक्षा रोपण करके बाढ़ को नियन्त्रित किया जा सकता है।

इस अध्ययन क्षेत्र के अधिकांश गांवों में पडी हुई बेकार भूमि के शीशम , पीपल, बरगद, नीम, महुआ, अर्जुन के वृक्ष तथा मूज, कूस, बांस दलदली स्थानों पर नारियल नकरट आदि वनस्पतियां अब भी प्राकृतिक रूप में उग आती है । कृषकों के दृष्टिकोण से इस भाग में आम, जामुन, अमरूद, महुआ एवं नीबूं, नारियल आदि के वृक्ष विशेष उल्लेखनीय है इनसे कृषकों को पर्याप्त लाभ भी होता है ।

सन्दर्भ - सूचिका (*REFERENCES*)

1. जिला सांख्यिकी हस्तपुस्तिका का कटिहार, 1990, भूमि प्रबन्ध सस्करण
2. उपर्युक्त
3. उपर्युक्त
4. *Jha, Manoj Kumar : Land use in Katihar Anchal, Bihar, A study in problems, Development and Planning, Unpublished Ph.D. Thesis, Bhagalpur University, 1990, p. 18.*
5. कटिहार जिला का संक्षिप्त प्रतिवेदन · अखिल भारतीय पंचम शिक्षा सर्वेक्षण, 1986 - 87, मानव ससाधन विकास विभाग, बिहार, वर्ष 1987, पृ0 5.
6. उपर्युक्त
7. गजेटियर आफ पूर्णिया जनपद (बिहार भारत) 1663 पृ0 47
8. *Salter, C.S.: The Flow of water trough soil, Agr, Eng, Vol 31, 1950 pp. 119 - 224.*
9. स्वयं शोधकर्ता के सर्वेक्षण पर आधारित.
10. *Govt. of India, : Indian Meteoralogical Deptt. Wealter and the Indian Farmer, Poona, 1969, p.4.*
11. *Spate, O.H.K. : India and Pakistan 1954, p.41.*
12. *Bhardwaj O.P. : Climate and Human Activity climate of the Bist &Jullunder Doab (Punjab) with reference to Variability of Rainfall N.G.J. India 1960, Val VI Pt.11, pp. 91 - 92.*
13. *Ibid p.83.*
14. *Shafi M. : Land Vtilization in Eastern Uttar Pradesh, 1960, p. 25.*
15. *Bharadwaj, O.P. : Climate and Human Activity, 1960, p.25.*

16. Spate O.H.K. : India and Pakistan, Landon 1963, O.P. Cit, p. 43.

17. Singh V.R : Land use pattern in Mirzapur and Envirans, Ph.D. Thesis, B.H.U. 1970, p.24.

18. बसु0 जे0 के0 वैद्य, डी0 सी0 रामाराव, एम0 एस0 वी0 · भारत में संरक्षण, उ0प्र0 हिन्दी अकादमी (लखनऊ) 1973, हिन्दी संस्करण - I

19. Donahue, R.L., : Our Soel and their Management, Indian Edition Asia Publishing House, Bombay, 1963, p. 82.

20. Stamp, L.D. : The Land of Britain, Its use and Missuese; longmeans, London, 1962, p. 352.

21. Symons lis lie : Agricultural Geogrpahy G. Bell & Sons Ltd. London 1968, pp. 244-246.

22. Powers, W.L. : Soil and land capabiliteis in garg, Geographical Review , 1954, XXXXIV No. 2, pp. 373-380.

23. A Mannual on conservation of soil and water, 1963, pp. 27-29.

24. As Quoted by Acedemician Geraismow 9.P, The Geographical Study of Agricultural land use, Geographical Journal 1958, Vol 124, p. 458.

25. Jha, M.K. : Land use in the Katihar Anchal, Bihar : A study in problems Development and Planning 1990, p. 49.

26. बसु0 जे0 के0 वैद्य, डी0 सी0, रामाराव एम0 एस0 वी0 : भारत में मृदा सर्वेक्षण उ0 प्र0 हिन्दी अकादमी (लखनऊ) 1973. पृ0 124.

27. Second Five Year Plan, 1956, p. 1307.

28. Singh, R.L. : *India A Regional Geography* 1971, p. 204.

29. राजस्व विभाग से प्राप्त आकड़ों पर आधारित ।

xxxxxxxxxxx

xxxxx

xxxxxxxxx

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

अध्याय - तृतीय

भू-आर्थिक संसाधन

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

xxxxxxxxx

xxxxx

अध्याय - तृतीय

भू- आर्थिक संसाधन

3.1 जनसंख्या

कभी अंग और मगधराज के अधिकार क्षेत्र में रहा यह विराट की नगरी पाण्डवों की शरण-स्थली रही है । अपनी शान्ति-प्रियता, प्राकृतिक सुन्दरता एव धार्मिक सहिष्णुता के लिए विख्यात आर्थिक - सामाजिक रूप से आज बदहाली की जिन्दगी गुजार रहा है एक वस्त्र मे लिपटे हुए तन नगे, बदन जर्जर और क्षीणकाय शारीरिक स्वरूप यहाँ के आर्थिक स्तर के ज्वलन्त और चुनौती पूर्ण परिवेश का द्योतक है ।

भूमि उपयोग में मानव एक महत्वपूर्ण कारक है । अत. भूमि उपयोग के परिप्रेक्ष्य मे जनसंख्या का अध्ययन अति आवश्यक है, क्योंकि इसी आधार पर वर्तमान आर्थिक क्रियाओं की योजना का निर्धारण एवं क्रियान्वयन तथा विकास स्तर का निरूपण एवं मापन किया जा सकता है । जनसंख्या के समुचित अध्ययन हेतु उसके विभिन्न पक्षों का ज्ञान आवश्यक है । उदाहरणार्थ, जनसंख्या की वृद्धि एव विकास दर विभिन्न घनत्व वर्गो का क्षेत्रतीय विवरण यौन-अनुपात, साक्षरता, क्रियाशीलता एवं व्यवसायिक संरचना आदि जनसंख्या अध्ययन के मुख्य घटक हैं । शोध अध्ययन क्षेत्र के परिपेक्ष्य में इन घटकों का विवरण नीचे दिया जा रहा है ।

(अ) जनसंख्या वृद्धि

कटिहार प्रखण्ड बिहार राज्य का एक जनसंकुल क्षेत्र है । जनसंख्या की बहुलता की दृष्टि से इसे जनपद में प्रथम स्थान प्राप्त है ।[1] प्रस्तुत तालिका (3.1) में अध्ययन क्षेत्र की पिछले पाँच दशकों की जनसंख्या वृद्धि को प्रदर्शित किया गया है ।

तालिका (3.1) से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्र में वर्ष 1941 से 51 की अवधि में 24.2% की वृद्धि हुई है जबकि शहरी क्षेत्र में 1941 से 1951 की अवधि में 60.9% की वृद्धि हुई है । 1951 से 61 की अवधि में ग्रामीण और शहरी क्षेत्र में क्रमशः 21.10%

तथा 44 32% की वृद्धि हुई है । वर्ष 1961 और 1971 के बीच ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों मे क्रमश 22.55% तथा 30.60% तथा 1971 - 81 के बीच ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में क्रमश 13 18%, 52.27% और वर्ष 1981 - 91 के बीच ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में क्रमश 30 73%, 26 30% की वृद्धि हुई है । ग्रामीण और शहरी दोनों का औसत वृद्धि वर्ष 1941 से लेकर 1991 के बीच क्रमश· 37.56%, 31.09%, 26.30%, 32.00% तथा 28 28% की वृद्धि हुई है अर्थात 1941 से 1991 की अवधि में प्रखण्ड के अन्तर्गत कुल वृद्धि 285 69% की हुई है ।

सारणी 3.1

कटिहार प्रखण्ड में जनसंख्या वृद्धि (1941 - 91)

अध्ययन क्षेत्र	जनगणना वर्ष					
	1941	1951	1961	1971	1981	1991
ग्रामीण क्षेत्र	46732	58135	70405	86283	97656	127683
प्रतिशत		24.2%	21.1%	22 55%	13.18%	30.74%
शहरी क्षेत्र कटिहार	26326	42365	41344	80121	122005	154101
प्रतिशत		60.9%	44.32%	30.60%	52.27%	26.30%
कुल योग (ग्रामीण + शहरी)	**73058**	**100500**	**131749**	**166404**	**219661**	**281784**
प्रतिशत		**37.56%**	**31.09%**	**26.30%**	**32.00%**	**28.28%**

स्रोत :- जिला सांख्यकीय कार्यालय कटिहार (बिहार)।

तालिका 3.1 एवं मानचित्र 3.1 एवं 3.2 से यह स्पष्ट है कि वर्ष 1941 से 1951 तथा 1971 से 1981 की अवधि में जनसंख्या तेजी से बढ़ी है । इसका प्रमुख

N
KATIHAR PRAKHAND
GROWTH OF POPULATION
1951-1991
U.A.
INCREASE
0 – 50
50–100
100–150
150–200
200–250
>250
DECREASE
0 –50
50–100
x UNHABITED
2 0 2 4 6
Km
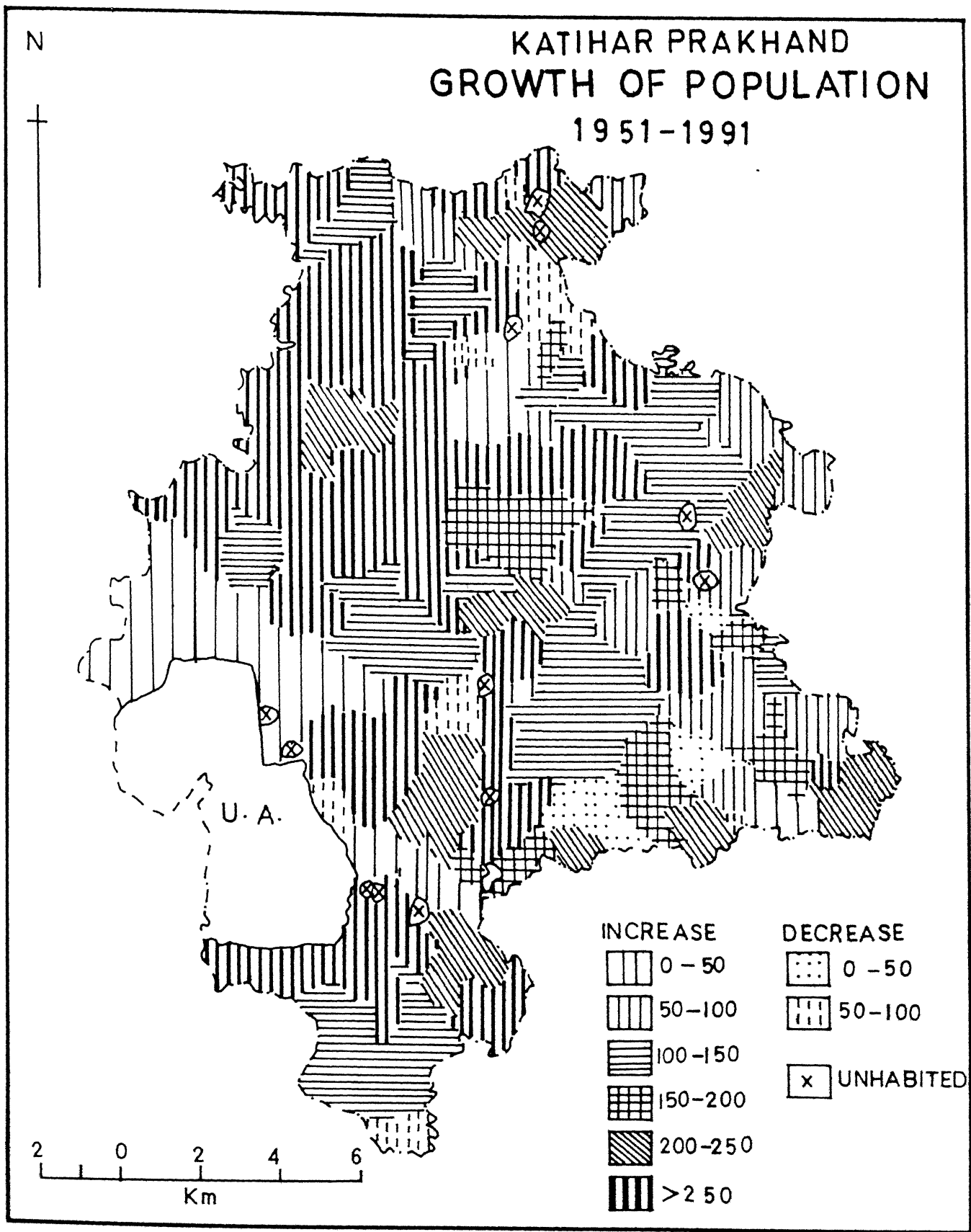
Fig. 3.1

कारण यह है कि आजादी के समय एक लम्बी जनसंख्या बगाल से बिहार को आयी तथा 1973 के कटिहार जनपद के निर्माण के फलस्वरूप अनेक सरकारी (केन्द्रीय एवं प्रादेशिक) कार्यालय स्थापित हुए जिसके फलस्वरूप जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई जबकि 1981-91 के बीच जनसंख्या वृद्धि की दर सामान्य है । गाँव स्तर पर भी 1951 से 1991 की अवधि में जनसंख्या मे तीव्र वृद्धि हुई । विशेषकर यह वृद्धि जगन्नाथपुर (3652.63%), अनखोर (3281 81%), तरजन्ना (1218.18%), राजभवारा (807.78%), परतेली (728.48%), भवानीपुर (693%), बोरनी गोरगामा (604.09%), रामपुर (540.78%) तथा महदेई (470.68%), में दृष्टव्य है । यही नहीं कुछ गांवों की जनसंख्या में तेजी से ह्रास भी हुआ है जो निम्न है - घुसमर बेलवा (-99 05%), पकडिया (- 89.2%), मिरचाई (- 78.9%), पुपरी (- 75.29%), टियर पाडा (- 73 15%), बौरा (-68.55%), गोपालपुर (- 68.51%), एराजी महकोल (- 67.90%), टेढ़वा (- 64.42%) तथा पहाड़पुर में (- 32.80%), 1951 से 1991 की अवधि में जनसंख्या में ह्रास हुआ है । अध्ययन क्षेत्र में 1951 से 91 की अवधि में पिपरी, फरही, सपनी, गोरफर, कलसर, बेलमाछी, बलुआ, रतनपुरा बुघेली, मझुआ, रघेली, खेरा, बठेली, तथा पिपरा आदि गाँव आबाद हुए हैं । इसके विपरीत कुछ आबाद गाँव गैर आबाद भी हो गए है जो निम्नि है - मझौली, शंकर पुर, भेलाही एराजी, मझुआ, खेरा आदि ।

न्याय पंचायत स्तर पर जनसंख्या में सर्वाधिक वृद्धि न्याय पंचायत जगन्नाथपुर (1100%), में हुई है । न्याय पंचायत जगन्नाथपुर में तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या के मुख्य कारण सुविधाओं पर आधारित कृषि कार्य तथा यातायात एवं अन्य सांस्कृतिक सेवाओं की सहज उपलब्धता से सम्बद्ध प्रतीत होती है । सबसे कम वृद्धि न्याय पंचायत दलन में (33.85%) है । न्याय पंचायत राजपारा में इन सुविधाओं की कमी तथा प्रति वर्ष बाढ़ की विभीषिका के कारण जनसंख्या में ह्रास (- 21.36%) की हुई है (तालिका 3.2) ।

शहरी क्षेत्र (कटिहार) पर प्रकाश डालने पर स्पष्ट होता है कि वर्ष 1941 और 1991 के बीच जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुई है । 1941 में शहरी क्षेत्र (कटिहार) की जनसंख्या 26326 थी जो 1991 में 154101 हो गई । यह वृद्धि 50 वर्षों में

485.35% हुई (मानचित्र 3.2) ।

सारणी 3.2

कटिहार प्रखण्ड : न्याय पंचायत स्तर पर जनसंख्या वृद्धि (1951 - 91)

क्र0सं0	न्याय पंचायत	जनसंख्या 1951	जनसंख्या 1991	वृद्धि	वृद्धि दर %
1	चन्देली भर्रा	1841	5457	3616	196 41
2	जगन्नाथपुर	535	6425	5890	1100.00
3.	राजपारा	7431	5843	- 1588	- 21.36
4	रामपुर	1179	5913	4735	401.52
5.	जबड़ा-पहाड़पुर	2991	4460	1469	49.11
6.	बिजैली	2340	5666	3326	142.13
7.	डुमरिया	2620	5452	2832	108.09
8.	महमदिया	2068	4023	1955	94.53
9.	बलुआ	1477	4817	3340	226.13
10	राजभवाडा	1317	6456	5139	390.20
11.	दलन	8566	11466	2900	33.85
12.	बेलवा	4313	6911	2598	60.23
13.	बोरनी	1210	3977	2769	228.67
14.	दोआसे	3040	6441	3401	111.87
15	सौरिया	2072	5522	3450	166.50
16.	डण्डखोरा	2784	6272	3488	125.28
17	रघेली	1720	4104	2384	138.60
18.	हफलागंज	5159	11499	6340	122.89
19	मधेपुरा	1749	4984	3235	184.96
20.	परतेली	3723	11995	8272	222.18
	योग	**58135**	**127683**	**69548**	**119.63**
	शहरी क्षेत्र	**42366**	**154101**	**1,11736**	**263.75**
	कुल योग	**100501**	**281784**	**1,81284**	**180.38**

KATIHAR PRAKHAND
DEMOGRAPHIC CHARACTERISTICS
DECADE VARIATION
RURAL
URBAN(KATIHAR CITY)
VARIATION IN PERCENT
0
10
20
30
40
50
60
70
1941-51
51-61
61-71
71-81
81-91
CENSUS YEARS
POPULATION GROWTH
POPULATION IN THOUSAND
50
60
70
80
90
100
110
120
130
140
150
160
170
180
URBAN
RURAL
1941
51
61
71
81
91
CENSUS YEARS
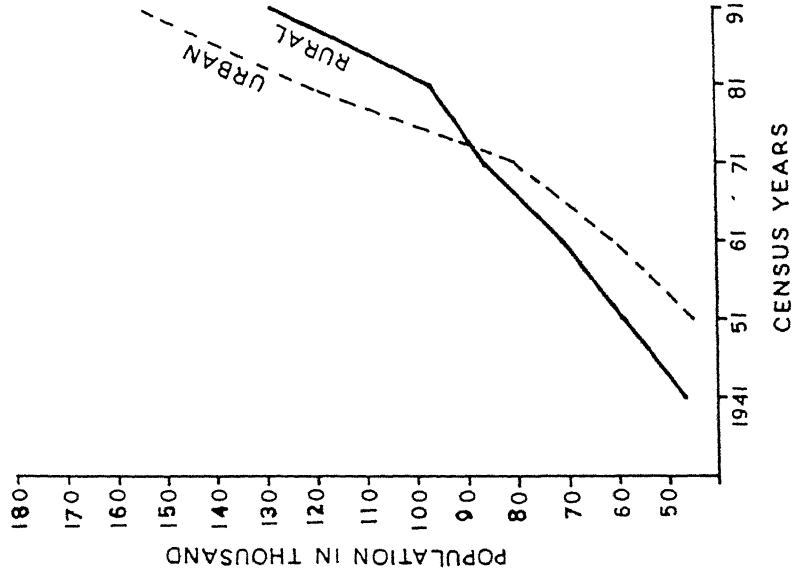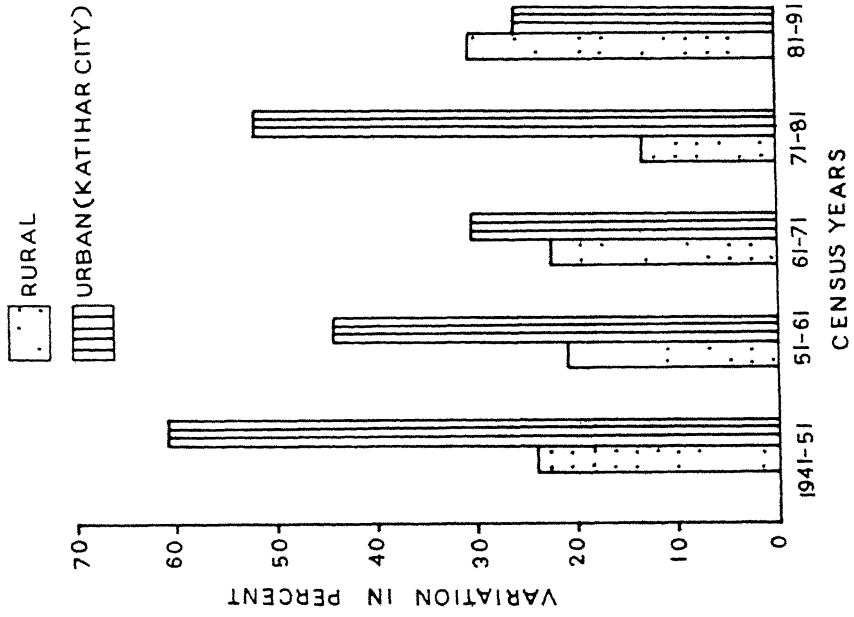
Fig.3.2

अध्ययन क्षेत्र में वृद्धि को निम्न पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है। (तालिका 3 3) जिसका संक्षेप में विवरण निम्न है -

(1) **अतिनिम्न** :- अध्ययन क्षेत्र मे इस वर्ग के अन्तर्गत 1951 में 34 गाँव थे जो 1991 मे घटकर 18 हो गए हैं अर्थात वर्तमान में इस कोटि में 14 28% गाँव मम्मिलित हैं । न्याय पचायत स्तर पर बलुआ मे 3, सौरिया, मधेपुरा, डुमरिया मे 2 तथा जगन्नाथपुर, बेलवा, चन्देली, राजपारा - पहाडपुर, बोरनी, रघेली, हफलागज तथा महमदिया में । गाँव इस कोटि में है ।

(2) **निम्न** .- अध्ययन क्षेत्र मे इस कोटि मे 32 54% गाँव पाये जाते हैं । न्याय पंचायत स्तर पर बलुआ मे सर्वाधिक 4 गाँव सम्मिलित हैं । पहाड़पुर, बिजैली, बोरनी के 3 गाँव, परतेली , रघेली, द्वासे, बेलवा, महमदिया, राजपारा तथा चन्देली मे दो - दो गाँव इस कोटि मे आते हैं । भवाडा तथा मधेपुरा के एक - एक गाँव हैं ।

सारणी 3-3

कटिहार प्रखण्ड : जनसंख्या घनत्व का श्रेणीगत वितरण (1951 - 1991)

श्रेणीयन	घनत्व (व्यक्ति/हे0)	गांवों की संख्या		गाँवों का प्रतिशत	
		1951	1991	1951	1991
जनविहिन	00	20	13	15 87	10.32
अतिनिम्न	< 2	34	18	26.98	14.28
निम्न	2 - 4	46	41	37.51	32.54
मध्यम	4 - 6	13	26	10.32	20.63
उच्च	4 - 8	8	18	6 35	14.29
अति उच्च	> 8	5	10	3.97	7.74
		126	**126**	**100.00**	**100.00**

N
KATIHAR PRAKHAND
POPULATION DISTRIBUTION
1991
U.A.
VILLAGES & POPULATION SIZE
< 200
200 - 499
500 - 999
1000 - 4999
> 5000
KATIHAR CITY
x UNHABITED VILLAGES
2 0 2 4 6
Km
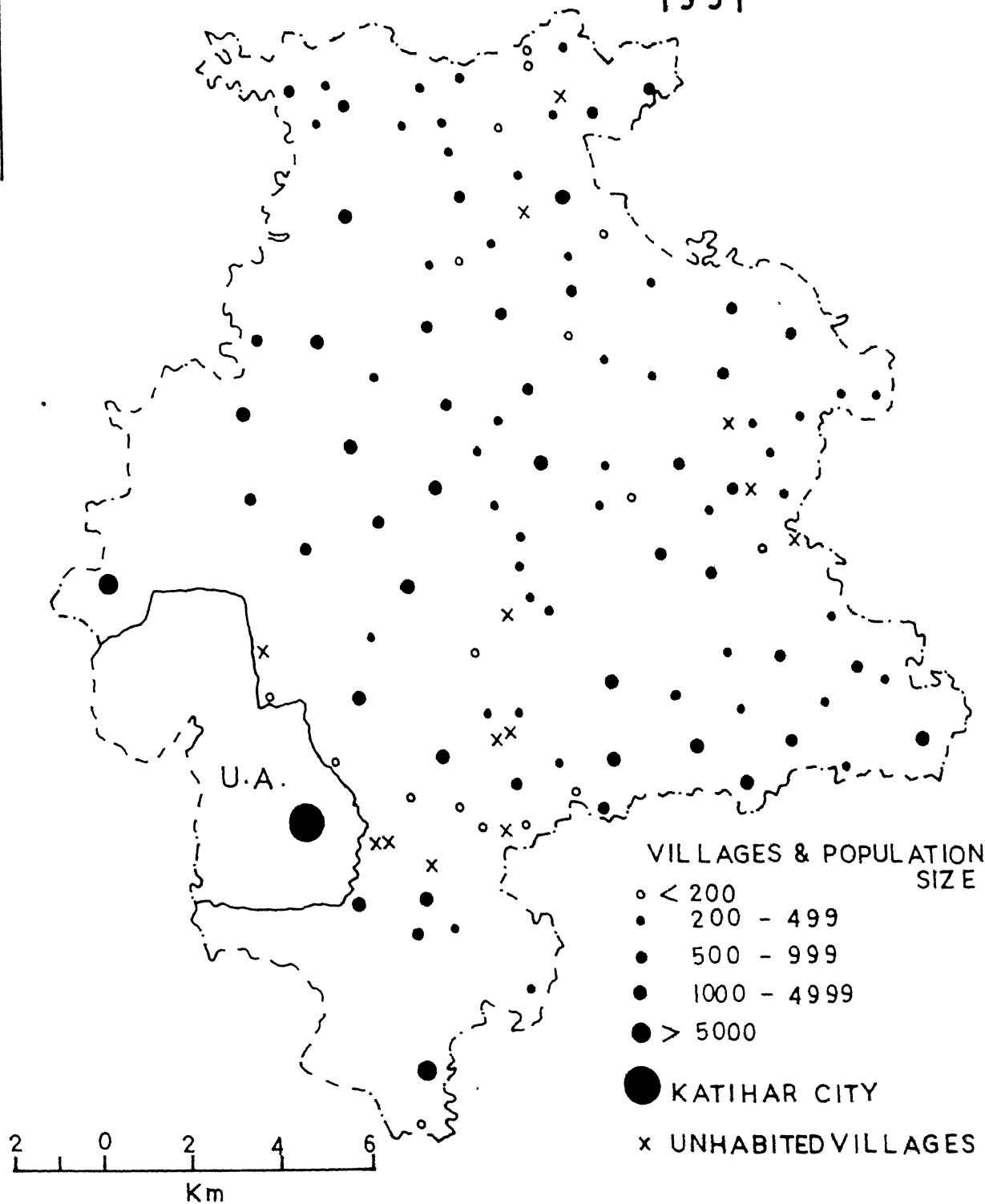
Fig.3.3

(3) **मध्यम** :- इसके अन्तर्गत 20.63% गाँव सम्मिलित हैं । न्याय पंचायत स्तर पर हफलागंज 4, डुमरिया, महमदिया, भवाड़ा में तीन - तीन गाँव, राजपारा, बोरनी, द्वासे तथा जगन्नाथपुर में दो तथा शेष न्याय पंचायतों के अन्तर्गत 1 गाँव इस क्रम में मिलते हैं ।

(4) **उच्च** :- इस वर्ग में 14.29% गाँव सम्मिलित हैं । सर्वाधिक 4 गाँव न्याय पंचायत रघेली में प्राप्त हैं । न्याय पंचायत बेलवा एवं सौरिया में दो - दो गाँव , और दोआसे में 1 गाँव है ।

(5) **अतिउच्च** :- इसके अन्तर्गत 10 गाँव सम्मिलित हैं । सर्वाधिक न्याय पंचायत परतेली में 3 तथा बोरनी डण्डखेरा एवं हफलागंज में एक - एक गाँव पाये जाते हैं ।

(ब) जनसंख्या वितरण :-

जनसंख्या वितरण के अध्ययन से किसी क्षेत्र में जन संकुलता का बोध होता है जिसमें ग्राम बिन्दु के माध्यम से ग्राम स्तर पर जनसंख्या के वितरण को भली - भाँति व्याख्या प्रस्तुत करता है (चित्र 3.3.) । जनसंख्या के वितरण को विभिन्न प्रकार के घनत्वों के माध्यम से अच्छी तरह वर्णित किया जा सकता है ।

(1) **सामान्य घनत्व** :- किसी क्षेत्र की कुल जनसंख्या में कुल क्षेत्रफल के अनुपात को सामान्य घनत्व कहा जाता है । अध्ययन क्षेत्र में ग्राम स्तर पर जनसंख्या एवं उसके सामान्य घनत्व में पर्याप्त असमानता है (चित्र 3.4 एवं 3.5) । सम्बन्धित तालिका में न्याय पंचायत स्तर पर संकलित कर प्रदर्शित किया गया है (तालिका 3.4) ।

जनसंख्या का सर्वाधिक घनत्व कटिहार प्रखण्ड के हफलागंज में (1116 व्यक्ति प्रति वर्ग कि0मी0) है । दूसरे स्थान पर न्याय पंचायत जगन्नाथपुर (662 व्यक्ति प्रति वर्ग कि0 मी0) है । न्याय पंचायत डुमरिया, दोआसे, राजपारा एवं रामपुर का जन घनत्व (564 से 530 व्यक्ति /कि0 मी0^2) है । सबसे कम जनघनत्व न्याय पंचायत बेलवा का

KATIHAR PRAKHAND
GENERAL DENSITY
1951
N
U. A.
PERSONS PER HECTARE
<2
2 - 4
4 - 6
6 - 8
> 8
UNHABITED
2
0
2
4
6
Km
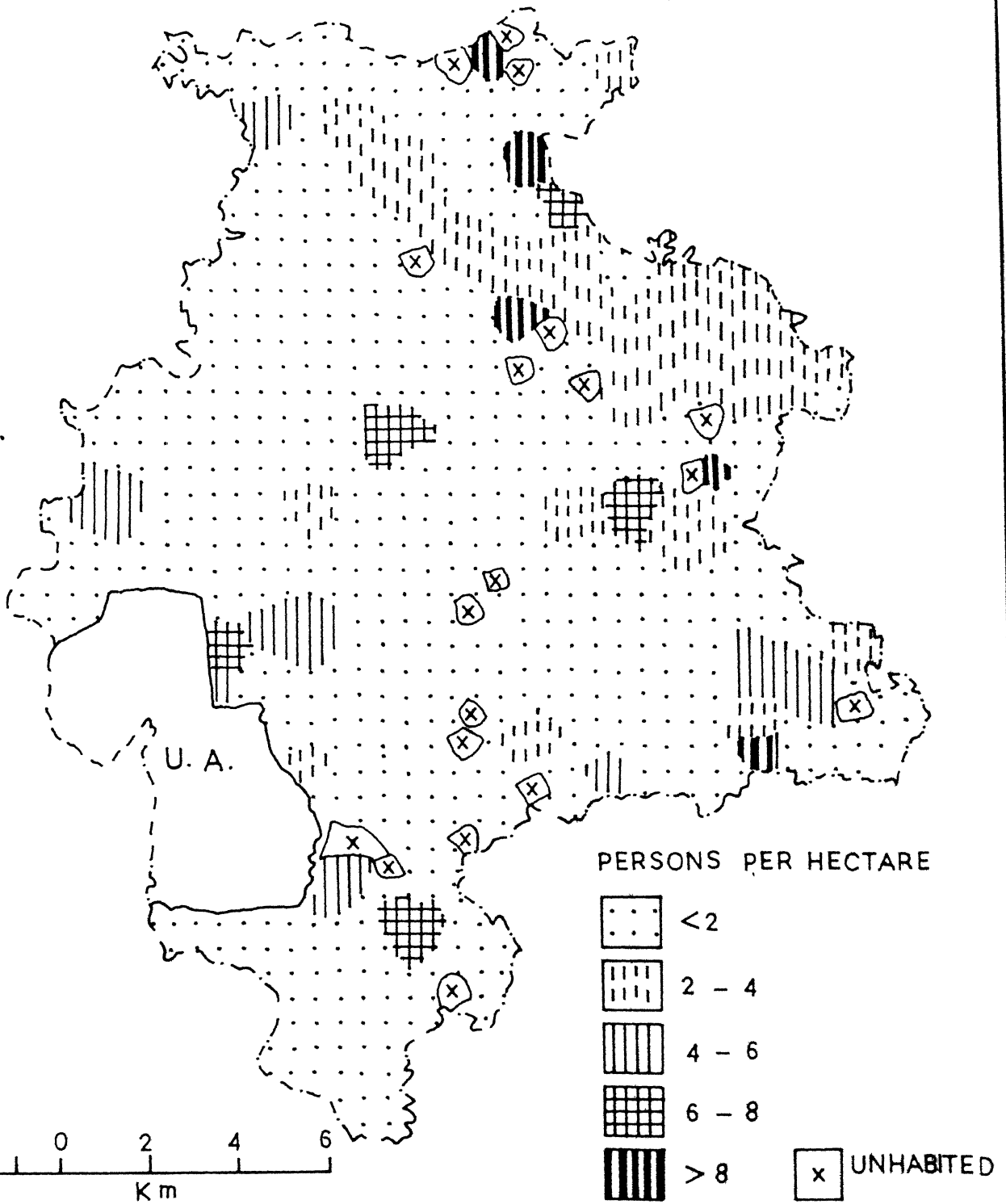
Fig. 3.4

सारणी 3-4

कटिहार प्रखण्ड: न्याय पंचायत स्तर पर जनघनत्व (1991)

क्र0स0	न्याय पंचायत	कुल जनसख्या (1991)	क्षेत्रफल (किमी0^2)	घनत्व/किमी0^2	श्रेणीयन
1.	चन्देली भर्रा	5457	13.51	404	16
2	जगन्नाथपुर	6425	9.70	662	2
3	राजपारा	5843	10.83	540	5
.4	रामपुर	5913	11.20	530	6
5.	जबड़ा पहाड़पुर	4460	10.21	437	14
6	बिजैली	5666	12.49	454	13
7.	डुमरिया	5452	9.67	564	3
8.	महमदिया	4023	11.63	346	18
9	बलुआ	4817	13.33	361	17
10.	राजभवाड़ा	6456	13.90	464	11
11.	दलन	11466	23 97	478	10
12.	बेलवा	6911	25.86	267	20
13.	बोरनी	3977	10.38	343	19
14.	दोआसे	6441	11.54	558	4
15.	सौरिया	5522	12.02	459	12
16.	डण्डखोरा	6272	13.02	482	9
17.	रघैली	4104	8.23	499	7
18.	हफलागंज	11499	10.30	1116	1
19.	मघेपुरा	4984	12.22	408	15
20.	परतेली	11995	24.06	498	8
	योग	**127683**	**268.07**	**476**	
	शहरी क्षेत्र (कटिहार)	**154101**	**36.00**	**4281**	
	कुल योग (अध्ययन क्षेत्र)	**281784**	**304.07**	**927**	

N
KATIHAR PRAKHAND
GENERAL DENSITY
1991
U.A.
PERSONS PER HECTARE
< 2
2 – 4
4 – 6
6 – 8
> 8
UNHABITED
2 0 2 4 6
Km
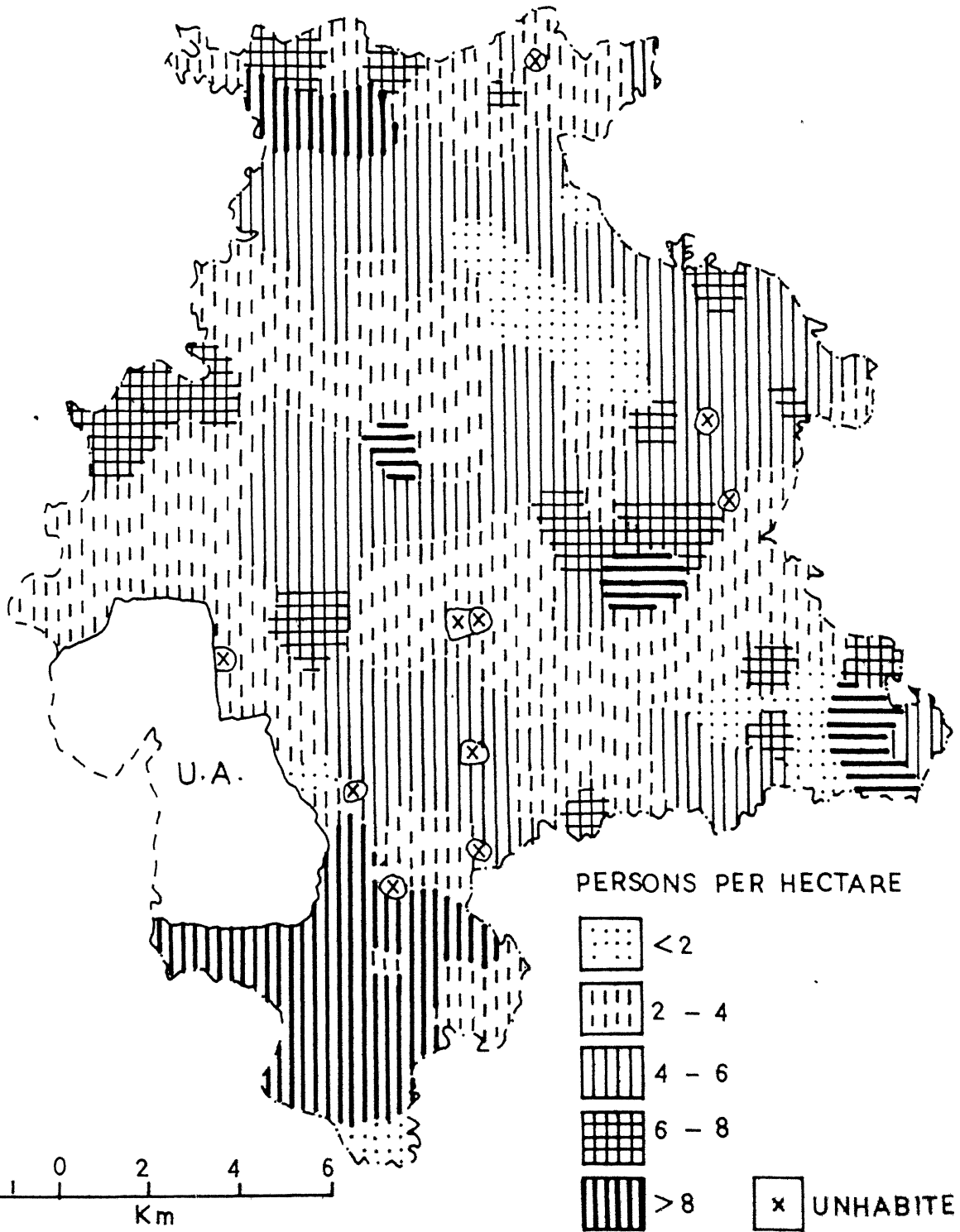
Fig. 3·5

(267 व्यक्ति/कि0मी0^2) है । शहरी क्षेत्र कटिहार का जनघनत्व 4281 व्यक्ति/कि0मी0 है । ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र का औसत जन घनत्व 927 व्यक्ति मिलता है । तुलनात्मक दृष्टि से 1991 में बिहार प्रदेश · 497 व्यक्ति/कि0 मी0^2 तथा सम्पूर्ण भारत : 274 व्यक्ति/कि0 मी0^2)^2 से अध्ययन क्षेत्र का जनघनत्व प्रति/कि0मी0 अधिक है ।

इसी प्रकार ग्राम स्तर पर भी जनघनत्व में पर्याप्त भिन्नता मिलती है (चित्र 3.4, चित्र 3.5 एवं सारणी 3.3) 1991 के जनसंख्या के आधार पर सर्वाधिक जनघनत्व अध्ययन क्षेत्र के ग्राम बोरनी गोरगामां (48 व्यक्ति/एकड) में प्राप्त है जबकि न्यूनतम ग्राम कवैया (1.89 व्यक्ति/एकड़) न्याय पचायत चन्देलीमेंपाया गया है ।

जनसख्या घनत्व के आधार पर अध्ययन क्षेत्र के गाँवों को छ· श्रेणियों में बाँटा गया है जिसमें अति निम्न में 18, निम्न में 41, मध्यम में 26, उच्च में 18 तथा अति उच्च के अन्तर्गत 10 गाँव आते हैं । उच्च तथा अति उच्च गाँव अध्ययन क्षेत्र के उस भाग में स्थित है जहाँ अधिक उपज देने वाली द्वि-फसली भूमि, सिंचाई, उन्नतशील बीज, उर्वरक नवीन कृषि पद्धति, परिवहन एवं सेवा केन्द्रों आदि की सुविधाएँ प्राप्त हैं ।

(2) **कायिक घनत्व :-** किसी क्षेत्र की कुल कृषित भूमि एवं उस क्षेत्र की कुल जनसंख्या के अनुपात को कायिक घनत्व कहा जाता है । इस अध्ययन क्षेत्र का औसत कायिक घनत्व लगभग 6.3 व्यक्ति प्रति हे0 है । विकास खण्ड स्तर पर इस घनत्व में पर्याप्त भिन्नता मिलती है (चित्र 3.6 एवं सारणी 3.5) सर्वाधिक कायिक घनत्व (14.61 व्यक्ति/हे0) न्याय पंचायत हफलागंज में मिलता तथा न्यूनतम कायिक घनत्व (3.71 व्यक्ति/हे0) न्याय पंचायत बेलवा में पाया जाता है । शेष सभी न्याय पंचायतों में कायिक घनत्व इसके बीच न स्थित है ।

(3) **कृषि घनत्व :-** किसी क्षेत्र कृषित भूमि तथा कृषि कार्य में लगी हुई जनसंख्या के अनुपात को कृषि घनत्व कहा जाता है । इससे कृषि भूमि पर जनसंख्या के दबाव का आभास मिलता है जिससे ग्रामीण विकास अथवा नियोजन में सहायता मिलती है । अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत लगभग 20255 हे0 भू-भाग पर कृषि की जाती है तथा इसकी 45804 जनसंख्या

N
KATIHAR PRAKHAND
PHYSIOLOGICAL DENSITY
1991
U.A.
PERSONS PER HECTARE
< 4
4 - 6
6 - 8
8 - 10
>10
2 0 2 4 6
Km
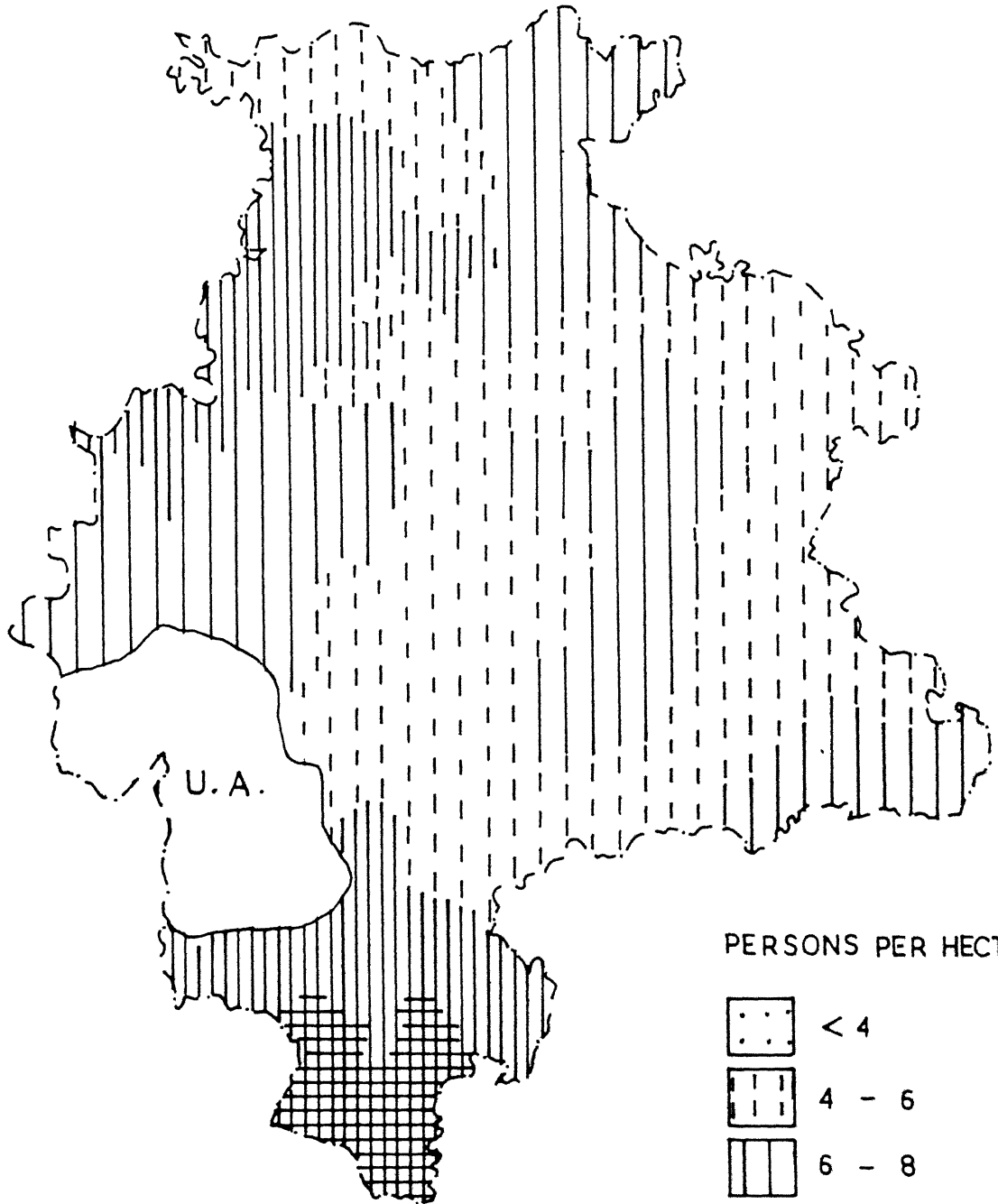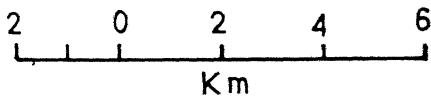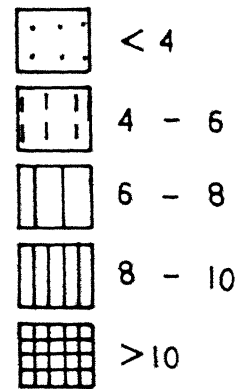
Fig. 3·6

सारणी 3.5

कटिहार प्रखण्ड : विभिन्न घनत्वों का विवरण प्रतिरूप

क्रम सं0	न्याय पंचायत	कृषित भूमि (हे0में)	जनसंख्या	कायिक घनत्व (व्यक्ति/हे0)	कृषि में संलग्न जनसंख्या	कृषि घनत्व व्यक्ति/हे0
1.	चन्देली भर्रा	5457	1088	5.01	2390	2.19
2.	जगन्नाथपुर	6425	694	9.25	2645	3.81
3.	राजपारा	5843	868	6.73	2085	2.40
4.	रामपुर	5913	688	8.59	2825	4.10
5.	जबड़ा पहाड़पुर	4460	824	5.41	2119	2.57
6.	बिजैली	5666	1108	5.11	2470	2.22
7.	डुमरिया	5452	864	6.31	2775	3.21
8.	महमदिया	4023	665	6.04	1395	2.09
9.	बलुआ	4817	934	5.15	2250	2.40
10	राजमवाड़ा	6456	917	7.04	2115	2.30
11	दलन	11466	1978	5.79	3470	1.75
12	बेलवा	6911	1861	3.71	2708	1.29
13.	बोरनी	3977	920	4.32	1825	1.98
14.	दोआसे	6441	1076	5.98	2952	2.74
15.	सौरिया	5522	784	7.04	2072	2.64
16.	डण्डखोरा	6272	914	6.86	1910	2.08
17.	रघैली	4104	768	5.34	1285	1.67
18.	हफलागंज	11499	787	14.61	3895	4.94
19.	मधेपुरा	4984	1048	4.75	1857	1.77
20.	परतेली	11995	1469	8.16	2956	2.01
		127683	**20255**	**6.3**	**45804**	**2.26**

स्रोत :- जिला सांख्यिकी कार्यालय कटिहार (बिहार)

N
KATIHAR PRAKHAND
AGRICULTURAL DENSITY
1991
U.A.
PERSONS PER HECTARE
< 2
2 - 3
3 - 4
> 4
2 0 2 4 6
Km
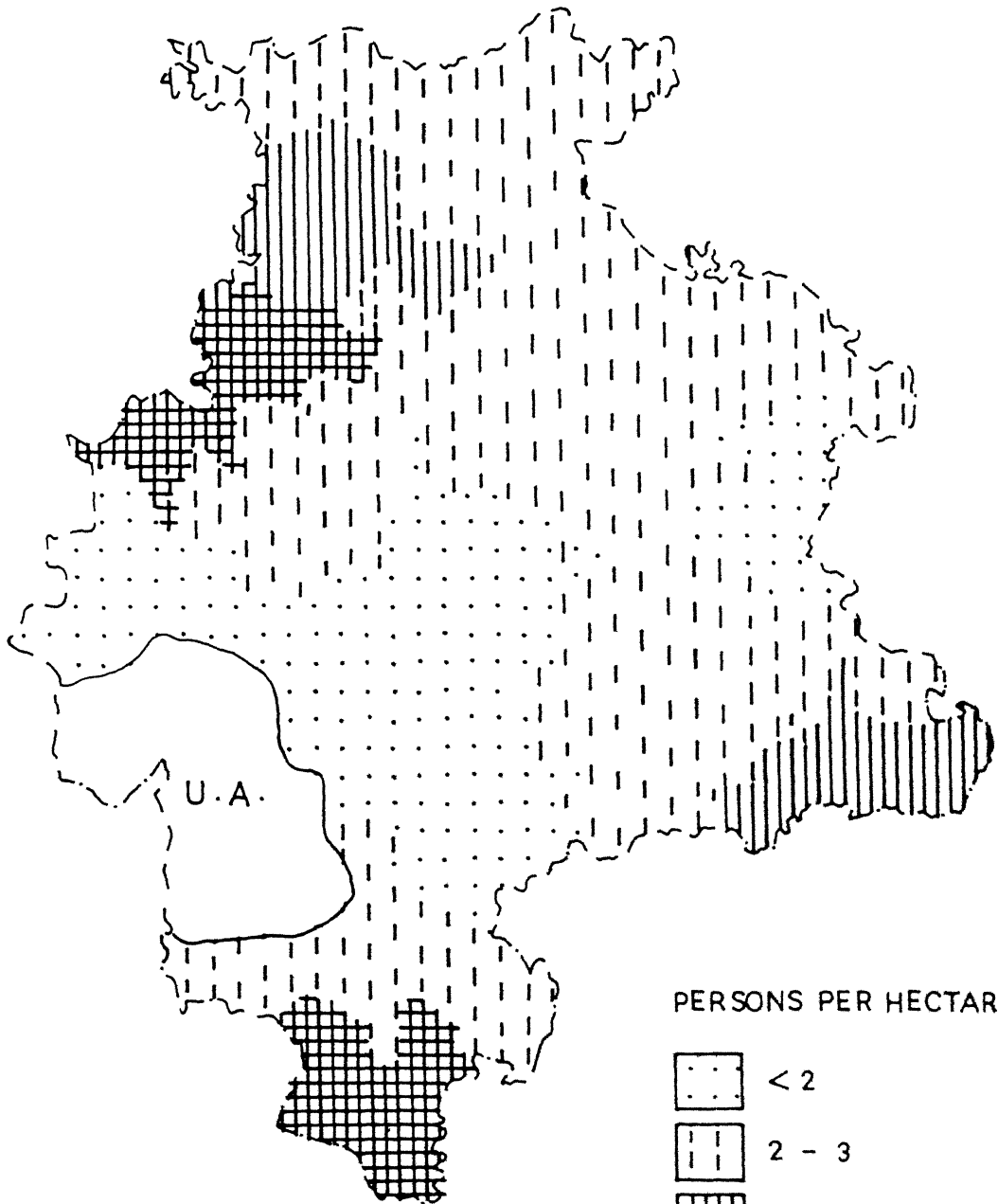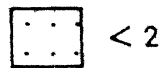
Fig.3.7

कृषि कार्यों पर आश्रित है । प्रखण्ड का औसत कृषि घनत्व 2.26 व्यक्ति प्रति हेक्टेअर अथवा 226 व्यक्ति प्रति वर्ग कि0 मी0 मिलता है । इसका विवरण (चित्र 3.7 एवं सारणी 3.5) प्रदर्शित किया गया है ।

सर्वाधिक कृषि घनत्व (4.94 व्यक्ति/हे0) न्याय पंचायत हफलागंज में मिलता है तथा न्यूनतम घनत्व (2.19 व्यक्ति/हे0) न्याय पंचायत चन्देली में मिलता है ।

(स) विभिन्न घनत्वों का तुलनात्मक विवेचन

सामान्य घनत्व, कायिक घनत्व एवं कृषि घनत्व के क्षेत्रीय वितरण तथा इन पर प्रभाव डालने वाले तत्वों के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि इन घनत्वों के क्षेत्रीय प्रतिरूपों में अन्तर्सम्बन्ध है । इनके समायोजन से (सारणी 3.6) अध्ययन क्षेत्र को तीन घनत्व कोटियों के अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है ।

(1) **उच्च घनत्व** :- इसके अन्तर्गत न्याय पंचायत हफलागंज, जगन्नाथपुर, रामपुर, डुमरिया, तथा दोआसे सम्मिलित है । ये अधिकतम जनसंख्या के घनत्व के सर्वाधिक पोषक है । इसमें उपजाऊ बहुशस्यीय भूमि तथा मुद्रादायिनी पटसन, केला के क्षेत्रों की बहुलता है सिंचाई के साधनों की सुगमता नवीन कृषि प्रविधियों के प्रयोग एवं यातायात के साधनों के विकास के कारण इन न्याय पंचायतों में अधिक जनसंख्या पाई जाती है ।

(2) **मध्यम घनत्व** :- इसके अन्तर्गत न्याय पचायत राजपारा, सौरिया, राजभवाड़ा , परतेली डण्डखोरा, जबड़ा-पहाडपुर, बिजैली, महमदियाँ, दलन तथा चन्देली को सम्मिलित किया जा सकता है । इनमें कृषि सम्बन्धी लगभग सभी सुविधाऐं सुलभ है परन्तु वर्षा काल में जल जमाव होने के कारण खरीफ की फसलें नष्ट हो जाती है । साथ ही सिंचाई एवं यातायात के साधनों का समुचित विकास न होने के कारण जनसंख्या का घनत्व मध्यम श्रेणी का पाया जाता है ।

(3) **न्यून घनत्व** :- इसके अन्तर्गत न्याय पंचायत बलुआ, रघेली, मधेपुरा, बोरनी तथा बेलवा

सारणी 3.6

कटिहार प्रखण्ड विभिन्न घनत्वों का तुलनात्मक अध्ययन (1991)

क्र0सं0	न्याय पंचायत		सामान्य घनत्व	श्रेणीयन	कायिक घनत्व	श्रेणीयन	कृषि घनत्व	श्रेणीयन	स्तरीय मानों का योग	औसत
1.	चन्देली भर्रा	स्तरीयमान	404	16	501	17	219	12	45	15
2	जगन्नाथपुर	"	662	2	925	2	381	3	7	2.23
3	राजपारा	"	540	5	673	8	240	8	21	7
4.	रामपुर	"	530	6	859	3	410	2	11	3.66
5	जबडा पहाडपुर	"	437	14	541	13	257	7	34	11.33
6	बिजैली	"	454	13	511	16	222	11	40	13.33
7	डुमरिया	"	564	3	631	9	321	4	16	5.33
8.	महमदिया	"	346	18	604	10	209	12	40	13.33
9.	बलुआ	"	361	17	515	15	240	9	41	13.66
10.	राजमाड़ा	"	464	11	704	5	230	10	26	8.66
11.	दलन	"	478	10	579	12	175	18	40	13.33
12.	बेलवा	"	267	20	371	20	129	20	60	20
13.	बोसी	"	343	19	432	19	198	16	54	18
14.	दोआसे	"	558	4	598	11	274	5	20	6.66
15.	सौरिया	"	459	12	704	6	264	6	27	8
16.	डण्डखोरा	"	482	9	686	7	208	14	30	10
17.	रघेली	"	499	7	534	15	167	19	41	13.66
18.	हफलागंज	"	1116	1	1161	1	498	1	3	1
19.	मघेपुरा	"	408	15	475	18	177	17	50	16.66
20.	परतेली	"	498	8	816	4	201	15	27	9

का भू भाग आता है । यह क्षेत्र प्रति वर्ष वर्षाकाल में बाढ की गहन चपेट में आ जाता है । अत खरीफ की लगभग 75% फसलें नष्ट हो जाती है । यह मुख्यतया एक फसली क्षेत्र है । यहाँ प्रति वर्ष बाढ़ का प्रभाव पड़ जाता है । यहाँ सिंचाई एवं यातायात के साधनों का भी अभाव है । अन्य आर्थिक साधन कम विकसित हैं इसीलिए इन न्याय पंचायतों में जनसंख्या का घनत्व बहुत न्यून मिलता है ।

(द) यौन अनुपात

अध्ययन क्षेत्र में जाति संरचना, कृषि भूमि की उपलब्धता, साक्षरता एवं विभिनन सेवाओं की उपलब्धता आदि जैसे स्थानीय कारकों से यौन -अनुपात विशेष रूप से प्रभावित हुआ है । कटिहार प्रखण्ड के सभी 20 न्याय पंचायतों में औरतों की संख्या पुरूषों से कम है । और सबसे कम न्याय पंचायत रघेली की (563) है ।

किसी देश के सामाजिक एवं आर्थिक ढांचे को तथा उससे सम्बन्धित तत्वों को प्रभावित करने में यौन-अनुपात एक आधारभूत कारक है । इससे कृषि कार्य एवं अन्य कार्य हेतु उपलब्ध श्रमिकों की संख्या का पता चलता है जिसका आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान है । अध्ययन क्षेत्र में भी भारत के अन्य भागों की भाँति उच्च वर्गीय परिवारों की महिलाएँ कृषि कार्य में योगदान नहीं देती किन्तु निम्नवर्गीय परिवारों की महिलाएँ कृषि से सम्बन्धित अधिकांश कार्यो (जैसे बुआई, निराई, सिंचाई, कटाई, मड़ाई, ओसाई आदि) में सक्रिय रूप से भाग लेती हैं ।

इस क्षेत्र में यौन-अनुपात में परिवर्तन का विवरण निम्नवत् है ।

विगत वर्षों में जनसंख्या के गणनानुसार पुरूषों की तुलना में महिलाओं की संख्या वर्ष 1951 और 1971 के बीच क्रमश. बड़ी है । तथा 1981 और 1991 की बीच क्रमश: घटी है । सारिणी (3.7) । वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार महिलाओं की संख्या 923 प्रति हजार पुरूष है । इसका प्रमुख कारण , अशिक्षा, गरीबी, स्त्रियों का शोषण एवं संघर्षशील जीवन है । अध्ययन क्षेत्र काफी पिछड़ा हुआ है । स्त्रियाँ भी पुरूषों की तरह कार्य करती है । यहाँ तक अपने भरण-पोषण के लिए बाहर भी चली जाती है

सारणी 3.7

यौन - अनुपात में परिवर्तन (1951-1991)

वर्ष	महिलाओं की संख्या (प्रति हजार पुरूष)			
	जनसंख्या	पुरूष	स्त्री	अनुपात स्त्री का
1951	58135	25623	23512	917
1961	70405	36375	34030	935
1971	86283	44139	42144	954
1981	97656	50121	47535	948
1991	127683	66398	61285	923

स्रोत : जिला सांख्यिकी कार्यालय कटिहार (बिहार) ।

और दैनिक मजदूरी पर जीवन यापन भी करती है । न्याय पंचायत स्तर पर यौन, अनुपात में अधिक भिन्नता दृष्टिगोचर होती है जो आगे की तालिका 3.8 से स्पष्ट है ।

(य) नगरीकरण :-

किसी क्षेत्र में नगरीकरण का विकास उस क्षेत्र की आर्थिक प्रगति का द्योतक है । ऐसा समझा जाता है कि जिस क्षेत्र में नगरीकरण जितना अधिक होगा, वह क्षेत्र उतना ही अधिक विकसित होगा । इस अध्ययन क्षेत्र में एक नगरपालिका (कटिहार) एवं 20 न्याय पंचायत है । वर्ष 1991 में अध्ययन क्षेत्र में नगरीय जनसंख्या 1,54,101 है जो कुल जनसंख्या का 54.68% है[3] अर्थात् अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत केवल जनपद कार्यालय कटिहार (शहरी क्षेत्र) के अन्तर्गत ही आधी से अधिक जनसंख्या निवास करती है । अध्ययन क्षेत्र में नगरीय जनसंख्या अधिक होने का प्रमुख कारण इसलिए है कि वहाँ पर दो जूट उद्योग, कागज उद्योग, दो फ्लावर फैक्ट्री तथा एन0एफ0 रेलवे का प्रधान कार्यालय

सारणी 3.8

कटिहार प्रखण्ड : यौन अनुपात (1991)

क्र0 सं0	न्याय पचायत	पुरूषों की संख्या	स्त्रियों की संख्या	कुल जन-संख्या	महिलाओं की सख्या प्रति हजार पुरूष	श्रेणीयन
1.	चन्देली भर्रा	2804	2653	5457	946	7
2.	जगन्नाथपुर	3259	3166	6425	971	4
3.	राजपारा	2962	2881	5843	973	2
4.	रामपुर	3043	2870	5913	943	8
5.	जबड़ा पहाडपुर	2315	2145	4460	926	10
6.	बिजैली	3026	2640	5666	872	3
7.	डुमरिया	2862	2590	5452	905	17
8.	महमदिया	2091	1932	4023	924	11
9.	बलुआ	2466	2351	4817	953	5
10.	राजभवाडा	3358	3098	6456	923	12
11.	दलन	5993	5473	11466	913	15
12.	बेलवा	3587	3324	6911	927	9
13.	बोरनी	2042	1935	3977	948	6
14.	दोआसे	3354	3087	6441	920	14
15	सौरिया	2791	2731	5522	978	1
16.	डण्डखोरा	3309	2963	6272	895	18
17.	रघेली	2178	1226	4104	563	20
18.	हफलागंज	6023	5476	11499	909	16
19.	मधेपुरा	2593	2391	4984	922	13
20.	परतेली	6342	5653	11995	891	19

एवं अनेक छोटे, लघु उद्योग स्थापित हैं । इसके अलावे नगरों की ओर प्रवास, नगरों में रोजगार का सुअवसर, चिकित्सा सुविधा, शिक्षा, आदि सुविधाओ का विकास आदि के कारण भी अधिकांश जनसंख्या उन्मुख हुई है । अध्ययन क्षेत्र का ग्रामीण अंचल काफी पिछडा हुआ है जिसके चलते रोजमर्रा की आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति एवं जीवन यापन से सम्बन्धित संसाधनों की पूर्ति हेतु प्रतिदिन स्त्री, पुरूष नगरीय क्षेत्र में जाते हैं और धीरे - धीरे कहीं बस जाते हैं जिसके चलते आज ग्रामीण क्षेत्रों से तीव्र गति से जनसंख्या नगरीय क्षेत्र की ओर पलायन कर रही हैं ।

(र) साक्षरता :-

भूमि उपयोग द्वारा आर्थिक सम्पन्नता में वृद्धि का साक्षरता पर गहरा प्रभाव प्रतीत होता है । इसी प्रकार साक्षरता का भी क्षेत्र के आर्थिक सामाजिक विकास में प्रमुख योगदान है जिसे सारिणी (3.9) द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है ।

अध्ययन क्षेत्र में साक्षरता 18.74% है जो जनपद प्रदेश एवं देश की तुलना में अपेक्षाकृत बहुत ही कम है । यहाँ सर्वाधिक साक्षरता (26.75%), रघेली न्याय पंचायत में मिलती है । दूसरे स्थान पर द्वाशे न्याय पंचायत (25.57%), है । न्यूनतम साक्षरता दलन न्याय पंचायत का (10.71%), के अलावा डण्डखोरा (26.65%), हफलागंज (24.14%), बलुआ (23.91%), बौरनी (21.05%) न्याय पंचायत का है । शेष न्याय पंचायतों की साक्षरता अन्य न्याय पंचायातों की अपेक्षा सामान्य पाया जाता है । पुरूषों की अधिकतम साक्षरता (20.37%) रघैली न्याय पंचायत में है एवं न्यूनतम साक्षरता (10.71%) दलन न्याय पंचायत में पाई जाती है । स्त्रियों की अधिक साक्षरता (7.11%), द्वाशे न्याय पंचायत में एवं न्यूनतम साक्षरता (2.23%), दलन न्याय पंचायत में है । स्त्रियों की साक्षरता की दृष्टि से न्याय पंचायत हफलागंज (7 00%) का द्वितीय स्थान है ।

बेलवा का (19.85%), राजभवाडा का (19.30%), सौरिया (18.84%), जगन्नाथपुर (17.45%), रामपुर (17.03%), मधेपुरा (16.31%), परतेली (15.98%), जबड़ा पहाड़पुर

सारणी 3.9

कटिहार प्रखण्ड : साक्षरता 1991

क्रम सं0	न्याय पंचायत	कुल जनसंख्या	शिक्षित जनसंख्या	शिक्षित प्रतिशत	श्रेणीयन	शिक्षित जनसंख्या में पुरूष एवं स्त्री					
						पुरूष जन-संख्या	प्रतिशत	श्रेणीयन	स्त्री जनसंख्या	प्रतिशत	श्रेणीयन
1.	चन्देली भर्रा	5457	754	13.82	19	580	10.63	19	174	3 19	17
2.	जगन्नाथपुर	6425	1121	17 45	11	845	13 15	14	276	4 30	10
3.	राजपारा	5843	855	14.63	17	648	11 09	18	207	3 54	14
4.	रामपुर	5913	1007	17.03	12	783	13 24	13	224	3 79	11
5.	जबड़ा पहाड़पुर	4460	710	15.92	15	606	13 59	12	104	2 33	18
6.	बिजैली	5660	818	14.45	18	690	12.19	15	128	2 26	19
7.	डुमरिया	5452	1369	25.11	3	996	18 27	5	373	6 84	3
8.	महमदिया	4023	625	15 53	16	489	12 15	17	136	3 08	15
9.	बलुआ	4817	1152	23.91	6	919	19 08	2	233	4 83	6
10.	राजभवाड़ा	6456	1246	19.30	9	963	14.92	9	283	4 38	8
11.	दलन	11466	1229	10.71	20	973	8.48	20	256	2.23	20
12.	बेलवा	6911	1372	19.85	8	1054	15.25	8	318	4.60	7
13.	बौरनी	3977	837	21.05	7	696	17.50	6	141	3.55	13

क्रमशः

14.	दोआसे	6441	1649	25.57	2	1191	18.49	4	458	7.11	1
15.	सौरिया	5522	1040	18.84	10	800	14.49	10	240	4 35	9
16.	डण्डखोरा	6272	1546	24.65	4	1169	18 64	3	377	6 01	5
17.	रघेली	4104	1098	26.75	1	836	20.37	1	262	6 38	4
18.	हफलागंज	11499	2776	24.14	5	1971	17 14	7	805	7 00	2
19.	मधेपुरा	4984	813	16 31	13	630	12.64	15	183	3 67	12
20.	परतेली	11995	1917	15.98	14	1526	12.72	14	391	3.26	16
	योग	**127683**	**23934**	**18.74**		**18365**	**14.38**		**5569**	**4.36**	

स्रोत : जिला सांख्यिकीय कार्यालय कटिहार (बिहार)।

(15 92%), महमदिया (15.53%), राजपारा (14.63%), बिजैली (14.45%) एवं चन्देली भर्रा (13.82%) है ।

(ल) व्यावसायिक संरचना :-

कुल जनसंख्या का कितना भाग विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में और किन अनुपातों में लगा हुआ है, इस विवेचना को व्यवसायिक संरचना का विश्लेषण कहा जाता है । इसके द्वारा किसी क्षेत्र में विकास के प्रारूप एवं स्तर का ज्ञान होता है । इससे मृदा एवं अन्य संसाधनों पर जनसख्या के दबाव का भी अनुमान लगाया जा सकता है । यह अध्ययन क्षेत्र खनिज-संसाधनों से पूर्णतया विहीन है । यह सघन जनसंख्या युक्त एक कृषि प्रधान क्षेत्र है । उपजाऊ मृदा ही इसका मुख्य साधन है, जिससे इस क्षेत्र की जनसंख्या का भरण पोषण होता है । यही कारण है कि व्यवसायरत जनसंख्या का 95.74% भाग प्राथमिक वर्ग के उत्पादनों में लगा हुआ है जिसमें कृषक 39.90%, खेतिहार मजदूर 55.49%, एवं पशुपालन 0 35% है । शेष व्यवसायरत जनसंख्या द्वितीय वर्ग (1.08%) एवं तृतीय वर्ग (3.17%) उत्पादनों में लगी हुई हैं ।

इस क्षेत्र में व्यवसायिक जनसंख्या कुल जनसंख्या का 45.11% है । व्यावसायिक जनसंख्या में पुरूषों का प्रतिशत 70.07% एवं स्त्रियों का प्रतिशत 29.13% है । इस क्षेत्र में काम न करने वालें में पुरूष 36.49% है । एवं स्त्रियाँ 63.51% है । वर्ष 1991 में कटिहार प्रखण्ड में व्यवसायिक संरचना का विवरण है सारणी 3.10 में दिया गया है ।

(व) न्याय पंचायत स्तर पर व्यवसायिक संरचना :-

चित्र 3.8 सारणी 3.11 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र की 45.11% जनसंख्या कार्यरत है । किन्तु न्याय पंचायत स्तर पर इसमें पर्याप्त अन्तर मिलता है । कार्यरत जनसंख्या कृषकों का अधिकतम प्रतिशत 48.26% राजपारा न्याय पंचायत में पाया जाता है परन्तु इसका न्यूनतम प्रतिशत (36.52%), बलुआ न्याय पंचायत में मिलता है । अन्य न्याय पंचायतों में इसका प्रतिशत मध्यवर्ती रूप में सरणी 3.11 में मिलता है।

सारणी 3.10

कटिहार प्रखण्ड : व्यवसायिक संरचना 1991

क्र0सं0	वर्ग	पुरूषों की संख्या	स्त्रियों की संख्या	कुलयोग	कार्यरत जन-संख्या के आधार पर प्रतिशत	कुल जनसंख्या के आधार पर प्रतिशत
1.	कृषक	17298	5685	22983	39.90	18 00
	प्रतिशत	30.02%	9.88%			
2.	खेतिहर मजदूर	21280	10679	31959	55 49	25.03
	प्रतिशत	36.95%	18 54%			
3.	पशुपालक	169	35	204	0.35	0.16
	प्रतिशत	0.29%	0.06%			
4.	घरेलू उद्योग	144	48	192	0.33	0 15
	प्रतिशत	0.25%	0 08%			
5.	लघु एवं बडे उद्योग	375	59	431	0.75	0.34
	प्रतिशत	0.65%	0.10%			
6	व्यापार एवं वाणिज्य	135	32	166	0 29	0.13
	प्रतिशत	0.23%	0 06%			
7.	परिवहन एवं सचार	73	4	77	0.13	0.06
	प्रतिशत	0.12%	0.01%			
8.	अन्य सेवाएँ	1348	235	1583	2.75	1.24
	प्रतिशत	2.34%	0.41%			
	कुल कार्यरत जनसंख्या	40821	16777	57598	100.00	45.11
	प्रतिशत	70.87	29.13	100.00		
	काम न करने वाली	25577	44508	70085		54.89
	का प्रतिशत	36.49	63.51	100.00		
	कुल योग	**66398**	**61285**	**127683**		**100**

N
KATIHAR PRAKHAND
RURAL OCCUPATIONAL STRUCTURE
1991
U. A.
CULTIVATORS
AGRICULTURAL LABOURERS
LIVE STOCK
MANUFACTURING & HOUSE HOLD INDUSTRIES, TRADE COMMERCE
OTHER SERVICES
2 0 2 4
Km
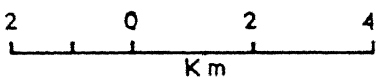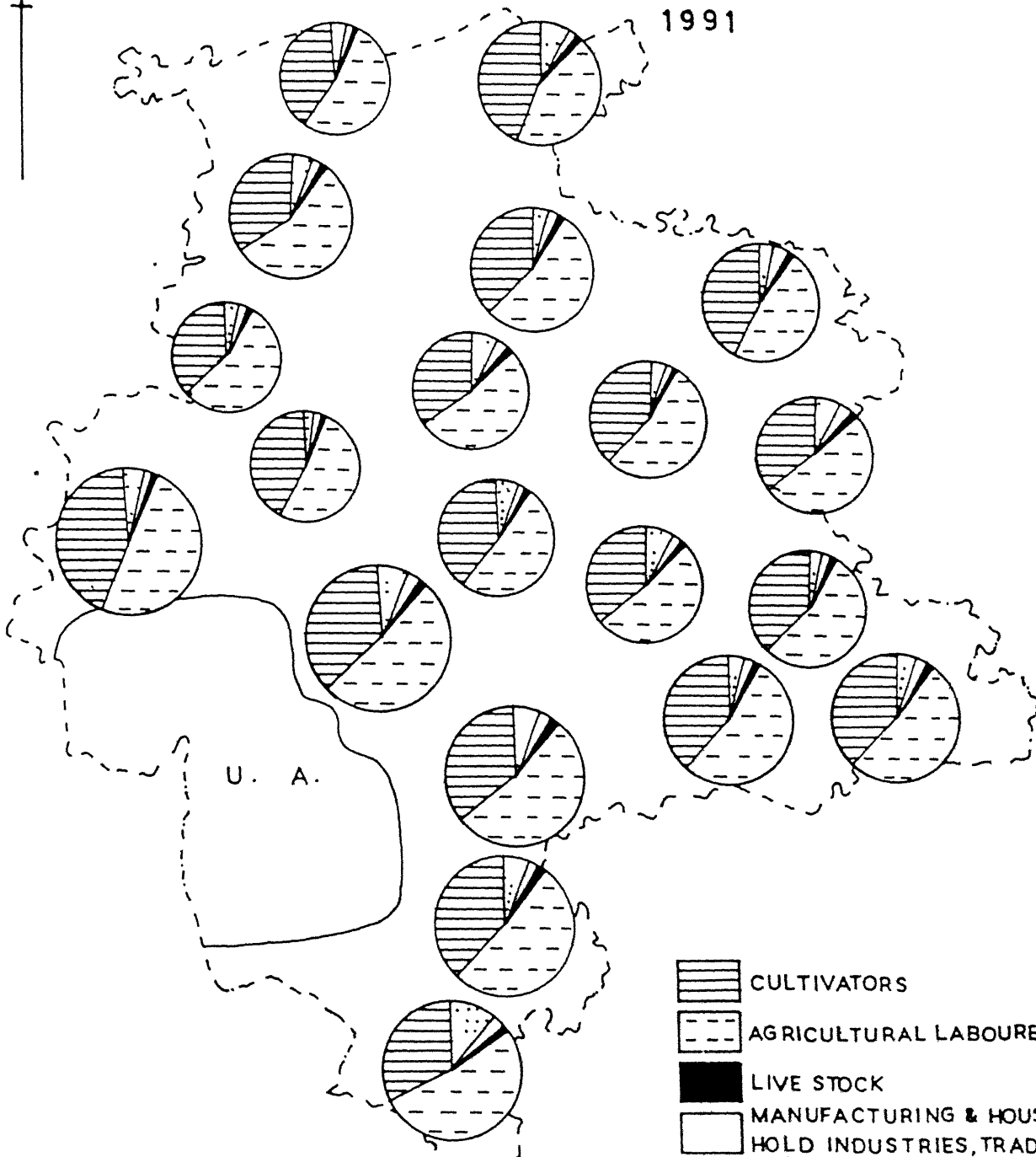
Fig.3.8

सारणी 3.11

न्याय पंचायत स्तर पर जनसंख्या की व्याक्सायिक संरचना 1991

क्र0सं0	न्याय पचायत	कृषक	खेतिहर मजदूर	पशुपालन	व्यापार वाणिज्य	अन्यान्य	कुल जनसंख्या में कार्यरत जन-संख्या का प्रतिशत
1.	चन्देली भर्रा	41.26	55.78	0.38	0.56	2.02	100.00
2.	जगन्नाथपुर	40.80	55.60	0 37	0.67	2.56	100.00
3.	राजपारा	48.26	46.78	0 51	0.54	3.91	100.00
4.	रामपुर	42.20	53.43	0 37	0.57	3.43	100.00
5.	जबड़ा पहाड़पुर	40.78	56.20	0 41	0.61	2.00	100.00
6.	बिजैली	40 12	57 12	0 43	0.49	2.14	100.00
7	डुमरिया	37.32	52.87	0 36	1.86	6.59	100.00
8.	महमदिया	41 72	55 43	0.39	0.59	1.87	100.00
9	बलुआ	36.52	54 63	0.40	1.23	6.72	100.00
10.	राजभवाड़ा	38.98	54.49	0.39	0.89	4.25	100.00
11.	दलन	36.87	59.31	0.15	0.55	3.12	100.00
12.	बेलवा	38.11	53 87	0.32	1.25	6.45	100.00
13.	बौरनी	38.32	54 11	0.38	0 97	6.22	100.00
14.	दोआसे	43.32	47.87	0 36	1.88	6.57	100.00
15.	सौरिया	40.80	56.60	0 37	0.43	1.80	100.00
16.	डण्डखोरा	37 11	52.87	0.39	2.12	7 51	100.00
17.	रघैली	37.11	50.32	0.21	2.75	9.61	100.00
18.	हफलागंज	37 80	53.28	0.31	1.71	6.90	100.00
19.	मघेपुरा	41.23	55.37	0.39	0.57	2.44	100.00
20.	परतेली	42.28	54.43	0.36	0.51	2.42	100.00

स्रोत :- जिला सांख्यिकीय कार्यालय कटिहार ।

खेतिहर मजदूरों का अधिकतम प्रतिशत (59.31%), दलन न्याय पंचायत में पाई जाती है जब कि इसका न्यूनतम 47.87% द्वाशे न्याय पचायत में प्राप्त है । दलन न्याय पंचायत में खेतिहर मजदूरों की अधिकतम सख्या अधिक होने का प्रधान कारण यह है कि यहाँ अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा निरक्षरों की संख्या अधिक है । गरीबी एवं बदहाली की जिन्दगी व्यतीत करते हैं जिसके चलते इनका जीवन मजदूरी पर ही निर्भर करता है जबकि द्वाशे न्याय पंचायत में साक्षरता तथा अन्य छोटे उद्योग धन्धे के कारण खेतिहर, मजदूरों की संख्या कम है । इस अध्ययन क्षेत्र में पशुपालन का प्रतिशत बहुत ही कम है । इसका प्रतिशत (0.43%) बिजैली न्याय पंचायत में एवं न्यूनतम प्रतिशत (0.21%) दलन न्याय पंचायत में है । उद्योग धन्धों में सर्वाधिक (1.50%), डुमरिया न्याय पचायत मे एवं न्यूनतम (0.12%), चन्देली भर्रा में है व्यापार और वाणिज्य की दृष्टि से सर्वाधिक (2.75%), रघैली न्याय पंचायत में एवं न्यूनतम (0.49%) बिजैली न्याय पंचायत में पाई जाती हैं । परिवहन एवं संचार की दृष्टि से सर्वाधिक (0.87%), रघैली तथा न्यूनतम (0.12%), राजपारा न्याय पंचायत में है । इस क्षेत्र में अन्य सेवा में संलग्न जनसंख्या का अधिकतम प्रतिशत (0.87%), रघैली में एवं न्यूनतम (0.04%), जबड़ा पहाड़पुर न्याय पंचायत में मिलता है । वर्ष 1991 में न्याय पंचायत स्तर पर जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना का विवरण सारणी 3.11 में किया गया है ।

(ब) चयनकृत गाँवों में व्यावसायिक संरचना :-

चयनकृत गाँवों में जनसंख्या की व्यवसायिक संरचना में पर्याप्त वैषम्य मिलता है । यहाँ पर प्रखण्ड के चयनित 7 गाँवों के आधार पर व्यावसायिक संरचना को स्पष्ट किया गया है (सारणी 3.12) ।

(क) **कृषक जनसंख्या में** पर्याप्त भिन्नता को देखते हुए चयनकृत गाँवों की संख्या को तीन कोटियों में विभाजित किया जा सकता है ।

(1) **उच्च प्रतिशत कोटि** :- इसके अन्तर्गत बौरा गाँव को रखा गया है, जहाँ कार्यरत जनसंख्या का 51.6% कृषक हैं । इस गाँव की मिट्टी काफी उपजाऊ है । उच्च प्रतिशत के अन्तर्गत एक मात्र पुरूष वर्ग ही है जो कृषि कार्य करते हैं (सारणी 3.12) ।

सारणी 3.12

चयन कृत गाँवों में व्यवसायिक संरचना 1991

क्र0स0	चयनकृत गांवों का नाम	कृषक	प्रतिशत	कृषक मजदूर	प्रतिशत	पारिवारिक उद्यम	प्रतिशत	अन्य	प्रतिशत	कुल योग
1.	परियाग दह	55	33	99	61	2	1 23	7	4.3	163
2.	फरही	30	17	134	45	-	-	13	7.34	177
3.	कजरी	46	29	93	59	-	-	19	12.00	158
4.	खेरा	92	30.26	183	60.2	-	-	29	9.5	304
5.	गोपालपुर	143	36 67	153	39.2	4	1	76	19.49	390
6.	रकसा	31	18	123	72	-	-	16	9.3	172
7.	बौरा	32	51.6	19	31	3	5	8	13.00	62

स्रोत · जिला सांख्यिकीय कार्यालय कटिहार (बिहार) ।

(2) **मध्यम प्रतिशत कोटि** ·- इसके अन्तर्गत गोपालपुर, परियागदह और खेरा गाँवों को रखा गया है । जहाँ कार्यरत जनसंख्या का क्रमश 36.6%, 33% एवं 30.26% जनसंख्या कृषक हैं ।

(3) **न्यून प्रतिशत कोटि** :- इसके अन्तर्गत रकसा और फरही गाँवों को रखा गया है यहाँ कार्यरत जनसंख्या का क्रमश 18% एवं 17% जनसंख्या कृषक के रूप में कार्य करती है ।

(ख) **खेतिहर मजदूर** :- इन गाँवों में कृषक मजदूरों के प्रतिशतों में भी पर्याप्त भिन्नता मिलती है । जिन गाँवों में कृषकों का प्रतिशत अधिक है, वहाँ खेतिहर मजदूरों का प्रतिशत प्रायः कम है । इसके विपरीत जो बड़े कृषक है, वहाँ अन्य गाँवों से कृषक मजदूर कार्य

करने आते हैं । इसके साथ ही जहाँ पर कृषकों का प्रतिशत अधिक है । इसके अन्तर्गत उन गाँवों में भी कृषक मजदूर बाहर से कार्य करने आते हैं ।

कृषक मजदूरों का सर्वाधिक 76% ग्राम फरही में विद्यमान है । इसके बाद रक्सा (72%), परियागदह (61%), खैरा (60%), कजरी (59%), गोपालपुर (39.2%) तथा न्यूनतम प्रतिशत बौरा मे 31% है । इस प्रकार कृषक मजदूरों में गाँव स्तर पर भी विभिन्नता मिलती है । अध्ययन क्षेत्र में यह देखने को मिला है कि जिन गाँवों में भूमिहीनों की संख्या अधिक है, अधिकांश अपना जीवन यापन कृषक मजदूर के रूप में व्यतीत करते हैं। जीवन स्तर निम्न प्रकार का है और उनके जीवन निर्वाहन का मुख्य साधन कृषक मजदूर के रूप मे ही प्रमुख है ।

3.2 पशु संसाधन :-

ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में पशु धन का महत्वपूर्ण स्थान है । भारतीय कृषि अतीत काल से ही पशु श्रम पर आधारित रही है । आज भी कृषि कार्यों में अभिनव परिवर्तनों के बावजूद पशु धन श्रम को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है । जब कभी इनकी संख्या में ह्रास हुआ है । कृषिगत अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पडा है । अध्ययन क्षेत्र में भी कृषि कार्य हेतु पशु श्रम का विशेष महत्व है । इन्हीं पशुओं से दूध, माँस, खाद, अण्डे आदि सुलभ होते है । चयनकृत गाँवों के सर्वेक्षण से यह विदित हुआ है कि ट्रैक्टर रखने वाले बडे प्रगतिशील कृषक बैल एवं अन्य पशुओं को पालते हैं । कृषकों की सम्पन्नता के यापन में पशुधन आधार माना जाता है । पशुओं से प्रापत होने वाला खाद खेत के लिए काफी लाभकारी होता है । गोबर से किसान कम्पोस्ट खाद तैयार कर फसलों के उत्पादन में वृद्धि करते हैं । न्याय पचायत स्तर पर सबसे अधिक पशुओं की कुल संख्या (10552) न्याय पंचायत दलन में है । यहाँ गाय और भैसों की संख्या सर्वाधिक है तथा सबसे कम पशु न्याय पंचायत रघैली में (6913) है ।[4]

तालिका 3.13 के अवलोकन से अध्ययन क्षेत्र में गाय, भैंस तथा कुक्कुट की प्रधानता का आभास मिलता है । क्षेत्र में लगभग 45% जनसंख्या ऐसी है जिसके पास गाय

सारणी 3.13

कटिहार प्रखण्ड : पशुओं का वितरण (1990 - 91)

क्र0सं0	न्याय पंचायत	गौ जाति	भैंस	भेंड	बकरी	घोड़ा,गधा खच्चर	सुअर	कुक्कुट	बत्तख	कुल योग	प्रतिशत
1	चन्देली भर्रा	2152	430	25	2000	15	80	3772	470	8944	5.50
	प्रतिशत	24.06	4.80	0.27	23.36	0 16	0 89	42.17	5.25		
2.	जगन्नाथपुर	1975	391	0	1921	16	77	3542	467	8389	5.16
	प्रतिशत	23.54	4.66		22.90	0.19	0.92	42.22	5 57		
3.	राजपारा	2018	410	0	1975	10	90	3596	490	8589	5 28
	प्रतिशत	2349	4.77		22.99	0.12	1.05	41.87	5.70		
4.	रामपुर	1970	393	0	1911	11	67	3471	451	8274	5 09
	प्रतिशत	23.81	4.75		23.10	0 13	0.81	41.95	5 95		
5.	जबड़ा पहाड़पुर	2072	399	0	1953	14	77	3511	481	8507	5.23
	प्रतिशत	24.36	4 69		22.96	0 16	0.91	41.27	5 65		
6.	बिजेली	2077	408	50	1961	10	78	3584	502	8670	5 33
	प्रतिशत	23.96	4.71	0.58	22.62	0.12	0.90	41 34	5.79		
7.	डुमरिया	1761	363	0	1687	27	42	2996	398	7274	4.47
	प्रतिशत	24.21	4.99		23.19	0 36	0 58	41.19	5.47		
8.	महमदिया	2013	403	0	1993	18	74	4111	482	9094	5.59
	प्रतिशत	22.14	4.43		21.93	0.20	0.81	45.20	5.30		

क्रमशः

9.	बलुआ	1863	368	0	1752	28	44	3123	399	7577	4.66
	प्रतिशत	24.59	4.86		23.12	0.37	0.58	41.21	5.27		
10.	राजभवाड़ा	1970	386	0	1821	17	55	3337	409	7995	4 92
	प्रतिशत	24.64	4 83		22.78	0.21	0.69	41 74	5.11		
11.	दलन	2200	437	60	2112	09	110	5112	512	10552	6.49
	प्रतिशत	20.85	4.15	0.57	20.02	0.08	1.04	48.45	4.85		
12.	बेलवा	1890	381	0	1852	21	57	3570	397	8168	5 02
	प्रतिशत	23.13	4.46		22.67	0.26	0.70	43.71	4.86		
13.	बौरनी	1530	374	0	1813	21	51	2991	383	7463	4.59
	प्रतिशत	24 52	5 01		24.29	0.28	0.68	40.08	5.13		
14.	दोआसे	1760	368	0	1703	29	41	2868	377	7146	4.39
	प्रतिशत	24.63	5.15		23.83	0 41	0.57	40.13	5.27		
15.	सौरिया	1510	384	0	1883	18	70	3778	474	8417	5.17
	प्रतिशत	21 50	4.56		22.37	0 21	0.83	44 88	5 63		
16.	डण्डखोरा	1791	361	0	1709	27	43	3146	391	7468	4.59
	प्रतिशत	23.98	4.83		22.88	0 36	0.58	42.12	5.24		
17.	रघेली	1752	353		1648	37	29	2789	305	6913	4 25
	प्रतिशत	25.34	5.11		23.84	0.54	0.42	40.34	4.41		
18.	हफलागंज	1788	364	0	1905	19	37	3143	410	7666	4.71
	प्रतिशत	23.32	4.75		24.85	0.25	0.48	41.00	5.35		
19.	मधेपुरा	1982	393	0	1884	16	70	3785	492	8622	5.30
	प्रतिशत	22.99	4.46		21.85	0.19	0.81	43.90	5.70		
20.	परतेली	2078	398	0	1893	14	73	3978	487	8921	5.48
	प्रतिशत	23.29	4.46		21.22	0 16	0.82	44 59	5 46		
	कुल योग	**36675**	**7768**	**135**	**37376**	**377**	**1265**	**70123**	**8777**	**162496**	
		22.56	**4.78**	**0.08**	**23.00**	**0.23**	**0.77**	**43.15**	**5.40**		

स्रोत : जिला सांख्यिकीय कार्यालय कटिहार (बिहार) ।

या भैंस पालने की क्षमता या सुविधा नहीं हैं । वे लोग बकरिया पालकर अपनी आर्थिक तथा दूध आदि आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं । अब धीरे - धीरे व्यापारिक दृष्टिकोण से पशुपालन का महत्व बढता जा रहा है । अध्ययन क्षेत्र से लगे खेडिया गाँव में प्रत्येक सप्ताह वृहस्पतिवार के दिन पशुओं का विशाल मेला लगता है । जहाँ कटिहार जनपद के एभी प्रखण्डों तथा अन्य जनपदों से लोग विभिन्न प्रकार के पशुओं को लेकर पहुँचते हैं और खरीद बिक्री करते हैं ।

(अ) **गो पशु** :- इस प्रखण्ड में गो - पशुओं की संख्या कुल पशुओं की संख्या का 22.56% है । न्याय पंचायत स्तर पर गो - पशुओं की सबसे अधिक संख्या (2200) दलन में पाई जाती है जो प्रखण्ड की कुल संख्या का 5 99% है । सबसे कम गो - पशुओं की संख्या (1760) द्वाशे में पाई जाती है जो प्रखण्ड की कुल संख्या का 1.08% है ।

(ब) **भैंस** ·- इस क्षेत्र में भैसों की संख्या कुल पशुओं की संख्या का लगभग 4.78% है। इनका सबसे अधिक प्रतिशत (5 62%) न्याय पंचायत दलन में पाया जाता है । भैसों का सबसे कम प्रतिशत (4 54%) न्याय पंचायत रघैली में मिलता है । इस प्रखण्ड में गो-पशु एवं भैसों की सम्मिलित संख्या 44,443 है तथा उनका प्रतिशत 27.35 है ।

(स) **भेंड** :- इस क्षेत्र में भेड़ों की कुल संख्या 135 है जो कुल पशुओं की संख्या का 0.08% है । इनका सबसे अधिक प्रतिशत (44.44%) न्याय पंचायत दलन में पाया जाता है । भेड़ों का सबसे कम प्रतिशत (18.51%) न्याय पंचायत चन्देली में मिलता है ।

(द) **बकरी** :- बकरियाँ सामान्यतः निर्धन एवं जोत विहीन लोगों का मुख्य पशु है, जिन्हें पालकर वे दूध या माँस प्राप्त करते हैं । इनके वितरण में न्याय पंचायत स्तरपरअपेक्षाकृत कम विषमता पायी जाती है । इनका सबसे अधिक सान्द्रण (3.67%) दलन न्याय पंचायत में मिलता है तथा सबसे कम प्रतिशत (0.04%) रघैली न्याय पंचायत में मिलता है ।

(य) घोड़ा - गधा - खच्चर - इस क्षेत्र में इनकी संख्या बहुत ही कम है जो पशुओं की कुल संख्या का (0.23%) ही है । न्याय पंचायत स्तर पर इनकी सबसे अधिक संख्या (37) रघैली में है और सबसे कम संख्या (09) दलन में (2.38%) मिलती है ।

(र) सूअर :- इस क्षेत्र में सूअरों की संख्या कुल पशुओं की संख्या का केवल (0.77%) है । न्याय पंचायत स्तर पर इनका विवरण अधिक असमान है । सूअरों का अधिकतम प्रतिशत (8.69%) दलन में तथा सबसे कम प्रतिशत (2.29) रघैली में मिलता है । सूअर अधिक मात्रा में डोम, चमार जाति के लोग पालते हैं तथा माँस खाते हैं ।

(ल) कुक्कुट :- इस क्षेत्र में कुक्कुटों की संख्या कुल पशुओं की संख्या का 43.15% है जो सर्वाधिक है अध्ययन क्षेत्र में जगह - जगह कुक्कुट पालन उद्योग खुला है । सरकार कुक्कुट पालन पर जोर भी दे रही है । इसका माँस और अण्डा खाने के काम आता है न्याय पंचायत स्तर पर सबसे अधिक (50.49%) न्याय पंचायत दलन में तथा सबसे कम (26.67%) न्याय पंचायत रघैली में पाया जाता है ।

(व) बत्तख :- इस क्षेत्र में बत्तखों की संख्या कुल पशुओं की संख्या का 5.40% है। न्याय पंचायत स्तर पर इनकी सर्वाधिक प्रतिशत (5.83) न्याय पचायत दलन में तथा सबसे कम (3 47) प्रतिशत रघैली में पाया जाता है । इसका मांस खाने के काम में आता है।

उपर्युक्त विवेचनों से विदित है कि अध्ययन क्षेत्र में पशुओं के वितरण में बहुत असमानता मिलती है तथा इनका पालन अभी भी व्यापारिक दृष्टि से शुरू नहीं हुआ है ।

3.3 डेयरी उद्योग :- इस क्षेत्र में दुग्ध - उत्पादन उद्योग का विकास आधुनिक पद्धति पर अभी तक नहीं सम्भव हो सका है । न्यूजीलेण्ड, डेनमार्क, आस्ट्रेलिया तथा कइ न्य देशों की तुलना में भारत में यह उद्योग बहुत ही पिछड़ा हुआ है । इस क्षेत्र में गाय एवं भैंसों का औसत दुग्ध उत्पादन क्रमशः 3 लीटर एवं 5 लीटर प्रतिदिन है जबकि न्यूजीलेण्ड और आस्ट्रेलिया में गायों का प्रतिदिन का औसत दुग्ध उत्पादन लगभग 30 से 40 लीटर

तक है । इसीलिए भारत मे दुग्ध, उत्पादक गायों को कभी - कभी 'टी-कप-काउन' भी कहा जाता है । क्षेत्र में पशुचारा भूमि पर पशुओं का भार बहुत अधिक है । जनसंख्या के अधिक भार के विस्तृत या गहन कृषि से बची हुई निष्कृष्ट भूमि ही पशुचारा उत्पन्न करने के लिए प्रयोग में लायी जाती है जिससे उचित चारे का प्रबन्ध नहीं हो पाता है । इसी कारण पशुओ की शक्ति एव नस्ल में ह्रास होता जा रहा है । पशुपालन करने वाले कृषक प्राय निर्धन एवं अशिक्षित हैं । उन्हें पशुपालन के वैज्ञानिक ढंगों का कुछ भी ज्ञान नहीं है । किस प्रकार पशुओं की नस्ल को सुधारा जाय इसका भी उन्हें बहुत कम ज्ञान है ।

अध्ययन क्षेत्र में नर - भैंसे और सॉड़ भी घटिया किस्म के मिलते हैं इसलिए उनकी संतति भी निकृष्ट श्रेणी की ही होती है । यद्यपि पशुओं की बिगडती जा रही नस्ल को सुधारने का प्रयास किया जा रहा है परन्तु अभी तक बहुत कम सफलता मिली है । इस क्षेत्र में कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों का भी अभाव है ।

गाय और भैंस गन्दा जल पीने, सड़ी-गली वस्तुओं को खाने और गन्दे बाड़ों में रहने के कारण अनेक रोगों का शिकार होती रहती है । वर्षाकाल में तो कुछ दुधारू पशुओं के मुँह एवं पैर में कई प्रकार की बीमारियाँ हो जाती है । जिससे उनका स्वास्थ गिर जाता है और दुग्धोत्पादन क्षमता भी कम हो जाती है ।

पशुपालक लोग दूध को विक्रय करने हेतु अपने सन्निकट के सेवा - केन्द्रों को ले जाते हैं । अभी इस उद्योग को समुचित प्रोत्साहन नहीं मिला है । व्यक्तिगत स्तर पर कुछ प्रगतिशील कृषक अच्छी नस्ल की दुधारू गायों या भैसों को पालते हैं । ऐसे कृषक मुख्यत: नगरीय क्षेत्रों के पडोस के गावों में मिलते हैं और सुविधा पूर्वक दूध को सेवा केन्द्रों तक पहुँचाते हैं और सम्बन्धित व्यापारियों की मांग पूर्ति करते हैं । कुछ पशुपालक जातियाँ जिनमें अहीर वर्ग प्रमुख हैं, गायों की अपेक्षा भैसों को पालने में विशेष रूचि लेते हैं । कुछ लोग निकटवर्ती क्षेत्रों से दूध का संग्रह करते हैं और उसे सेवा - केन्द्रों तक पहुँचाते हैं

इस क्षेत्र मे दुग्ध उद्योग को विकसित किया जा सकता है । इस कार्य हेतु कोशी क्षेत्रीय विकास परियोजना के अन्तर्गत सहकारी समितियों द्वारा दुग्ध उत्पादकों को दुग्ध का उचित मूल्य देकर दुग्ध उत्पादन को प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए उन्हें सभी आवश्यक सुविधाएँ (जैसे - पशुआहार एवं चिकित्सा आदि) सुलभ कराने की व्यवस्था की जा रही है और ऋण भी प्राप्त किया जा रहा है । इस प्रकार सहकरिता के माध्यम से इस उद्योग को विकसित करने का प्रयास किया जा रहा है । दुग्ध - उत्पादन में वृद्धि हेतु ग्राम स्तर, न्याय पंचायत स्तर, प्रखण्ड स्तर पर दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियों एवं संघों को निर्मित करने का सुझाव प्रस्तावित किया गया है । इन दुग्ध उत्पादक समितियों के प्रमुख कार्य व उद्देश्य निम्न प्रकार होगें ।

1- प्रस्तावित दुग्ध उत्पादक समितियाँ दुग्ध उत्पादक सदस्यों के लिए ऐसे साधन उपलब्ध करायेगी, जिनसे दूध के उत्पादन में वृद्धि हो जैसे - दुधारू पशुओं के क्रय हेतु ऋण की व्यवस्था तथा कृत्रिम गर्भाधान की व्यवस्था करना आदि ।

2- पौष्टिक चारा, दाना व हरे चारे के लिए अल्पकालीन ऋण की व्यवस्था करना ।

3- हरे चारे पर्याप्त उत्पादन के लिए सिंचाई की सुविधा उपलब्ध करना ।

4- पशुओं के लिए संतुलित आहार की व्यवस्था कराना ।

5- पशुओं की अच्छी किस्मों के लिए प्रजनन की सुविधाएँ उपलब्ध कराना ।

6- दुग्ध उत्पादन को भी सहायता के लिए पशु-चिकित्सा हेतु उचित सुविधा उपलब्ध कराना ।

7- दूध के गुणात्मक परीक्षण हेतु समुचित व्यवस्था कराना ।

8- उत्पादित दूध के क्रय-विक्रय हेतु उचित व्यवस्था कराना ।

9- चारागाहों तथा हरे चारे के विकास हेतु उचित व्यवस्था कराना ।

किसी भी क्षेत्र में दुग्ध-उद्योग के विकास के लिए उपर्युक्त सभी सुविधाओं

का सुलभ होना अति आवश्यक है और तभी इस उद्योग का भविष्य उज्जवल हो सकता है । इन सुविधाओं के सुलभ होने पर इस क्षेत्र में बिजैली, जगन्नाथपुर, राजपारा, बेलवा, द्राशे, हफलागंज तथा परतेली न्याय पंचायतों में कुछ स्थानों पर दुग्ध उत्पादन उद्योग का पर्याप्त विकास किया जा सकता है और बड़ी मात्रा में दूध, दही, घी तथा मक्खन का उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है । इनसे इस क्षेत्र के लोगों को शारीरिक एवं आर्थिक विकास में विशेष प्रगति हो सकती है ।

3.4 खनिज

खनिज सम्पदा की दृष्टि से यह अध्ययन क्षेत्र नगण्य है क्योंकि यह मैदानी भाग है जिसका निर्माण नदियों द्वारा लाई गई मिट्अी के जमाव के फलस्वरूप हुआ है । खनिज के रूप में इस क्षेत्र में बालू, कंकड़ एवं यत्र-तत्र रेह भी प्रधानता पाई जाती है । बालू का प्रयोग मुख्यत. मकानो के निर्माण मे किया जाता है । इसका विस्तृत क्षेत्र कोसी धार एवं कमला नदी के तटवर्ती भागों में पाई जाती है । बालू की मात्रा में मिट्टी का भी अंश मिलता है जिसके कारण मकान के कार्यों में सही ढंग से उपयोग नहीं हो पाता है।

अध्ययन क्षेत्र के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में कोशी नदी स्थित है जिसके बालू का प्रयोग हम मकानों के कार्यो में सही ढ़ग से करते हैं । कोसी धार तथा कमला नदी का बालू खासतौर पर घरेलू उपयोगों में करते हैं ।

अध्ययन क्षेत्र में कंकड़ का जमाव द्राशे जगन्नाथपुर एवं दलन न्याय पंचायत में यत्र-तत्र पाया जाता है । व्यावसायिक दृष्टिकोण से इसका विशेष महत्व है क्योंकि इसका वृहद उपयोग सडकों के निर्माण मे किया जाता है । वाहनों के आने जाने तथा सड़कों के अभाव में अध्ययन क्षेत्र के कंकड़ का सही उपयोग नहीं हो पाता है ।

रेह एक क्षारीय पदार्थ है । इसका प्रयोग धोबी लोग कपड़ों की सफाई के लिए करते हैं । इसका जमाव विशेषकर नदियों के आस-पास वाले इलाकों के ऊँची भूमि

में पाई जाती है । इसके अन्तर्गत न्याय पचायत बलुआ, डुमरिया एव बेलवा के कुछ गाँव सम्मिलित है । अध्ययन क्षेत्र का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद यह पता चलता है कि इस क्षेत्र में तेल की प्रधानता हैं क्योंकि अक्सर पानी को एक या आधा घण्टा रख देने के बाद उस पर तेल की पतली परत बन जाती है और यह स्थिति अध्ययन क्षेत्र के लगभग सभी न्याय पंचायतों में पाई जाती है । यदि सरकार इस पर ध्यान दे तो निश्चय ही तेल की पर्याप्त मात्रा अध्ययन क्षेत्र में मिलेगी जो उपर्युक्त खनिजों से ज्यादा लाभप्रद होगा । आर्थिक दृष्टि से अन्य खनिजों की अपेक्षा बालू, कंकड़ एवं रेह का महत्व बहुत कम है फिर भी किसी क्षेत्र के विकास में इसका विशेष उपयोग पाया जाता है और इस प्रकार ये भी उल्लेखनीय खनिज कहे जा सकते हैं ।

3.5 परिवहन

किसी भी क्षेत्र में परिवहन साधनों का वैसा ही महत्व है जैसा कि मानव शरीर में रक्त वाहिनी धमनियों का होता है । कोनार महोदय के अनुसार परिवहन के अतिरिक्त कोई दूसरा ऐसा महत्वपूर्ण साधन नही है जो किसी भी अविकसित क्षेत्र के आर्थिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रगति में तीव्र विकास ला सके ।[5] किसी भी क्षेत्रीय विकास के विभिन्न स्तरों में एवं परिवहन साधनों के विकास में प्राय. गहन अन्र्तसम्बन्ध मिलता है । ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक विकास में तो परिवहन तन्त्रों का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है ।

इस अध्ययन क्षेत्र में आधुनिक परिवहन साधनों (मुख्यत सड़कों एवं रेलों) का विकास अंग्रेजी शासन काल में प्रारम्भ हुआ था । इससे पूर्व इस क्षेत्र के समीपवर्ती इलाकों में जल परिवहन अधिक महत्वपूर्ण था जिससे यह क्षेत्र भी प्रभावित होता था । जल परिवहन का केन्द्र मनिहारी और कुर्सेला था जो गंगा नदी और कोसी नदी के किनारे बसे हुए हैं किन्तु रेल परिवहन के विकास से तथा सड़कों के निर्माण के कारण जल परिवहन का महत्व धीरे - धीरे कम होने लगा और अब तो यह लगभग समाप्त प्राय सा हो गया है ।

(अ) सड़क परिवहन :-

अध्ययन क्षेत्र में सड़क परिवहन की दृष्टि से निम्न सड़के विशेष उल्लेखनीय हैं :-

है ।

(1) कटिहार - पूर्णिया मार्ग

(2) कटिहार - मनिहारी मार्ग

(3) कटिहार - प्राणपुर मार्ग

(4) कटिहार - मन्साही मार्ग

(5) कटिहार - गेडाबाडी मार्ग

कटिहार - पूर्णिया मार्ग इस प्रखण्ड में सबसे अधिक महत्वपूर्ण मार्ग है जिसकी कुल लम्बाई लगभग 28 कि0 मी0 है । यह दो प्रमुख नगरों कटिहार और पूर्णिया को जोड़ता है । यह मार्ग आगे बढ़कर फारबिसगंज अररिया और किशनगंज को जोड़ता है ।

कटिहार - मनिहारी मार्ग बहुत पहले काफी व्यस्त मार्ग था क्योंकि मनिहारी गंगा नदी के किनारें बसा हुआ है । यहाँ से स्टीमर द्वारा लोग साहेबगंज, भागलपुर जाया करते थे लेकिन सड़कों और रेलवे की सुविधा के कारण इस मार्ग का महत्व पहले से घट गया है । लेकिन साहेबगंज जाने के लिए यहाँ से स्टीमर पकडना पडता है जिसके चलते अभी भी इस मार्ग की प्रधानता है । कटिहार से मनिहारी की दूरी लगभग 26 कि0 मी0 है ।

कटिहार - प्राणपुर मार्ग अध्ययन क्षेत्र के पूर्वी भाग में है । यह मार्ग ग्रामीण क्षेत्रों को जोड़ता है । बस, जीप की मात्रा कम और रिक्सा तथा टम-टम अधिक मात्रा में चलता है । यह मार्ग आगे बढ़कर सोनौली तथा बारसोई की ओर चली जाती है ।

कटिहार - मन्साही मार्ग हफलागंज होते हुए मनिहारी तक चली जाती है इस मार्ग पर मन्साही हाट काफी प्रसिद्ध है, जहाँ ग्रामीण क्षेत्र के लोग अधिकांश मात्रा में इकट्ठे होते हैं और यहाँ पशुओं का भी मेला लगता है । इस मार्ग पर वाहनों की संख्या बहुत कम है । रिक्सा, टमटम, बैलगाड़ी का प्रयोग अधिक मात्रा में होता है ।

कटिहार - गेडावाडी मार्ग अध्ययन क्षेत्र के पश्चिमी भाग से होकर गुजरता है । यह मार्ग काफी व्यस्त मार्ग है क्योंकि यह 31 राष्ट्रीय राजमार्ग में जाकर मिल जाती है । यह मार्ग अध्ययन क्षेत्र के बेलवा, दलन, न्याय पंचायत से होकर जाती है । इस मार्ग पर जीप, बस टैक्सी, की अधिकता है । पूर्णिया के बाद इस मार्ग का स्थान दूसरा है ।

उपर्युक्त मार्गो के अतिरिक्त राष्ट्रीय मार्ग संख्या 31 इस प्रखण्ड के मध्यवर्ती भाग से गुजरता है जो आसाम और दिल्ली को जोड़ता है । अध्ययन क्षेत्र के तीन भागों पर बिहार प्रदेश की परिवहन निगम की बसें चलती हैं जो मुख्य रूप से पूर्णिया, मनिहारी और गेड़ावाड़ी जाती है । बसें इन मार्गो पर बिहार परिवहन निगम के अतिरिक्त व्यक्तिगत बसों का सान्द्रण मिलता है । अध्ययन क्षेत्र में परिवहन के अन्तर्गत विशेषकर व्यक्तिगत वाहनों का ही बर्चस्व है ।

(ब) रेल परिवहन

कटिहार जनपद के विकास में योगदान देने वाली रेल की पटरी विछाने का कार्य सर्वप्रथम 1883 ई0 में प्रारम्भ हुआ और मनिहारी से पूर्णिया होकर दरभंगा तक रेल लाइन बिछाई गई । तत्पश्चात 1904 में कटिहार, बरौनी रेल लाइन तैयार हुई । 1913 ई0 में कटिहार से काढ़ा गोला घाट एवं अमनूरा (वर्तमान में बंगला देश में) तक रेल लाईन बनी ।

आजादी के बाद रेलों के पुनर्गठन के फलस्वरूप पूर्व की ओ0 टी0 रेल एवं आसाम रेल को मिलाकर 14.4 1952 को पूर्वोत्तर रेलवे बना जिसमें कटिहार जिले की सम्पूर्ण रेल लाइनें आ गयी । पुन: इस पूर्वोत्तर रेलवे को 15.1.58 को दो भागों में विभक्त किया गया जो पूर्वोत्तर रेलवे तथा पूर्वोत्तर सीमान्त रेलवे कहलाया । 1.6.69 से प्रमंडलीय योजना लागू होने पर 1970 से कटिहार को पूर्वोत्तर सीमान्त रेलवे का प्रमंडलीय मुख्यालय बनाया गया । 1984 में कटिहार - बरौनी रेल लाइन को बड़ी लाइन (ब्राडगेज) में परिवर्तित करने के फलस्वरूप देश के प्राय: सभी महानगरों से रेल द्वारा सीधा सम्पर्क हो गया । इस

जिले के क्षेत्र में 220 कि0 मी0 लम्बी रेल लाइनें तथा 23 रेलवे स्टेशन है ।[6]

अध्ययन क्षेत्र में रेल परिवहन की दृष्टि से निम्नलिखित रेल परिवहन विशेष उल्लेखनीय हैं ।

(1) कटिहार - गोहाटी रेल मार्ग (ब्राडगेज)

(2) कटिहार - दिल्ली रेलमार्ग (ब्राडगेज)

(3) कटिहार - सिलीगुडी रेलमार्ग (मीटर गेज)

(4) कटिहार - पूर्णिया रेलमार्ग (मीटर गेज)

(5) कटिहार - मनिहारी रेलमार्ग (मीटर गेज)

3.6 सिंचाई के साधन

कृषिगत भूमि उपयोग को प्रभावी बनाने में सिंचाई एक प्रमुख कारक है। किसी भी क्षेत्र में इनके साधनों की प्रचुरता से उस क्षेत्र मे उत्तम भूमि उपयोग का आभास मिलता है । आधुनिक कृषि में तो सिचाई के साधनों का विशेष योगदान है । हरित क्रान्ति की सफलता हेतु उन्नत बीजों एवं रासायनिक उर्वरकों के उपयोग के साथ ही साथ सिंचाई के साधनों के विकास को भी प्रमुखता दी जा रही है । भारत सरकार ने सिंचाई की सुविधा के विस्तार के लिए छोटे एवं बड़े पैमाने पर नहरों नलकूपों आदि के निर्माण हेतु अनेक योजनाएँ कार्यान्वित किया है । इस अध्ययन क्षेत्र में भी सरकारी प्रयास द्वारा नहरों एवं नलकूपो के विकास का उल्लेखनीय कार्य किया गया है । नलकूपों के विकास के लिए सरकार ने कृषकों को बैंकों के माध्यम से ऋण प्रदान करने की भी व्यवस्था की है । अध्ययन क्षेत्र में सिंचाई, जल जमाव एवं बाढ़ से सम्बन्धित कई कार्य व्यापक स्तर पर चलाये जा रहे है ।

न्याय पंचायत राजपारा में विस्तृत जल जमाव एवं बाढ़ आदि प्राकृतिक विपदाओं के कारण सिंचाई के साधनों का अधिक विकास नहीं हो सका है । परन्तु इस अध्ययन

क्षेत्र के अन्य न्याय पंचायतों में सिंचाई के साधनों मे पर्याप्त प्रगति हुई है । इससे कृषिगत भूमि उपयोग के सभी पक्षों मे जैसे शस्य गहनता, सयोजन एवं प्रति एकड उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई है । अध्ययन क्षेत्र में नहरों के अतिरिक्त तालाब, नलकूप पम्पिंग सेट, कुएँ एवं अन्य स्रोत हैं । सारिणी 3.14 में इनका विवरण किया गया है ।

(अ) **नहरें** - अध्ययन क्षेत्र के अधिकाश न्याय प्रचायतों में नहरों का विस्तार पाया जाता है । सिचाई के साधनो मे ये विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं । राजभवाडा न्याय पचायत का लगभग 553.70 हे0 भूमि की सिंचाई नहरों से होती है [7] जो सर्वाधिक है । सबसे कम नहरों द्वारा सिंचित क्षेत्र न्याय पचायत डण्डखोरा में 44.51 हे0 भूमि है । राजपरा, जबड़ा, पहाड़पुर, डुमरिया, गहमदिया, द्वाशे गौरिया, रमैली, मधेपुरा, न्याय पंचायतों में नहरें नहीं हैं। नहरों के विकास के फलस्वरूप जहाँ फसले नहीं उगाई जाती थी । आज वहाँ भी नहरों से प्राप्त जल, अच्छे बीजों, एवं उर्वरको आदि के प्रयोग से बड़ी मात्रा में कृषि उत्पादन प्राप्त किया जा रहा है । अत यह कहा जा सकता है कि प्रखण्ड कुछ भागों के लिए नहरें वरदान स्वरूप है ।

(ब) **तालाब** :- तालाब सिंचाई का प्राचीनतम साधन है । इस अध्ययन क्षेत्र में तालाब द्वारा सर्वाधिक सिंचाई न्याय पंचायत मधेपुरा के 144.00 हे0 भूमि पर होती है ।[8] क्योंकि इस न्याय पंचायत में नहर कुआँ तथं अन्य स्रोतों का अभाव है । सबसे कम तालाब द्वारा सिचाई न्याय पंचायत बौरनी के 4.05 हे0 भूमि पर होती है क्योंकि यहाँ ट्यूबेल तथा नदी द्वारा अधिक सिंचाई होती है ।

(स) **ट्यूबेल** :- सिंचाई के आधुनिक साधनों में ट्यूबेल का विशेष स्थान है । अध्ययन क्षेत्र में बाँस -बोरिंग का विशेष प्रचलन है । इसमें अपेक्षाकृत बहुत ही कम आर्थिक व्यय होता है । इस बोरिंग की अधिकता वहाँ है जहाँ जल स्तर ऊपर है । सिंचाई कार्य में इसका सर्वाधिक उपयोग होता है । इस अध्ययन क्षेत्र के परतेली न्याय पंचायत की 344.99 हे0 भूमि पर सिंचाई ट्यूबेल के द्वारा होती है, जो सर्वाधिक है । सबसे कम न्याय पंचायत

सारणी 3.14

कटिहार प्रखण्ड : सिंचाई के प्रमुख साधनों का विवरण (1991)

(क्षेत्रफल हेक्टेर में)

क्र0सं0	न्याय पंचायत	नहर	तालाब	ट्यूबेल	नदी	कुआं	अन्य स्रोत	कुल सिंचित क्षेत्र	प्रतिशत
1.	चन्देली भर्रा	169.16	21.47	280.05	84 99	6.47	13 35	575 49	45 00
2.	जगन्नाथपुर	60.70	-	12.54	-	52 61	47 29	173.14	14 64
3.	गजपारा	-	-	36.87	-	-	46.54	83.35	6 95
4.	गमपुर	486.08	-	5 95	-	-	-	486 3	44 82
5.	जबडा पहाड़पुर	-	8 10	91.05	74.88	-	52 61	226 64	21 86
6	बिजैली	120.00	-	292 46	79 48	-	34 40	326 34	31 54
7.	डुमरिया	-	-	161.05	20.23	-	76 07	257.35	25 3
8.	नहमदिया	-	-	87.05	5 03	-	143.66	235 77	21 35
9.	बलुआ	142 30	-	111 91	-	-	2 08	256 25	18 79
10.	गजभवाड़ा	553.70	-	150.3	-	-	10.12	742 51	51 31
11.	दलन	511.96	-	12.32	30 41	-	46.68	747.34	39.44
12.	बेलवा	160.26	12.14	339.90	157 83	2 02	5.07	695.26	38 72
13.	बौरनी	-	4 05	133.54	89.03	-	149 93	466.55	40 05
14.	शोआसे	-	-	167.63	25 01	-	-	188.64	14 96
15.	मौरिया	-	54.42	224.56	-	-	-	278.98	23.10
16.	डण्डखोरा	44 51	20.23	-	20 40	-	121.40	213.67	18 85
17.	रखैली	-	10.12	62.72	105 09	-	-	177.93	18 85
18.	हफलागंज	111.59	2.02	192.38	157 70	6.07	88.68	658.44	62 94
19.	मधेपुरा	-	144 60	244.83	79.02	-	-	368.45	28 60
20.	परतेली	144.47	-	344.99	24 68	-	-	530.33	40 32

स्रोत : जिला सांख्यिकीय कार्यालय कटिहार (बिहार)।

रामपुर की 5.95 हे0 भूमि पर सिंचाई होती है । न्याय पंचायत डण्डखोरा में ट्यूबेल की संख्या नगण्य है ।

इसका महत्व वहाँ अत्यधिक बढ़ जाता है जहाँ वर्षा की मात्रा बहुत कम होती है तथा कुएँ, नहर तालाब, इत्यादि का अभाव होता है ।

(द) **नदी** :- भारत के सास्कृतिक विकास मे नदियों का योगदान आदि काल से ही बहुत महत्वपूर्ण रहा है । प्राचीन सभ्यता नदियों के किनारे ही विकसित हुई हैं । नदियों द्वारा हमें सिंचाई की सुविधा के साथ - साथ उपजाऊ भूमि की भी प्राप्ति होती है । इस अध्ययन क्षेत्र मे नदियों द्वारा सर्वाधिक सिंचित भूमि न्याय पंचायत हफलागंज में पायी जाती है जो कि 257.70 हे0 है । इसका कारण कमला नदी का इस न्याय पंचायत से प्रवाहित होना है ।

(स) **कुओं** :- इस अध्ययन क्षेत्र में लगभग 28 वर्ष पूर्व सिंचाई के लिए कुओं का ही विशेष महत्व था किन्तु अब आधुनिक साधनों के विकास के कारण इनका महत्व घट गया है । परन्तु अब भी जहाँ नलकूप या नहरें नहीं है, वहाँ इनका उपयोग किया जाता है कुछ विशेष आवश्यकता वाले क्षेत्रों में भी (जैसे ग्रीष्मकालीन तरकारी के उत्पादन वाले भागों में) जहाँ आधुनिक सिंचाई के साधनों का प्रयोग आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद नहीं सिद्ध होता, वहाँ इनका प्रयोग किया जाता है । छोटे क्षेत्रों की सिंचाई हेतु कृषक कच्चे कुएँ खोदकर या पक्के कुएँ बनाकर अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर लेते हैं अब बहुतेरे कृषक इन्हीं कुओं में बोरिंग कराकर, पम्पिंग सेटों द्वारा सिंचाई कार्य कर रहे हैं । अध्ययन क्षेत्र का न्याय पंचायत जगन्नाथपुर की 52.61 हे0 भूमि कुओं द्वारा सिंचाई होती है । अन्य न्याय पंचायत में सबसे नगण्य सिंचाई होती है ।

अन्य स्रोत :- सिंचाई के अन्य स्रोत, नहर, ढेकुल आदि हैं । जो अध्ययन क्षेत्र के अनेक न्याय पंचायतों में होती है । सबसे अधिक अन्य स्रोतों से सिंचाई बौरनी न्याय पंचायत में 149.93 हे0 भूमि पर होती है । इस न्याय पंचायत में कृषक अपनी सुविधानुसार बाँध-

बोरिंग किए हुए है । इसमें कृषक को लागत कम पडती है । यह लगभग पाँच वर्ष तक कार्य करता है । अध्ययन क्षेत्र में जल स्तर अधिक ऊपर होने के कारण आसानी से बांस बोरिंग हो जाती है जिससे कृषक को सिंचाई करने में सुविधा होती है । इस तरह अध्ययन क्षेत्र का न्याय पंचायत उपर्युक्त सिंचाई के साधनों से काफी लाभान्वित हुआ है तथा फसलोत्पादन में काफी विकास किया है ।

3.7 **विद्युतीकरण** :- किसी क्षेत्र के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास के लिए विद्युत एक आवश्यक कारण बन गया है । विद्युतीकरण द्वारा कृषि यंत्रीकरण को विशेष प्रोत्साहन मिला है । साथ ही इससे किसी क्षेत्र के कृष्येत्तर धन्धों के विकास में भी सहायता मिलती है । इसकी सुलभता से दलन डण्डखोरा, हफलागंज, मधेपुरा, परतेली डुमरिया आदि सेवा केन्द्रों में उद्योगों एवं कृष्येत्तर धन्धों के विकास में विशेष प्रगति हुई है तथा राजपरा, बिजैली, रामपुर डुमरिया सेवा केन्द्रों में कृष्येत्तर धन्धों में वृद्धि हुई है । सारणी 3.15 में कटिहार प्रखण्ड में विद्युतीकरण का वितरण दर्शाया गया है ।

तालिका 3.15 से स्पष्ट होता है कि न्याय पंचायत दलन, डण्डखोरा के सभी गाँवों में विद्युतीकरण हुआ है क्योंकि इन गाँवों में हरिजन आदिवासी की संख्या अधिक है । सरकारी कार्यक्रम के अन्तर्गत इन गाँवों को विद्युतीकरण की पर्याप्त सुविधा मिली है।

परन्तु सबसे कम बलुआ, राजभवाड़ा न्याय पंचायत के 50% गांवों में ही विद्युत करण हो सका है । विद्युतीकरण से कई सेवा - केन्द्रों मे कृषि पर आधारित बड़े एवं लघु उद्योग तथा कृष्येत्तर कार्यो के विकास का सुअवसर मिला है । अध्ययन क्षेत्र में विद्युतीकरण का औसत प्रतिशत 64.28 है । न्याय पंचायत दलन और हफलागंज में यह प्रतिशत है। विद्युतीकरण गाँवों के दृष्टिकोण से न्याय पंचायत डुमरिया, बेलवा, बौरनी दूसरे स्थान पर आता है । इसका प्रतिशत 71.42 है । इसमें विद्युतीकृत गांवों की संख्या क्रमश: 5,5,5। है । अध्ययन क्षेत्र का मधेपुरा और परतेली न्याय पंचायत तीसरे स्थान पर है । यहाँ का प्रतिशत 70.00 है । विद्युतकृत गांवों की संख्या 10,10 में से 7,7 है । चौथा स्थान सौरिया न्याय पंचायत है, जिसका प्रतिशत 66.66 है । इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र के लगभग सभी न्याय पंचायतों के अधिकांश गांवों में विद्युत की आपूर्ति हो गयी है ।[9] लेकिन विद्युत की उपलब्धता

सारणी 3.15

कटिहार प्रखण्ड · विद्युतीकरण (1990 - 91)

क्र0सं0	न्याय पंचायत	कुल गांवों की संख्या	विद्युतीकरण गांवों की सख्या	विद्युतीकरण गांवों का का प्रतिशत
1.	चन्देली भर्रा	9	5	55.55
2.	जगन्नाथपुर	4	2	50 00
3.	राजपारा	10	6	60.00
4.	रामपुर	3	2	66.66
5.	जबडा पहाडपुर	7	4	57.14
6.	बिजैली	5	3	60.00
7.	डुमरिया	7	5	71.42
8.	महमदिया	7	4	57.14
9.	बलुआ	8	4	50.00
10.	राजभवाड़ा	4	2	50.00
11.	दलन	2	2	100.00
12.	बेलवा	7	5	71.42
13.	बौरनी	7	5	71.42
14	दोआसे	5	3	60.00
15.	सौरिया	6	4	66.66
16.	डण्डखोरा	2	2	100.00
17.	रघेली	11	7	63.63
18.	हफलागंज	2	2	100.00
19.	मधेपुरा	10	7	70.00
20.	परतेली	10	7	70.00
	योग	**126**	**81**	**64.28**

स्रोत :- विद्युत कार्यालय कटिहार ।

नही वे बराबर होती है जिसके चलते जिस ढग मे विकास होना चाहिए नहीं हो पाता है। क्योंकि कोई भी उद्योग धन्धा चलाने के लिए विद्युत की आपूर्ति अधिक मात्रा मे होनी चाहिए लेकिन यदि उसकी आपूर्ति नहीं हो सकेगी तो कोई भी उद्योग धन्धा ढंग से नहीं चल सकेगा ठीक यही स्थिति अध्ययन क्षेत्र में है । जो न्याय पंचायत कटिहार शहर के समीप है वहाँ तो विद्युत की आपूर्ति हो जाती है लेकिन दूरस्थ इलकों मे मात्र पोल दिखाई देता है, पर बिजली नदारद रहती है । अध्ययन क्षेत्र के उन इलाकों में विद्युत की आपूर्ति नहीं हो पाई है, जहाँ प्रति वर्ष कोसी की सहायक नदियों (कोसी धार, कमला, गिदरी) से इलाका जलप्लावित हो जाता है ।

इन कठिनाइयों के होते हुए भी सरकार ग्रामीण विद्युतीकरण को क्रियान्वित करने के लिए निरन्तर प्रयत्न कर रही है । इससे ग्रामीण जन जीवन कई प्रकार से लाभान्वित हो रहा है परन्तु विद्युत आपूर्ति की अनिश्चियता से तथा विद्युतीकरण के कमी के कारण ग्रामवासियों में काफी आक्रोश व्याप्त है फिर भी उनके विकास के लिए ग्रामीण विद्युतीकरण में अभिवृद्धि आवश्यक है ।

3.8 यन्त्रीकरण

किसी भी क्षेत्र में भूमि उपयोग की सफलता उस क्षेत्र में प्रयोग होने वाले उपकरणों पर आधारित है । इसीलिए केवल जीवन निर्वाहक कृषि निम्न स्तरीय तकनीकी विकास पर आधारित होती है । परन्तु कृषि में व्यापारिक दृष्टिकोण, आधुनिक यंत्रों के प्रयोग से अधिक सम्भव हो सका है । इसके अन्तर्गत उन्नतिशील बीजों, रासायनिक उर्वरकों एवं सिंचाई की सुविधा का विशेष महत्व है । व्यापारिक कृषि के लिए यंत्रीकरण एवं परिवहन के साधनों में विकास तथा तैयार मालों के भण्डारण की सुविधाएँ अति आवश्यक हैं ।[10]

अध्ययन क्षेत्र की कृषि में प्रयुक्त तकनीकी सुविधाओं का वितरण अधोलिखित तालिका में (सारिणी 3.10) में दिया गया है ।

सारिणी 3.16

कटिहार प्रखण्ड कृषि यन्त्र (1990 - 91)

क्र0सं0	विकासखण्ड	देशी हल	लोहे का हल	ब्लेड हैरो एव	ट्रैक्टर	सीड डीलर	प्लेन थ्रेसर	पख थ्रेसर	दवा छिड़कने वाली
1	चन्देली भर्रा	935	811	0	1	0	14	105	9
2	जगन्नाथपुर	830	613	1	2	2	13	98	6
3	राजपारा	965	813	2	4	0	45	85	20
4.	रामपुर	936	835	0	2	1	15	75	8
5	जबड़ा पहाड़पुर	813	724	1	2	1	12	74	6
6.	बिजैली	615	624	0	3	0	8	65	5
7	डुमरिया	411	345	0	1	0	6	85	2
8.	महमदिया	816	725	0	0	0	4	45	2
9.	बलुआ	603	518	1	0	0	3	35	1
10.	राजभवाड़ा	526	435	1	0	0	2	42	2
11.	दलन	536	415	1	2	0	2	88	1
12.	बेलवा	432	313	0	4	1	6	67	3
13.	बौरनी	199	84	0	2	0	3	52	2
14.	द्वासे	845	756	4	2	1	2	42	14
15.	सौरिया	514	488	3	2	0	1	37	7
16.	डण्डखोरा	555	315	0	1	0	3	40	6
17.	रघैली	390	285	0	2	0	2	63	3
18.	हफलागंज	418	226	0	0	0	1	28	2
19.	मधेपुरा	535	435	0	1	1	2	26	1
20.	परतेली	735	613	1	2	0	8	48	4
	कुल योग	**12509** **54.66%**	**10373**	**15**	**33**	**07**	**152**	**1200**	**74**

स्रोत :- प्रखण्ड कार्यालय कटिहार ।

कृषि यंत्रों, सिंचाई के साधनों एवं उत्पादन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अध्ययन क्षेत्र में कृषि अभी परम्परागत यंत्रों एवं कृषि कार्य मानवीय श्रम पर आधारित है । इस क्षेत्र में ट्रैक्टर एवं नए कृषि यत्रों का प्रयोग विगत दो दशकों से हुआ है ।

अध्ययन क्षेत्र मे चकबन्दी नही होने से खेतों के आकार छोटे-छोटे है । साथ ही एक ही व्यक्ति के खेत यत्र-तत्र बिखरे हुए है । कृषि में व्यापारिक दृष्टिकोण का नितान्त अभाव दीख पडता है ।

सारणी (3.16) के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि अध्ययन क्षेत्र में हलों की कुल संख्या 22882 है जिसमें 54.66% देशी हल हैं । ट्रैक्टर, सीडड्रील, थ्रेसर तथा दवा छिडकने वाली मशीने नवीन कृषि यंत्रीकरण के मुख्य साधन है । इनकी संख्या अभी बहुत ही कम है । ट्रैक्टर तो प्राय अधिक भूस्वामित्व वाले कृषकों को ही सुलभ हो सका है बाढ़ से विशेष प्रभावित इलाकों में इनकी संख्या कम है । सबसे अधिक संख्या न्याय पंचायत बेलवा, राजपारा में है । इस अध्ययन क्षेत्र में एक ट्रैक्टर औसतन 150 हे0 भूमि की जुताई करता है जो बहुत ही अधिक है । सामान्यत 80 से 100 हे0 भूमि पर एक ट्रैक्टर का होना आवश्यक समझा जाता है । 1980 के पश्चात ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युतीकरण होने के फलस्वरूप कृषि यंत्रीकरण में विशेष प्रगति हुई है । हाल के वर्षो में सरकार द्वारा कम व्याज पर कृषि यंत्रीकरण के लिए वित्तीय सहायता, सड़क परिवहन का विकास, श्रमिकों की कमी एवं मजदूरी की दरों में वृद्धि आदि ने यंत्रीकरण को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया है ।

3.9 खाद एवं उर्वरक

कृषि उत्पादकता को बढाने में खाद एवं उर्वरकों का विशेष स्थान है । चेस्टर बोल्स का कथन है कि समुचित खाद के यथेष्ट प्रयोग से कृषि उत्पादन की मात्रा तिगुनी की जा सकती है । अध्ययन क्षेत्र में कृषि भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने के लिए पहले परती (उखाँव, पलिहर) रखने की प्रथा थी जो जनसंख्या वृद्धि के कारण अब लगभग

समाप्त हो चुकी है । सन् 1976 के पश्चात रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग तीव्र गति से बढ़ा है । न्याय पंचायत दलन, जगन्नाथपुर, दोआसे तथा डण्डखोरा में प्रति हेक्टेयर एक कुन्तल से भी अधिक रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग किया जा रहा है, परन्तु हफलागंज, डुमरिया, रघैली, बिजैली, एवं महमदिया में प्रति हेक्टेयर 50 से 75 कि0 ग्राम तक इस खाद का प्रयोग हो रहा है । सबसे कम रासायनिक उर्वरक का प्रयोग न्याय पंचायत जबडा पहाडपुर, चन्देली भर्रा, राजपारा में किया जा रहा है । यहाँ प्रति हेक्टेयर 35 कि0 ग्राम से भी कम रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग किया जा रहा है । इन उर्वरकों के वितरण को मुख्य रूप से लघु कृषकों की आर्थिक विपन्नता एवं सेवा-केन्द्रों से गांवों की दूरियाँ प्रभावित करती हैं ।

इस क्षेत्र में रासायनिक खादों का विक्रय अब सहकारी समितियों के माध्यम से होने लगा है । ये कृषको को उर्वरकों के क्रय हेतु ऋण की सुविधा भी प्रदान करती है । ये समितियाँ ऋण देकर खादें सुलभ करती है परन्तु इनकी संख्या कम है । रासायनिक खाद के रूप में इस क्षेत्र में यूरिया, एन0पी0के0 कैल्शियम सुपर फास्फेट अमोनियम सल्फेट एवं पोटैशियम का ही अधिक प्रयोग किया जाता है ।

इस क्षेत्र में प्रगतिशील कृषक अपने खेत में हरी खाद के रूप में मूँग का प्रयोग करते है लेकिन ऐसे कृषकों की संख्या बहुत ही कम है । कुछ कृषक अधिक उत्पादन हेतु पटसन आलू तथा केला की खेती में हड्डी की खाद का भी प्रयोग करते हैं ।

इस क्षेत्र में गोबर गैस प्लाण्टों की कुल संख्या 25 है । इनके प्रयोग से बिजली प्राप्त होती है । साथ ही इससे जो खाद तैयार होती है, उसकी क्षमता गोबर से बने कम्पोस्ट खाद की क्षमता से अधिक होती है । यह खाद बहुत ही कम समय में प्रयोग हेतु तैयार हो जाती है । गोबर गैस प्लाण्ट से प्राप्त गैस का उपयोग प्रकाश हेतु एवं ईंधन के रूप में किया जाता है । इससे ईधन की समस्या का भी समाधान हो जाता है ।

भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने के लिए गोबर की खाद के साथ ही साथ रासायनिक खादो का प्रयोग भी आवश्यक है । इन दोनों प्रकार की खादों के अतिरिक्त समय - समय पर हरी खादों का प्रयोग भी लाभदायक होता है । तीनों प्रकार की खादों (गोबर की खाद, रासायनिक उर्वरक एवं हरी खाद) का सम्यक उपयोग किया जाय तो भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रहेगी और अधिकाधिक मात्रा मे कृषि उत्पादन प्राप्त किया जा सके।

3.10 उद्योग

किसी भी क्षेत्र के आर्थिक विकास में उद्योगों का महत्वपूर्ण योगदान होता है उद्योगों से ही क्षेत्र के विकास का आभास मिलता है । जिन क्षेत्रों में उद्योगो का अभाव होता है, वह क्षेत्र यातायात, शिक्षा तथा अन्य सांस्कृतिक क्षेत्रों में पिछड जाते हैं । अत: हम कह सकते हैं कि उद्योग वह कड़ी है जिसके द्वारा हम विकास का मार्ग अपना सकते हैं और सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं ।

अध्ययन क्षेत्र में खनिज संसाधनों का नितानत अभाव है । जिसके चलते उद्योग के मामले में काफी पिछडा हुआ है । अध्ययन क्षेत्र कटिहार शहरी क्षेत्र के समीप है जिसके चलते छोट-छोटे कुटीर एवं लघु उद्योग यत्र-तत्र विकसित है । इनमें से अधिकांश उद्योग एग्रो इण्डस्ट्रीज से सम्बन्धित है । अधिकांश उद्योगों की बहुलता कटिहार जनपद के शहरी क्षेत्र में विद्यमान है । उसमें प्रमुख निम्न है .-

(क) **जूट उद्योग** :- जूट यहाँ के प्रमुख उद्योगों में से एक है । इसकी फैक्ट्री की संख्या दो है । वर्तमान में एक जूट उद्योग बन्द है । कटिहार जूट मिल और आर0 बी0 एच0 एम0 जूट मिल दोनों एक साथ 1935 में स्थापित हुए । लेकिन राजनीतिक दॉव-पेंच तथा अन्य कई कारणों से कटिहार जूट मिल बन्द हो गया । आर0 बी0 एच0 एम0 जूट मिल भी 1976 - 78 के बीच श्रमिकों की हड़ताल के कारण $2\frac{1}{2}$ वर्ष तक बन्द रहा । बाद में बिहार सरकार ने सन् 1980 में इसे अपने अधीन ले लिया । वर्तमान में इसके श्रमिकों की संख्या लगभग 3500 है । इसमें पहले पटसन की साड़ी, बैग, बोरा, पाल, आदि का निर्माण

KATIHAR PRAKHAND
INDUSTRIAL PATTERN
1991
N
AVAILABILITY OF LARGE AND SMALL INDUSTRIES
ABRIVIATION
RF - RICE & FLOUR MILL
SH - SUNDRY HARDWARES
OEF - OIL & EDIBLE FATS
WG - WOODEN GOODS
BG - BUTTERGHEE
B - BIDI
TG - TEXTILE GARMENTS
J - JWELLERY
Ju - JUTE
EG - ELECTRONICS GOODS
B3 - BREAD BAKERY BISCUETS
LM - LOCOMOTIVE
SG - SUGAR, GUR
L2 - LEATHER & LEATHER PRODUCTS
MP - METAL PRODUCTS
P2 - PAINTING & PRINTING
SC - SWEETS CONDIMENTS
2 0 2 4 6
Km
U. A.
EWS

Fig. 3.9

होता था लेकिन अब केवल बडे और छोटे बोरे का निर्माण होता है । यहाँ प्रतिदिन 30 टन कच्चा माल की खपत होती है ।[10] चीनी का बोरा यहाँ अधिक मात्रा में तैयार होता है । अध्ययन क्षेत्र मे पटसन का अधिक उत्पादन के कारण यह उद्योग विकसित है । बिहार के जूट उद्योग में कटिहार का प्रथम स्थान है ।

(ख) **फ्लावर मिल्स** :- कटिहार मे दो फ्लावर मिल जमुना फ्लावर मिल तथा कटिहार फ्लावर मिल कार्यरत है । जमुना फ्लावर मिल कटिहार काली बाड़ी मन्दिर के समीप हैं कटिहार फ्लावर मिल आर0 बी0 एच0 एम0 जूट मिल के समीप हैं । कटिहार फ्लावर मिल में दो यूनिट है । इसकी पहली यूनिट 1934 में तथा दूसरी यूनिट 1992 में स्थापित हुई है । इसकी क्षमता इस प्रकार है -

उत्पादित माल		**संख्या (प्रति घण्टा)**
आटा (गेहूँ)	-	10 + 25 = 35 बोरा
मैदा	-	2 + 6 = 8 बोरा
सूजी	-	2 बोरा
रावा	-	3 बोरा
अरती आटा	-	2 बोरा
द्वीव मिल आटा	-	3 बोरा
चोकर	-	28 बोरा

कुल श्रमिक की संख्या मात्र 40 है । नई यूनिट में मशीन विदेशी है जो स्वीटजरलैण्ड तथा जापान से मँगाई गई हैं । इस मिल का बिहार में अपना विशेष स्थान है ।

(ग) **राइस मिल्स** :- कटिहार में दो राइस मिल हैं, जहाँ बडे पैमाने पर धान की कुटाई होती है । यहाँ से चावल तैयार कर सीलीगुड़ी तथा असम को भेजी जाती है ।

सारणी 3.16

कटिहार प्रखण्ड : उद्योगों का प्रतिरूप

क्र0सं0	उद्योगों का नाम	कटिहार जनपद में	अध्ययन क्षेत्र में
1	वृहद उद्योग	0	0
2.	लघु उद्योग	400	15
3	कुटीर उद्योग	4150	341
4.	हैण्डलूम उद्योग	359	18
5	खादी उद्योग	4	0
6	ग्रामीण तेल पानी	199	16
7	जूता उद्योग	50	8
8.	अन्य चर्म उद्योग	273	28
9.	बढ़ई उद्योग	507	85
10	लोहार गिरी	372	65
11	स्वर्णकार	160	15
12.	ऊन उद्योग	175	17
13.	बाँस बेंत उद्योग	369	31
14.	धातु उद्योग	67	7
15.	रस्सी उद्योग	10	2
16.	गुड उद्योग	22	3
17.	पोलट्री उद्योग	709	67
18.	खिलौना उद्योग	47	3
19.	होस होण्ड	550	32
20.	हैण्डी क्राफ्ट	4	0
21.	अन्य उद्योग	287	21

स्रोत :- कटिहार जिला एक झलक, जिला सांख्यिकी पुस्तिका पृष्ठ सं0 30-।

(घ) **नार्थ बिहार सिलकेट इण्डस्ट्री** :- इसकी संख्या दो हैं । जिसमें क्रमश: 80, 45 श्रमिक काम करते है । इसमें 8 टन सीसा प्रतिदिन तैयार होता है जिसका निमाण सिल्का तथा सोडा मिलाकर किया जाता है । उपर्युक्त उद्योगों के अलावा कुटीर उद्योग के रूप में हैण्डलूम, खादी, जूता, चमडा, बढईगिरी, लोहार गिरी , स्वर्णकार, ऊँन, बाँस, धातु, रस्सी, गुड, पोल्ट्री, खिलौना, हैण्डीक्रेफ्ट तथा अन्य उद्योगों में ईंट, टाली, तथा मूर्ति उद्योग का विकास हो रहा है । कटिहार जनपद तथा अध्ययन क्षेत्र के उद्योगों की रूपरेखा सारणी 3.16 चित्र 3.9 स्पष्ट है ।

शहरी क्षेत्र कटिहार में बडे उद्योगों - जूट उद्योग चावल - दाल, तेल, आटा मिल , लोकोमोटिव, टैक्सटाइल, चमड़ा, इलेक्ट्रानिक्स, विविध प्रकार के वर्कशाप, आइसक्रीम, छपाई, रंगाइ, दुग्ध पशुपालन उद्यम, मुर्गीपालन, आदि मुख्य उपाय हैं । इन बड़े उद्योगों के साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर एवं लद्यु उद्योगों का विकास हुआ है । चित्र 3.8 में कुटीर एवं लघु उद्योग अधिकांशत: एग्रो-इण्डस्ट्रीज से सम्बन्धित है । अध्ययन क्षेत्र में उक्त प्रकार के उद्योग ग्रामीण क्षेत्र में भिन्नता लिए हुए हैं (चित्र 3.9) । मुख्य कुटीर एव लघु उद्योगों केन्द्रों में बेलवा, बलुआ, महमदिया, भेलही, बिजैली, दलन, डण्डखोरा, द्वासे, जगन्नाथपुर, झुन्की बंसन्ता, महेशपुर, नोहरी एवं सिरनिया है, जहाँ पर चावल, आटा, दाल, तेल, मिठाई, मसालें, टेक्सटाइल गारमेण्ट, बाँस-बेंत के सामान लकड़ी के एवं लोहे के विविध प्रकार के सामान, घी, मक्खन, धातु के सामान, गुड, अनेक प्रकार के कृषि यंत्र एवं उनका वर्कशाप चमड़े से सम्बन्धित काम, लकड़ी चीरने की मशीनें, तथा अनेक प्रकार के लकडी के सामान कुटीर एवं लघु स्तर पर बनाकर स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं । इन उपकरणों एवं उत्पादों का विशेष स्थानीय महत्व है । उक्त उत्पादों को तैयार कर स्थानीय हाट एवं मेलों में विक्रय हेतु ले जाते हैं । इस प्रकार इनकी महत्ता को देखते हुए क्षेत्रीय स्तर पर इनका अध्ययन भी आवश्यक है ।

3.11 **अन्य विशेषताएँ** :- अध्ययन क्षेत्र के उपर्युक्त विवरणों के अतिरिक्त कुछ और तथ्य है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कृषि को प्रभावित करते हैं । इनमें शिक्षा - संस्थाएँ,

चिकित्सालय (मानव एवं पशु से सम्बन्धित) मण्डी बाजार, मेला, पोस्ट-आफिस, एवं बैंक आदि सम्मिलित है ।

यादृच्छिक प्रतिदर्शी चयनित गावों के सर्वेक्षणों से उनके सुविधाओं के वितरण में पर्याप्त असमानता पाई गई है । लगभग 25% कृषक ही कृषि सम्बन्धित उत्तम सुविधाओं (जैसे उन्नतिशील बीज, उर्वरक, सिंचाई के आधुनिक साधन, नवीन कृषि पद्धति के लिए ट्रैक्टर, मडाई एवं ओसाई मशीन आदि) का उपयोग करते हैं । ये सुविधाएं प्रायः उन्हीं कृषकों को सुलभ है जो सम्पन्न, साक्षर एवं अपेक्षाकृत बड़ी जोत वाले हैं । ये कृषक नवीन कृषि पद्धति के प्रति विशेष जागरूक भी है एवं उन्हें अपनाने मे अभिरूचि भी रखते हैं । शेष कृषक आर्थिक कठिनाइयों, न्याय पंचायत मुख्यालयों से अधिक दूरी एवं निरक्षता के कारण इनमें लाभान्वित नहीं हो पाते हैं ।

अध्ययन क्षेत्र की कृषि पर सहकारी समितियों का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है जिनसे कृषकगण प्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित होते हैं । ये सहकारी समितियाँ कृषकों को अनेक सुविधाएँ (जैसे कृषि सम्बन्धी यंत्र, रासायनिक खाद, उन्नतिशील बीज, एवं कीटनाशक दवाइयाँ आदि) सुलभ कराती हैं । इनके अतिरिक्त क्षेत्रीय सहकारी समितियाँ अल्पजोत वाले कृषकों को दुधारू पशु (गाय और भैंस) बैल तथा बैलगाड़ी आदि के क्रय हेतु भी ऋण प्रदान करती हैं । क्षेत्र की सहकारी समितियों से लगभग 32% कृषक लाभान्वित होते हैं ।

अध्ययन क्षेत्र में बैंकों का योगदान भी महत्वपूर्ण है यहाँ मुख्य रूप से कोआपरेटिव बैंक, ग्रामीण बैंक, स्टेट बैंक, इलाहाबाद बैंक की शाखाएँ कार्यरत हैं । कोआपरेटिव (सहकारी) ग्रामीण एवं स्टेट बैंक कृषकों को कम ब्याज पर ऋण प्रदान करती हैं । ग्रामीणी बैंक पूर्णिया की शाखा इस क्षेत्र के प्रखण्डों के मुख्यालयों पर सुलभ है । यह बैंक क्षेत्रीय कृषकों को कृषि के विकास के लिए कम ब्याज पर ऋण प्रदान करती हैं ।

अध्ययन क्षेत्र में दो स्वास्थ्य केन्द्र एवं एक पशु चिकित्सालय है । चार अस्पताल, तीन औषधि वितरण केन्द्र, एक जच्चा-बच्चा कल्याण केन्द्र, परिवार-नियोजन

केन्द्र तथा दो स्वास्थ्य केन्द्र हैं । पाँच बेसिक उपस्वास्थ्य केन्द्र एवं एक बेसिक स्वास्थ्य केन्द्र विद्यमान है ।

शैक्षणिक संस्थाओं की दृष्टि से यह अध्ययन क्षेत्र पिछड़ा हुआ है । इस क्षेत्र में बेसिक स्कूल 103 हैं, जिसमें वर्ग चार तक के छात्र पढते है । जूनियर हाईस्कूल 17 हैं, जिसमें वर्ग आठ तक के छात्र पढ़ते हैं । हाईस्कूल 4 जिसमें वर्ग दस तक के छात्र पढते हैं । महाविद्यालय दो हैं जिसमें स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर तक की पढ़ाई होती है । अन्य शैक्षिक संस्थान चार है जिसमें उर्दू फारसी की पढ़ाई भी होती है ।

डाकघर ग्यारह, टेलीफान आफिस एक, बस स्टेशन तीन, रेलवे स्टेशन चार, एवं बाजार नौ हैं । इस तरह अध्ययन क्षेत्र में उपर्युक्त सुविधाएँ विद्यमान हैं जिसके चलते आज विकास की ओर अग्रसर हो रहा है । आज से दो दशक पूर्व इन सभी सुविधाओं का प्राय: अभाव था । फिर भी बढ़ती हुई जनसंख्या के आधार पर उपर्युक्त सभी सुविधाएँ कम हैं, जो सुविधाएँ उपलब्ध हैं, वहाँ भी कुछ न कुछ समस्याएँ होने के कारण सही ढंग से काम नहीं हो पाता है जिससे जनता को काफी परेशानी होती है ।

3.12 कटिहार के ऐतिहासिक, धार्मिक एवं दर्शनीय स्थल :-

यहाँ कटिहार जनपद के कुछ प्रमुख ऐतिहासिक, धार्मिक एवं दर्शनीय स्थलों की चर्चा की जा रही है । यद्यपि ये स्थल अध्ययन क्षेत्र से बाहर है लेकिन प्रखण्ड के सामाजिक - सांस्कृतिक गतिविधियों पर इनका प्रभाव प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से पड़ता है अत: इनका अध्ययन संक्षिप्त में आवश्यक है ।

(1) कटिहार जनपद के दर्शनीय स्थल :-

(क) बलदिया बाड़ी :-

गंगा नदी के किनारे मनिहारी से करीब 2.5 किमी0 की दूरी पर बसा यह गाँव मुर्शिदाबाद के नवाब सिराजुद्दौला और पूर्णिया के गवर्नर शौकत जंग के बीच की हुई लड़ाई के लिए प्रसिद्ध है । ऐतिहासिक दृष्टि से इसका विशेष महत्व है ।

(ख) बेलवा :-

बारसोई प्रखण्ड मुख्यालय से लगभग 8 किमी0 दक्षिण में बसा यह छोटा सा गाँव है । यहाँ प्राचीन कालीन भवन एवं भगवान शिव एवं देवी सरस्वती की प्राचीन मूर्ति है । यहाँ बसन्त पंचमी के अवसर पर वार्षिक मेला लगता है । इस प्रकार यह एक धार्मिक एवं सांस्कृतिक तीर्थ स्थल है ।

(ग) दूवी-सुभी :-

बारसोई प्रखण्ड के अन्तर्गत बसे इस छोटे से गाँव का अपना धार्मिक महत्व है । कहा जाता है कि आज से लगभग 80 वर्ष पूर्व एक युवक ने कुश के सहारे अपना गर्दन काटकर स्वयं को बलिदान किया था ।

(घ) गोरखपुर :-

आजम नगर प्रखण्ड के अन्तर्गत मुकुरिया स्टेशन से 3 किमी0 की दूरी पर बसे इस गाँव में प्राचीन "गोरखनाथ" मन्दिर है । यहाँ देवघर की तरफ श्रावण मास में लोग मनिहारी से गंगा जल लेकर पैदल चलकर बोल-बम का नारा देते हुए भगवान शिव पर जल अर्पित करते हैं ।

(ड.) कल्याणी झील :-

कदवा प्रखण्ड के अन्तर्गत झौवा रेलवे स्टेशन से 5 किमी0 उत्तर में स्थित स्थल पर प्रत्येक वर्ष माघी पूर्णिमा के अवसर पर मेला लगता है । बहुत से लोग इस झील के पवित्र जल में स्नान करते हैं और बकरे की बलि चढ़ाते हैं ।

(च) मनिहारी :-

इस स्थान के नामकरण के पीछे एक किवदन्ती है कि भगवान कृष्ण जब इस स्थल से गुजर रहे थे तो उनका कमरधनि से मणि गिर पड़ी थी । चूँकि उनकी मणि यहीं पर खोई थी , इसलिए इस स्थल का नाम मनिहारी पड़ा । माघी पूर्णिमा के अवसर

पर यहाँ मेला लगता है ।

(छ) **पीर पहाड़ :-**

मनिहारी स्टेशन के बगल में सत्तर फीट ऊँची पहाड़ी पर एक मजार है जिसे लोग पीर बाबा का मजार कहते हैं । इस पहाडी पर चढ़ने के लिए ७5 सीढ़ी हैं । यह दर्शनीय स्थल है ।

(ज) **घोघ जलकर :-**

अमदाबाद प्रखण्ड मे एक पक्षी विहार है । यहाँ प्रवासी पक्षी बहुतायत में आकर रहते हैं । मनिहारी से लगभग 10 किमी0 की दूरी पर स्थित इस स्थान तक आने के लिए सड़क मार्ग है ।

(झ) **मकदमपुर :-**

कोढा प्रखण्ड के अन्तर्गत राष्ट्रीय उच्च मार्ग 31 के बगल में बसा यह छोटा गाँव है । यहाँ प्राचीन शिव मन्दिर है । शिव रात्रि के अवसर पर यहाँ मेला लगता है ।

(2) **कटिहार शहर के दर्शनीय स्थल -**

जिला मुख्यालय का प्रमुख शहर एवं महत्वपूर्ण व्यवसायिक केन्द्र है। यह जूट मिल के लिए प्रसिद्ध है । यहाँ दो धार्मिक स्थल हैं ।[12]

(क) **दुर्गा मन्दिर -**

कटिहार स्टेशन से लगभग दो किमी0 की दूरी पर कालोनी नं0 1 के पास है । आश्विनी मास के दुर्गा पूजा के अवसर पर यहाँ मेला लगता है ।

(ख) काली बाड़ी .-

कटिहार बस स्टेशन से एक फर्लांग की दूरी पर यमुना आटा मिल्स के पास है । यहाँ प्रत्येक सप्ताह मंगलवार व शनिवार को विशेष रूप से लोग मां काली की पूजा अर्चना करने आते हैं । काली पूजा के अवसर पर यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है । यहाँ मण्डलीय उत्तर - पूर्वी सीमान्त रेलवे का मुख्यालय भी है ।

****

सन्दर्भ - सूचिका (*REFERENCES*)

1. जिला साख्याधिकारी द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर ।
2. सांख्यिकीय कार्यालय बिहार, पटना द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर ।
3. 1991 की जनगणना के अनुसार, सांख्यिकी विभाग, जनपद कटिहार, बिहार ।
4. प्रखण्ड पशुपालन पदाधिकारी कटिहार द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर ।
5. *Canon, A.M.a : New Railway Construction and the Pattern of Economic Development of East Africa, Transactions, 9.B.G. No.36. June 1965, p.21.*
6. अखिल भारतीय पंचम शिक्षा सर्वेक्षण 1986/87 कटिहार जिला का संक्षिप्त प्रतिवेदन, मानव संसाधन विकास विभाग, बिहार, पृ0 6.
7. प्रखण्ड कार्यालय कटिहार द्वारा प्राप्त आँकड़ों के आधार पर ।
8. उपर्युक्त ।
9. जिला विद्युत कार्यालय कटिहार ।
10. *Mamoria C.B : Agricultural Problem in India (Kitab Mohal Allahabad 1960) 3rd Ed. p. 138.*
11. *R.B.H.M.* जूट मिल कटिहार कार्यालय द्वारा प्राप्त आकड़ों के आधार पर ।
12. जिला सांख्यिकी हस्तपुस्तिका कटिहार, जिला सांख्यिकी कार्यालय कटिहार, पृ0 67.

xxxxx

xxxxxxxxxx

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

अध्याय - चतुर्थ

भूमि उपयोग सिद्धान्त

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

xxxxxxxxxx

xxxxx

अध्याय - चतुर्थ

भूमि उपयोग सिद्धान्त

4.1 (अ) सामान्य सन्दर्भ .-

मानवीय अर्थव्यवस्थाओं मे कृषि का विशेष महत्व है । जीविका-अर्जन की प्रक्रिया मे आखेट, पशुपालन एव वन संसाधनों को एकत्रित करने पर दीर्घकाल तक निर्भरता के उपरान्त मनुष्य धीरे-धीरे कृषि विधियों को अपनाने लगा और कालान्तर मे वह इन्हीं के द्वारा जीविकापार्जन करने लगा, अब मानव के भरण-पोषण में कृषि का सबसे अधिक योगदान है । इसी पर आधारित अन्य व्यवसाय भी मानवीय क्रियाओं से जुड़कर उसकी आधुनिक सभ्यता के प्रतीक बन गए हैं ।

कृषि के प्रचलन ने मनुष्य की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति की । कृषि कार्य के लिए उसे अब सुनिश्चित होकर एक स्थान पर रहना पडा और इसी कारण उसे गृह निर्माण करना पड़ा तथा पशुपालन का भी सहारा लेना पडा, क्योंकि कृषि का अधिकांश कार्य पशुओ पर निर्भर था । उसे पशुओं से विभिन्न उपयोगी वस्तुएँ (जैसे दूध, घी, मक्खन, चमडा हड्डी आदि) प्राप्त हुई इसलिए धीरे-धीरे सभ्यता का विकास हुआ एवं मनुष्य पशुचारण युग से वर्तमान अंतरिक्ष युग में प्रवेश किया ।

(ब) ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य :-

कृषि का श्रीगणेश भी मानव सभ्यता की भाँति ही अति प्राचीन प्रतीत होता है । यद्यपि यह कहना कठिन है कि कृषि का सुव्यवस्थित कार्य कब प्रारम्भ हुआ, किन्तु इतना तो सम्भाव्य है कि आखेट, वन क्रिया-कलाप एव पशुपालन के उपरान्त ही कृषि कार्य प्रारम्भ हुआ होगा पहले अव्यवस्थित रूप में और तत्पश्चात धीरे-धीरे सुव्यवस्थित रूप में ।

कुछ विद्वानों के अनुसार पौधों एवं पशुओं के उगाने और पालने का कार्य कम से कम आठ हजार ई0 पू0 से पहले प्रारम्भ हुआ । इससे पहले मानव आखेट युग में था। पशुचारण और कृषि-कार्य दीर्घकालीन तक साथ-साथ किन्तु अव्यवस्थित रूप में चलते रहे

और यह क्रम लम्बे काल तक चला । पहले पशुचारण प्रधान रहा किन्तु धीरे-धीरे कृषि कार्य प्रधान हो गया । कृषि का प्राथमिक रूप बदलता रहा है और बदलता रहेगा । आज कृषि अपने पूर्ण आधुनिक विकसित एवं व्यापारिक रूप मे दिखायी देती है ।

निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण मनुष्य ने जगलों को साफ किया और कृषि क्षेत्रों मे परिवर्तित कर दिया । धीरे-धीरे नदी-घाटियों के अतिरिक्त पठारों, पर्वतों एवं मरूभूमियों में भी कृषि कार्य फैलता गया । गाँवों और नगरों का जाल सा बिछ गया और भूमि एक निश्चित क्षेत्र से अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करने का प्रयास किया जाने लगा । इस प्रकार कृषि का विस्तृत स्वरूप उभरा । इसके पश्चात भूमि से अधिकाधिक कृषि उत्पादन प्राप्त करने के लिए शोधों और अध्ययनों की शुरूआत हुई जिससे कृषि भूमि-उपयोग में सैद्धान्तिक पक्ष का प्रतिपादन हुआ । सैद्धान्तिक उपगमन के अनेक दृष्टिकोण अपनाए गए जो भिन्न-भिन्न आधारों पर अवबोधित थे ।

(स) सिद्धान्त सन्दर्भ :-

भूमि उपयोग के सिद्धान्त इस सन्दर्भ पर निर्भर है कि भूमि के निश्चित क्षेत्र से किन प्रविधियों एवं तन्त्रों द्वारा अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जाय और कृषि कार्य में प्रयुक्त लागत अपेक्षाकृत निम्नतम हो जिससे उत्पादन में अधिकतम लाभ सुलभ हो सके । ऐसा सम्भव होने के लिए निम्न पक्षों में से एक या अधिक का होना आवश्यक है -

(1) निश्चित क्षेत्र में सिंचाई की उपलब्धता बढ़ाकर, सुधरे बीजों का प्रयोग बढ़ाकर, खादों का उचित एवं सन्तुलित प्रयोग कर, कृषि औजारों की कुशलता बढाकर तथा फसलों की उचित अनुकूलता को निर्धारित कर अधिकतम कृषि उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है ।

(2) उस निश्चित क्षेत्र में फसलों के उचित हेर-फेर द्वारा, उनके उचित संयोजन एवं साहचर्य द्वारा उनकी सन्तुलित मिश्रित प्रक्रिया द्वारा तथा दो फसली क्षेत्र की वृद्धि द्वारा अधिकतम कृषि उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है ।

(3) उस निश्चित क्षेत्र मे फसलों के चयन मे प्रति हेक्टेयर अधिक उत्पादन देने वाली साथ ही अधिक मूल्य देने वाली फसलों के चुनाव से भी अधिकतम कृषि उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है ।

(4) उस निश्चित क्षेत्र में लागत मूल्य घटाकर भी कृषि उत्पादन में अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सकता है ।

(5) उस निश्चित क्षेत्र में आवासों से दूर कृषि कार्य में परिवहन लागत घटाकर तथा कृषि उत्पादन संग्रहित करने में परिवहन व्यय कम कर कृषि उत्पादन से अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सकता है, तथा

(6) उस निश्चित क्षेत्र मे भूमि के प्रकार, परिवहन प्रणाली, श्रमिक-संसाधन एवं बाजार-प्रक्रिया के विश्लेषणों द्वारा भी कृषि उत्पादन में अधिकतम लाभ का पक्ष एवं उसकी दिशा निर्धारित की जा सकती है ।

(7) निरन्तर अधिक उत्पादन हेतु शस्य काल (*Cropping Time*) को घटाकर मृदा की उर्वरता को बनाये रखा जा सकता है मृदा संरक्षण एवं पर्यावरणीय दृष्टि से यह आवश्यक पक्ष है । उपयुक्त सभी सन्दर्भो एवं पक्षों को ध्यान में रखकर विद्वानों ने भूमि उपयोग से सम्बन्धित के कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है जिनका विवरण निम्न प्रकार है ।

(द) सिद्धान्त निरूपण :-

उपर्युक्त सन्दर्भो का आधार मानते हुए अनेक विद्वानों ने 19वीं शताब्दी में ही कृषि भूमि उपयोग के सिद्धान्तों का विवेचन प्रारम्भ किया था जिनमें जे0 एच0 वान थ्यूनेन महोदय (1783-1850) का योगदान विशेष उल्लेखनीय है । ये एक जर्मन विद्वान थे जो मैक्लेन-वर्ग में एक फार्म (कृषि क्षेत्र) के मैनेजर (व्यवस्थापक) भी थे । उन्होंने अपने दीर्घकाल के अनुभवों तथा आर्थिक विवेचनों के आधार पर 1825 में भूमि उपयोग के एक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो 'वान थ्यूनेन सिद्धान्त' के नाम से प्रचलित है । वे एक सुयोग्य अर्थशास्त्री

एक अनुभवी कृषि अर्थशास्त्री थे इसीलिए उन्होंने अपने सिद्धान्त में इन दोनों पक्षों का समावेश किया है । इस सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत् हैं -

(1) **वान थ्यूनेन का सिद्धान्त** [1] - वान थ्यूनेन के सिद्धान्त को भली-भाँति समझने के लिए यह आवश्यक है कि उनके द्वारा कुछ मान्य दशाओं का ज्ञान सबसे पहले प्राप्त कर लिया जाय । इन दशाओं का स्पष्टीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है :-

(अ) उन्होनें एक ऐसे प्रशस्त कृषि क्षेत्र की कल्पना की है जो प्रथक प्रदेश के रूप मे पाया जाता है और जिस क्षेत्र में एक ही नगर स्थित हो । यद्यपि ऐसी दशाएँ वास्तविकता से परे है तथापि अपने सिद्धान्त को सुस्पष्ट करने के लिए उन्हें इस वास्तविकता को चयन करना पडा । भौगोलिक दृष्टिकोण से यह काल्पनिक स्थिति मात्र ही है ।

(ब) उन्होने उसी एक नगर को उत्पादन तथा उपयोग स्रोत दोनों ही मानने की कल्पना की । मृदा-उर्वरता, फसलो की उपज क्षमता, लागत व्यय की समरूपता तथा सर्व समतल धरातल और समान यातायात की सुविधाएँ भी मानी गयी जो वास्तविकता के परिद्योतक नहीं है । सम्यक उत्पादन क्षमता तथा समान यातायात की कल्पना भौगोलिक दृष्टिकोण से असहज प्रतीत होती है । किन्तु वान थ्यूनेन महोदय ने अपनी वैचारिक अनुशीलता को सहज एवं सरल बनाने के लिए ऐसे वास्तविक सन्दर्भों का भी परित्याग किया है ।

(स) उन्होनें माना है कि दूरी तथा भार के अनुपात में ही परिवहन व्यय बढ़ता है, जो कुछ विशेष सन्दर्भों में ही सही प्रतीत होता है ।

(द) उनके अनुसार उस एक नगर के अतिरिक्त उस कृषि क्षेत्र में ग्रामीण बस्तियाँ फैली होगी । कृषक अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए इच्छुक होगें और नगर में स्थित बाजार की माँग के अनुसार अपने कृषि क्षेत्र में फसल उगाने में सक्षम होगें ।

उपर्युक्त मान्यताओं के अनुसार बाजार क्षेत्र के चारों ओर बढ़ती हुई दूरी के अनुसार फसलों के उत्पादन क्षेत्र का लाभ अनवरत घटता जायेगा । यदि शहर से बढ़ती हुई दूरी के अनुसार विभिन्न उद्योगों का सहज महत्व ध्यान में रखा जाय तो उस आधार पर

वान-थ्यूनेन का स्थानीकरण मॉडल
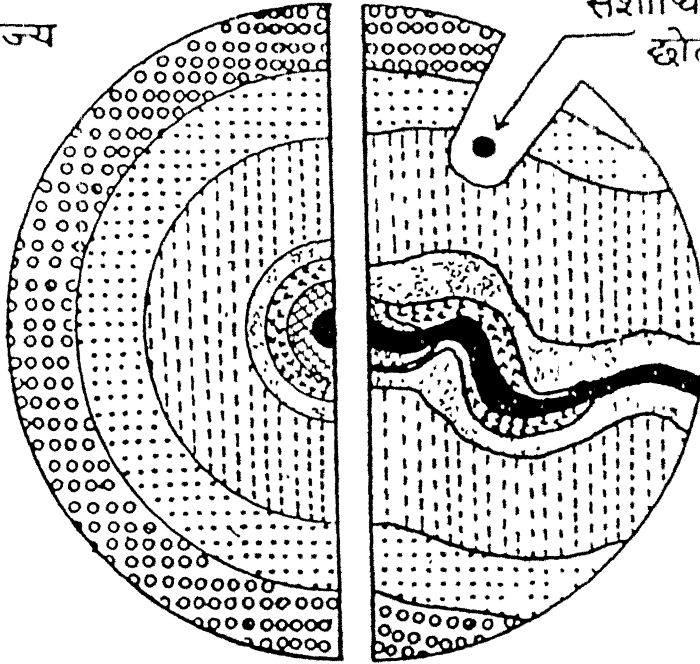
1- केन्द्रीय नगर
2- बागवानी कृषि तथा दुग्धोत्पादन
3- जलाऊ लकड़ी के वन
4- परती रहित गहन कृषि
5- नाव्य नदी
6- चारागाह-परती सहित
7- तीन खेत विधि
8- पशुपालन

FIG. 4.1

भी अधिक महत्व के उद्यम नगर के निकट और कम महत्व के उद्यम नगर से दूर क्रियान्वित पाएं जायेगें ।

इस सिद्धान्त के अनुसार किसी भी कृषक का लाभ तीन विचलकों पर आधारित होता है जो निम्न सूत्र द्वारा परिबोधित किए जा सकते हैं -

$P = V - (E + T)$ जहाँ P = कृषक का लाभ
V = वस्तु का विक्रय मूल्य
E = उत्पादन की लागत और
T = परिवहन की लागत के द्योतक हैं ।

उक्त सूत्र के अनुसार भूमि उपयोग सम्बन्धी कृषि पेटी की बाहरी सीमा परिवहन लागत के बढते जाने के कारण घटते हुए लाभ का द्योतक होगी और जहाँ कहीं ऐसा लाभ समाप्त प्राय होगा वहीं यह बाहरी सीमा निर्धारित हो जायेगी । कृषि पेटी में आन्तरिक उपपेटियों की सीमाएं आर्थिक लाभ तथा कम लाभ देने वाली फसलों एवं बाजार से बढती हुइ दूरी दोनों ही विकल्पों पर आधारित होगी, जिनमें परिवर्तनों का प्रभाव इन उपपेटियों पर निरन्तर पडता रहेगा । वान थ्यूनेन महोदय ने केन्द्रीय नगर के चारों ओर विकसित होने वाली सात पेटियों का उल्लेख किया है (जो चित्र संख्या -4-1) में दिखाई गयी है :-

(1) केन्द्रीय नगर की स्थिति ।

(2) नगर के निकटस्थ भूमि उपयोग की पहली पेटी गहन कृषि की पेटी होगी जिनमें तरकारियाँ, पुष्पोत्पादन, दुग्ध व्यवसाय आदि जैसे कार्य सम्पन्न होगें । ये शीघ्र नाशवान पदार्थ हैं जो मानव जीवन में प्राथमिकता के निरन्तर प्रयुक्त होते हैं ।

(3) तत्कालीन अर्थ-व्यवस्था के अनुसार जलाने की लकड़ी का अधिक महत्व था। अत. उन्होनें भूमि उपयोग की दूसरी पेटी को ईंधन की लकड़ी -उत्पादन पेटी के रूप में बताया । आधुनिक सन्दर्भ में जब ईंधन के रूप में कोयले या गैस, सौर्य-प्रकाश का प्रयोग

होने लगा है । अत वर्तमान के सन्दर्भ मे इस प्रकार की पेटी की कल्पना असहज सी प्रतीत होती है ।

(4) तीसरी पेटी में भूमि उपयोग की वह कृषि क्रिया मानी गयी है जिसमें अन्नोत्पादन का सक्रिय कार्य होने के कारण परती भूमि नहीं छोड़ी जा सकती । इस पेटी की संलग्नता में उन्होंने प्रवाहित नदी का होना भी मान लिया है क्योंकि परती न छोडते हुए कृषि भूमि उपयोग के लिए सिंचाई की अति आवश्यकता होगी जिसके लिए नदी जल का होना तत्कालीन सन्दर्भ में आवश्यक था । आधुनिक संसाधनों के अनुसार वह कार्य नदी के अतिरक्त नलकूपों नहरों द्वारा भी सम्पादित किया जा सकता है ।

(5) नाव्य नदी का प्रवाह मार्ग ।

(6) भूमि उपयोग की चौथी पेटी अन्नोत्पादन की वह पेटी मानी गयी है जिसमें परती तथा चारण भूमि दोनों ही निहित है । इस पेटी में सिंचाई की कम आवश्यकता पड़ती है । वान थ्यूनेन के अनुसार कृषक चौथी पेटी में ऐसी फसलों को अपनाता है जो बिना सिंचाई के ही उत्पन्न हो जाय ।

(7) पाँचवी पेटी भूमि उपयोग की तीन खेत प्रणाली पर आधारित होगी जिसके लगभग एक तिहाई भाग पर विस्तृत खेती, एक तिहाई भाग में परती - क्षेत्र और शेष एक तिहाई भाग पर पशुचारण क्षेत्र होगा । पेटी के दूरस्थ वाले भागों में चारागाह क्षेत्र की अधिकता होगी । जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप परती भूमि को भविष्य में कृषि भूमि में बदला जा सकता है ।

(8) भूमि उपयोग की छठी पेटी पशुपालन उद्योग की विशेष पेटी होगी । इसमें विस्तृत पशुपालन क्रिया सम्पन्न होगी । आवश्यकता के अनुसार ही पशुपालन उद्योग की पेटी नगर के दूरस्थ भागों में मानी गयी है ।

नगर से दूर भूमि उपयोग की सॉतवी पेटी बंजर भूमि से आच्छादित हो सकती है जिसमें न तो कृषि कार्य और न तो पशुचारण कार्य ही सम्भव होगा ।

वान थ्यूनेन महोदय की भूमि उपयोग की पेटियों को चित्र संख्या 4.1 दर्शाया गया है । उक्त चित्र से स्पष्ट है कि ये पेटियाँ केन्द्रिय नगर एवं संलग्न नदी से दोनों ओर लगभग वृत्तकार रूप में फैली हुई है ।

वान थ्यूनेन महोदय का सिद्धान्त यद्यपि विचार परक है तथापि वह आवश्यक मान्यताओं और अवास्तविकताओं से भरपूर है । इसलिए आधुनिक विकसित अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में तथ्यहीन सा प्रतीत होता है । उनके द्वारा परिलक्षित कृषि उत्पादन तथा अन्य पेटियो का सम्बन्ध तथा स्वरूप अब कहीं भी परिलक्षित नहीं होता । परिवहन साधन तथा अन्य साधनों के परिवर्तनों के कारण उनकी मान्यताएँ तथा उन आधारों पर निर्धारित पेटियों का प्रारूप भी असम्भव हो जायेगा । कृषि में यन्त्रीकरण फसल संयोजन, शस्य साहचर्य तथा फसल संतुलन आदि कारकों के कारण वान थ्यूनेन के समय से अब तक दशाओं में महान परिवर्तन हो गया है । भारत जैसे घने आबाद देश में गहन कृषि का विशेष महत्व होने के कारण वान थ्यूनेन की कृष्येतर पेटियाँ सन्दर्भहीन हो गयी है । अब दुग्ध-व्यवसाय और पशुचारण क्रिया गहन कृषि से सलग्न उद्यम के रूप में परिचालित है । वान थ्यूनेन ने मृदा उर्वरता की समानता, भूमि की सम्यक् समतलता, प्राकृतिक वातावरण की समता तकनीकी एवं आर्थिक कारकों की समानता, श्रम कुशलता एवं परिवहन लागत की समानता तथा लागत मूल्य की समरूपता, एक ही केन्द्रीय नगर एवं एक ही बाजार की सुविधा की कल्पना और विश्व के सभी भागों में मैकलेन - वर्ग में स्थित कार्य (कृषि क्षेत्र) का समरूपता मानकर जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है, वह अब ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि के रूप में अवशेष रह गया है । इस सिद्धान्त को पुनर्विश्लेषित कर तथा नवीन विचारों द्वारा पुनर्स्थापित कर डन[2] (1945), हुबर[3] (1948), लॉश[4] (1954), इजाई[5] (1955), एलोन्शे[6] (1944), गैरिसन एवं मार्बुल[7] (1957) और होरवथ[8] (1969) आदि विद्वानों ने पुनः प्रतिपादित करने का प्रयास किया है, किन्तु इन प्रयासों से वान थ्यूनेन के मूल सिद्धान्त का स्वरूप और उद्बोधन ही लगभग पूर्णरूपेण परिवर्तित हो गया है ।

डन तथा लॉश महोदयों ने वानथ्यूनेन के सिद्धान्त की कुछ आलोचना की है उनके अनुसार वान-थ्यूनेन द्वारा प्रतिपादित भूमि उपयोग का आर्वतन कुछ सीमित एवं निश्चित

परिस्थितियों में ही सम्भव हो सकता है । इन के अनुसार शहर से दूर कृषि की क्षमता में सदा ह्रास होता है, यह काल्पनिक है । चिशोम एवं हाल के अनुसार कुछ हल्के पदार्थो का उत्पादन बाजार से दूर भी लाभप्रद ढ़ग से किया जा सकता है । यातायात की सुविधा होने पर उन्हें कम व्यय में व्यापारिक केन्द्रों तक पहुँचाया जा सकता है ।

अनेक विद्वानों ने भी वानथ्यूनेन के सिद्धान्त की आलोचनाएँ की हैं और उसके भग्नावशेषों पर अपना सिद्धान्त प्रतिपादित करने का प्रयास किया है । इनमें लॉश एवं इजार्ड महोदयों के योगदान उल्लेखनीय है ।

(2) **ओलाफे जोनासन का सिद्धान्त**[9] - जोनासन महोदय स्वीडेन के निवासी थे । वे अर्थशास्त्र एवं भूगोल दोनों ही विषयो में रूचि रखते थे । उन्होंने 1925 के आस-पास वान थ्यूनैन के सिद्धान्त को विकसित करने का प्रयास किया । उनके अनुसार नगर या गाँव के निकट का पहला क्षेत्र सघन सब्जी, फल तथा पुष्पोत्पादन का क्षेत्र होता है । दूसरी पेटी में कम नाशवान शाक-भाजी (जैसे- आलू) तथा कुछ मुद्रादायिनी फसलें (जैसे - तम्बाकू) अथवा कुछ चारे की फसलें उगायी जाती हैं । इस पेटी से बाहरी क्षेत्रों में सघन कृषि एवं गहन डेयरी कार्य सम्पन्न किया जाता है । यह तीसरी पेटी का रूप धारण कर लेता है । चौथी पेटी में सामान्य कृषि, सूखी घास का उत्पादन एवं कम सघन पशुधन से सम्बन्धित कार्य किया जाता है । पाँचवी पेटी में मोटे खाद्यान्नों एवं वनस्पति तेलों आदि की फसले उगाई जाती हें । छठी पेटी मुख्यत· चारागाह की पेटी होती है जिसमें मुख्यतः माँस, चर्बी एवं चमड़े आदि का कार्य किया जाता है । सॉतवी पेटी वन्य कृषि पेटी होती है, यहाँ कृषि कार्य छिटपुट रूप में ही होती है । इस पेटी की बाहरी परिधि वन क्षेत्रों से परिपूर्ण होती है जोनासन महोदय ने उपर्युक्त पेटियों की कल्पना यूरोप के कृषि क्षेत्रों के सन्दर्भ में किया है । भारत जैसे देश के सन्दर्भ में इसकी उपयोगिता कहीं सिद्ध नहीं हो पाती है ।

वान थ्यूनेन की भाँति ही जोनासन की पेटियाँ भी नगर क्षेत्र के दूरी को ध्यान में रखकर संकल्पित की गयी है । आधुनिक युग में यातायात के सहज साधन सुलभ होने

ओलोफ जोनासन का कृषि स्थानीकरण – मॉडल

(A)
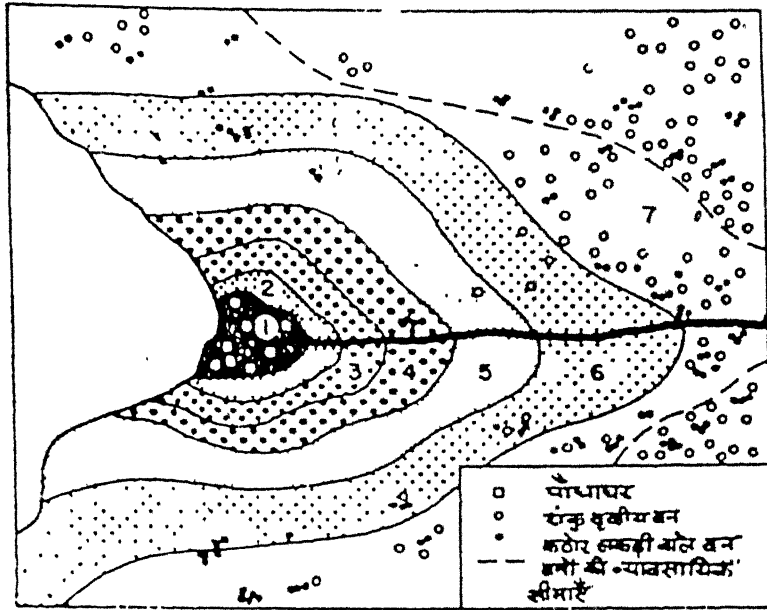
जोनासन द्वारा एडवर्डस पठार का मण्डलन
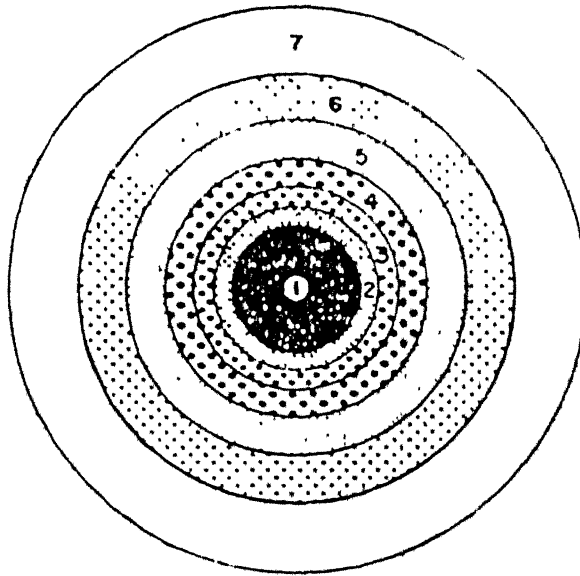
(B)

Fig. 4. 2

से तथा शाक-भाँजी आदि नाशवान सब्जियों, फलों को तथा माँस युक्त पदार्थो को शीतालयों में रखकर दीर्घकाल तक उपयोगी रखा जा सकता है तथा दूर क्षेत्रों को भी भेजा जा सकता है । इस प्रकार इन पेटियों का आधुनिक महत्व अधिक क्षीण प्राय सा हो गया है । जोनासन महोदय ने टेक्सास प्रदेश में एडवर्स पठार पर जिन आदर्श क्रमिक मण्डलों (चित्र संख्या 4.2) का विवरण कियाहै, वह यद्यपि उनकी अवधारणा से मिलता जुलता है तथापि आधुनिक परिप्रेक्ष्य में अधिक हद तक तथ्यहीन सा प्रतीत होता है । इस प्रकार अनेक कृषि अर्थशास्त्रियों ने जोनासन के सिद्धान्त की आलोचना की है ।

(3) **ओ0 ई0 बेकर का सिद्धान्त**[10] - बेकर महोदय संयुक्त राज्य अमेरिका में कृषि-अर्थशास्त्र के विद्वान थे । उन्होंने शस्य वितरण सम्बन्धी अपना सिद्धान्त निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है :-

उनके अनुसार प्रमुख कार्य कृषि क्षेत्रों की स्थिति का निर्धारण करना है । कृषि प्रतिरूपों को ध्यान में रखना भी आवश्यक है जिनके आधार पर कभी - कभी क्षेत्रीय नामकरण भी हो जाता है । जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका में कपास की पेटी, मक्के की पेटी आदि के क्षेत्र । उन्होंने शस्य की प्रधानता को ध्यान में रखकर कृषि मण्डलों का निर्धारण करने का प्रयास किया । बेकर द्वारा किए गये शस्य प्रधानता के विश्लेषणों को ध्यान में रखकर 1930 के लगभग संयुक्त राज्य अमेरिका में कृषि क्षेत्रों (कार्यों) को बारह प्रकारों में विभक्त किया गया है । कालान्तर में पुनः संशोधनों के आधार पर 812 कृषि प्रक्षेत्र निर्मित किए गये हैं । बेकर ने कृषि मण्डलों या कृषि पेटियों के स्थान पर शस्य स्वरूपों की प्रधानता अथवा भागों के आधार पर श्रेणीयन करने का प्रयास किया गया है । ये श्रेणियाँ क्रमबद्ध रूप में पेटियों की भाँति नहीं प्रस्तुत की जा सकती । बेकर के श्रेणीयन की प्राथमिकता निम्न प्रकार है :-

(1) वह शस्य या कृषि उपज जिसकी किसी अधिवास के सन्दर्भ में पर्याप्त माँग होती है, भूमि की सक्षमता को ध्यान में रखकर, सर्वप्रथम उगाने का प्रयास किया जाता है । यद्यपि इसका उत्पादन जलवायु तथा भौतिक दशाओं पर निर्भर होता है तथापि अन्य शस्यों की तुलना में इस पर माँग का भी प्रभाव पड़ता

है । ऐसे शस्य प्रथम श्रेणीयन में आते है ।

(2) इस श्रेणीयन मे ऐसी फसलें उगाई जाती हैं जिनमे प्रति इकाइ मूल्य पर उत्पादन का वजन कम होता है । इसके लिए परिवहन व्यय को भी ध्यान में रखना अपेक्षित होता है, जो भारी फसलें अधिक परिवहन व्यय नहीं सहन कर सकती उन्हें केवल स्थानिक माँग की पूर्ति के लिए ही उगाया जाता है ।

(3) तीसरी श्रेणीयन मे श्रमिक माँग को ध्यान में रखकर कृषि कार्य किया जाता है । कुछ फसलें ऐसी होती हैं जो मौसमी आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं और उनमें मजदूरों की माँग भी तत्कालीन होती है । ऐसी फसलें तृतीय श्रेणीयन में आँकी जा सकती है । इनका उत्पादन अन्य कारकों की अपेक्षा श्रमिक माँग की पूर्ति पर अधिक निर्भर है ।

(4) चौथी श्रेणीयन में शस्य संयोजन का विशेष महत्व होगा क्योंकि जलवायु, मिट्टी की उर्वरता, मौसमी माँग आदि तथ्यों को ध्यान में रखकर ही कुछ फसलों का इस प्रकार संयोजन, प्रस्तुत किया जा सकता है । जिसमें उत्पादन अधिक हो, अधिकाधिक माँग की पूर्ति हो और श्रम तथा लागत अपेक्षाकृत कम लगे ।

(5) अधिवासों की जनसंख्या वृद्धि ध्यान में रखकर तथा भूमि की सापेक्ष कम को दृष्टिगत करते हुए विविध प्रकार की फसलों के उत्पादन की प्रवृत्ति अपनायी जा सकती है । अधिवासों के दूर के भागों में अथवा अधिक व्यय साध्य भूमि में या अधिक श्रमिकों के आधार पर लाभप्रद फसलों का उत्पादन सम्भव हो सकता है जो बहुधा सामान्य परिस्थितियों में त्याज्य होता है ।

(6) कृषि कार्य में दक्षता एवं अनुभव तथा यांत्रिक एवं सिंचन संसाधनों के आधार पर अधिवासों से कुछ दूर बड़े फार्मो की खेती की जा सकती है । इसका मुख्य उद्देश्य भरण-पोषण नहीं बल्कि व्यापारिक लाभ का दृष्टिकोण होगा ।

बेकर महोदय के उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि उन्होंने अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से श्रेणीयन का विश्लेषण किया है । भौगोलिक सन्दर्भ में मृदा-विश्लेषण फसल-सन्तुलन,

फसल-सयोजन तथा फसल-उत्पादन-क्षमता एवं कृषि कुशलता को भी ध्यान मे रखना अति आवश्यक है ।

(4) **लॉश का सिद्धान्त :-**

आगस्ट लॉश की एक जर्मन अर्थशास्त्री थे । इन्होंने क्रिस्टालर[11] के षटकोणीय प्रतिरूप से सहमति व्यक्त करते हुए, सेवा-केन्द्रों तथा बाजार क्षेत्रों के अनुकूलतम होने का त्रिभुजीय-षटकोणीय प्रतिरूप प्रस्तुत किया । इस सिद्धान्त में आधार-भूत प्रतिरूप को षटकोणों के समुच्चयों द्वारा तथा उनके अन्तर्गत त्रिभुजीय प्रतिरूप मे 18 गॉवों की बिन्दुओं द्वारा प्रस्तुत कियाजाता है । मध्य में वह केन्द्रीय गॉव स्थित माना जाताहै जहॉं बाहरी सभी गॉव के बाजार केन्द्र हैं (चित्र संख्या 4.3) द्वारा लॉश के षटकोणीय-त्रिभुजीय विधि का प्रदर्शन किया गया है ।

क्रिस्टालर तथा लॉश की विधियों में मूलतः कई अन्तर हैं । क्रिस्टालर ने बस्तियों के पदानुक्रम में सबसे पहले महानगर को और तत्पश्चात् छोटे नगर और छोटी बस्तियों को माना है । किन्तु लॉश ने अपने पदानुक्रम में निम्न बस्तियों से प्रारम्भ कर उच्चतर बस्तियों की ओर अग्रसरण किया है । क्रिस्टालर के अनुसार सभी निम्न स्तरीय केन्द्र सीधे बडे केन्द्र में समाहित होगें । किन्तु लॉश के अनुसार कई विभिन्न अनुकूलतम स्थितियों को ध्यानगत रखते हुए सभी अवस्थितियें के समग्र प्रतिरूप का एकत्रित (सम्मेलित) स्वरूप ही उचित होगा । बाजारों मे वस्तुओं के महत्व के क्रम को ध्यान में रखकर क्रिस्टालर ने सबसे अधिक महत्व की वस्तु को (जो प्राय. महानगर में ही उपलब्ध है) सबसे ऊँचे पदानुक्रम में रखा । किन्तु लॉश का पदानुक्रम निम्नक्रम से अर्थात स्थानीय अधिक महत्व की वस्तु से प्रारम्भ होता है । क्रिस्टालर के केन्द्रीय स्थानों के पदानुक्रम में केन्द्रों के स्तरों के अतिरिक्त कार्य के वर्गों का भी समायोजन किया गया है । किन्तु लॉश ने केन्द्रों के विशेषीकरण को ध्यान में रखकर अनेक कार्यो से परिपूर्ण आर्थिक भूदृश्य की संकल्पना की है । क्रिस्टालर का सिद्धान्त फुटकर व्यवसाय कार्य की अवस्थितियों को प्रस्तुत करने में उपयुक्त प्रतीत होता है, किन्तु लॉश के सिद्धान्त प्रतिपादन द्वारा बाजार पर आधारित

Christaller Hypothesis

A
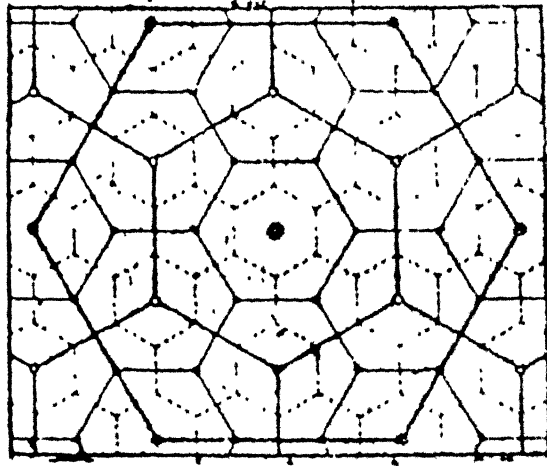
Loschian Landscape

B
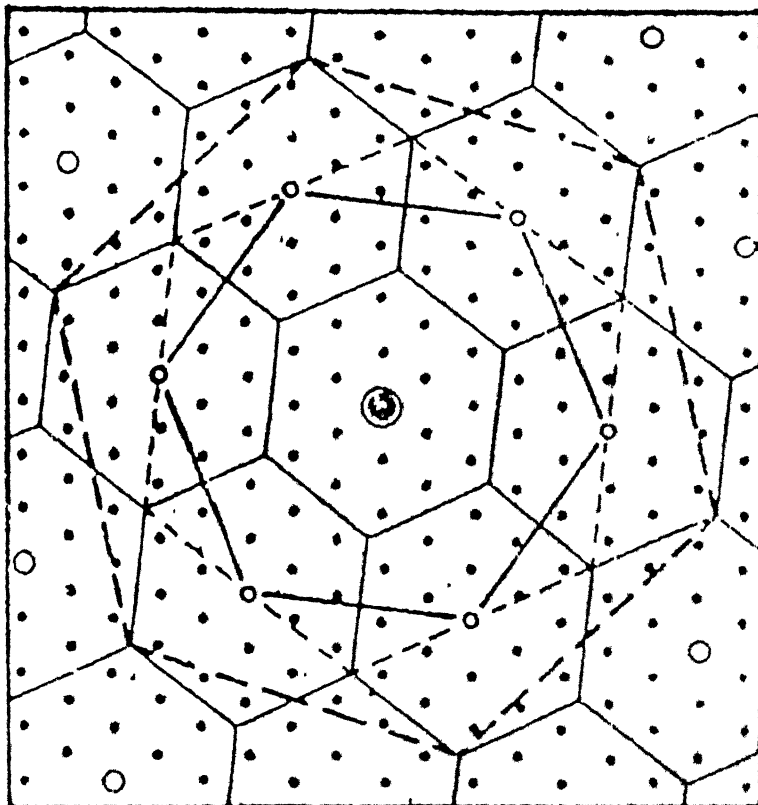
Fig. 4.3

निर्माण उद्योगों के उपस्थिति प्रतिरूप के विश्लेषण को समझना सरल प्रतीत होता है ।

दोनों ने ही समान जनसंख्या घनत्व वाले समतल मैदानी क्षेत्र मे जहाँ सभी दिशाओं में आवागमन एव परिवहन की समान सुविधाएँ ही, यह माना है कि उस क्षेत्र में किसी एक वस्तु के उत्पादन एवं फुटकर विक्रय केन्द्रों को अवस्थितियों के प्रतिरूप त्रिभुजाकार होगें किन्तु बाजार क्षेत्र की अवस्थितियों के प्रतिरूप षटकोणीय होगें । किन्तु लॉश ने विशेष स्पष्टीकरण के लिए प्रमाण भी दिए हैं । क्रिस्टालर का प्रतिरूप विरल बस्तियों के क्षेत्रों मे एकांकी नगरों के महत्व का उद्धकबोधक है, किन्तु लॉश का प्रतिरूप सघन बस्तियों में सबसे कम विशेषीकरण की बस्ती के महत्व को भी समझाने का प्रयास करता है । भौगोलिक दृष्टिकोण से उपर्युक्त दोनों ही प्रयास अनुपयुक्त प्रतीत होते हैं, क्योंकि प्रशस्त समतल मैदान समान परिवहन सुविधा, समान क्षेत्र उर्वरता आदि के बिना उक्त सिद्धान्तों का क्रियान्वयन सम्भव नहीं है क्योंकि ये भौगोलिक आधार सर्वत्र एव सदा सुलभ नहीं हो सकते ।

क्रिस्टालर एवं लॉश के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन .-

1. क्रिस्टालर का अध्ययन का प्रदेश द0 प0 जर्मनी का बबेरिया प्रान्त था जहाँ उसने 1933 में अध्ययन किया था, जबकि लॉश का अध्ययन यू0 एस0 ए0 का आयोवा प्रान्त था जहाँ 1945 में अध्ययन किया ।

2. क्रिस्टालर ने बस्तियों के पदानुक्रम को सबसे ऊँचे स्तर पर नगरों से प्रारम्भ किया जब कि लॉश ने ग्रामीण स्तर पर बस्तियों से ऊपर की ओर क्रम बढ़ाया।

3. क्रिस्टालर का सिद्धान्त फुटकर व्यवसाय एवं थोक-व्यवसाय तथा सेवा व्यवसाय की दृष्टि से स्थिति को समझने में सहायक है, जबकि लॉश के अनुसार बाजार पर आधारित निर्माण उद्योगों की स्थानिक वितरण को समझने में सहायता प्रदान करता है ।

4. क्रिस्टालर के अनुसार सभी उच्च स्तर के केन्द्र निम्न स्तर के केन्द्रों के कार्य भी करते हैं जबकि लॉश के अनुसार ऐसा कार्य नहीं है ।

5 क्रिस्टालर के अनुसार एक स्तर के सभी केन्द्र एक समान आकार व समान कार्यों वाले होते हैं लेकिन लॉश के अनुसार समान आकार के केन्द्रों पर समान कार्य होंगे, आवश्यक नहीं है ।

6 क्रिस्टालर के अनुसार अलग - अलग पदानुक्रम के केन्द्र अलग -अलग प्रकार के माल की पूर्ति करते है जबकि लॉश के अनुसार एक ही स्थान अनेक प्रकार के माल की पूर्ति का केन्द्र हो सकता है ।

7 क्रिस्टालर के अनुसार जब मूल्य एक बार स्थापित हो जाते हैं फिर सम्पूर्ण पदानुक्रम में स्थायी रहते हैं, लेकिन लॉश के अनुसार ऐसा आवश्यक नहीं है ।

8 क्रिस्टालर के अनुसार निम्न स्तर के केन्द्रों की स्थिति का विचार बडे केन्द्रों की स्थिति के सापेक्ष होना चाहिए, जबकि लॉश के अनुसार विभिन्न अनुकूलतम स्थितियों को समग्र रूप में देखना चाहिए ।

9 क्रिस्टालर की व्यवस्था विरल जनसंख्या के प्रदेशों में नगरों के प्रतिरूप को समझने में सहायक है जबकि लॉश की व्यवस्था सबसे छोटी व कम विशिष्टता वाली बस्ती से प्रारम्भ होती है और सघन आबादी की बस्तियों के क्षेत्र में आर्थिक परिवर्तनों को समझने में सहायक है ।

10. क्रिस्टालर की व्यवस्था सैद्धान्तिक अधिक है, जबकि लॉश की व्यवस्था वास्तविक संसार के निकट है ।

आलोचना :- क्रिस्टालर एवं लॉश दोनों द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्त की आलोचना निम्न प्रकार की जाती है :-

(अ) विद्वंत द्वे द्वारा प्रतिपादित मॉडल स्थित प्रकृति के हैं इन दोनों ने ही यह नहीं बताया है कि समय परिवर्तन के साथ इनमें किस प्रकार का परिवर्तन आ सकता है । इस प्रकार की स्थिति काल्पनिक है जबकि परिवर्तन एक वास्तविकता है ।

(ब) लॉश की व्यवस्था पूर्णत बन्द व्यवस्था है जिसमे कृषि क्षेत्र मे उत्पादित माल का उपयोग केन्द्र स्थान की फर्मे व उद्योग करते हैं और केन्द्र स्थान से उपलब्ध सेवाओं का उपयोग कृषि क्षेत्र करता है ।

(स) लॉश ने समूहन के प्रभाव को भी पूर्णत अस्वीकार किया है जो कि एक महत्वपूर्ण स्थिति निर्धारक तत्व है क्योंकि नगरीकरण से वाह्य बचते प्राप्त होती है जिससे समूहन की प्रवृति बढ़ती है ।

(द) लॉश के अनुसार ग्राहकों पर परिवहन खर्च का प्रभाव पड़ता है, विशेषकर जब केन्द्र पर एक ही प्रकार का कार्य होता हो लेकिन सभी केन्द्र एक से अधिक कार्यों वाले होते हैं और ग्राहक बहुउद्देशीय आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए यात्रा करते है । अतः यह खर्च दो या दो से अधिक कार्यों पर विभाजित हो जायेगा ।

(य) इजार्ड ने लॉश के अर्थतन्त्र की सुडौल आकृति पर भी आपत्ति की है और बताया है कि यह वास्तविक नहीं है । लॉश के मॉडल में पूर्ति के केन्द्र पर अधिक नियोजन की सुविधाओं के कारण अधिक जनसंख्या होगी जैसे-जैसे दूरी बढ़ती जायेगी कृषि उत्पादन कम गहन होता जायेगा और जनसंख्या भी दूरी बढने के अनुसार कम होती जायेगी । अत लाभ के लिए उपयुक्त बाजार का क्षेत्र केन्द्र के पास छोटा होगा और दूरी पर अपेक्षाकृत बड़ा होगा । अत· अर्थ तन्त्र सुडौल आकृति का नहीं होगा ।

इस प्रकार लॉश के सिद्धान्त में कुछ कमियाँ है लेकिन फिर भी लॉश की व्यवस्था संसार की कई घटनाओं की दृष्टि से प्रतिकृति देखी जा सकती है । उदाहरणार्थ एक छोटा केन्द्र बड़े केन्द्र को माल या सेवा की आपूर्ति कर सकता है । इस प्रकार यह व्यवस्था अन्तर महानगरीय खुदरा और सेवाओं सम्बन्धी गतिविधियों की स्थिति को समझने के लिए अधिक उपयोगी है ।

(5) **वाल्टर इजार्ड का सिद्धान्त** :- इजार्ड की प्रमुख पुस्तकों मे 'अवस्थित एव प्रक्षेत्र अर्थव्यवस्था' तथा 'प्रादेशिक विश्लेषण की विधि क्रिया' विशेष उल्लेखनीय है । यद्यपि इजार्ड का प्रमुख प्रयास विनिर्माण क्रियाओं के सन्दर्भ में है तथापि विश्लेषण किया है । उन्होंने प्रक्षेप अर्थ-व्यवस्था के अन्य पक्षों का भी विश्लेषण किया है । उन्होंने वानथ्यूनेन, लॉश एवं बेवर के प्रारूपों को समाहित कर नया सिद्धान्त बनाने का प्रयास किया है । उन्होंने अपने सिद्धान्त में 'प्रतिस्थानिक सिद्धान्त' के योगदान को विशेष महत्व दिया है । उनके अनुसार विनिर्माण के अतिरिक्त कृषि उत्पादन क्षेत्रों में भी प्रतिस्थानिक सिद्धान्त के आधार पर विवेचन किया जा सकता है । बेवर की ही भांति इर्जाड ने भी परिवहन लागत एवं श्रम लागत का विश्लेषण किया है और हुबर की भांति बाजार एव पूर्ति क्षेत्रों का भी विवेचन किया है । इजार्ड ने लॉश के बाजार क्षेत्र विश्लेषण तथा वान-थ्यूनेन के कृषि कार्य अवस्थित सिद्धान्त को भी समाहित कर परिपूर्ण प्रतिस्थानिक अर्थ व्यवस्था सिद्धान्त प्रतिपादित करने का प्रयास किया है । उन्होंने सन्तुलन की दशाओं को सविधि रूप से प्रतिस्थानिक मदों में प्रतिस्थापित करने का विशेष प्रयास किया है । इजार्ड के औद्योगिक अवस्थित विश्लेषणों को लॉश की भांति ही बाजार क्षेत्रों के लिए तथा वानथ्यूनेन की भांति ही कृषि भूमि उपयोग के सन्दर्भ में सकेन्द्रीय मण्डलों के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है ।

आधुनिक कृषि कार्य विशेष सन्दर्भो में विनिर्माण उद्योगों की परिप्रेक्षता प्राप्त करने लगा है और इसीलिए औद्योगिक अवस्थिति सिद्धान्त के विवेचनों से समाहत होने लगा है । वस्तुत आधुनिक कृषि भी उद्योग समप्राय ही है । कृषि में भी सस्ते श्रम और सस्ते परिवहन लागत का वैसा ही प्रभाव पड़ता है जैसा कि विनिर्माण उद्योग में परिलक्षित होता है । इजार्ड के 'क्षेत्रीय विश्लेषण विधियों' मे सन्दर्भित विश्लेषणों का कृषि उत्पादन क्षेत्र में भी वैसा ही प्रयोग सम्भव है जैसा कि अन्य औद्योगिक प्रक्रियाओं में उपयोग समझा जाता है । इजार्ड ने भूमि उपयोगों में औद्योगिक एवं कृषि रूपों को मिलाने का अच्छा प्रयास किया है । इजार्ड ने जनसंख्या का वितरण, ग्रामीण एवं शहरी भूमि उपयोग के प्रतिरूप तथा माल के प्रभाव के द्वारा केन्द्रीय स्थानों की स्थिति का अधिक वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया जो केन्द्रीय स्थानों की संरचना एवं कार्यो को निश्चित करता है तथा पृष्ठ प्रदेश की जनसंख्या की आय, संसाधन श्रमिकों की उत्पादकता, कुल उत्पादन एवं जीवन स्तर के आधार पर केन्द्रीय

स्थानों की फर्मो की स्थिति का निर्धारण करने में सहायक है ।

(6) मण्डल द्वारा प्रतिपादित भूमि उपयोग से सम्बन्धित ध्रुवीय, प्रतिध्रुवीय विचार धाराएँ :-

ध्रुवीय विचारधारा :- मण्डल द्वारा प्रतिपादित ध्रुवीय विचारधारा के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में भूमि का उपयोग (चित्र सख्या 4.4) यहाँ की (1) जलवायु (2) भू० आकार व ढाल (3) मिट्टी की प्रकृति (4) तथा जनसंख्या के घनत्व से प्रभावित होता है।

मण्डल के अनुसार **पहला क्षेत्र** :- ध्रुवीय क्षेत्र अत्यधिक ठड़ के कारण नकारात्मक क्षेत्र है । इस क्षेत्र में मिट्टी अधिक आर्द्रता के कारण बर्फीली व अनुपयोगी होता है । अत· कृषि उत्पादन नहीं हो सकता है । यह पहला क्षेत्र है ।

दूसरा क्षेत्र - यह क्षेत्र भी अपेक्षाकृत उपयोगी है । यहाँ यद्यपि ध्रुवीय क्षेत्र को अपेक्षा दशाएँ अच्छी है लेकिन यहाँ मानव कम निवास करते है । अतः घुमक्कड जीवन यापन करते हैं तथा पशुओं व मछलियों पर निर्भर करते हैं ।

तीसरा क्षेत्र :- यह क्षेत्र मध्यम भूमि उपयोग का है । यहाँ ठंड़ अपेक्षाकृत कम होती है यहाँ कृषि करने के लिए मानव बसाव के लिये अधिक उपयोग दशाऐं हैं । अत. यहाँ के लोग पर्यावरण की प्रतिकूल दशाओं से बराबर संघर्ष करते रहते हैं । अतः यहाँ लोग के अधिक मेहनती होते हैं। यहाँ के लोग सामान्य भौगोलिक दशाऐं होने के कारण ही फसल उगाते हैं ।

चौथा क्षेत्र :- यह क्षेत्र अधिक भूमि उपयोग का है । यहाँ समय पर वर्षा होने से व मिट्टी की उपयुक्त दशाओं के कारण, तथा उपयुक्त तापमान से, दोहरी फसलें उगाई जाती है । इस शीतोष्ण भाग के निवासियों ने मानव सभ्यता के विकास के लिए बहुत आश्चर्यजनक कार्य किये हैं ।

पाँचवा क्षेत्र :- यह अत्यधिक उपयोगी क्षेत्र है । यहाँ भौगोलिक दशाएँ उपर्युक्त सभी की तुलना में अनुकूल है । अत परिणामस्वरूप यहाँ कई प्रकार की फसलें उगाई जाती है । यहाँ उपजाऊ मिट्टी, अच्छी वर्षा, $20^0 C$. से $38^0 C$. तापमान व मानव जीवन के लिए अधिक उपयुक्त दशाएँ उपलब्ध हैं । यहाँ तीन फसलें ली जा सकती है ।

मण्डल का भूमि-उपयोग सम्बंधी मॉडल
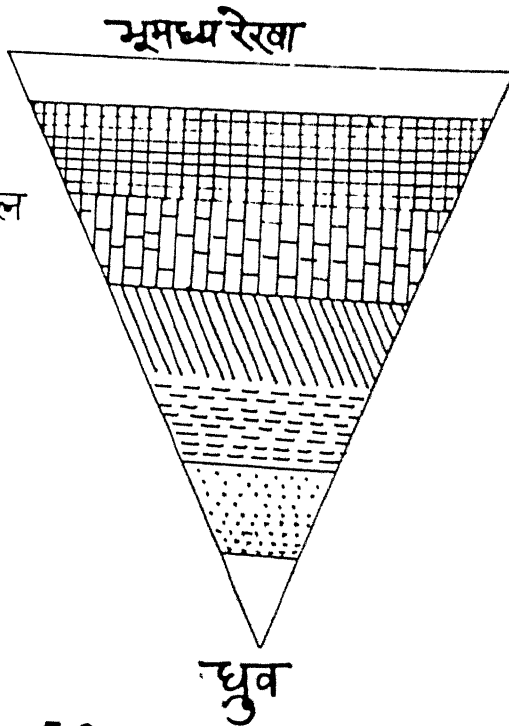
(चित्र सं॰ 4.4A)
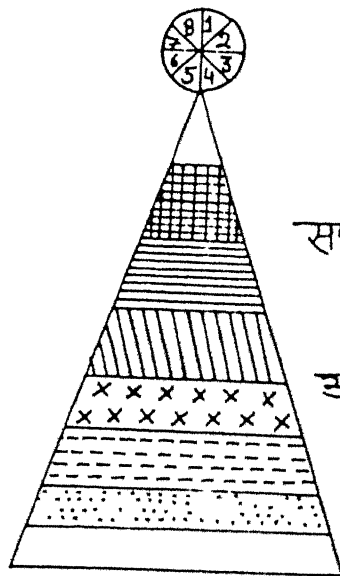
चित्र संख्या-4.4B

अन्तिम क्षेत्र अधिवासों से युक्त है जो कि भूमि उपयोग को नियंत्रित करता है जो भूमध्य रेखीय नकारात्मक क्षेत्र से ध्रुवीय प्रदेशों तक उनकी पहुँच के अनुसार तथा मानव जीवन एवं फसलों की सुरक्षा के अनुसार नियंत्रित होता है । इस प्रकार यह विचार ध्रुवीय भूमि उपयोग का विचार कहलाता है । इस विचार की मुख्य कमी भौतिक बाधाएँ हैं, क्योंकि इस प्रकार की धरातलीय दशाएँ भूमि उपयोग के प्रतिरूप को भंगकर सकती है । मण्डल द्वारा प्रतिपादित ध्रुवीय विचार धारा भूमि उपयोग की दृष्टि से बहुत ही सरलता लिए हुए है जबकि विश्व में भूमि उपयोग में बहुत जटिलता मिलती है । अतः इनके द्वारा वर्णित उपयोग प्रतिरूप कम मिलना असंभव है ।

(ब) प्रति ध्रुवीय विचार धारा :- उपर्युक्त ध्रुवीय विचारधारा के अनुसार एक ग्राम को ध्रुव मानना समीचीन नहीं है क्योंकि ग्राम और उनके आस-पास की दशाएँ ध्रुवीय न होकर प्रति ध्रुवीय हैं । इनको आठ तत्व प्रभावित करते हैं जो निम्न हैं :-

(1) भूमि का मूल्य (2) फसल की सुरक्षा (3) पहुंचने की सुविधा (4) भूमि का ढाल (5) सिंचाई की सुविधा (6) भूमि की उर्वरता (7) उपज की दर (8) कृषक की प्रेरणा।

इस विचारधारा के अनुसार इन विभिन्न तत्वों की गहनता ग्राम के पास अधिकतम होती है तथा जैसे-जैसे दूरी बढ़ती जाती है, यह बाहर की ओर अधिक, मध्यम, कम व नकारात्मक होती जाती है । अर्थात सामान्य रूप से भूमि उपयोग की गहनता ग्रामीण केन्द्र से बाहर की ओर कम होती जाती है जो संकेन्द्रीय वलय के रूप में है । यह विचार वान थ्यूनेन के विचारधारा से थोड़ी समानता रखता है । मंडल ने बिहार राज्य के सारन जिले के भालुआ ग्राम का अध्ययन किया और पाया कि इस ग्राम में बसाव क्षेत्र व तीन फसली क्षेत्र को उच्च भूमि उपयोग, दो फसली व एक फसली क्षेत्र को मध्यम भूमि उपयोग, बगीचे व पानी का क्षेत्र, कम भूमि उपयोग के क्षेत्र व अन्य बहुत कम उपयोगी क्षेत्र के रूप में पाया जो कि ग्राम के केन्द्र से बाहरी सीमा तक फैले थे जिसे चित्र संख्या 4.5 में स्पष्ट किया गया है । यद्यपि आधुनिक वैज्ञानिक कृषि के ढंग के कारण सीमावर्ती क्षेत्रों में यह विचारधारा अपनी उपयोगिता खो रहा है लेकिन यह इस बात को सिद्ध करता है कि पहले इस प्रकार का प्रति ध्रुवीय भूमि उपयोग होता था तथा भारत के कई ग्रामों में यह अब भी हो रहा है ।

यहाँ पर स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि मण्डल महोदय द्वारा भूमि उपयोग सम्बन्धित जो पेटियाँ निर्धारित की गयी है, वे आज के संदर्भ में विशेषकर मध्यगंगा मैदान में कल्पना मात्र ही है आज कृषक अपने कृषि भूमियों पर सिंचाई की सुविधा को बढ़ाकर तथा सडकों की सुविधा से यातायात की सुलभता के कारण गहन कृषि करने में सक्षम है और यह प्रारूप सर्वत्र देखने को भी मिलता है । अत: इनके द्वारा प्रस्तावित पेटियाँ वर्तमान में लागू नहीं हो सकती ।

वान थ्यूनेन के सिद्धान्त के सन्दर्भ में भी यह कहा जाता है कि वह पुराना हो गया है और आज के सन्दर्भ में लागू नही किया जा सकता लेकिन वास्तव में आज के सन्दर्भ में कृषकों के फसलें उगाने के निर्णयों को जो लागत तत्व प्रभावित करते थे, उनमें परिवर्तन हो गया है । आज नगरों की समीपता उतनी महत्वपूर्ण नहीं रह गई है । इससे अधिक महत्वपूर्ण बाजार तक जल्दी पहुँचने की हो गई है। अतः बाजार तक की पहुँच को नकारा नहीं जा सकता है । संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भूमि की भौतिक स्थिति निश्चित होती है । समय के अनुसार इसकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति बदलती रहती है, इससे हमें वह बदले हुए रूप में दृष्टिगोचर होती है ।

इसी प्रकार फसलों के संयुक्तीकरण को लिया जा सकता है । चित्र 4.5 डी के अनुसार अ ब स एक लगान रेखा एवं अ ब द से दूसरी लगान रेखा बनती है । अ और ब दो ऐसी फसलें हैं जो सम्पूर्ण क्षेत्र में उगाई जाने वाली फसलें है लेकिन बाजार से प तक स के साथ एवं प से बाहर द के साथ उगाना उपयुक्त या लाभप्रद रहता है । इस प्रकार संयुक्त फसलों के अनुसार भी वृत भी बढ़ते जायेंगे जो माँग पर निर्भर करते है । यह तो एक ही नगर के साथ का स्वरूप है लेकिन अगर इसी प्रकार दो केन्द्र हो तो संकेन्द्रीय वृत्तों का निर्माण होगा और अब बाहरी कटिबन्ध अण्डाकर हो जायेगा । कटी हुई रेखा दोनों पुष्ट प्रदेशों (पूर्ति क्षेत्रों) के मध्य की सीमा रेखा बन जायेगी । दो से अधिक बाजारी केन्द्रों के होने पर अधिक जटिल चित्र बन जायेगा । चित्र 4.5 ए को देखने से स्पष्ट होता है कि आन्तरिक वृत्तों का झुकाव अलग-अलग शहर की ओर होगा जबकि बाहर के वृत्तों का झुकाव सम्पूर्ण क्षेत्र के केन्द्रों की ओर होता है । यह बहुत सरलीकृत स्वरूप है । अगर इसमें और कई बाजारी केन्द्रों को रखा जाय तो यह अधिक जटिल हो जायेगा लेकिन मूल
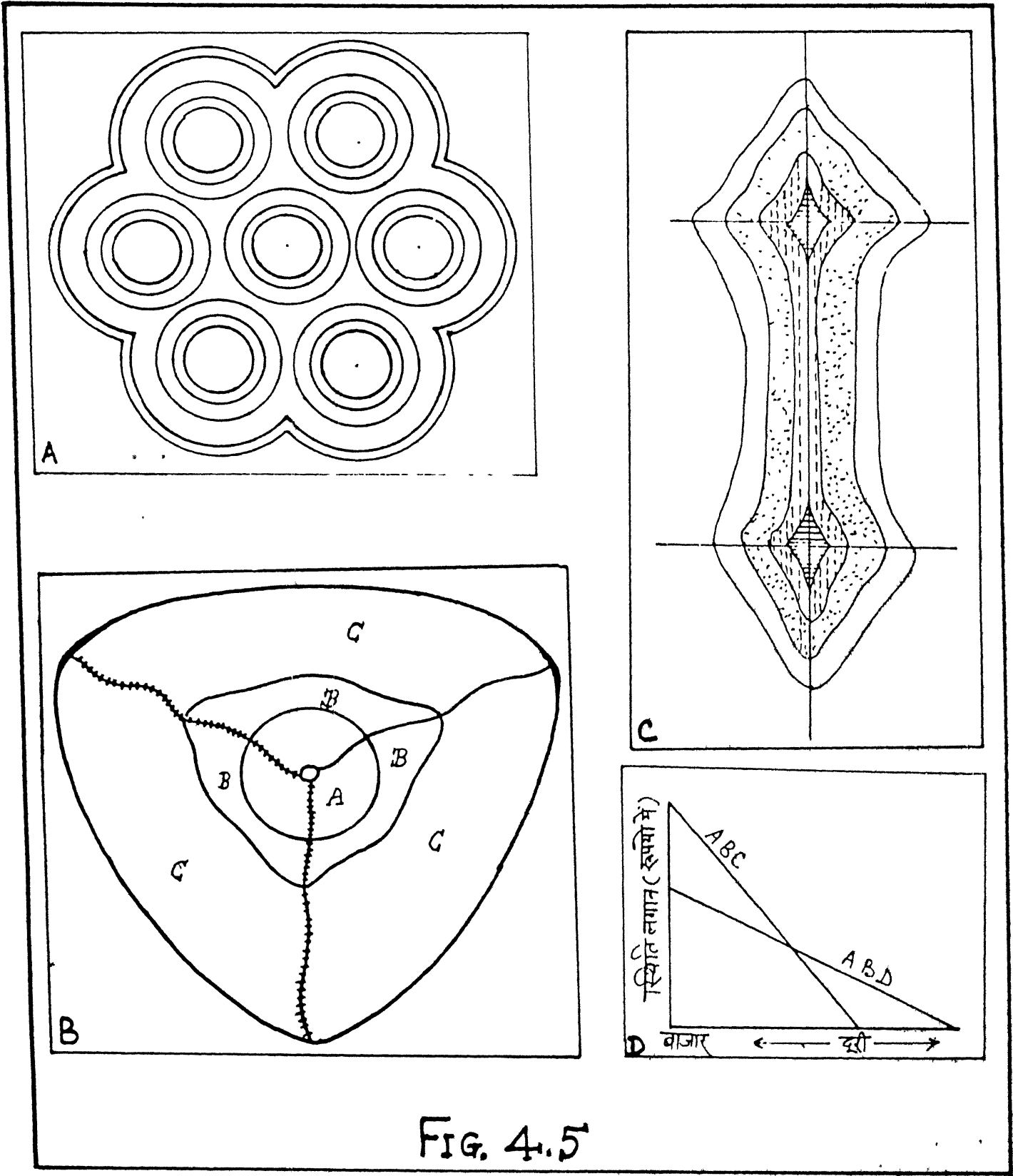
FIG. 4.5

व्यवस्था में किसी प्रकार का अन्तर नही आयेगा । इस प्रकार उक्त दोनों स्थितियाँ एक दूसरे से काफी भिन्न है लेकिन दोनों एक दूसरे के पूरक है जो मिलकर (केन्द्रीय स्थान व्यवस्था एवं कृषि भूमि की संकेन्द्रीय व्यवस्था) एक आर्थिक भू-दृश्य को पूर्णता प्रदान करती है। एक का उत्पादन दूसरे का लागत तत्व (इनपुट) व दूसरे का उत्पादन (आउटपुट) पहले का लागत तत्व (इनपुट) बनता है । इस प्रकार कृषि क्षेत्र और नगरों के मध्य चक्रीय व्यवस्था स्थापित हो जाती है । वान-थ्यूनेन ने यह अनुभव किया कि परिवहन रेखाओं के स्थापित हो जाने पर दूरी का प्रभाव कम होने लगता है क्योंकि सड़कों के सहारे माल व मनुष्यों की गतिशीलता या संचलन सरल हो जाता है, तब बाजार का क्षेत्र इन यातायात रेखाओं के सहारे लम्बा हो जाता है और उनका षटकोणीय आकार बदलने लगता है । इसी प्रकार संकेन्द्रीय वलय का प्रारूप भी बदलने लगता है, तब ये संकेन्द्रीय वृत या वलय सड़कों के सहारे लगभग समानान्तर हो जाते हैं जिसे चित्र 4 5 सी के द्वारा स्पष्ट किया गया है ।

7. **भूमि उपयोग सम्बन्धित नवीनतम सिद्धान्त :-** कृषि अवस्थिति के आधुनिक सिद्धान्तों के अन्तर्गत प्राकृतिक वातावरण एवं भूमि की संसाधन की प्रादेशिक विभिन्नताओं को विशेष महत्व दिया गया है । इन सिद्धान्तो में विभिन्न कृषि उत्पादों की अवस्थितियों को समझने के लिए उन अनुकूलतम भौतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों को सीमांकित करने का प्रयास किया जाता है जिनमें विभिन्न फसलों का उत्पादन सम्भव है । इस प्रकार फसल के लिए अनुकूलतम प्राकृतिक एवं आर्थिक लक्षणों वाले प्रदेशों का सीमांकन करके कम लागत पर प्रति एकड़ अधिक उत्पादन प्राप्त किया जाता है । इससे सम्बन्धित निम्न सिद्धान्त दिये गये है -

(अ) अनुकूलतम भौतिक दशाओं एवं सीमाओं का सिद्धान्त :-

प्रत्येक फसल उत्पादन के लिये कुछ विशेष प्रकृतिक दशाओं अर्थात विशेष न्यूनतम तापक्रम, वर्षा, आर्द्रता मिट्टी मे पोषक तत्वों तथा अन्य आवश्यक तत्वों का होना अनिवार्य है । किसी फसल उत्पादन के लिये ये दशाऐं धरातल पर सभी जगह उपलब्ध नहीं होती है । अतः इन आवश्यक दशाओं की उपलब्धता के आधार पर किसी फसल के लिए क्षेत्र विशेष का सीमांकन किया जाता है । इस सीमांकित क्षेत्र में एक छोटा क्षेत्र ऐसा होता है जहाँ फसल विशेष के अधिकतम उत्पादन के लिए अनुकूलतम दशाओं की पूर्ति होती

है अर्थात आवश्यक भौतिक दशाओं का अनुकूलतम सम्मिश्रण पाया जाता है (चित्र 4.6 ए)। यह क्षेत्र अनुकूलतम प्राकृतिक दशाओं का क्षेत्र कहलाता है। विभिन्न फसलों के उत्पादन के लिये निर्धारित अनुकूलतम क्षेत्रो की सीमायें सदैव स्थायी नहीं होती हैं। ये सीमायें तकनीकी विकास के कारण बदलती रहती है और भविष्य में भी बदलती रहेगी। तकनीकी या प्राविधिक विकास से भूमि की संसाधनता तथा मिट्टी की उत्पादन क्षमता एवं सम्बन्धित लागत तत्वों की स्थिति में परिवर्तन होता रहता है जिससे विभिन्न फसलों के लिये सीमांकित क्षेत्रों की सीमाओं में भी परिवर्तन होता रहता है और होता रहेगा।

प्राकृतिक अनुकूलतम दशाओं एवं सीमाओं के सिद्धान्त का एक महत्वपूर्ण उदाहरण संयुक्त राज्य अमेरिका में कपास की पेटी की अवस्थिति का है। कपास उत्पादन के लिये प्राकृतिक सीमायें वर्षा की मात्रा एवं उत्पादन की अवधि के आधार पर निर्धारित हुई है। इन प्राकृतिक सीमाओं के आधार पर कपास उत्पादन के लिये एक वृहत क्षेत्र का सीमांकन किया गया है, परन्तु इस हृदय क्षेत्र में अनुकूलतम दशायें कुछ ही स्थानों पर उपलब्ध है। अत संयुक्त राज्य में कपास की कृषि भी इसी प्राकृतिक सीमाओं वाले क्षेत्र मे, विशेषत· उसके अन्तर्गत अनुकूलतम दशाओं वाले क्षेत्र में अवस्थिति हो गई है।

(ब) अनुकूलतम आर्थिक दशाओं एवं सीमाओं का सिद्धान्त :-

भौतिक दशाओं के आधार पर किसी फसल विशेष के उत्पादन के लिये कुछ ही क्षेत्र अनुकूल होता है, परन्तु इनमें आर्थिक दशाओं का विचार करना भी आवश्यक है अनुकूल आर्थिक दशाओं के क्षेत्र वे होते हैं जहाँ किसी फसल विशेष के उत्पादन से लाभ प्राप्त हो। लाभ का आकलन उत्पादन की बाजार कीमत से होता है। अतः किसी क्षेत्र में किसी फसल का उत्पादन प्राकृतिक तत्वों एवं प्रविधिक विकास के अतिरिक्त उत्पादन लागत की तुलना मे बाजार में मिलने वाली उत्पादन कीमत से भी सीमित तथा अवस्थिति होता है। यदि उत्पादन लागत की अपेक्षा बाजार में मिलने वाली उत्पादन कीमत से भी सीमित तथा अवस्थिति होता है। यदि उत्पादन लागत की अपेक्षा बाजार में उत्पादन की कीमत

अधिक प्राप्त होती है तो वह अनुकूल आर्थिक दशाओं की द्योतक है (चित्र 4.6 बी) । इन दशाओं की सीमा का निर्धारण उस रेखा से किया जाता है जो ऐसे विन्दुओं (स्थानों) को मिलाते हुए खींची जाती है जहाँ प्रति इकाई कुल उत्पादन लागत और बाजार में प्रति इकाई उत्पादन कीमत, दोनों बराबर होते हैं । इस सीमा-रेखा को निर्धारित करना कठिन होता है क्योंकि इसके लिए विभिनन स्थानों पर उत्पादन लागत की विभिन्नता, लागत तथा परिवहन आदि तत्वों में परस्पर प्रतिस्थापन की मात्रा तथा भविष्य में बराबर में उत्पादन कीमत, सभी का सही-सही आकलन करना होता है । यह रेखा उन स्थानों को बताती है जहाँ लाभ की मात्रा शून्य होती है । इन रेखा द्वारा सीमांकित क्षेत्र से बाहर फसल का उत्पादन करने पर हानि होगी । इस रेखा के सीमा के अन्दर प्रत्येक दिशा में प्रति इकाई उत्पादन लागत कम होती जाती है जिसमे लाभ (लगान) की मात्रा बढ़ती जाती है । जहाँ यह लाभ अधिकतम हो जाता है अर्थात जहाँ बाजार में प्रति इकाई मूल्य एवं कुल उत्पादन में अधिकतम अन्तर होता है, वहाँ अनुकूलतम आर्थिक दशाऐं मिलती है और वह क्षेत्र फसल विशेष के उत्पादन के लिये अनुकूलतम आर्थिक दशाओ का क्षेत्र कहलाता है । इस क्षेत्र से दूर होने पर आर्थिक कारकों की अनुकूल दशाएँ क्रमशः कम होती जाती है । इस प्रकार कई मेखलाएँ बन जाती है । जिनमें आर्थिक दशाओं की अनुकूलता क्रमश कम पायी जाती है ।

(स) अनुकूलतम क्षेत्र के फसलों में प्रतियोगिता .-

किसी फसल विशेष के लिए सीमांकित अनुकूलतम क्षेत्र में अन्य कृषि फसलें भी पैदा की जा सकती है इससे उस क्षेत्र में फसलों के उत्पादन के लिये परस्पर प्रतियोगिता रहती है । सभी सम्भावित फसलों के उत्पादन से होने वाली लाभ हानि की तुलना निम्न सूत्र से करके जिस फसल से सबसे अधिक लाभ या आर्थिक लगान प्राप्त होता है, उसी फसल का उत्पादन अनुकूलतम क्षेत्र में किया जाता है ।

$$R = P\ (Mp - Pc)\ - PTD$$

R = आर्थिक लगान $\quad$ P = प्रति इकाई क्षेत्र उत्पादन

MP = प्रति इकाई बाजार मूल्य $\quad$ Pc = प्रति इकाई उत्पादन लागत

T = परिवहन व्यय की दर $\quad$ D = बाजार से दूरी

बाजार में सघन जनसंख्या की माँग की पूर्ति के लिए कई फसलें एक ही क्षेत्र मे उगाई जाती है । सामान्यतया कई फसलों के उत्पादन में एक से लागत तत्वों के कारण उनके लिए अनुकूलतम दशाओं का क्षेत्र एक ही होता है जिससे उनके अवस्थितिकरण के लिए प्रतियोगिता पाई जाती है । उदारहणार्थ यदि तरकारियों दुग्ध उत्पादन तथा गेहूँ, गन्ना, आदि के उत्पादन के लिए ही क्षेत्र में अनुकूलतम दशायें मिलती है तो इन परिस्थितियों में उस अनुकूलतम क्षेत्र में सबसे अधिक आर्थिक लगान प्राप्त कराने वाली फसल के उत्पादन को ही प्रमुखता दी जायेगी । कुछ फसलें बाजार की समीपता एवं परिवहन की विशेषताओं के कारण भी अनुकूलतम दशाओं वाले क्षेत्र में उगाई जाती है, भले ही प्रकृतिक दशायें उनके उत्पादन के लिए साधारण महत्व की हो ।

इस अनुकूलतम आर्थिक दशाओं की सीमा कहाँ तक और कैसे निर्धारित होगी? इससे सम्बन्धित अध्ययन सर्वप्रथम मैकार्टो एवं लिण्डवर्ग ने किया तथा 'अनुकूलतम आर्थिक दशाओं एवं सीमाओं का नियम' प्रस्तुत किया । इनके सिद्धान्त का आधार डेविड रिकार्डो के 'आर्थिक लगान का सिद्धान्त" है । रिकार्डो के अनुसार 'आर्थिक लगान' भूमि की सीमान्त उत्पादकता से अधिक उत्पादन से है ।

मैकार्टो एवं लिण्डवर्ग ने अपने सिद्धान्त की व्यय का दुग्ध कृषकों की उत्पादन लागत और भूमि लगान से किया । यदि अन्य भौतिक दशाएँ समान हो तो परिवहन लागत द्वारा ही निर्धारित होगा कि बाजार में दूध की पूर्ति कृषक सीधे दूध के रूप में करें या उसे रूपान्तरित कर मक्खन, पनीर, घी, आदि के रूप में । इसके लिए उन्होंने बाजार से दूरी के साथ क्रमश A B C एवं D मेखलाओं में बाँटा । उनके अनुसार A B में दूध की पूर्ति कृषक सीधे दूध के रूप करेगा तथा D में दूध से निर्मित वस्तुओं (मक्खन, पनीर, आइसक्रीम आदि) के रूप में करेगा तथा भाग C का कृषक किसी भी रूप में दूध की पूर्ति कर सकता है ।

कोई भी सिद्धान्त जितनी ही कम शर्तों पर आधारित होता है, वह उतना ही सत्य के करीब होता है क्योंकि वहीं व्यावहारिक दृष्टि से उपयुक्त होता है । इस परिप्रेक्ष्य में मैकार्टो एवं लिण्डवर्ग के सिद्धान्त पर दृष्टिपात करने पर यह समस्त आर्थिक कारकों

Optimum physical conditions and limits)
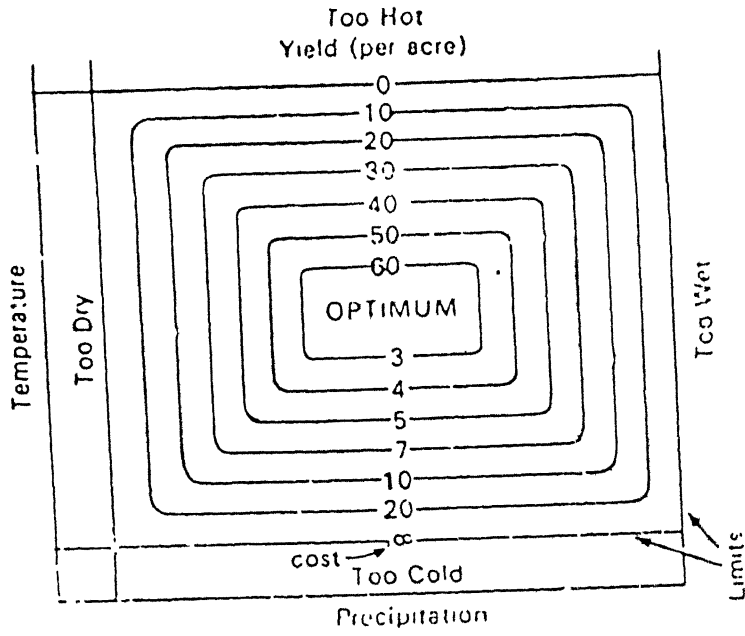
(A)

optimum economic conditions and limits
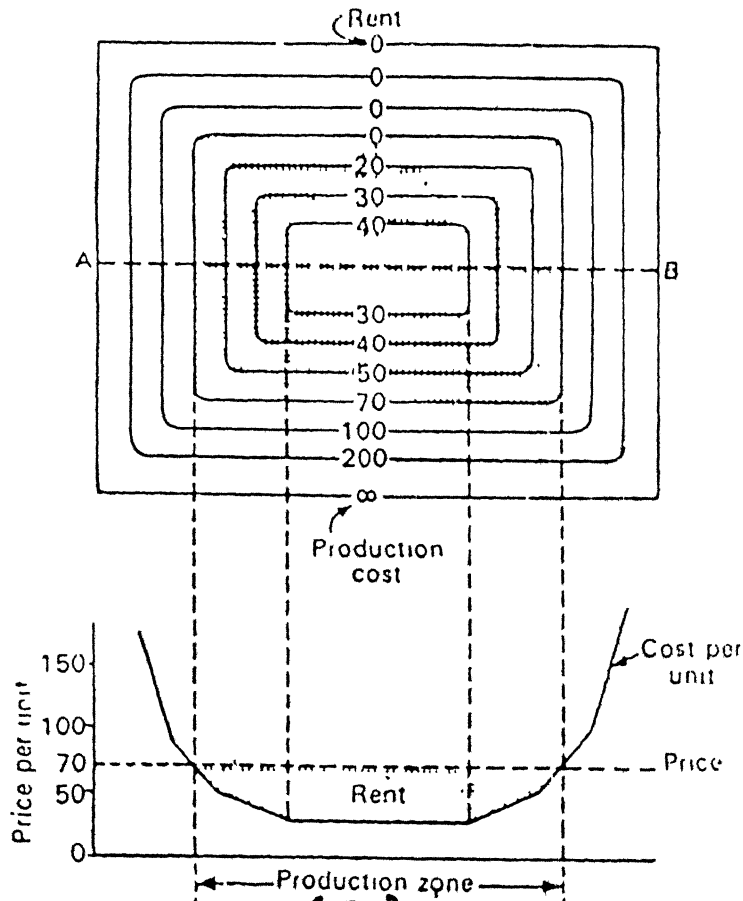
(B)

Fig. 4.6

से उत्पन्न दशाओं से कम, बल्कि उसके एक अवयव - परिवहन के सघन को आधार मानकर ही प्रतिपादित किया गया है । आज तकनीकी विकास के इस युग में मात्र परिवहन व्यवस्था ही कृषि के इस प्रकार के प्रतिरूप को जन्म देगा , इसकी बहुत कम सम्भावना है ।

अत इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिए एक ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता है जिसमें समस्त आर्थिक कारकों की साझेदारी अनुकूलतम आर्थिक दशाओं के सीमांकन में अधिक से अधिक हो । इसके लिए पूर्वी - उत्तर प्रदेश के देवरिया जनपद में गन्ने के उत्पादन के सन्दर्भ में उदाहरण सबसे अधिक उचित होगा, जहाँ अनुकूल भौतिक एवं आर्थिक दशाओं के कारण देश की सर्वाधिक चीनी मिलें सकेन्द्रित है । सिंह, बी0 एन0 ने अपने शोध के आधार पर वहाँ पर गन्ने के संदर्भ में आर्थिक दशाओं की अनुकूलता से सम्बद्ध मेखलाओं का जो अवरोही क्रम पाया गया जिसे निम्न रेखा चित्रों के माध्यम से समझा जा सकता है (चित्र सं0 - 4.5 बी) ।

(अ) मेखला के केन्द्र में चीनी मिलें अवस्थित हैं । इसके चारों ओर 40-50% भू-भाग पर गन्ने का उत्पादन होता है । चीनी मिल के निकट का क्षेत्र होने के कारण अल्प परिवहन व्यय अन्य आर्थिक कारकों में परिवहन को अप्रभावी बना देता है । जिस कारण गन्ने की उत्पादकता उस क्षेत्र में सर्वाधिक होती है ।

(ब) एक ऐसी मेखला है जो परिवहन मार्गों के साथ-साथ विकसित हुई है । ज्ञातव्य है कि जैसा लिण्डवर्ग एवं मैकार्टो ने अपने सिद्धान्त में कहा है कि दूरी बढ़ने के साथ दुग्ध से निर्मित वस्तुओं का स्वरूप बदलता जायेगा, साथ ही लागत बढती जायेगी । पर बी मेखला में रेल तथा सड़क परिवहन की सुविधा ने इस क्षेत्र को 40-50% भू-भाग पर गन्ने के उत्पादन को प्रोत्साहित किया है । इससे स्पष्ट है कि परिवहन सुविधा के कारण यहाँ दूरी कोई बडा कारण नहीं रह गयी है ।

(स) क्षेत्र की उत्पादकता सबसे अधिक सरकारी नीति एवं गन्ने के मूल में परिवर्तन के साथ प्रभावित होती है यहाँ चीनी मिल से दूरी भी अपेक्षाकृत अधिक होती है । इस क्षेत्र

के किसान गन्ना के मूल्य में सतत् वृद्धि के फलस्वरूप गन्ना उत्पादन क्षेत्र में भी परिवर्तन करते रहते हैं । सरकार द्वारा गन्ने की कीमत कम कर देने पर किसान गन्ना को चीनी मिल पर न भेजकर स्वयं गुड या शीरा तैयार करते हैं । चूँकि चीनी मिलों से इनकी दूरी भी अधिक होती है । अत इस क्षेत्र की उत्पादकता अधिकांशत गन्ने के मूल्य से ही प्रभावित होती है । मूल्य बढ़ने पर 25% से अधि भू-भाग पर गन्ने की कृषि होती है तथा कम होने पर उत्पादन क्षेत्र 15% से कम हो जाता है । इस प्रकार इस क्षेत्र की प्रत्येक मेखला ए एवं बी सी की सीमा आर्थिक अनुकूलता द्वारा निर्धारित होती है । ए इस दृष्टि से सर्वाधिक अनुकूल क्षेत्र है तथा उसके बाद बी तथा सी जो विभिन्न आर्थिक कारकों द्वारा निर्धारित होता है । आर्थिक कारकों के परिवर्तनशील स्वभाव के कारण इसकी सीमाओं में भी परिवर्तन देखने को मिलता है ।

(8) **अन्य व्याख्याताओं के योगदान** :- अन्य व्याख्याताओं में आर0 ओ0 बुचानन[12], हार्ट सोन, एवं डिकेन[13], चिशोम[14], ग्रोटवाल्ड[15], ह्विटलसी[16] तथा डडले-स्टाम्प[17] के योगदान विशेष उल्लेखनीय हैं । बुचानन एक आर्थिक भूगोल वेत्ता थे जिन्होंने कृषि कार्यो में सघनता और विरलता को भौगोलिक कारकों और सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया है डिकेन ने कृषि क्षेत्रों के सीमांकन में कुछ निर्धारिकों के महत्व का विवेचन किया है । उनके अनुसार फसल मूल्य पर आधारित अनुपात की अपेक्षा क्षेत्रफल पर आधारित अनुपात भौगोलिक दृष्टिकोण से अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि भूगोल में क्षेत्र की प्रधानता अधिक उल्लेखनीय है । चिशोम भी एक गणमान्य भूगोल वेत्ता है । उन्होंने शस्य उत्पादन के उद्देश्यों के महत्व के अनुसार क्षेत्रों में अन्तर करने की योजना को अधिक उपयोगी माना है । ऐसी फसलों में चारा फसलें भी सम्मिलित की जा सकती है ।

ग्रोट वाल्ड के अनुसार जब तथ्यों का यथार्थ पर्यवेक्षण किया जाता है, तभी उनमें व्यापक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं । सिद्धान्तों की अपेक्षा तत्वों का विश्लेषण पर उन्होनें विशेष बल दिया है । वे प्रतिपादित साक्ष्यों की अपेक्षा यथार्थता निरूपण को अधिक संगत मानते हैं ।

ह्वीटलसी ने कृषि प्रदेशों की सीमाओं के निर्धारण में तथा कृषि के प्रकारों को व्यवस्थित करने में कुछ कसौटियों का प्रयोग किया जो निम्न सारणी में प्रस्तुत की गयी है[18] :- :-

सारणी - 1

कृषि के प्रकारों की कसौटी

	मुख्य शस्य	गौण शस्य	सीमाएं
कृषि के सभी प्रकार	-	-	शस्य तथा चारागाह 10% सम्पूर्ण क्षेत्र
1. भूमध्य सागरीय	गेहूँ	जौं,अँगूर,फल	अंगूर और उपउष्ण कटिबन्धीय फसले 15% शस्य भूमि
2. मक्का-गेहूँ-पशुधन	मक्का	गेहूँ,जई,सूखीघास	कपास 1/2 मक्का का क्षेत्रफल सैकड़ों में तम्बाके 20% शस्य भूमि मक्का तथा गेहूँ 30% मक्का मात्रा कम से कम 20% शस्य भूमि
3 लघु दाना-पशुधन	गेहूँ	राई,जई,जौ,आलू, सूखी घास	जोती गई फसलें सूखी घास तथा चारागाह । गेहूँ और राई 10% शस्य और चारागाह भूमि ।
4. सूखी घास-चारागाह-पशुधन	सूखी घास	जई,जौ,आलू, साइलेस, मक्का	सूखी घास तथा चारागाह जोती गई फसलें गेहूँ तथा राई । 10% शस्य तथा चारागाह भूमि ।
5. विस्तृत व्यावसायिक अनाज	गेहूँ	राई,मक्का,जौ,जई	पशुधन 20 इकाई या प्रति 100 एकड़ शस्य भूमि। विशाल फार्म निम्न पैदावार शस्य भूमि 20% सम्पूर्ण क्षेत्र ।
6. व्यावसायिक फलोद्यान तथा साग-भाजी	-	-	फलोद्यान तथा साग-भाजी 20%

उक्त सारणी से स्पष्ट है कि ह्वीटलसी ने मुख्य शस्य और अन्य शस्यों में भेद के आधार पर कृषि के प्रकारों का विश्लेषण कियाहै । यह मुख्यत यूरोप के कुछ भागों को ध्यान में रखकर विवेचित किया गया है । भारत के सन्दर्भ में पर्याप्त भिन्नताएँ हैं । अत उपर्युक्त कृषि प्रकारों की कसौटी एवं सीमाएँ सम्भव नहीं है । आधुनिक भूगोल वेत्ताओं में भूमि उपयोग के सन्दर्भ में डडले स्टैम्प महोदय का योगदान विशेष सराहनीय है उन्होंने ग्रेट ब्रिटेन में भूमि के सदुपयोग एवं दुरूपयोग का जो विश्लेषण प्रस्तुत किया था, वह अन्य शोधकर्ताओं के लिए आधार शिला बन गया है । उन्होंने अपने प्रयासों द्वारा ब्रिटेन में भूमि उपयोग सर्वेक्षण का कार्य सम्पन्न कराया, जिससे विश्वसनीय आकड़े सुलभ हुए । इन आधारों पर किया गया विवेचन यथार्थता के अधिक निकट पाया गया । अन्य देशों के विद्वानों ने उनके योगदानों को आधार मानकर भूमि उपयोग सर्वेक्षण, कृषि भूमि उपयोग सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन के सन्दर्भ में सराहनीय कार्य किया है । भारत भी ऐसे ही देशों में से एक देश है जहाँ उक्त सन्दर्भ में कई प्रकार के कार्य किए गयें हैं ।

4.2 **भौगोलिक विश्लेषण** :- कृषि भूगोल में भूमि उपयोग के विवेचन में भौगोलिक कारकों को ध्यान में रखना अधिक उपयुक्त हे । केवल आर्थिक दृष्टिकोण से किया गया विवेचन अधूरा सा प्रतीत होता है । भौतिक उपादानों (विशेषकर स्थलाकृतियों) पर बहुत हद तक कृषि में अन्तर पाया जाता है । क्षेत्रीय विषमताएँ एवं मृदा की भिन्नताएं कृषि के स्वरूप और फसल के प्रकारों को निर्धारित करने में अधिक सक्षम पाई जाती है । आधुनिक कृषि में सकेन्द्रीय पेटियों का पाया जाना प्राय. लुप्त सा दीखता है । किसी भी क्षेत्र में कृषि भूमि उपयोग के सन्दर्भ मे मृदा उर्वरता, स्थलाकृति स्वरूप, जलवायु का प्रभाव, फसल के प्रकार की उपयोगिता, आवश्यकतानुसार और स्थानिक तथा वाह्य माँग को ध्यान में रखकर फसल संयोजन, फसल, सम्मिश्रण एवं फसल सन्तुलन आदि तत्वों का विवेचन अति आवश्यक है परिवर्तित परिस्थितियों में उपर्युक्त तथ्यों में अन्तर आने के कारण कृषि भूमि-उपयोग सहज ही बदल सकता है । यही कारण कि कृषि भूमि उपयोग का आधार भौगोलिक तथ्यों और कारकों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है और लागत एवं श्रम की दशाएँ तत्कालिक अर्थशास्त्र व्यवस्था द्वारा निर्धारित होती है । स्पष्ट है कि सोवियत संघ एवं चीन की खेती के संदर्भ में भूमि उपयोग का विश्लेषण संयुक्त राज्य अमेरिका तथा भारत के सन्दर्भ से सर्वथा भिन्न है । आधुनिक अर्थव्यवस्था तो बहुत हद तक राजनीतिक प्रकियाओं द्वारा निर्धारित की जाती है । आर्थिक

क्रियाएं पूर्णरूपेण स्वतंत्र रूप से कार्य नही कर पाती । ऐसी दशा में वान-थ्यूनेन जैसा सिद्धान्त सराहनीय सा प्रतीत होता है ।

जिन भौगोलिक कारकों या तथ्यों के ऊपर संकेत किया गया है, वे कृषि भूमि उपयोग के विभिन्न यंत्रों के परिचायक हैं । इनका संक्षिप्त विवेचन निम्नवत् किया जा सकता है -

(अ) **स्थलाकृति स्वरूप** :- कृषि उपयोग में स्थलाकृतियों के स्वरूपों का विशेष महत्व है इसीलिए पर्वतीय, पठारी एवं मैदानी स्थलाकृतियों का भिन्न-भिन्न प्रभाव पाया जाता है । पर्वतीय क्षेत्रों में ढाल की प्रधानता होने के कारण तथा ऊँची-नीची भूमि का मिला-जुला वितरण होने के कारण कृषि भूमि- उपयोग में तारतम्य बध्यता या मैदानी भागों जैसे प्रशस्त नहीं पाई जा सकती है । इसीलिए वहाँ सीढीदार छोटे-छोटे खेत तथा उनके उपयुक्त कृषि कार्य सम्पन्न किया जाता है । ऐसे खेतो का विवरण फुटकर रूप में बिखरा हुआ पाया जाता है ऐसी खेती में यंत्रीकरण और बडे फार्मो में कृषि कार्य का लाभ नहीं प्राप्त किया जा सकता।

पर्वतीय क्षेत्रों में वर्षा की बहुलता और ढाल की तीव्रता के कारण छोटे सीढ़ीदार खेतों में भी मृदा अपरदन एक बडी समस्या है । प्रति वर्ष ऐसे खेतों के बहुत से भाग जल क्रियाओं द्वारा कटकर पृथक हो जाते हैं , या उनकी मृदा क्षीण होकर कृषि योग्य नहीं रह जाती । अत: खेतों को उपयोगी बनाये रखने के लिए किसानों को निरन्तर कार्यशील रहना पड़ता है ।

पठारी भागों में भी कृषि के प्रकारों में पर्वतों अथवा मैदानों की अपेक्षा अन्तर पाया जाता है । पठारों पर प्राय: मिट्‌टी के कम मोटे एवं बालू मिश्रित पाए जाते हैं जिनमें जल धारण की शक्ति कम होती है और वायु धारण की शक्ति अधिक होती है । वृहद स्थलाकृति - स्वरूप की उपयोगिता के आधार पर मैदानी भाग ही कृषि कार्य हेतु अधिक उपयोगी पाये गये हैं । मैदानों में चौरस भूमि अधिक होने से कृषि कार्य में सरलता होती है । इसीलिए यहाँ कृषि कार्य में यंत्रीकरण की सहज है । सिंचन कार्य, फार्मिंग कार्य एवं

परिवहन कार्य भी सुगमता से सम्पन्न किया जा सकता है । मिट्टी के जमावों की सतहें मोटी होने से तथा मिट्टी के कणो के अपेक्षाकृत महीन होने मे कृषि कार्य अधिक सुचारू रूप से किया जाता है ।

अत यह स्पष्ट है कि भौतिक स्थलाकृतियों का कृषि कार्य के क्षेत्रों के निर्धारण में विशेष महत्व है ।

(ब) **मृदा-विश्लेषण** :- कृषि भूमि उपयोग मे मृदा-विश्लेषण मुख्य आधार है । मृदा विश्लेषण से मिट्टी में आवश्यक तत्वो की क्षीणता या बहुलता का पता लगता है । अतः बोई जाने वाली फसल के अनुसार खाद देकर मिट्टी की उपादेयता विकसित की जा सकती है । उपयोगी खाद न देने से मिट्टी की उर्वरता निर्बल हो जाती है । और वांछित फसलें पूर्ण मात्रा में नहीं उगाई जा सकती । जिस मिट्टी मे सोडियम तत्व की क्षीणता होती है, उसमे उत्पादित फसल की पत्तियाँ पीली पड जाती है तथा बीमारियों या कीड़ों का प्रकोप हो जाता है । इससे स्पष्ट है कि कृषि-भूमि उपयोग में मृदा विश्लेषण एक आवश्यक पक्ष है जिसे उपेक्षित नहीं किया जा सकता है ।

मृदा की उपयोगिता के निर्धारण में कई प्रकार के उपादानों का योगदान पाया जाता है । वे निम्नवत् हैं :-

(1) **वानस्पतिक तत्व** :- मृदा में वानस्पतिक अंश का अधिक होना कृषि भूमि-उपयोग की सक्रियता विकसित करता है । जहाँ कहीं इसकी क्षीणता पाई जाती है, वहाँ कृत्रिम ढ़ंग से इसकी पूर्ति की जाती है ।

(2) **खनिज तत्व** :- मृदा में विशेष प्रकार के खनिज तत्व उसके विशेष गुण का निर्धारण करते हैं । चूनांश, लोहांश, पोटश, तथा ऐसे अन्य मृदा-तत्व विशेष खनिजों की ही देन है इनमें मिश्रण और कणों की बारीकियों पर मृदा में विशेष प्रकार की फसल उत्पादन की क्षमता अवघटित होती है ।

(3) **मृदा-आर्द्रता एवं ताप** :- मृदा में सामान्य आर्द्रता वाष्प के रूप में पाई जाती है । वाष्पीय आर्द्रता फसलों में पेय तत्व प्रदान करने में सहायक होती है । जहाँ कहीं मृदा में अधिक जल का प्रभाव होता है, वहाँ मिट्टी गीली हो जाती है और कुछ फसलों की जडे सड़ने लगती हैं ।

इसके अतिरिक्त, मृदा-वायु, मृदा-फसल एवं कीड़े भी इसी प्रकार के कुछ कार्यों द्वारा मिट्टी को प्रभावित करते हैं उनमें बैक्ट्रिया तथा दीमक विशेष उल्लेखनीय है ।

(4) **जलवायु विवेचन** :- कृषि भूमि उपयोग में जलवायु के तत्वों का ज्ञान और उनका विश्लेषण अति आवश्यक है । वर्षा, तापमान, वाष्पक्रिया एवं तुषार आदि भौगोलिक तत्व कृषि के प्रकार एव सक्षमता को निर्धारित करते में अधिक सक्रिय पाए जाते हैं ।

कृषि कार्य में तापमान का महत्व भी बहुत अधिक है । ठण्डे प्रदेशों में फसलों के पकने का समय तापक्रम का कम होना है जिसके कारण वर्ष में प्राय· एक ही फसल उगाई जा सकती है ।

कृषि भूमि उपयोग मे प्रचण्ड वायु, हिमपात दीर्घकाल तक मेघाच्छादन तथा अन्य ऐसे कारकों द्वारा व्यवधान प्रस्तुत होता है । मुख्यत: बागाती कृषि तथा बागवानी में ऐसे कारकों का विशेष प्रभाव पडता है । अर्द्धशुष्क एवं शुष्क प्रदेशों में प्रचण्ड वायु का प्रकोप तथा शीत क्षेत्रों में हिमपात और कुछ पर्वतीय क्षेत्रों में दीर्घकाल तक मेघाच्छादन कृषि भूमि उपयोग में बाधक सिद्ध होते हैं । अत: कृषि कार्य के किसी भी नियमन में इन कारकों का विवेचन भी आवश्यक प्रतीत होता है ।

जलवायु की क्रियाओं द्वारा मृदा का विकास और मृदा का प्रसार भी निर्धारित होता है । जलोढ़ मिट्टी में बाँगर तथा खादर मिट्टियों के प्रकार इसी आधार पर कुछ हद तक निर्भर पाए जाते हैं । पर्वतीय मिट्टियों में ऊँचाई के अनुसार प्रकार विभाजन भी जलवायु

का महत्व अधिक स्पष्ट दिखाई देता है ।

(5) **फसल-प्रकार एवं फसल-प्रतिरूप** :- कृषि भूमि उपयोग में फसलों के प्रकार एवं फसलों के प्रतिरूप उल्लेखनीय तथ्य है । फसलों के प्रकार बहुत कुछ स्थलाकृतियों , मृदा प्रकार एवं जलवायु आदि पर निर्भर होते हैं । स्थलाकृति की भिन्नता के कारण पर्वतीय कृषि, मैदानी कृषि की गहनता एवं प्रति हेक्टेयर उत्पादन पर निर्भर होती है । अतः किसी भी किसी भी कृषि भूमि उपयोग के विवेचन में फसल - प्रकारों का विश्लेषण अति आवश्यक है ।

फसल प्रतिरूप मुख्य रूप से मृदा की उर्वरता तत्व, सिंचाई साधनों की सुलभता तथा व्यापारिक दृष्टिकोण एवं परिवहन की उपादेयता आदि पर निर्भर होता है ।

समय परिवर्तन के साथ-साथ किसी क्षेत्र विशेष में फसलों के प्रकार एवं उनके प्रतिरूप में भी परिवर्तन देखा जाता है । यद्यपि इनके लिए भौगोलिक कारक ही मुख्य होते हैं । इस प्रकार आधुनिक कृषि में भूमि उपयोग के अध्ययन करने में इन सभी तथ्यों को भी दृष्टिगत करना आवश्यक हो जाता है ।

(6) **फसल - सम्मिश्रण** :- कृषि भूमि उपयोग में कुछ फसलों के आकस्मिक (यदा-कदा) या प्राय नष्ट होने की आशंका से अथवा मृदा एवं सिंचन की अवक्षीणता से कम उत्पादन की आशंका से कुछ क्षेत्रों मे दो या तीन फसलों को मिलाकर बोने की प्रथा है । इसीलिए कुछ भागों में गेहूँ, जौ, कुछ भागों में गेहूँ-चना तथा कुछ भागों में मक्का-अरहर मिलाकर बोने की प्रथा प्रचलित है । जहाँ कहीं मुद्रादायिनी फसल उगाई जाती है, वहाँ मिश्रित फसल की प्रथा धीरे-धीरे शिथिल सी पड़ती जा रही हैं । भारत जैसे देश में जहाँ अधिकतर किसान जीवन-निर्वाह के लिए खेती करते हैं, वहाँ मिश्रित फसल की प्रथा अवश्य ही लाभदायक है ।

(7) **फसल - सन्तुलन** :- किसी भी किसान को भिन्न-भिन्न फसलों में उपयोगिता के

अनुसार अथवा क्षेत्रीय महत्व के अनुसार या व्यापारिक अनुदेश के अनुसार फसलों का सन्तुलन स्थापित करना आवश्यक है, अन्यथा अधिक उत्पादन के उपरान्त भी उसे अधिक लाभ का श्रेय नहीं मिल पाता है । इसीलिए आलू, गेहूँ, गन्ना, धान, मक्का, केला, आदि फसलों को कितने-कितने प्रतिशत कृषि योग्य भूमि में बोया जाय, यह भौगोलिक कारकों के अतिरिक्त आर्थिक एवं व्यापारिक दृष्टिकोणों पर भी निर्भर है । आधुनिक खेती में मुद्रार्जन की प्रवृत्ति बढ जाने से फसल सन्तुलन कृषि-भूमि उपयोग का एक आवश्यक अंग बन गया है ।

(8) **फसल - संयोजन** :- एक ही क्षेत्र से जहाँ कहीं वर्ष में कई फसलें उगाने की प्रथा है , वहाँ फसल चक्र का संयोजन आवश्यक होता है, अन्यथा मृदा की उर्वरता के क्षीण होने तथा फसल उत्पादन में ह्रास की आशंका बढ़ जाती है । पहली फसल जिन खेतों में छोटी जड़े वाली उगाई जाती है, दूसरी फसल उनमें लम्बी जड़ों वाली उगाना लाभदायक होता है क्योंकि पहली फसल मृदा की ऊपरी सतहो की उर्वरता से लाभ उठाती है जबकि दूसरी फसल मृदा की निचली सतहों से भरण-पोषण के तत्व ग्रहण करती है ।

वर्तमान समय में जब फसलों के बीजों तथा पौधों के प्रकारों में विशेष विकास के फलस्वरूप जलवायु तथा मुद्रा की प्रतिक्रियाओं का प्रभाव कम हो गया है तो फसलों के संयोजन का महत्व भी घट गया है । इसलिए अब संकर मक्का ग्रीष्म काल में उत्पादित किया जाता है जबकि सामान्य मक्का वर्षाकाल में उत्पादित होता था ।

(9) **कृषि भूमि - उपयोग सक्षमता** .- किसी कृषि क्षेत्र में फसल का उत्पादन मात्र ही उपयोगी नहीं है, बल्कि कृषि भूमि सक्षमता को ध्यान में रखकर उचित फसल का पर्याप्त उत्पादन भी आवश्यक है । उचित फसल का निर्धारण करने हेतु यह आवश्यक है कि कृषि भूमि और फसल में सुलभ संसाधनों को ध्यान में रखते हुए अधिकाधिक सामंजस्य स्थापित किया जा सके ।

कुछ विद्वानों नें 'आदर्श भूमि उपयोग की संकल्पना' प्रस्तुत की है । उनके अनुसार भूमि का उपयोग कुछ विशेष सन्दर्भों में आदर्श कहा जा सकता है । एक ही भू-

खण्ड का उपयोग कई भिन्न-भिन्न कार्य के लिए किया जा सकता है । उदाहरण के लिए यदि कृषि-क्षेत्र का एक भाग नहरों या नलकूपों के निर्माण मे अथवा सम्पर्क मार्गों के निर्माण में प्रयुक्त किया जाता है, तो उससे निश्चय ही कृषि कार्य की सक्षमता में वृद्धि होती है।

भारत जैसे देश में कृषि सक्षमता बढ़ाने मे कुछ प्रकार के पशुओं का भी विशेष योगदान रहा है । इसलिए उनकी नस्लों में सुधार तथा उनकी नवीन और आर्थिक क्रियाशील प्रयोगों को लगाकर कृषि भूमि की सक्षमता में वृद्धि की जा सकती है ।

(10) **भूमि की सर्वाधिक उत्पादन परिकल्पना** :- कृषि की उपादेयता में कुछ विद्वानों ने 'सर्वाधिक उत्पादन परिकल्पना' को विशेष श्रेय दिया है । किन्तु भारत जैसे कृषि बहुल देश में जहाँ जनसंख्या की अधिकता से निर्वाहन कृषि का दृष्टिकोण अधिक महत्वपूर्ण है और जहाँ व्यापारिक दृष्टिकोण अधिक व्यापक नहीं हो पाया है, उक्त परिकल्पना सार्थक नहीं कही जा सकती ।

सर्वाधिक उत्पादन प्राप्ति करने हेतु फसलों का उपयुक्त चयन, विभिन्न मुद्राओं के गुण-दोषों का ज्ञान, उर्वरकों के समुचित प्रयोग का ज्ञान सुधारे गये कृषि बीजों या पौधों का ज्ञान अति आवश्यक है ।

(11) **कृषि भूमि - उपयोग आयोजन** :- कृषि भूमि उपयोग से सम्बन्धित सिद्धान्तों एवं प्रयोगों को सुव्यवस्थित रूप में व्यवहृत करने के लिए कृषि भूमि-उपयोग का आयोजन अति आवश्यक है । इनके अन्तर्गत भौतिक-विपदाओं का नियंत्रण सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अधिक विकास योजना तथा कृषि से सम्बन्धित सस्थाओं मे उचित सुधार की योजना सम्मिलित की जा सकती है ।

आधुनिक कृषि कई अर्थो में लघु उद्योगों से समायोजित हो गयी है । इसीलिए कुछ विद्वान को भी औद्योगिक प्रक्रम के रूप में मानते हैं । कृषि भूमि उपयोग आयोजन के सन्दर्भ में तथ्यों को वर्गीकृत रूप में सारणीयन विधि द्वारा डा0 ब्रजभूषण[11] सिंह ने प्रस्तुत किया है जो

सारणी 4.2

कृषि भूमि उपयोग आयोजना

- **(क) भौतिक विपदाओं का नियन्त्रण**
  - क-1 जल प्रवाह सुधार
  - क-2 भूमि उत्पादन नियंत्रण
    - क-2 1 भूमि उपयोग विधियों में सुधार
    - क-2 2 वैज्ञानिक नियंत्रण
  - क-3 बाढ़ नियंत्रण
    - क-3 1 बाँध निर्माण
    - क-3 2 स्थानीय बांध नियंत्रण
    - क-3 3 जल भण्डार निर्माण
- **(ख) समाजिक आर्थिक आयोजना**
  - ख-1 भूमि उपयोग गहनता
    - ख-1 1 मुर्गीपालन
    - ख-1 2 उद्यान एवं बागवानी
    - ख-1 3 दुधारू पशुपालन
    - ख-1 4 मिश्रित एवं बहुउपयोग
    - ख-1 6 भूमि उपयोग पुर्नस्थापना
      - ख-1 5.1 उपज वृद्धि
      - ख-1 5.2 शस्य स्वरूप पुनरूत्थान
      - ख-1 5 3 दोहरी खेती योजना
      - ख-1 5 4 वैज्ञानिक फसल-चक्र
      - ख-1 5 5 उन्नतिशील बीजों का प्रबन्ध
      - ख-1 5 6 खाद एवं उर्वरक का प्रबन्ध
      - ख-1 5 7 कीटनाशक दवाओं का प्रबन्ध
  - ख-2 सरचनात्मक कृषि सुधार
    - ख-2 1 ऊर्जा
    - ख-2.2 बाजार
    - ख-2.3 शिक्षा
    - ख-2 4 यातायात
      - ख-2.5.2 सम्पर्क मार्गो का निर्माण
      - ख-2 5.2 पुलों का निर्माण
      - ख-2 5.2 वर्तमान मार्गो का निर्माण
  - ख-3 कृषि उद्योग
    - ख-3.1 उपयोगीकरण उद्योग
    - ख-3 2 सम्पर्क उद्योग
    - ख-3.3 सहायक उद्योग
- **(ग) सस्थागत सुधार की आयोजना**
  - ग-1 कृषि स्वास्थ्य सस्थान
  - ग-2 कृषि शिक्षा प्रबन्ध
    - ग-2.1 कृषक प्रशिक्षण केन्द्र
    - ग-2 2 फसल शोध संस्थान
    - ग-2 3 भूमि उपयोग सस्थान
  - ग-3 पशु स्वास्थ्य सस्थान
  - ग-4 बैंक या

विचार परक प्रतीत होता है । उसका उदाहरण सारणी 4.2 से स्पष्ट है ।

सारणी से स्पष्ट है कि भौतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं संस्थागत क्रियाओं का भूमि-उपयोग तथा कृषि भूमि उपयोग तथा उसकी आयोजन विधि पर विशेष प्रभाव पड़ता है ।

इस अध्याय में विवेचित सैद्धान्तिक पक्षों को ध्यान में रखकर ऐसा कहा जा सकता है कि भूमि उपयोग या कृषि भूमि उपयोग के सन्दर्भ में कोई सर्वमान्य एवं सर्वव्यापी विधि तन्त्र नहीं प्रस्तुत किया जा सकता । भूमि-उपयोग भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, एवं अन्य कई घटकों एवं विचलाको पर आधारित है, अतएव इन सभी पक्षों को ध्यान में रखकर ही कोई उपयोगी परिकल्पना प्रतिपादित की जा सकती है । परन्तु समय के परिवर्तन के साथ उक्त विचलकों में परिवर्तन के फलस्वरूप ऐसी परिकल्पना का सामयिक संशोधन भी आवश्यक है ।

कृषि भूमि उपयोग में प्रायोगिक पक्ष सैद्धान्तिक पक्ष से भी अधिक महत्वपूर्ण होता है, इसीलिए हमें प्रायोगिक पक्ष के विकास के द्वारा ही कृषि भूमि उपयोग की समस्याओं का समाधान तथा सम्भावनाओं का प्रारूप नियोजित करना चाहिए ।

****

सन्दर्भ - सूचिका (REFERENCES)

1. *Thunen, J.H. Van : Der Isolierts state in Bexiehung out land wirts chaft Vnd National Okonomic, Hambure, 1857.*

2. *Dunn, E.S. : The Location of Agricultural Production, Gainsville, Uni, of Florida Press, 1954.*

3. *Hoover, E.M. : The Location of Economic Activity New York, Mac - Graw Hill, 1948.*

5. *Isard, W. : In "Industrial Location" By David M. Smith, 1977, pp. 148-155.*

6. *Alonso, W.: Location and Land use, Toward a general Theory of Landrent, Combridge, Mass, Harvard Uni. Press.*

7. *Garrison, W.L. and D.F. Marble, : The Spatial structure of Agricultural Activaties Annals, of Assn, of Amer. Geogras. 1957, Vol 47, pp. 137-144.*

8. *Harvarth R.J. : Van Thunen's Isolated state and the ground Addis-Ababa, Ethopia, Annals, of the Assn. Of Amer. Geogras. 1969, Vol 59, pp 308-323.*

9. *Jonasson, O. : Agricultural Regions of Europe, Economic Geography, 1925, Pt 1, pp. 277-344.*

10. *Baker, O.E. : Agricultural Regions of North America, Economic Geography, 1926, Pt. 2, pp. 459-493.*

11. *Christaller, Walter : Die zentralen orte in Suddentsch land Fischer Jena, 1933, translated as 'Central Places in Southern Germany' by Carlisle W, Baskin, Prentice Hall, N.J. 1966.*

12. *Buchanan, R.O. : Some, Reflection on Agricultural Geography, 1956, Pt, 44 pp. 1-13.*

13. Hartshon R. and S.N. Dicken : A Classification of the Agricultural Regions of Europe and North America on a Uniform statistical Basis, Annals. Asso. Amer. Geogras. Vol 25, 1935. pp. 99-120.

14. Chischolm, M. : Problem ın the Classification and use of Farming, Type Regions, Inst. of British Geographers, transȷections and papers, 1964, Vol 35, pp. 91-103.

15. Grotewald, A. : "Van Thunen in Retxopect" Economic Geography, Vol 35, 1959, pp. 346-355.

16. Whittlesey, D. : Maȷor Agricultural Regions of the Earth, Annals Asso. Amer. Geogrs. Vol. 26, 1936, pp. 199-240.

17. Stamp, L.D. : The lant of Britains : its use and Misuse, London, IIIrd. Ed. 1962.

18. **सायमन्स, एल0** : कृषि भूगोल (अनुवादक श्याम सुन्दर कटारे) हिन्दी ग्रन्थ, 1980, पृ0 244. मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी (भोपाल)

19. **सिंह, ब्रजभूषण** : 'कृषि भूगोल' प्रथम संस्ककरण 1979, पृ0 181.

******

xxxxx

xxxxxxxxxx

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

अध्याय - पंचम

भूमि उपयोग का परिवर्तनशील वितरण-प्रतिरूप

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

xxxxxxxxxx

xxxxx

अध्याय - पंचम

भूमि-उपयोग का परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप

5.1 भूमि-उपयोग

आखेटीय व्यवस्था के उपरान्त सभ्यता के विकास के प्रथम सोपान से लेकर वर्तमान तक अनेकानेक वैज्ञानिक उपलब्धियों एवं तकनीकी सुविधाओं से सम्पन्न मानव सभ्यता के मूल मे भूमि का महत्वपूर्ण स्थान है । मानव प्राकृतिक एवं मानवीय परिवेश से सामंजस्य स्थापित करते हुए भूमि-संसाधन का अधिकाधिक उपयोग करने का प्रयास करता है । यही कारण है कि किसी स्थान विशेष के भूमि उपयोग की विभिन्न अवस्थायें उस क्षेत्र विशेष की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था की द्योतक होती है ।

आधुनिक वैज्ञानिक युग में सभी उपलब्ध संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग को ध्यान में रखते हुए सतत् नवीन तकनीकी ज्ञान एवं संयंत्रों का अनुसंधान एवं विकास किया जा रहा है । भूमि-उपयोग भी इस वैज्ञानिक युग की उपलब्धियों से पूर्णतया प्रभावित है। वैनेजेटी[1] के अनुसार भूमि-उपयोग प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक उपादानों के संयोग का प्रतिफल है । जब तक किसी क्षेत्र विशेष में भूमि उपयोग प्रकृति-प्रदत्त विशेषताओं के अनुरूप रहता है, अर्थात मानवीय क्रिया-कलाप प्राकृतिक कारकों द्वारा निर्धारित होते हैं, तब तक भूमि का आर्थिक महत्व अपेक्षाकृत बहुत ही कम एवं जन-जीवन का स्तर निम्नतम होता है । काल-क्रम में जब भूमि-उपयोग प्रारूप के निर्धारण में मानवीय भूमिका निर्णायक हो जाती है, तब भूमि-उपयोग में आर्थिक संसाधनों का विनियोजन अधिक होने लगता है, उस अवस्था में भूमि का संसाधनता में वृद्धि हो जाती है और जन-जीवन का आर्थिक स्तर अपेक्षाकृत उच्च से उच्चतर हो जाता है ।

अध्ययन क्षेत्र कटिहार प्रखण्ड की आर्थिक व्यवस्था कृष्येत्तर संसाधनों के अभाव में मात्र कृषि-संसाधनों पर आधारित है । फलतः इस क्षेत्र के भौगोलिक अध्ययन में कृषि-भूमि-उपयोग सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय हो जाता है । क्षेत्र विशेष में भूमि-उपयोग की गहनता और उसमें कालिक परिवर्तन के विश्लेषण द्वारा उसके विगत एवं वर्तमान विकास-स्तर का ज्ञान हो सकता है । साथ ही भावी विकास-क्षमता का आकलन भी किया जा सकता है । भूमि-उपयोग को प्रभावित करने वाले प्राकृतिक तथा मानवीय पर्यावरण के समन्वित

किया है ।

भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले कारकों में भौतिक कारक जैसे उच्चावच, जलवायु, मिट्टी आदि का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है । उपर्युक्त कारकों की विभिन्न दशाओं से प्रभावित भूमि पर मनुष्य अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप विशिष्ट प्राविधिकीय ज्ञानों, नवीन अनुसन्धानों, वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा सांस्कृतिक भू-दृश्यावली (कृषित-भूमि परिवर्तन, मार्ग, आवास, सिंचाई के साधन एवं विभिन्न सुविधाओं) का विकास करता है और उसे परिशोधित एवं परिमार्जित करता है और भविष्य में भी आवश्यकताओं की पूर्ति परिवर्तन करता रहेगा।

गत्यात्मक भूमि-उपयोग की गत्यात्मकता बाजारीय अर्थ-व्यवस्था से निर्देशित होती है । रोनाल्ड के अनुसार 'वास्तव में आर्थिक शक्तियों जैसे माँग और पूर्ति के अन्तर्सम्बन्धों के सन्दर्भ मे स्वतः दूसरी वस्तुऐं सामान्य भूमि-उपयोग के लिए कारक रूप में प्रतिस्थापित हो जाती है[3] ।

प्राय सभी संस्थागत कारक-संस्कृति रीति-रिवाज, सामाजिक संरचना, मनोवैज्ञानिक एवं आदर्शजन्य वैचारिक भावना, सामूहिक क्रिया-कलाप, भूमि स्वामित्व, भूमि-उपयोग प्रारूप को एक विशेष सीमा तक प्रभावित करते हैं । इसके अतिरिक्त आर्थिक उपयोग में भूमि-संसाधन की उपलब्धता, वहाँ के वर्तमान प्राविधिकीय विकास-स्तर का परिचायक है, जो वास्तव में माँग और आपूर्ति प्रारूप के तीव्रतम प्रभाव का द्योतक भी है । बारलो के शब्दों में ' इस प्रकार यह माँग और आपूर्ति तत्वों का अन्तर्सम्बन्ध ही है जो किसी भी स्थान के भूमि उपयोग में भौतिक तथा जैविक ढाँचे द्वारा मुखरित होता है[4]' ।

अध्ययन क्षेत्र का भूमि उपयोग प्रारूप वस्तुत. निर्वाहक मूलक अवस्था से गहन निर्वाहमूलक अवस्था की ओर अग्रसर हैं । इसका स्पष्टीकरण सिंह द्वारा निर्मित भूमि-उपयोग अवस्था एवं सामाजिक, आर्थिक व्यवस्थाओं के उपकल्पित प्रतिमान से हो जाता है[5] ।

उपलब्ध आँकड़ों से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र के अधिकांश गांवों में भूमि उपयोग अपनी संभाव्य-क्षमता तक पहुँच चुका है । अंग्रेजी शासनकाल में विदेशी शासकों की पैनी

दृष्टि विस्तृत वनाच्छादित क्षेत्र पर पड़ी और उन्होंने नीलामी प्रक्रिया के माध्यम से भूमि का आवंटन कर वनों को साफकर कृषि-क्षेत्र का विस्तार किया । इस दीर्घ अवधि में जनसंख्या में प्रव्रजन जन्म एव स्वाभाविक वृद्धि के फलस्वरूप भूमि-उपयोग की वर्तमान अवस्था का विकास हुआ ।

5.2 **भूमि उपयोग का प्रारूप एवं श्रेणीयन** :- भूमि-उपयोग प्रारूप मुख्य रूप से प्राकृतिक वातावरण से प्रभावित होता है । परन्तु इस पर सामाजिक एवं आर्थिक कारकों का प्रभाव भी भलीभाँति परिलक्षित होता है । जो सारणी (5.1) से है ।

सारणी 5.1

कटिहार प्रखण्ड : भूमि उपयोग प्रतिरूप (1991)

भूमि उपयोग	क्षेत्रफल (हे0)	प्रतिशत
शुद्ध कृषित भूमि	20255	75 56
अप्राप्य भूमि	3951	14.74
कृष्य बंजर भूमि	1462	5 45
बाग,बगीचों	1139	4.25
कुल क्षेत्रफल	**26807**	**100.00**

स्रोत : कटिहार कार्यालय से प्राप्त ऑकड़ों से संगणित ।

उपर्युक्त सारणी 5 । से स्पष्ट है कि कटिहार प्रखण्ड में भौगोलिक क्षेत्र का 75.56% क्षेत्र कृषि कार्यों में सम्मिलित है और 5 45% क्षेत्र कृष्य बंजर भूमि के रूप में मिलता है, जिसे सक्रिय प्रयासों द्वारा कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत लाया जा सकता है । इसी भाँति बाग-बगीचों एवं अप्राप्य भूमि का विस्तार क्रमश· 4.25% एव 14.74% क्षेत्र पर पाया जाता है ।

KATIHAR PRAKHAND
GENERAL LANDUSE PATTERN
1991
N
CULTIVATED LAND
NON-CULTIVABLE LAND
CULTIVABLE WASTE LAND
TREES AND ORCHARDS
2 0 2 4
Km
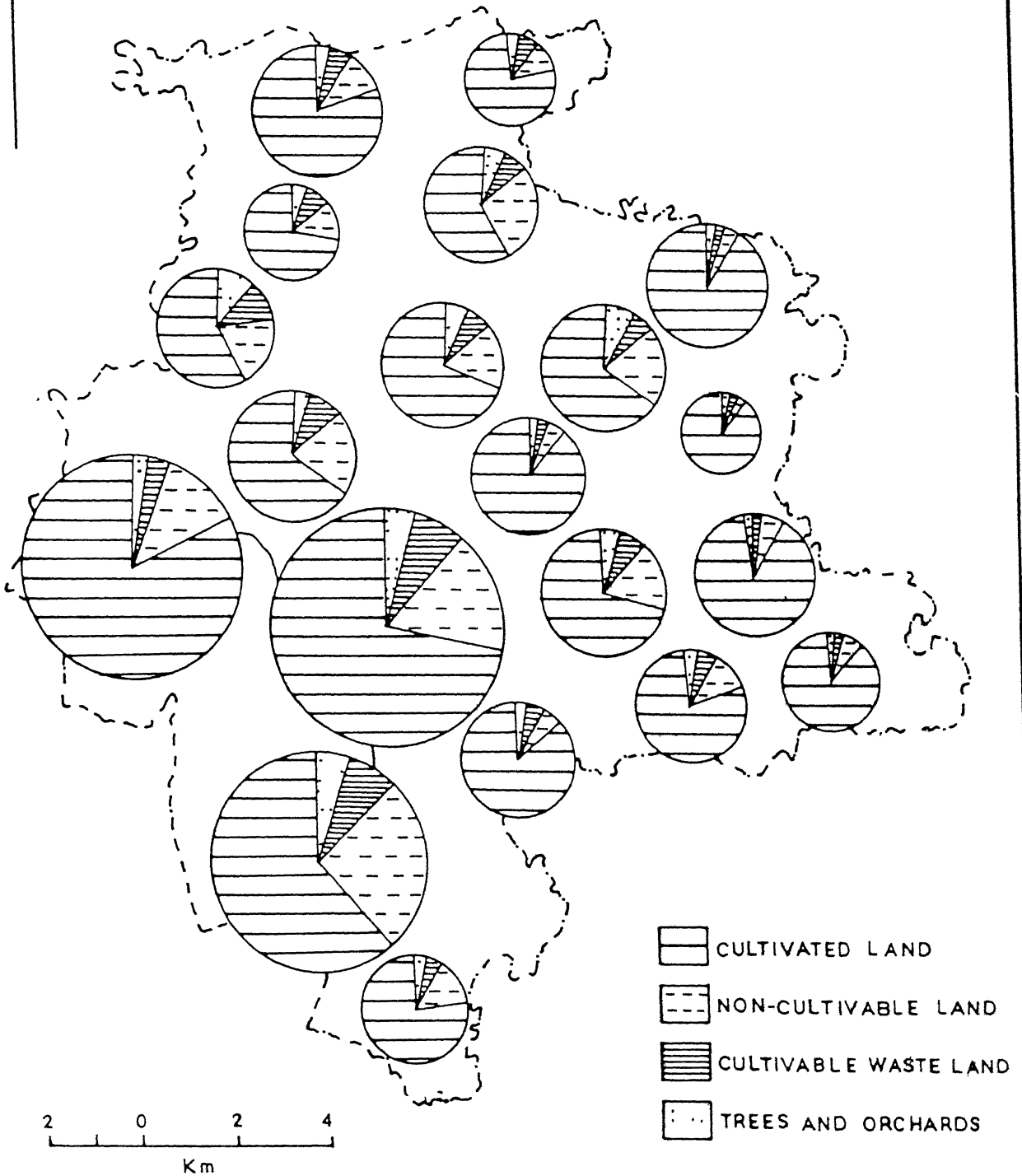
Fig. 5·1

भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले प्राकृतिक एवं मानवीय कारकों की क्षेत्रीय विषमता के परिणाम स्वरूप न्याय पंचायत स्तर पर भूमि उपयोग में प्रर्याप्त विभिन्नता मिलती है जो सारणी (5 2) से स्पष्ट है ।

उपर्युक्त आकड़ों से स्पष्ट होता है कि शुद्ध कृषित क्षेत्र का सर्वाधिक प्रसार न्याय पंचायत रघैली 93.31% तथा न्यूनतम न्याय पंचायत महमदिया 57.17% है । कृषि अप्राप्य भूमि के अन्तर्गत सर्वाधिक क्षेत्र न्याय पंचायत महमदिया का 28.37% है जबकि न्यूनतम न्याय पचायत रघैली में 2.43% है । कृषि बंजर भूमि के अन्तर्गत सर्वाधिक क्षेत्र न्याय पंचायत राजभवाड़ा 10.07% तथा न्यूनतम न्याय पंचायत डुमरिया 1.22% एवं बाग-बगीचों के अन्तर्गत सर्वाधिक भू-भाग न्याय पंचायत रामपुर 10.10% तथा न्यूनतम डुमरिया 0.71% है । इसी प्रकार दो-फसली क्षेत्र का सर्वाधिक क्षेत्र विस्तार न्याय पंचायत हफलागंज 85.13% तथा न्यूनतम न्याय पंचायत दलन 11 37% भाग सम्मिलित है । सिंचित क्षेत्र के अन्तर्गत सर्वाधिक क्षेत्र न्याय पंचायत हफलागंज 83.86% तथा न्यूनतम क्षेत्र न्याय पंचायत राजपारा 9.79% भाग में है । इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि न्याय-पंचायत स्तर पर भूमि उपयोग प्रतिरूप मे विभिन्नता मिलती है । श्रेणीयन के माध्यम से भूमि उपयोग प्रतिरूप को और स्पष्ट किया जा सकता है । अध्ययन क्षेत्र में न्याय पंचायत स्तर पर शुद्ध कृषित क्षेत्र, कृषि अप्राप्य, बाग-बगीचे तथा कृष्य बंजर के अन्तर्गत भू-भाग अनुकूलतम अवस्था तक पहुँच गया है (सारणी 5.3 एवं मानचित्र 5.1)

भूमि उपयोग के सम्बन्धित घटकों का विश्लेषण मुख्यरूप से कृषि अप्राप्य भूमि, कृष्य बंजर, बाग-बगीचों , शुद्ध कृषित क्षेत्र दो फसली तथा सिंचित क्षेत्रों में बाँटकर किया गया है ।

(अ) **कृषि अप्राप्य भूमि का वितरण प्रतिरूप** :- वर्तमान सन्दर्भ में कृषि अप्राप्य भूमि का तात्पर्य उस भूमि से है, जिसे वैज्ञानिक अनुसन्धानों, नवीन कृषि यन्त्रों, सिंचाई के साधनों अभिनव तकनीकी ज्ञानों एवं अन्य सुविधाओं के उपरान्त भी आर्थिक दृष्टि से शुद्ध लाभप्रदायी कृषिगत क्षेत्र के अन्तर्गत लाया न जा सके । भूमि उपयोग का यह एक महत्वपूर्ण पक्ष

सारणी 5.2

भूमि उपयोग प्रतिरूप (1991)

कटिहार प्रखण्ड : न्याय पंचायत स्तर पर भूमि उपयोग प्रतिरूप (क्षेत्रफल हे0 में)

क्र0सं0	न्याय पंचायत	क्षेत्रफल हे0 में	शुद्ध कृषित भूमि	प्रतिशत	कृषि अप्राप्य भूमि	प्रतिशत	कृष्य बंजर भूमि	प्रतिशत	बाग-बगीचा	प्रतिशत	द्विफसली	प्रतिशत	सिंचित	प्रतिशत
1.	चन्देली भर्रा	1351	1088	80.53	145	10.73	65	4.81	53	3.12	348	31.98	576	52.94
2.	जगन्नाथपुर	970	694	71.54	140	14.53	76	7.83	60	6.18	331	47 69	175	25.21
3.	राजपारा	1083	868	80.14	116	10.71	67	6.18	32	2.95	661	76 15	85	9.79
4.	रामपुर	1120	688	61 42	215	19.19	105	9 37	112	10 10	275	39 97	487	70.78
5.	जबड़ा-पहाड़पुर	1021	824	80 70	115	11.26	45	4 40	37	3.62	306	37 13	227	27.54
6.	बिजैली	1249	1104	88.71	107	8.56	20	1.60	18	1.63	348	31 40	328	29.60
7.	डुमरिया	967	864	89 34	84	8.60	12	1.22	07	0.71	325	37.61	257	29.74
8.	महमदिया	1163	665	57.17	330	28.37	85	7 30	83	7.13	441	66 31	235	35 33
9.	बलुआ	1333	934	70.06	235	17.62	86	6.46	78	5.85	305	32.65	258	27.62
10.	राजभवाड़ा	1390	917	65.97	290	20.86	140	10.07	43	3.09	223	24.31	743	81 02
11.	दलन	2397	1978	82.51	295	12.30	69	2.87	55	2.29	225	11.37	748	37.81
12.	बेलवा	2586	1861	71.96	424	16.39	185	7.15	116	4.48	312	16.76	695	37.34

क्रमश

13.	बोरनी	1038	920	88.63	73	7.03	30	2.89	15	1.44	395	42 93	467	50.76
14.	दोआसे	1154	1076	93.24	45	3.89	15	1.29	18	1.55	587	54.55	189	17 56
15.	सौरिया	1202	784	65.22	246	20.46	66	5.49	106	8.81	185	23 59	279	35 58
16.	डण्डखोरा	1302	914	70.19	216	16.58	91	6.98	81	6 22	189	20 67	214	23 41
17.	रघेली	823	768	93.31	20	2.43	15	1.82	20	2.43	756	78 43	178	23.17
18.	हफलागंज	1030	787	76.40	155	15.04	45	4.36	43	4.17	670	85.13	660	83 86
19.	मधेपुरा	1222	1048	85.76	85	6.95	57	4.66	32	2.61	330	31.48	369	35.20
20.	परतेली	2406	1469	61.05	615	25.56	188	7.81	134	5.56	1224	83 32	530	36 07
	कुल योग	**26,807**	**20,255**	**75.56**	**3951**	**14.74**	**1462**	**5.45**	**1139**	**4.25**	**8436**	**41.65**	**7700**	**38.01**

स्रोत : जिला सांख्यिकी कार्यालय कटिहार, (बिहार) ।

TRENDS OF LAND UTILIZATION OF KATIHAR PRAKHAND
1991
NON-CULTIVABLE LAND
CULTIVABLE WASTE LAND
TREES AND ORCHARDS
NET SOWN AREA
DOUBLE CROPPED AREA
IRRIGATED AREA
NO. OF PANCHAYAT IN PERCENTAGE
NO. OF PANCHAYAT IN PER CENTAGE
LANDUSE IN PERCENTAGE
5
10
15
20
40
60
80
100
10
20
30
40
50
60
70
80
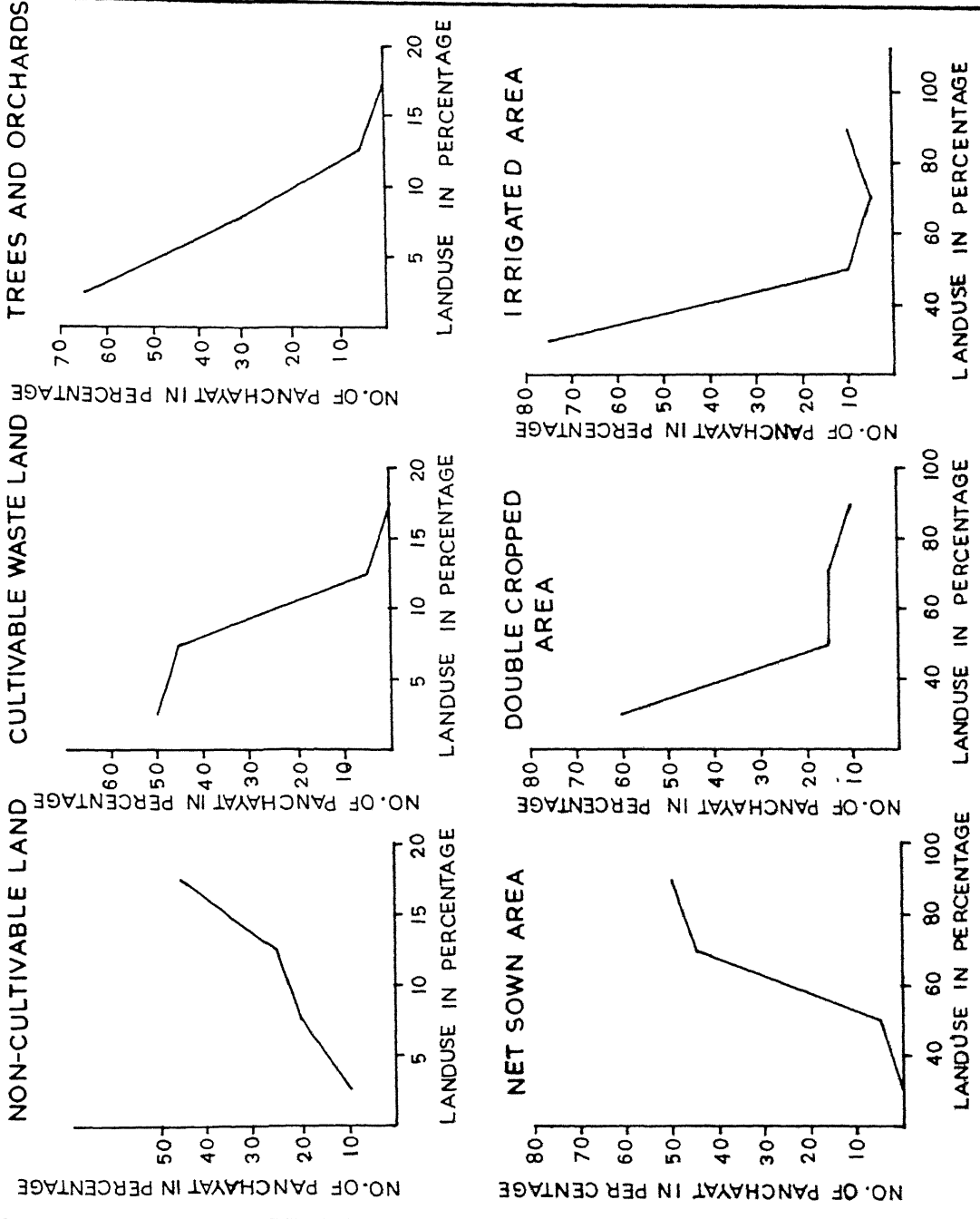
Fig.5.2

सारणी 5.3

कटिहार प्रखण्ड : न्याय पचायत स्तर पर भूमि उपयोग का श्रेणीयन (1991)

	कृषित			अकृष्य			कृष्य- बंजर		
श्रेणी क्रम	कृषित भूमि का प्रतिशत	न्याय पंचायतों की संख्या	प्रतिशत कुल न्याय पचायतों की संख्या के आधार पर	अकृष्य भूमि का प्रतिशत	न्याय पचायतों की सख्या	प्रतिशत कुल न्याय पंचायतों की सख्या के आधार पर	कृष्य बजर भूमि का प्रतिशत	न्याय पचायतों की संख्या	प्रतिशत कुल न्याय पंचायतों की संख्या के आधार पर
1	>80	10	50	>15	9	45	>15	0	00
2	60-80	9	45	10-15	5	25	10-15	1	05
3	40-60	1	05	5-10	4	20	5-15	9	45
4	< 40	0	00	<5	2	10	<5	10	50

	बाग-बगीचा			दो फसली			सिंचित		
श्रेणी क्रम	बाग-बगीचों के भूमि का प्रतिशत	न्याय पंचायतों की संख्या	प्रतिशत कुल न्याय पंचायतों की संख्या के आधार पर	दो-फसली भूमि का प्रतिशत	न्याय पचायतों की संख्या	प्रतिशत कुल न्याय पंचायतों की संख्या के आधार पर	सिंचित भूमि का प्रतिशत	न्याय पंचायतों की संख्या	प्रतिशत कुल न्याय पंचायतों की संख्या के आधार पर
1.	>15	0	00	>80	2	10	>80	2	10
2.	10-15	1	05	60-80	3	15	60-80	1	05
3.	5-10	6	30	40-60	3	15	40-60	2	10
4.	<5	13	65	<40	12	60	<40	15	75

स्रोत जिला सांख्यिकी कटिहार द्वारा प्राप्त आंकड़ों के आधार पर ।

है, जिसमे आर्थिक , सामाजिक एवं सांस्कृतिक भू-दृश्यावलियाँ, निवास-स्थान, परिवहन साधन, उद्योग, बाजार एवं साँस्कृतिक संस्थान आदि विकास करती है ।

कृषि अप्राप्य क्षेत्र के आधार पर अध्ययन क्षेत्र के न्याय पंचायतों को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है जो सारणी (5.3) से स्पष्ट है । **प्रथम श्रेणी** के अन्तर्गत 15% से अधिक कृषि अप्राप्य क्षेत्र वाले न्याय पचायतों को सम्मिलित किया गया है जिसमें 9 न्याय पंचायत है जो क्रमश महमदिया (28.37%), परतेली (25.56%), राजभवाडा (20.86%), सौरिया (20 46%), रामपुर (19 19%), बलुआ (17.62%), डण्डखोरा (16 58%), बेलवा (16.39%) तथा हफलागज (15 04%) है, **द्वितीय श्रेणी** के अन्तर्गत 10-15% कृषि-अप्राप्य वाले न्याय पचायतों को सम्मिलित किया गया है जिसकी संख्या 5 है जिसके अन्तर्गत न्याय पंचायत जगन्नाथपुर (14 43%), दलन (12.30%), पहाड़पुर (11.26%), चन्देली भर्रा (10 73%), राजपारा (10 71%), न्याय पंचायत सम्मिलित है । **तृतीय श्रेणी** के अन्तर्गत 5-10% वाले क्षेत्र को सम्मिलित किया गया है । जो कुल न्याय पंचायत का 20% (4 न्याय पंचायत) है । उस वर्ग में न्याय-पंचायत डुमरिया (8.60%), बिजैली (8.56%), बोरनी गोरगला (7.03%), एवं मधेपुरा (6 95%) आते हैं । **चतुर्थ श्रेणी** के अन्तर्गत (5% से कम भू-भाग को रखा गया है । जिसके अन्तर्गत कुल न्याय पचायतों का 10% है । इस वर्ग में अध्ययन क्षेत्र के 2 न्याय पंचायत है जिसमें दोआसे (3.89%) एवं रघेली (2.43%), सम्मिलित है । इसी प्रकार प्रतिदर्श चयनित नौ गाँवों का सूक्ष्म अध्ययन के फलस्वरूप सर्वाधिक प्रतिशत ग्राम रकसा (28.86%) का है । इसके बाद क्रमश सहसिया (28.55%), फरही (27.15%), खैरा (25.97%), कजरी (24.67%), गोपालपुर (20.81%), परियागदह (12.58%), शंकरपुर (7.53%) और बौरा (4.86%) प्राप्त है । कृषि अप्राप्य-भूमि का अपेक्षाकृत उच्च प्रतिशत मुख्यत· 2 कारकों से सम्बन्धित है ।

(1) **मानवीय कारक** :- ग्रामीण विकास से सम्बन्धित विभिन्न निर्माण कार्य (उदाहरणार्थ मानव अधिवास परिवहन एवं सिंचाई के साधन, बाजार, विद्यालय, पंचायतघर तथा अन्य सांस्कृतिक संस्थान) तथा -

(2) **प्राकृतिक कारक** - जल जमाव युक्त, बाढग्रसित क्षेत्र, नदी मार्ग परिवर्तन से निर्मित छाडन झील आदि प्रतिदर्श स्वरूप चयन किये गये 9 गाँवों के अध्ययन से स्पष्ट है कि मानव अधिवास, परिवहन एवं सिचाई के साधनों से सम्बन्धित भूमि के क्षेत्रफल में विगत 50 वर्षो में काफी परिवर्तन हुआ है । इनमे ग्राम स्तर पर 79.64% (फरही), 74.67% (सहसिया), एव 72 68% (परियाग दह) की हुई है । इसमें ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक, सामाजिक विकास हेतु विभिन्न निर्माण योजनाओं के कार्यान्वयन की दृष्टि होती है । ग्राम बौरा में (74.49%) का ह्रास हुआ है । जल मग्न क्षेत्र मे विकास चार दशकों (1951-91) के अन्तर रकसा में 52 97% की वृद्धि एवं बौरा में 93.77% का ह्रास हुआ है । वर्ष 1951 में जो जलमग्न भूमि थी, वह पूर्णतया कृषि के अयोग्य समझी जाती थी । उसका अधिकांश भाग जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप धान की नवीन किस्मों एवं नवीन कृषि-पद्धति के विकास द्वारा वर्तमान में धान की खेती (एक फसली कृषि क्षेत्र) के अन्तर्गत परिवर्तित कर दिया गया है । गाँव बौरा में कब्रिस्तान एवं मरघट क्षेत्र में 73.17% का ह्रास हुआ है । बढ़ती जनसंख्या के फलस्वरूप आज यहाँ कृषि एवं अन्य कार्य हो रहा है जबकि गाँव फरही में इसके क्षेत्र में 65.57% की वृद्धि हुई है । गाँव कजरी में पहले कब्रिस्तान और मरघट नहीं था परन्तु आज इसमें काफी क्षेत्र छोडा गया है । अन्य कृषि-अयोग्य क्षेत्र में सर्वाधिक वृद्धि गाँव फरही मे 82.26% की हुई है जबकि ह्रास गाँव बौरा का 94.52% हुआ है इस तरह कुल नौ चयनित गाँवों में कुल कृषि अप्राप्य क्षेत्र में सर्वाधिक वृद्धि फरही (69.55%) में हुआ है जबकि ह्रास गाँव बौरा मे (82.44%) का हुआ है । इस तरह उपयुक्त व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि चयनित गाँवों की स्थिति में विगत 5 दशकों के दौरान तीव्र परिवर्तन हुआ है ।

(ब) कृष्य बंजर भूमि का वितरण प्रतिरूप :- कटिहार प्रखण्ड के 5.45% (1462 है0) क्षेत्र पर कृष्य बंजर का विस्तार पाया जाता है । कृष्य बंजर के अन्तर्गत पुरानी परती, नई परती, उखाँव, पलिहर, एवं खरपतवार वाले सभी क्षेत्र सम्मिलित किए जाते हैं । ये क्षेत्र प्रतिकूल दशाओं के कारण कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आ सके हैं परन्तु भविष्य में जनसंख्या की वृद्धि के साथ ही एवं उचित संसाधनों के सुलभ होने पर और भूमि सुधार द्वारा इन्हें कृषि के लिए उपयोग में लाया जा सकता है[6]।

कृष्य-बंजर क्षेत्र के आधार पर अध्ययन क्षेत्र के न्याय पंचायतों को भी चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है । **प्रथम श्रेणी** के अन्तर्गत 10-15% वाले क्षेत्र को सम्मिलित किया गया है जिसकी संख्या । है जो कुल न्याय पंचायत का 5% है जिसमें न्याय पंचायत राजभवाड़ा (10.07%) है । **द्वितीय श्रेणी** के अन्तर्गत 5-10% वाले क्षेत्र को सम्मिलित किया गया है । इस वर्ग मे 9 न्याय पंचायत है जो कुल कृष्य बंजर क्षेत्र का 45% क्षेत्र विस्तृत है । जिसके अन्तर्गत न्याय पंचायत रामपुर (93.77%), जगन्नाथपुर (7.83%), परतेली (7.81%), महमदिया (7 30%), डण्डखोरा (6.98%), बेलवा (7.15%), बलुआ (6.46%), राजपारा (6.18%), एव सौरिया (5.49%), सम्मिलित हैं । **तृतीय श्रेणी** के अन्तर्गत 5% से कम कृष्य बंजर वाले भू-भाग को सम्मिलित किया गया है जिसकी संख्या 10 है जो कुल न्याय पंचायत का 50% है जिसमें न्याय पंचायत चन्देली भर्रा (4.81%), मधेपुरा (4.66%), जबड़ा पहाडपुर (4.40%), हफलागंज (4.36%), बोरनी गोरगाना (2.89%), दलन (2.87%), रखेली (1.82%), बिजैली (1.60%), दोआसे (1.29%), एवं डुमरिया (1.22%) आते हैं ।

(स) **बाग-बगीचों का वितरण प्रतिरूप** :- इसके अन्तर्गत समस्त भूमि का 4.25% (1139 हे0) भू-भाग सम्मिलित है । इन बाग-बगीचों में मुख्यत: आम, महुआ, अमरूद, सेमल, अर्जुन, ताड़ एवं नारियल के वृक्ष पाए जाते हैं जो प्राय: आबादी के आस-पास वाले क्षेत्रों में स्थित है । नदियों के तटों पर ऊँची भूमियों पर भी जिसे 'घूस'* कहते है, ये बाग-बगीचे प्राय पाये जाते हैं । नारियल और ताड के वृक्ष नमी वाले स्थानों पर विशेषकर नदियों के तटवर्ती क्षेत्रों में पाये जाते हैं । इस क्षेत्र मे स्थित बाग मुख्य रूप से मिट्टियों के वितरण पर निर्भर करते हैं । अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी भाग में शीशम, आम के वृक्षों की अधिकता है जबकि नारियल, ताड़ खास कर अध्ययन क्षेत्र के मध्यवर्ती भाग फरही, कमला, गिदरी और मोनाली नदियों के तटवर्ती क्षेत्रों में पाये जाते हैं । इसके अलावा इस भाग में बाँस भी पर्याप्त पाए जाते हैं जिनका प्रयोग घरेलू सामानों तथा घर बनाने के लिए किया जाता है । अध्ययन क्षेत्र के पश्चिमी-दक्षिणी भागों में महुआ, जामुन तथा सेमल के वृक्ष की अधिकता है । कछारी क्षेत्रों (कमला अंचल में) बबूल के वृक्ष भी बहुतायत मात्रा में पाये जाते हैं । बाग-बगीचों के भूमि वितरण के आधार पर अध्ययन क्षेत्र के न्याय पंचायतों को श्रेणीयन के आधार पर चार वर्गों में विभाजित किया गया है ।

प्रथम श्रेणी :- इसके अन्तर्गत 10-15% वाले भू-भाग को सम्मिलित किया गया है । इसके अन्तर्गत अध्ययन क्षेत्र का 1 न्याय पचायत आता है जो कुल न्याय पंचायतों का 50% है इस वर्ग में न्याय पंचायत रामपुर (10.10%) सम्मिलित है । यह अध्ययन क्षेत्र के पश्चिमी भाग में स्थित है ।

द्वितीय श्रेणी :- इसके अन्तर्गत 5-10% भू-भाग वाले बाग-बगीचों का क्षेत्र आता है जो कुल न्याय पंचायत का 30% है जिसकें न्याय पचायत सौरिया (8.81%), महमन्दिया (7 13%), डण्डखोरा (6.22%), जगन्नाथपुर (6.18%), बलुआ (5.85%) एवं परतेली (5.56%) आते हैं । ये न्याय पंचायत अध्ययन क्षेत्र के दक्षिणी-पूर्वी एवं मध्यवर्ती भागों में विस्तृत है ।

तृतीय श्रेणी .- इसके अन्तर्गत 5% से कम प्रतिशत वाले बाग-बगीचों का भू-भाग आता है जिसमें 65% भाग है जिसमें 13 न्याय पंचायत बेलवा (4.48%), हफलागंज (4.17%), चन्देली भर्रा (3.12%), जबड़ा पहाड़पुर (3 62%), राजभवाड़ा (3.09%), राजपारा (2.95%), मधेपुरा (2.61%), रघेली (2 43%), दलन (2.29%), दोआसे (1.55%), बोरनी गोरमामा (1.44%), बिजैली (1.12%), एवं डुमरिया (0 71%) आते हैं । इसी प्रकार प्रतिदर्श चयनित नौ गाँवों का सूक्ष्म अध्ययन के फलस्वरूप बाग-बगीचों के अन्तर्गत 2 गाँव आते हैं जिसमें शंकरपुर (4.66%) एवं बौरा (1.46%) है । ये दोनों गाँव न्याय पंचायत बोरनी तथा डुमरिया के अन्तर्गत आते हैं जो अध्ययन क्षेत्र के मध्यवर्ती तथा दक्षिणी-पूर्वी भाग में स्थित हैं । इन गाँवों का अध्ययन करने के फलस्वरूप पाया गया कि बौरा में आदिवासी लोग महुआ-चावल को सड़ाकर शराब तैयार करते हैं और सपरिवार इसका सेवन करते हैं । साथ ही ताड़ वृक्ष की अधिकता है जहाँ पर ताड़ी तैयार करते हैं जिसे स्थानीय बाजार में बेंच कर जीवकोपार्जन की व्यवस्था करते हैं यत्र-तत्र कटीली झाड़िया बाँस देखने को मिलते है । डोम जाति के लोग बाँस से अनेक सामान तैयार करते है जैसे खाँची, सूट चगेंली तथा अन्य घरेलू आवश्यक सामग्री को बनाकर हाट में बेचते हैं ।

(द) शुद्ध कृषिगत क्षेत्र का वितरण प्रतिरूप :- शुद्ध कृषिगत क्षेत्र का सर्वोच्च प्रतिशत न्याय पंचायत रघेली में तथा निम्नतम न्याय पंचायत महमदिया में क्रमशः 93.31% तथा

57.17% पाया जाता है, जो सारणी (5.2) से स्पष्ट है । शुद्ध कृषिगत क्षेत्र के आधार पर अध्ययन क्षेत्र के न्याय-पंचायतों को चार वर्गों में विभाजित किया गया है । **प्रथम श्रेणी** के अन्तर्गत 80% से अधिक शुद्ध कृषित क्षेत्र वाले न्याय पंचायतों को सम्मिलित किया गया है । इस वर्ग के अन्तर्गत प्रखण्ड के 10 न्याय पंचायत सम्मिलित हैं अर्थात क्रमानुसार इस श्रेणी में रखेली (93 31%), दोआसे (93 24%), डुमरिया (89.34%), बौरनी (88.63%), मधेपुरा (85.76%), दलन (82.51%), बिजैली (80 71), जबडा-पहाडपुर (80.70%), चन्देली भर्रा (80.53%) तथा राजपारा (80.14%) सम्मिलित हैं । **द्वितीय श्रेणी** के अन्तर्गत 60-80 प्रतिशत वाले शुद्ध कृषित क्षेत्र वाले न्याय पंचायत को सम्मिलित किया गया है । जिसके अन्तर्गत प्रखण्ड के 9 न्याय पंचायत आते हैं जिसका क्रमशः वितरण हफलागंज (76.40%), बेलवा (71 96%), जगन्नाथपुर (71.54%), डण्डखोरा (70.19%), बलुआ (70.06%), राजभवाड़ा (65.97%), सौरिया (65 22%), रामपुर (61.42%) तथा परतेली में (61 05%) सम्मिलित है । **तृतीय श्रेणी** के अन्तर्गत 40-60 प्रतिशत वाले शुद्ध कृषित क्षेत्र वाले न्याय पंचायत को सम्मिलित किया गया है जिसमें मात्र 1 न्याय पंचायत महमदिया (57.17%) है । इसी प्रकार प्रतिदर्श चयनित नौ गाँवों का सूक्ष्म अध्ययन करने के फलस्वरूप सर्वाधिक प्रतिशत शुद्ध कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत ग्राम बौरा (93.68%) है । इसके बाद क्रमशः परियाम दह (83.12%), शंकरपुर (78.27%), कजरी (75.35%), खैरा (74.03%), सहसिया (71.44%) रक्सा (71 13%), गोपालपुर (58.54%), फरही (54.49%) है । सहसिया गाँव गैर -आबाद गाँव के अन्तर्गत आता है । लेकिन इसका अध्ययन अधिकांश, परिवहन एवं सिंचाई के साधनों के अन्तर्गत किया गया है ।

(य) दो फसली क्षेत्र का वितरण प्रतिरूप :- क्षेत्र विशेष में दो फसली क्षेत्र का उच्च प्रतिशत उसकी भूमि उपयोग गहनता का द्योतक है । सिंचित एवं दो - फसली क्षेत्र परस्पर अन्तर्सम्बन्धित है । अध्ययन क्षेत्र मे दो -फसली क्षेत्र का उच्च प्रतिशत (85.13%), न्याय पंचायत हफलागंज में पाया जाता है । जिसके दो -तिहाई से भी अधिक (670 हे0) क्षेत्र पर वर्ष में दो - फसली या दो बाद से अधिक फसले उगाई जाती है । सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र का अध्ययन करने के फलस्वरूप प्रखण्ड के दक्षिणी, उत्तरी भाग में जहाँ उत्तम बलुई दोमट मिट्टी उपलब्ध है एवं नहरों द्वारा सिंचाई की उत्तम व्यवस्था है, द्विफसली क्षेत्र का घनत्व अधिक पाया जाता है । इसके विपरीत सुदूर पश्चिमी एवं पूर्वी भागों में अपरदन (फरही, कमला,

गिदरी, सौरा नदियों), जलप्लावन से ग्रस्त हैं एवं नहरों का अभाव है, द्विफसली क्षेत्र की कमी पाई जाती है । इस तरह दो फसली क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए अध्ययन क्षेत्र के न्याय पंचायतों को चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है जो सारणी (5.3) द्वारा स्पष्ट है ।

प्रथम श्रेणी - इसके अन्तर्गत 80% से अधिक वाले क्षेत्र को सम्मिलित किया गया है जिसमें अध्ययन क्षेत्र का 2 न्याय पंचायत जो कुल न्याय पचायतों का 10% है । इसमें क्रमश न्याय पचायत हफलागंज (85.13%) एवं परतेली (83.32%) आते हैं ये दोनों न्याय पंचायतों में सिंचाई की सुविधा एव अच्छी मिट्टी के कारण वर्ष मे दो बार से अधिक फसलों का उत्पादन होता है । इन क्षेत्रों में मुख्य रूप से धान, गेहूँ, मक्का, पटसन, तथा यत्र-तत्र केले की खेती होती है । **द्वितीय श्रेणी** - के अन्तर्गत 60-80% वाले क्षेत्र को सम्मिलित किया गया है जिसमें अध्ययन क्षेत्र के तीन न्याय पंचायत जो कुल न्याय पंचायतों के संख्या के आधार पर 15% है । इस वर्ग मे न्याय पचायत रघैली (78.43%), राजपारा (76.15%) तथा महमदिया (66.31%) आते है जो अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी-पूर्वी भाग में स्थित है । इनके अन्तर्गत उत्पादित फसलों में धान, गेहूँ, मक्का, पटसन की खेती होती है । **तृतीय श्रेणी** के अन्तर्गत 40-60% वाले क्षेत्र को सम्मिलित किया गया है जिसमें अध्ययन क्षेत्र के तीन न्याय पंचायत जो कुल न्याय पंचायतों का 15% है । इसमें न्याय पंचायत दोआसे (54.55%), जगन्नाथपुर (47.69%), एवं बोरनी (42.93%), आते हैं जो अध्ययन क्षेत्र के पूर्वी, पश्चिमी भाग में स्थित हैं । इन क्षेत्रो में कोसी की सहायक नदियों से प्रतिवर्ष बलुई दोमट मिट्टी का जमाव होता है जिससे पैदावार अच्छी होती है । **चतुर्थ श्रेणी** के अन्तर्गत 40% से कम वाले क्षेत्र को सम्मिलित किया गया है जिसमें अध्ययन क्षेत्र का 12 न्याय पंचायत जो कुल न्याय पंचायत की संख्या के आधार पर 60% है, इसमें क्रमशः न्याय पंचायत रामपुर (39.97%), डुमरिया (37.61%), जबड़ा-पहाड़पुर (37.13%), बलुआ (32.65%), चन्देली भर्रा (31.96%), मधेपुरा (31.48%), बिजैली (31.40%), राजभवाड़ा (24.31%), सौरिया (23.59%), डण्डखोरा (20.67%), बेलवा (16.76%) एवं दलन (11.37%) आते हैं । इन न्याय पचायतों में सिंचाई की असुविधा तथा उर्वरक मिट्टी की कमी के कारण दो फसली उत्पादन अपेक्षाकृत कम क्षेत्रों पर होती है । उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर जब दो-फसली क्षेत्र के सम्बन्ध में प्रतिदर्श चयनित गांवों का विश्लेषण करते हैं तो सर्वाधिक ग्राम शंकरपुर में (90.32%) क्षेत्र दो-फसली पाते हैं ।

इसके पश्चात खैरा (88 98%), सहसिया (69 73%), रकसा (66 61%), फरही (63 38%), परियाग दह (55 37%), वोरा (50.77%), बजरी (41 17%), एव गोपालपुर (32.5%) में सिंचित क्षेत्र प्रापत है । इन गाँवों में उर्वर सिचाई की सुविधा तथा अन्य सुविधाओं के फलस्वरूप द्वि-फसली फसलों का उत्पादन होता है । इनमें मुख्य फसलें धान, गेहूँ, मक्का पटसन, मूँग तथा जलाशयों में कहीं-कहीं मखाना की खेती भी देखने को मिलती है । साथ ही जनसख्या की बढ़ती हुई स्थिति को देखकर लोग स्वय दो-फसली फसलों के उत्पादन का प्रयास कर रहें है जो ग्राम खैरा, परियाग दह मे स्पष्ट उदाहरण मिलता है । दो फसली के श्रेणीयन से यह विदित है कि 40 के अन्तर्गत 12 न्याय पंचायत सम्मिलित हें अर्थात दो-फसली क्षेत्र का प्रतिशत निम्न कोटि मे अधिक है । अत यह अध्ययन क्षेत्र में कृषि के पिछडेपन का द्योतक है ।

(र) **सिंचित क्षेत्र का वितरण प्रतिरूप** :- अध्ययन क्षेत्र में भूमि-उपयोग को प्रभावित करने वाले सांस्कृतिक कारकों में सिंचाई का महत्वपूर्ण स्थान है । लगभग 125 वर्ष पूर्व सम्पूर्ण क्षेत्र वनाच्छादित था तथा क्षेत्र का अधिकाश भाग भीषण बाढों की चपेट में आ जाया करता था । (जिसका प्रभाव आज भी अध्ययन क्षेत्र पर पड़ता है) । जनसंख्या विरल होने के कारण भूमि पर जन भार कम था एवं कृषि जीवन-निर्वाह के लिए परम्परागत् ढंग से की जाती थी । सिचाई का महत्व नगण्य था । प्रतिवर्ष बाढ, दुर्भिक्ष से भारी धन-जन की हानि हुआ करती थी । कालान्तर में तीव्रगति से जनसंख्या वृद्धि के परिणाम-स्वरूप कृषित क्षेत्र का विस्तार हुआ । बाढ़ को रोकने के लिए कोसी तथा उसके सहायक नदियों पर बाँध बनाया गया । इससे सम्बन्धित कई योजनाए भी समय-समय पर क्रियान्वित की गई जिससे खेती के योग्य क्षेत्रों का विस्तार बढा । साथ ही साथ सिंचाई के साधनों के विकास द्वारा न केवल खाद्यानों के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि की गयी वरन सूखा एवं दुर्भिक्ष के तीव्रता को बहुत कम कर दिया गया । योजनाओं के अन्तर्गत विकास कार्यो में कृषि को प्राथमिकता दी गई । यही कारण है कि आज 7700 हे0 (38 01%), सिंचित क्षेत्र है । अध्ययन-क्षेत्र में हाल के वर्षो में विद्युत, डीजल इंजन, चालित नलकूपों, पम्पिंग सेटो एवं नहरों आदि का प्रयोग सिंचाई साधनों के रूप में उल्लेखनीय योगदान है । अध्ययन क्षेत्र के लिए नहरें वरदान सिद्ध हुई हैं, फिर भी सिंचाई की सुविधाओं की अभी काफी आवश्यकता है जहाँ

पर जल- तल ऊपर है, बॉस बोरिग करके सिचाई की आवश्यकता को कृषक पूरा कर लेते हैं । इस तरह सिंचित क्षेत्र को ध्यान मे रखते हुए अध्ययन क्षेत्र को उपर्युक्त की तरह चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है ।

प्रथम श्रेणी - के अन्तर्गत 80% से अधिक वाले क्षेत्र को सम्मिलित किया गया है जिसमे अध्ययन क्षेत्र के 2 न्याय पंचायत जो कुल न्याय पचायतों के 10% है, इसमे न्याय पंचायत हफलागंज (83.86%), एवं राजभवाडा (81.02%), सम्मिलित हैं । इन दोनों न्याय पंचायतों में सिंचाई की पर्याप्त सुविधा एवं नहरों की अधिकता है । **द्वितीय श्रेणी** - के अर्न्तगत 60-80% वाले क्षेत्र को सम्मिलित किया गया है जिसमे अध्ययन क्षेत्र का एक न्याय पंचायत जो कुल न्याय पंचायतों के संख्या के आधार पर 5 % है । इसके अन्तर्गत न्याय पंचायत रामपुर (70 78%) है । यह अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी-पश्चिमी भाग में स्थित है । **तृतीय श्रेणी** - के अन्तर्गत 40-60% वाले क्षेत्र को सम्मिलित किया गया है जिसमें अध्यन क्षेत्र के 2 न्याय पचायत जो कुल न्याय पंचायतों के सख्या के आधार पर 10% है । इसमें न्याय पंचायत जगन्नाथपुर (52 94%), एव बोरनी (50.76%) आते है जो अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी और मध्यवर्ती भाग में स्थित है । इन क्षेत्रों मे सिंचाई की सुविधा निम्न प्रकार की है । धरातल भी समतल नहीं है । सिंचाई के रूप मे ढेंकुल, तालाबा, कुओं का सहयोग लेना पड़ता है । नहर एवं टयूबेल का प्रायः अभाव सा है । **चतुर्थ श्रेणी** - के अर्न्तगत 40% से कम सिचाई की सुविधा वाले क्षेत्र को सम्मिलित किया गया है, जो अध्ययन क्षेत्र का कुल 15 न्याय पंचायत आते हैं जो कुल न्याय पंचायतों के संख्या के आधार पर 75% है । इसमें क्रमश न्याय पंचायत दलन (37 81%), बेलवा (37 34%), परतेली (36 07%), सौंरिया (35.58%), महमदिया (35 33%), मधेपुरा (35 20%), डुमरिया (27 74%), बिजैली (29.60%), बलुआ (27.62%), जबड़ा पहाडपुर (27 54%), जगन्नाथपुर (25.21%), डण्डखोरा (23.41%), रघेली (23.17%), दोआसे (17.56%), एवं राजपारा (9.79%), आते हैं । इन न्याय पंचायतों में सिंचाई की पर्याप्त असुविधा है । अधिकांश खेती मानसून पर आधारित है । उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए जब प्रतिदर्श चयनित गांवों का विश्लेषण करते हैं तो सर्वाधिक सिंचित क्षेत्र प्रयागदह में (43.35%), प्राप्त होता है । इसके पश्चात क्रमशः खैरा (41.61%), बौरा (40.20%), शंकरपुर (36.19%), रकसा (33.90%), गोपालपुर (28.27%), कजरी

(23 7%), एव न्यूनतम फरही (17.86%), गाँव का है । प्रयाग दह एवं खैरा गाँव में नहर, टयूबेल तथा बाँस-बोरिंग की सुविधा है जिससे अधिकाश क्षेत्र सिंचित है । सिंचित क्षेत्र की अधिकता उन्ही गाँवों में पाई जाती है जहाँ सिंचाई के आधुनिक साधन (नहर, नलकूप, पम्पिग सेट आदि) का विकास हुआ है अथवा जहाँ गेहूँ, सब्जी आदि अधिक सिंचाई वाली फसलों का उत्पादन होता है । ग्राम गोपालपुर, कजरी एवं फरही नदियों के कछारी क्षेत्रों में आते है । यहाँ प्रतिवर्ष बाढ एवं जलप्लावन का प्रकोप बना रहता है । सिचाई के क्षेत्रों की कमी पायी जाती है । इन भागों मे धान, ज्वार, बाजरा, जौ आदि की फसलों का उत्पादन किया जाता है जो या तो वर्षा जल पर आधारित है अथवा बहुत कम सिचाई चाहती है उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि कटिहार प्रखण्ड के अन्तर्गत चतुर्थ श्रेणी के अन्तर्गत अधिकांश न्याय पंचायत (15) सम्मिलित हैं । इस प्रकार यह कहाँ जा सकता है कि अध्ययन क्षेत्र मे सिचाई के साधनों का पूर्णतया अभाव है । सिंचाई की सुविधा को बढ़ाकर कृषि गहनता मे वृद्धि की जा सकती है ।

5.3 भूमि उपयोग में परिवर्तन .- किसी क्षेत्र विशेष की भूमि उपयोग क्षमता की व्याख्या एक ओर अकृष्य , कृष्य तथा कृषिगत क्षेत्र (बोया गया क्षेत्र) और दूसरी ओर सिंचित, बहुफसली तथा तीसरी ओर सभी उत्पादित फसलों के प्रति हेक्टेयर उपज के मध्य संयोग से की जा सकती है[7] । इस आशय से प्रखण्ड मुख्यालय से प्राप्त आकड़ों को 6 शीर्षकों, कृषि अप्राप्य (जलयुक्त क्षेत्र, अधिवास, परिवहन, साधन, कब्रिस्तान, मरघट, मकानों के समीप की अकृष्य भूमि) कृष्य बंजर (घास एवं कटीली झाडियाँ, पुरानी परती, नयी परती , दलदली एवं अन्य कृष्य - बंजर से सम्बन्धित क्षेत्र) कृषिगत क्षेत्र (शुद्ध बोया गया क्षेत्र), बाग-बगीचें सिंचित क्षेत्र एवं द्विफसली क्षेत्र में व्यवस्थित किया गया है । तत्पश्चात इन आकडों के आधार पर भूमि उपयोग की गत्यात्मकता के अध्ययन का प्रयास किया गया जो सारणी (5.4) एवं चित्र 5 3 से स्पष्ट है ।

वर्ष 1991 में कृषिगत, कृषि अप्राप्य, कृष्य बंजर एवं बाग-बगीचों के अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल का क्रमश. 75 56%, 14 74%, 5.45% एवं 4.25% क्षेत्र सम्मिलित है । सिंचित क्षेत्र एवं द्वि-फसली क्षेत्र शुद्ध बोये गये क्षेत्रफल का क्रमश. 38.10% एवं 41.65%

KATIHAR PRAKHAND
CHANGING PATTERN OF LANDUSE COMPONENTS
1951-91
N.S.A. - Net Sown Area
N.C.A. - Non-Cultivable Area
C.W.A. - Cultivable Waste Area
T. O. - Trees and Orchards
D.C.A. - Double Cropped Area
I. A. - Irrigated Area
AREA IN PERCENT
80
70
60
50
40
30
20
10
N.S.A.
D.C.A.
I.A.
N.C.A.
C.W.A.
T. O.
1951
56
61
66
71
76
81
86
91
CENSUS YEARS

Fig. 5·3

201
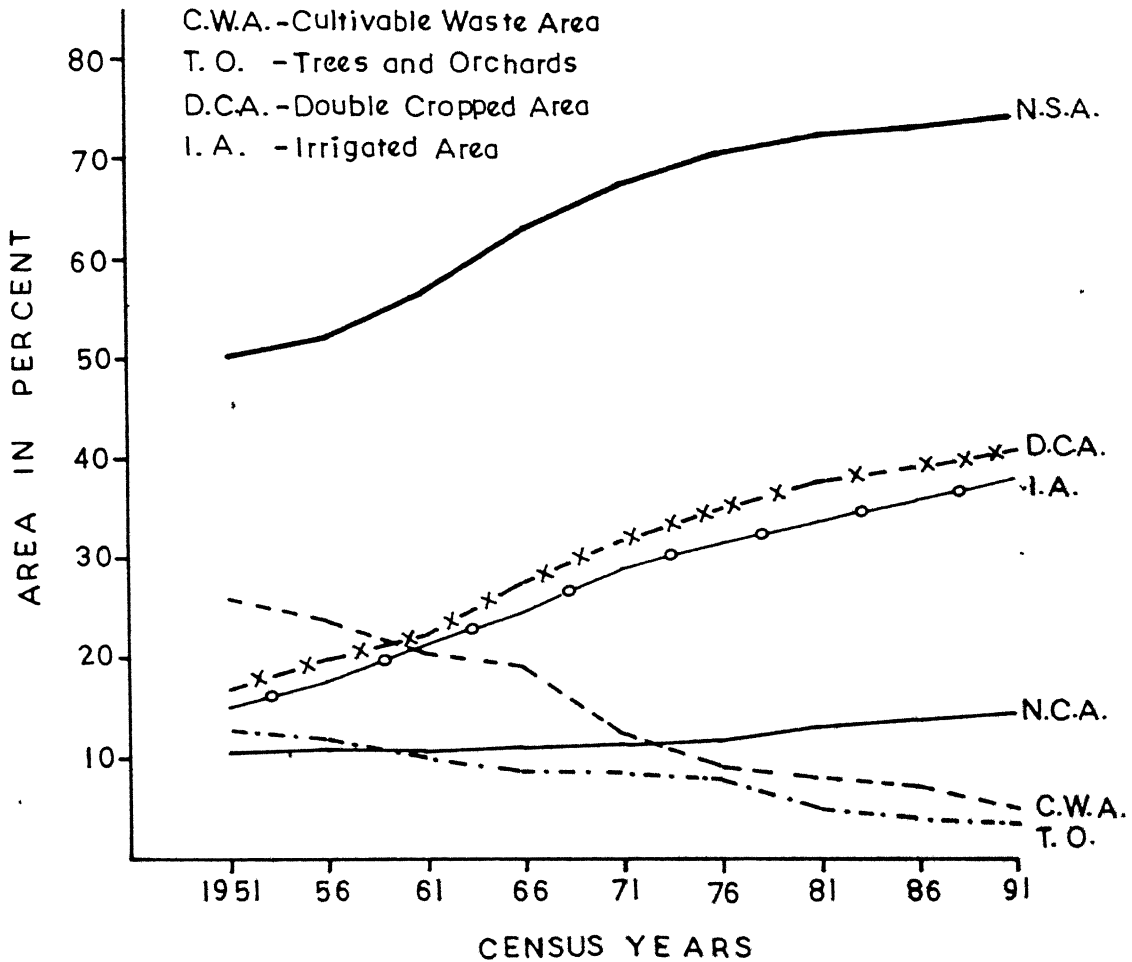
सारणी 5.4

भूमि उपयोग में परिवर्तन (1951-91)

(क्षेत्रफल हेक्टेअर में)

वर्ष	कुल क्षेत्रफल	शुद्ध बोया गया क्षेत्र (कृषित)	कृषि अप्राप्य	कृष्य बंजर	बाग-बगीचा	द्विफसलीय क्षेत्र	सिंचित क्षेत्र
1951	26807	13605	2866	7042	3294	2435	2136
	प्रतिशत	50.75%	10 69%	26.28%	12.28%	17 90%	15 7%
1956	26807	13969	3101	6556	3181	2814	2598
	प्रतिशत	52 11%	11 57%	24.46%	11.86%	20 15%	18.6%
1961	26807	15379	3133	5589	2706	3575	3306
	प्रतिशत	57.37%	11.69%	20.85%	10 09%	23 25%	21.5%
1966	26807	17003	3187	4383	2234	4777	4352
	प्रतिशत	63.43%	11 89%	16 35%	8 33%	28 10%	25.6%
1971	26807	18075	3224	3439	2069	5847	5332
	प्रतिशत	67.42%	12.02%	12.83%	7.72%	32.35%	29.5%
1976	26807	18998	3396	2534	1879	6699	6174
	प्रतिशत	70.87%	12 67%	9.45%	7 01%	35.26%	32.5%
1981	26807	19475	3491	2238	1603	7295	6660
	प्रतिशत	72.65%	13.02%	8.35%	5.98%	37.46%	34 2%
1986	26807	19797	3659	1917	1434	7751	7226
	प्रतिशत	73.85%	13.65%	7.15%	5.35%	39.15%	36.5%
1991	26807	20255	3951	1462	1139	8436	7700
	प्रतिशत	75.56%	14.74%	5.45%	4.25%	41.65%	38.01%

स्रोत : जिला सांख्यिकीय कार्यालय कटिहार (बिहार)

है (सारणी 5 4) । उल्लेखनीय है कि बाग-बगीचों सम्बन्धी क्षेत्र का अध्ययन सामान्यतया कृष्य बंजर के अन्तर्गत किया जाता है । परन्तु प्राकृतिक सम्पदा के रूप में उसके विशेष आर्थिक महत्व को ध्यान मे रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन मे इसे एक स्वतन्त्र प्रत्यय के रूप में स्वीकार किया गया है ।

सारणी (5 4) से स्पष्ट है कि 1951-91 की अवधि मे शुद्ध बोये गये क्षेत्रफल में 48.8% की वृद्धि हुई । वर्ष 1951 में कुल क्षेत्रफल का मात्र 50 75% कृषिगत था जबकि वर्ष 1991 में बढकर 75 56% हो गया । यह शुद्ध बोये गये क्षेत्र में वृद्धि का सूचक है । सारणी (5 4) से स्पष्ट हो रहा है कि यह वृद्धि वर्ष 1951 और 1991 के बीच क्रमिक रूप से हुई है चित्र 5.3 से यह स्पष्ट है कि वर्ष 1951 में शुद्ध बोया गया क्षेत्र 50.75% था । वर्ष 1951 से 1971 तक शुद्ध कृषि क्षेत्र में तीव्र वृद्धि हुई लेकिन वर्ष 1971 से 91 तक मन्द वृद्धि दीख पडती है । अत यह कहा जा सकता है कि शुद्ध कृषित भूमि सम्भाव्य अवस्था तक पहुँच गयी है ।

(अ) कृषि अप्राप्य :- क्षेत्र मे 1951-91 की अवधि में लगभग 37.85% की वृद्धि हुई । वर्ष 1951 मे कुल क्षेत्रफल का लगभग 10.69% इसके अन्तर्गत था, जो बढ़कर 1991 मे लगभग 14.74% हो गया । यह वृद्धि वर्ष 1951-91 की अवधि में क्रमिक रूप से हुई है । 1951-91 की अवधि मे अधिवासों, परिवहन-मार्गों एवं अन्य जन-सुविधाओं से सम्बन्धित निर्माण-कार्यों में प्रगति के परिणाम स्वरूप इसके क्षेत्रफल मे निरन्तर वृद्धि की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है । चित्र 5 3 से भी यह स्पष्ट है कि कृषि अप्राप्य के अन्तर्गत निरन्तर वृद्धि हो रही है ।

(ब) कृष्य बंजर :- भूमि उपयोग का एक विशिष्ट पक्ष है, जिसमें कृषिगत क्षेत्र में भावी विस्तार की सम्भावनायें निहित होती है । कृष्य-बजर के अन्तर्गत वर्ष 1991 में सम्पूर्ण क्षेत्रफल का 26.28% था जो घटकर 1991 के दौरान 5-45% रह गया । जनसंख्या वृद्धि के परिणाम स्वरूप कृषिगत क्षेत्र में विस्तार के कारण 1951-91 की अवधि में कृष्य बंजर क्षेत्र में 79.23% का ह्रास हुआ (सारणी 5.4) । यह ह्रास 1951-91 के दौरान क्रमिक रूप से हुआ है । कृष्य-बंजर के अन्तर्गत 1951 से 1966 की अवधि में सामान्य ह्रास

हुआ है लेकिन 1966 से 1976 की दर्शक मे तीव्र ह्रास दृष्टिगोचर होते हैं । यह हरित क्रान्ति का काल था जिसमे गहन कृषि के कारण कृष्य-बंजर का क्षेत्र तीव्रगति से कम हुआ । पुन इसके पश्चात् सामान्य गति से कमी हुई है ।

(स) **बाग-बगीचों** के अन्तर्गत वर्ष 1951-91 के दौरान 65 42% का ह्रास हुआ है । इसके अन्तर्गत 1951 में 12 28% क्षेत्र सम्मिलित था लेकिन यह घटकर वर्ष 1991 में 4 25% हो गया है । इस प्रकार 1951-91 की अवधि में बाग-बगीचों के 2155 हेक्टेयर क्षेत्र को कृषकों द्वारा कृषिगत क्षेत्र में परिवर्तित कर लिया गया , परन्तु इसके पश्चात सरकारी संरक्षण की नीति के परिणाम स्वरूप बाग-बगीचों के काटने पर रोक लगा दी गयी है । फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों मे इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं दीख पड़ता है । आज भी लोग अपनी आवश्यकतानुसार पेडों को काटे जा रहे हैं ।

(द) **द्विफसलीय** के अन्तर्गत वर्ष 1951-91 के मध्य 71.13% की वृद्धि हुई । वर्ष 1951 मे शुद्ध कृषित क्षेत्र का 17.90 क्षेत्र दो-फसली था जो 1991 में बढकर 41.65% हो गया है । यह वृद्धि वर्ष 1951-91 के मध्य क्रमिक रूप से हुई है । इन 40 वर्षो के बीच लगभग $4\frac{1}{2}$ · गुना से अधिक वृद्धि हुई है ।

(य) **सिंचित क्षेत्र** में वर्ष 1951-91 के मध्य लगभग 72.25% की वृद्धि हुई है । वर्ष 1951 में शुद्ध कृषित भूमि का 15.7% भाग सिंचित था जो वर्ष 1991 में बढ़कर 38.01% हो गया है जो लगभग चार गुने से अधिक वृद्धि को स्पष्ट करती है । द्विफसली एवं सिंचित क्षेत्र अन्तर्सम्बन्धित होते हैं । सिंचित एवं द्विफसली क्षेत्र में वर्ष 1951-91 के बीच निरन्तर वृद्धि की प्रवृति रही है ।

भूमि उपयोग में परिवर्तन के मुख्य पक्षों (कृषिगत क्षेत्र, अकृष्य एवं कृष्य बंजर) का गत्यात्मक प्रारूप न्याय पंचायत स्तर पर उपलब्ध ऑकडों के विश्लेषण द्वारा और अधिक स्पष्ट हो जाता है ।

5.4 शुद्ध कृषित क्षेत्र में परिवर्तन :- चित्र संख्या 5 4 ए एव 5 4 बी तथा सारणी 5 5 से स्पष्ट है कि वर्ष 1951-91 की अवधि मे शुद्ध बोये गये क्षेत्र में न्याय-पंचायत स्तर पर काफी परिवर्तन हुआ है । सारणी 5.5 से यह ज्ञात है कि 1951 मे प्रथम श्रेणी में एक भी न्याय पंचायत नहीं है जबकि 1991 में 10 न्याय पंचायत इस श्रेणी के अन्तर्गत आ गए है । इस प्रकार इन 40 वर्षो के अन्तराल में प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत प्रखण्ड के 10 न्याय पंचायत अर्थात कुल न्याय पंचायत के 50% इस कोटि में सम्मिलित हैं । **द्वितीय श्रेणी** मे 1951 में इनकी सख्या 2 थी जो वर्ष 1991 मे बढकर 9 हो गई । **तृतीय श्रेणी** के अन्तर्गत वर्ष 1951 में 15 न्याय पंचायत थे जबकि 1991 में मात्र शेष । बच गया है । इस प्रकार इस श्रेणी में भारी मात्र मे ह्रास हुआ । **चतुर्थ श्रेणी** के अन्तर्गत वर्ष 1951 में 3 (15%) वर्ष 1991 मे वृद्धि के फलस्वरूप सभी उच्च प्रतिशत को प्राप्त हो गये है।

सारणी 5.5

शुद्ध कृषिगत क्षेत्र का श्रेणीगत वितरण प्रतिरूप (1951-91)

क्रम संख्या	श्रेणीयन	न्याय पंचायत की सख्या		प्रतिशत	
		1951	1991	1951	1991
1	>80	00	10	00	50
2.	60-80	2	9	10	45
3	40-60	15	1	75	5
4.	<40	3	0	15	0

उपर्युक्त वृद्धि मुख्यत जनसंख्या वृद्धि, नवीन, कृषि पद्धति, उन्नतशील बीजों, उर्वरकों, सिंचाई के साधनों परिवहन की सुविधा तथा बाढ नियन्त्रण का परिणाम है । तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी में अधिक ह्रास शुद्ध बोये गये क्षेत्र में उत्तरोत्तर वृद्धि का द्योतक है ।

शुद्ध कृषित क्षेत्र से सम्बन्धित वर्ष (1951-91) चित्र संख्या 5.4 ए और 5.4 बी तथा सारणी 5.5 के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इसके अन्तर्गत अभूतपूर्व परिवर्तन

KATIHAR PRAKHAND
CHANGES IN NET SOWN AREA
N
1951
1991
1951-91
A
B
C
U.A.
U A
U A
PERCENTAGE OF TOTAL AREA
< 40
40 – 50
50 – 60
60 – 70
> 70
4 0 4 8
Km
MEAN = 63·46%
S D. = 47·51%
< MEAN
< MEAN +1 S.D.
< MEAN+3 S.D.
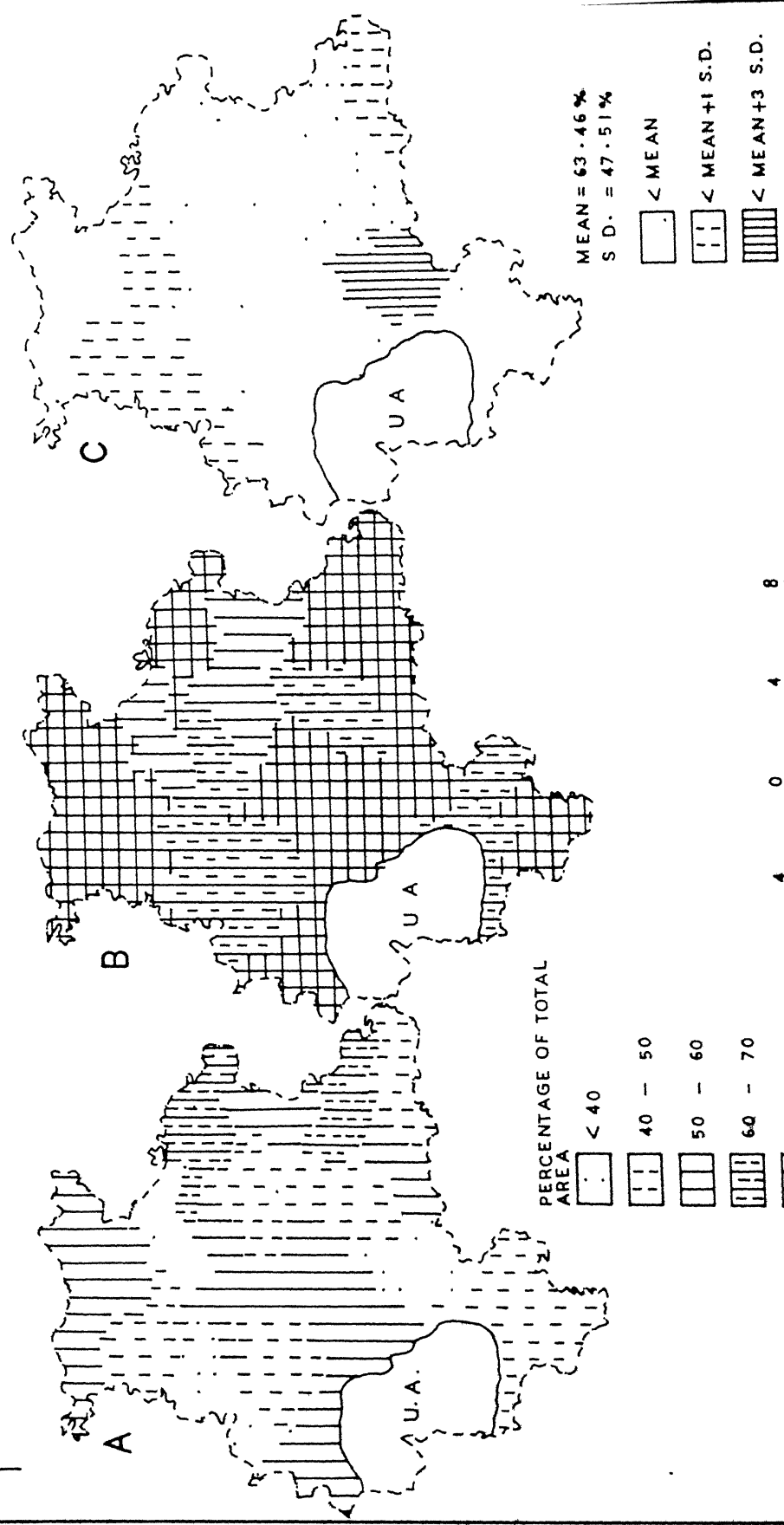
Fig.5·4

हुआ है । 1951 मे अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत शुद्ध कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत अधिकतम 60-70% भू-क्षेत्र पूर्वी भाग में न्याय पचायत दोआसे तथा बिजैली में विद्यमान थे जो 1991 मे तकनीकी सुविधाओं तथा कृषि से सम्बन्धित आवश्यक संसाधनों की पर्याप्तता के परिणाम स्वरूप 1991 मे 80% से अधिक शुद्ध कृषित क्षेत्र में परिवर्तन हो गये है । क्षेत्र का मध्यवर्ती भाग जहाँ 40% से कम या 40-50% के मध्य वर्ष 1951 मे शुद्ध कृषित क्षेत्र के रूप में विद्यमान थे । वे बढकर 60-70% और अध्ययन क्षेत्र के कुछ भागों में तो 80% के अन्तर्गत शुद्ध कृषित क्षेत्र में परिवर्तित हो गये हैं । वर्ष 1951 में जहाँ न्याय पचायत रामपुर, महमदिया तथा मघेपुरा मे शुद्ध कृषित क्षेत्र 40% से कम था, वह 1991 में बढकर 60-70% के मध्य परिवतित हो गये है ।

शुद्ध कृषित भूमि मे यह परिवर्तन नवीन कृषि पद्धति, सिचाई की सुविधा, उन्नतशील बीजों की पर्याप्त उपलब्धता के साथ ही जनसख्या के तीव्र वृद्धि को ध्यान में रखते हुए लोगों के भरण-पोषण हेतु हुआ है । इसके साथ ही अध्ययन क्षेत्र में भौतिक आपदाओं जैसे - बाढ़, सूखा एवं जल जमाव आदि समस्याओं का समाधान करके शुद्ध कृषित क्षेत्र में वृद्धि की गई है ।

अध्ययन क्षेत्र के चयनित प्रतिदर्श 9 गाँवों से सम्बन्धित अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि विगत 40 वर्षो में दौरान काफी अन्दर हुआ है । शुद्ध बोये गये क्षेत्र के अन्तर्गत परियागदह 45-65% से बढ़कर 83.12%, बौरा 54 03% से बढकर 93.68%, फरही 35 42% से 56.49%, कजरी 47.35% से 75.35%, शंकरपुर 48.36% से 78.27%, सहसिया 46.32% से 71.44%, रक्सा 44.67% से 71.13%, गोपालपुर 37.23% से 58.54% और खेरा का 43.83 से बढ़कर 74.03% शुद्ध कृषित क्षेत्र में परिवर्तित हो गया है । अत 40 वर्षो के दौरान शुद्ध कृषित क्षेत्र का न्याय पंचायत तथा चयनित प्रतिदर्श गाँव स्तर पर भारी मात्रा में परिवर्तन हुआ है । प्रतिदर्श गांवों पर जनसंख्या वृद्धि, नवीन कृषि पद्धति, उन्नतशील बीजों, परिवहन की सुविधा और उर्वरकों तथा सिंचाई के साधनों का काफी प्रभाव पड़ा है । उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त कृषकों में जागरूकता भी शुद्ध कृषित क्षेत्र में वृद्धि का कारण है । सर्वाधिक वृद्धि गाँव परियाग दह के अन्तर्गत हुआ है तथा न्यूनतम वृद्धि फरही गाँव में देखने को मिलता है ।

(अ) **शुद्ध कृषित भूमि में परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप :-**

कटिहार प्रखण्ड में कुल शुद्ध कृषित भूमि मे 1951-91 के बीच में वितरण प्रतिरूप के अध्ययन हेतु दोनों समय की बीच परिवर्तित स्वरूपों सर्वप्रथम प्रतिशत मे निकाला गया है । तत्पश्चात उस प्रतिशत के ऑकडे के विश्लेषण हेतु प्रामाणिक विचलन (47.51%) एव माध्य (63 46%) का सहारा लिया गया है और इस प्रकार पूरे प्रखण्ड के परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप को तीन वर्गों में बाँटा गया है - (1) निम्न श्रेणी , (2) उच्च श्रेणी तथा (3) अति उच्च श्रेणी (मानचित्र 5 4 सी) ।

1- **निम्न श्रेणी** :- यह परिवर्तनशील स्वरूप इस प्रखण्ड के उन न्याय पंचायतों में मिलता है जहाँ पर परिवर्तनशील स्वरूप का प्रतिशत माध्य से कम है । इस प्रखण्ड के 15 न्याय पंचायत चन्देली, पारा, दोआसे, सौरिया, रघेली, हण्डग्रोग, बिजैली, बोग्नी गोग्गामा, बलुआ, भवाडा, बेलवा, दलन, पहाडपुर, परतेल, हफलागंज सम्मिलित है । इन न्याय पंचायतों में शुद्ध कृषित भूमि में वृद्धि का प्रतिशत इस लिए कम है कि यहाँ की भूमि अपेक्षाकृत कम उपजाऊ है । दूसरा कारण यह है कि इन न्याय पंचायतों में नहरों का विकास नहीं हो पाया है । साथ ही साथ सिंचाई के अन्य साधन भी विकसित नहीं हो पाये हैं । (मानचित्र 5 4 सी) मानचित्र को देखने से यह स्पष्ट होता है कि इस प्रखण्ड के मध्य निम्न प्रतिशत देखने को मिलता है । इन क्षेत्रों में कोसी तथा उसकी सहायक नदियों के जल प्लावन के कारण शुद्ध कृषित भूमि मे वृद्धि का प्रतिशत कम है ।

2- **उच्च श्रेणी** :- इसमें अध्ययन क्षेत्र के चार न्याय पंचायत सम्मिलित है जो क्रमश. जगन्नाथपुर, रामपुर, महमदिया, डुमरिया हैं । इनमें वृद्धि का प्रतिशत माध्य, प्रा0वि0 से कम है । इसका मुख्य कारण इन विकास खण्डों में सिंचाई की सुविधाओं का विस्तार है ।

3- **अति उच्च श्रेणी** :- इस प्रखण्ड का केवल एक न्याय पंचायत मघेपुरा सम्मिलित किया गया है । इसमें वृद्धि का प्रतिशत 253.79% है जो सम्पूर्ण प्रखण्ड में एक विशिष्ट स्वरूप वाला है । इस न्याय पंचायत में परिवर्तन में वृद्धि का प्रतिशत अति उच्च होने के कई कारण हैं । प्रथम यह कटिहार नगर के पास स्थित है । दूसरी बात यह है कि

समीपवर्ती क्षेत्रों से इस न्याय पंचायत का धरातल उपेक्षाकृत ऊँचा है । यहाँ सिंचाई की पर्याप्त सुविधाएँ है । उपर्युक्त कारणों से शुद्ध कृषित भूमि मे वृद्धि का प्रतिशत अधिक उच्च मिलता है ।

5.5 कृष्य बंजर क्षेत्र में परिवर्तन :- सारणी (5 6) से स्पष्ट है कि 1951-91 की अवधि में कृष्य बजर क्षेत्र के अन्तर्गत तीव्र ह्रास हुआ है । न्याय पंचायत स्तर पर भी इनकी संख्या में बहुत अधिक ह्रास हुआ है । अध्ययन क्षेत्र में 1951 में 20% से अधिक कृष्य बंजर न्याय पचायतों की संख्या 18 थी । वही 1991 में इस श्रेणी के अन्तर्गत कोई भी न्याय पंचायत सम्मिलित नहीं है । **द्वितीय श्रेणी** (15-20%) में 1951 में 2 न्याय पंचायत थे जो वर्ष 1991 में सारणी 5.6 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इस कोटि में कोई न्याय पचायत सम्मिलित नहीं है । वर्ष 1991 में क्रमश तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम श्रेणी के अन्तर्गत 19 एव 10 न्याय पंचायत मिलते हैं । अर्थात वर्ष 1951 में जहाँ 10% से ऊपर कृष्य बंजर न्याय पंचायत विद्यमान थे, घटकर 1991 में 10-15% के नीचे आ गये हैं । इस प्रकार कृष्य बंजर क्षेत्र में लम्ववत् ह्रास देखने को मिलता है ।

सारणी 5.6

कृष्य बंजर क्षेत्र का श्रेणीगत वितरण प्रतिरूप (1951-91)

क्रम संख्या	श्रेणीयन	न्याय पंचायत की सख्या		प्रतिशत	
		1951	1991	1951	1991
1.	>20	18	00	90	00
2.	15-20	2	00	10	00
3.	10-15	00	1	00	05
4.	5-10	00	9	00	45
5	<5	00	10	00	50

KATIHAR PRAKHAND
CHANGES IN CULTIVABLE WASTE LAND
N
1951
1991
1951-91
A
B
C
U A
U. A
U A.
PERCENT OF TOTAL AREA
>20
15 – 20
10 – 15
5 – 10
<5
MEAN – 76·13 %
S.D. + 11·43 %
>MEAN–1 SD
>MEAN+1 SD
>MEAN+2 S.D
>MEAN+3 S.D
4
0
4
8
Km
Fig 5·5
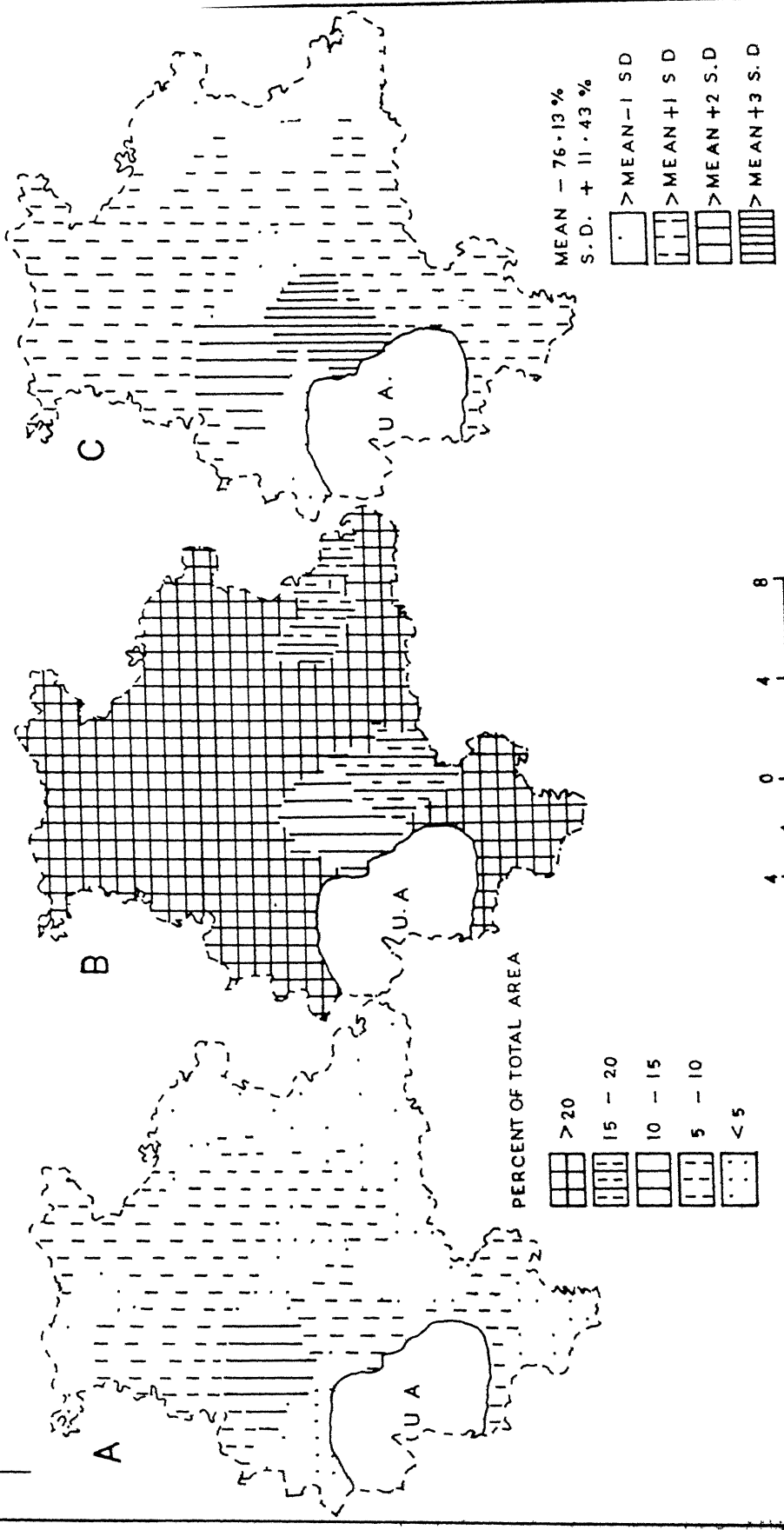
विगत चार दशकों अर्थात 1951-91 से सम्बन्धित कृष्य बजर मानचित्र संख्या 5 5 ए एवं बी के अध्ययन के उपरान्त यह ज्ञात होता है कि कृष्य बंजर के अन्तर्गत 1951 से 1991 की अवधि मे अभूतपूर्व ह्रास हुआ है । वर्ष 1951 में अध्ययन क्षेत्र का अधिकांश भू-भाग (20% से अधिक कृष्य बंजर के रूप मे था, वह 1991 में घटकर 10% से नीचे आ गया है । अध्ययन क्षेत्र में वर्ष 1951 में केवल बेलवा न्याय पंचायत में कृष्य बंजर का क्षेत्र 15.27% था । इसके अतिरिक्त सभी न्याय पंचायतों में कृष्य बंजर का प्रतिशत उच्च था । वर्ष 1991 के चित्र के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि केवल राजभवाडा में ही कृष्य बंजर का प्रतिशत 10 07% है, शेष सभी न्याय पंचायतों में इसके प्रतिशत में तीव्र ह्रास हुआ है । यहाँ तक कि अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत 5% से कम कृष्य-बंजर वाले न्याय पंचायतों में बिजैली, डुमरिया, दोआसे, रघेली, मघेपुरा, दलन, जबड़ा पहाड़पुर, चन्देली भर्रा आदि पहुँच गये हैं । कृष्य बंजर के अन्तर्गत अल्प प्रतिशत का होना अध्ययन क्षेत्र में गहन कृषि का परिचायक है ।

वर्ष 1951-91 के शुद्ध कृषित एवं कृष्य बंजर के चित्रों के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि जहाँ वर्ष 1951 मे शुद्ध कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत क्षेत्रफल कम था वहीं दूसरी तरफ कृष्य बजर मे क्षेत्रफल अधिक था, वह वर्ष 1991 में घटकर कम हो गया है और शुद्ध कृषित क्षेत्र मे 1951 की तुलना में वृद्धि हुई है । कहने का तात्पर्य यह है कि कृष्य बजर और शुद्ध कृषित क्षेत्र मे व्युत्क्रम अनुपात है ।

अध्ययन क्षेत्र के कृष्य बजर में ह्रास का मुख्य कारण कृषकों मे जागरूकता, सिंचाई के साधनों की सुलभता, उन्नतशील बीजों एवं रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशक दवाइयों की पर्याप्तता के साथ ही नवीन कृषि तकनीक और कृष्य पद्धति में परिवर्तन के फलस्वरूप कृष्य बंजर क्षेत्र में ह्रास हुआ है ।

(अ) **कृष्य बंजर भूमि में परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप** - अध्ययन क्षेत्र में 1951-91 के बीच कृष्य बंजर भूमि में काफी ह्रास हुआ है । शोध कर्ता ने 1951 और 1991 में कृष्य बंजर भूमि के क्षेत्रफल का प्रतिशत लिया है इसमें दोनों समय के आधार पर क्षेत्रफल में हुए प्रतिशत वृद्धि को निकाला गया है जो ऋणात्मक आया है अर्थात कृष्य बंजर भूमि में वृद्धि न होकर

ह्रास हुआ । इस प्रखण्ड में परिवर्तन के वितरण का स्वरूप क्या है, इसे जानने के लिए माध्य (-76.13%), एवं प्रामाणिक विचलन (11.43%) का उपयोग किया गया है । उक्त दो मानों के सहारे सम्पूर्ण प्रखण्ड को चार मुख्य भागों मे बाँटा गया है ।

1- **अत्यधिक ह्रास वाले क्षेत्र** - इसमें अध्ययन क्षेत्र के 6 न्याय पंचायत सम्मिलित है। ये न्याय पंचायत दोआसे, रघेली, बिजैली, डुमरिया, बोरनी, गोरगामा, दलन आदि है । मानचित्र 5.5 सी के देखने से स्पष्ट हो जाता है कि अत्यधिक ह्रास इस प्रखण्ड के पूर्वी भाग में हुआ है । शोधकर्ता के क्षेत्रीय अध्ययन के दौरान यह बातें ज्ञात हुई कि पहले इन न्याय पंचायतो में चारागह इत्यादि की अधिकता की । लोगो का शैक्षिक विकास नहीं हुआ था जनसंख्या भी कम थी, इस कारण लोग पशुपालन पर अधिक ध्यान देते थे । कृषि पर अधिक जोर नहीं देते थे । क्षेत्र मे जनसंख्या की वृद्धि हुई । खाद्यान की माँग बढने के कारण चारागाह आदि के नीचे पड़ी हुई भूमि को लोगों ने कृषि के लिए प्रयोग करना शुरू कर दिया जिससे कृष्य बंजर भूमि में अत्यधिक ह्रास हुआ है जो 87% से भी अधिक मापा गया है । इस प्रखण्ड के दो न्याय पंचायत और है जिनमे कृष्य बंजर भूमि में काफी ह्रास देखने को मिलता है । इसमें दलन एवं बोरनी गोरगामा है । दलन कटिहार नगर के समीप स्थित है । नगर के विकास के साथ-साथ इस न्याय पंचायत की भूमि में आवासीय के अन्तर्गत भूमि की वृद्धि के कारण इसमें ह्रास हुआ है । साथ ही साथ शहर के समीप होने के कारण इस न्याय पंचायत का काफी भाग नगर के अर्न्तगत सम्मिलित होता जा रहा है । इस कारण कृष्य बंजर भूमि में ह्रास होना आवश्यक है । ज्ञातव्य है ज्यों-ज्यों नगरों का विकास होता है, उसके समीपवर्ती भूखण्डों में गहन कृषि होने लगती है । अत इस प्रक्रिया के कारण भी कृष्य बंजर भूमि में ह्रास देखने को मिलता है ।

2- **अधिक ह्रास वाले क्षेत्र** (माध्य + प्रा0 वि0) इसके अन्तर्गत इस प्रखण्ड के 12 न्याय पंचायत सम्मिलित हैं । ये न्याय पंचायत इस प्रखण्ड के धुर उत्तरी एवं धुर दक्षिणी भागों में स्थित हैं । अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी भागों में स्थित न्याय पंचायत चन्देली, पारा, जगन्नाथपुर, महमदिया, रामपुर, बलुआ, सौरिया आदि है तथा दक्षिण में पहाड़पुर, मधेपुरा, परतेली एवं हफलागंज है जो डण्डखोरा न्याय पंचायतों से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं । इन न्याय पंचायतों से ह्रास की दर 64% से अधिक है जो औसत से थोड़ा कम ही है । इन न्याय पंचायतों

में ह्रास का दर अधिक होने के कारण बढती जनसख्या एव सिंचाई की सुविधाओं का अधिकाधिक विस्तार है जिसमें भूमि पर दबाव बढता जा रहा है जिससे लोग कृष्य बंजर भूमि को भी कृष्य हेतु उपयोग करने लगे है ।

3- **न्यून ह्रास वाले क्षेत्र:-** (मा0 + 2 प्रा0 वि0) इस प्रखण्ड का केवल एक न्याय पंचायत राजभवाडा सम्मिलित किया जाता है । इस न्याय पंचायत मे ह्रास के निम्न होने के कारण न्याय पंचायत का धरातलीय स्वरूप है । इसमें अत्यधिक भूमि पाई जाती है, जहाँ पर वर्ष के काफी समय तक जल-जमाव बना रहता है जिसके कारण इस भूमि का प्रयोग कृषि हेतु नही किया जा सकता और यहाँ पर जनसंख्या का बसाव भी कम पाया जाता है जिसके कारण भूमि पर दबाव भी कम पाया जाता है । अत: प्रखण्ड के अन्य न्याय-पंचायतों के समान इसमें ह्रास नहीं आया है ।

4- **अति न्यून ह्रास वाले क्षेत्र :-** (मा0 + 3 प्रा0 वि0) इसमें केवल एक न्याय-पंचायत बेलवा है जो अत्यधिक असमान धरातल वाला क्षेत्र है । जल जमाव यहाँ अधिक मिलता है जो धरातल जल प्लवित नही है, वह भूमि उबड, खाबड होने से कृषि के लिए उपयुक्त नहीं है । अत: इस क्षेत्र में भी कृष्य बंजर भूमि मे ह्रास का दर निम्न है ।

प्रतिदर्श चयनित गावों के अध्ययन के फलस्वरूप निम्नलिखित गांवों के प्रतिशत में ह्रास हुआ है । परियाग दह (1951-91) के मध्य 24.48% से 4 39%, फरही 32.45% से 16.35%, शंकरपुर 30.65 से 9.53%, गोपालपुर 35.84 से 20.64% घटकर हो गया है । शेष बौरा, कजरी, सहसिया, रकसा एवं खैरा गावों में कोई ह्रास नहीं हुआ । अत: इससे स्पष्ट होता हे कि परियाग दह, फरही, शंकरपुर, और गोपालपुर गाँवों में बंजर भूमि का ह्रास इन गाँवों में जनसंख्या वृद्धि, सिंचाई के साधनों एवं उन्नतशील बीज की किस्मों के विकास एवं परिवहन मार्गों की सुविधा इत्यादि का काफी प्रभाव पड़ा है ।

5.6 **कृषि हेतु अप्राप्य क्षेत्र में परिवर्तन :-** सारणी (5.7) से स्पष्ट है कि विगत 4 दशकों (1951-91) के अनन्तर अकृष्य के प्रथम श्रेणी (15%) में काफी अन्तर प्राप्त है ।

जैसे वर्ष 1951 में 3 न्याय पचायत (15%) थे, बढकर 1991 मे 9 न्याय पंचायत (45%) हो गये है जबकि द्वितीय श्रेणी (10-15%) के अन्तर्गत वर्ष 1951 की तुलना में तथा 1991 मे प्रथम श्रेणी मे वृद्धि के फलस्वरूप कमी आयी है पुन तृतीय श्रेणी (5-10%) में ह्रास की स्थिति दृष्टिगोचर होती है । चतुर्थ श्रेणी (5%) में समरूपता प्राप्त है जो सारणी से स्पष्ट हो जाता है ।

सारणी 5.7

कृषि हेतु अप्राप्य क्षेत्र का श्रेणीगत वितरण प्रतिरूप (1991-91)

क्रम संख्या	श्रेणीयन	न्याय पंचायत की सख्या		प्रतिशत	
		1951	1991	1951	1991
1.	>15	3	9	15	45
2.	10-15	8	5	40	25
3.	5-10	7	4	35	20
4.	<5	2	2	10	10

विगत 4 दशकों के अनन्तर विभिन्न श्रेणियों में न्याय पंचायत की संख्या में ह्रास की मन्द प्रवृत्ति कृषि अप्राप्य क्षेत्र में वृद्धि के साथ-साथ कुछ न्याय पंचाचतों की संख्या में ह्रास की सम्भावना की अभिव्यक्ति देती है । अकृष्य क्षेत्र में वृद्धि मुख्यत. ग्रामीण विकास से सम्बन्धित विभिन्न निर्माण कार्यो (उदाहरणार्थ मानव अधिवास, बाजार, विद्यालय, पंचायत घर तथा अन्य सांस्कृतिक एवं सामाजिक संस्थान) के लिये कृषित भूमि के उपयोग से सम्बन्धित है । मानचित्र संख्या 5.6 ए एवं बी के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि वर्ष 1951 में 15-20% तक कृष्य अप्राप्य क्षेत्र विद्यमान था । मध्यवर्ती क्षेत्र में अधिकांश भू-भाग 10 से 15 प्रतिशत कृष्य हेतु अप्राप्य क्षेत्र के रूप में विद्यमान था । उत्तरी एवं पूर्वी भाग में 10 प्रतिशत से कम अप्राप्य भूमि का विस्तार था लेकिन 1951 से 91 अर्थात 4 दशकों

CHANGES IN
NON-CULTIVABLE LAND
N
1951
1991
1951-91
A
B
C
U A.
U. A
U A
PERCENT OF TOTAL AREA
< 5
5 – 10
10 – 15
15 – 20
> 20
MEAN 38·59 %
S.D 17·56 %
< MEAN–1 S D
< MEAN
< MEAN+1 S.D.
< MEAN+2 S D
4 0 4 8
Km
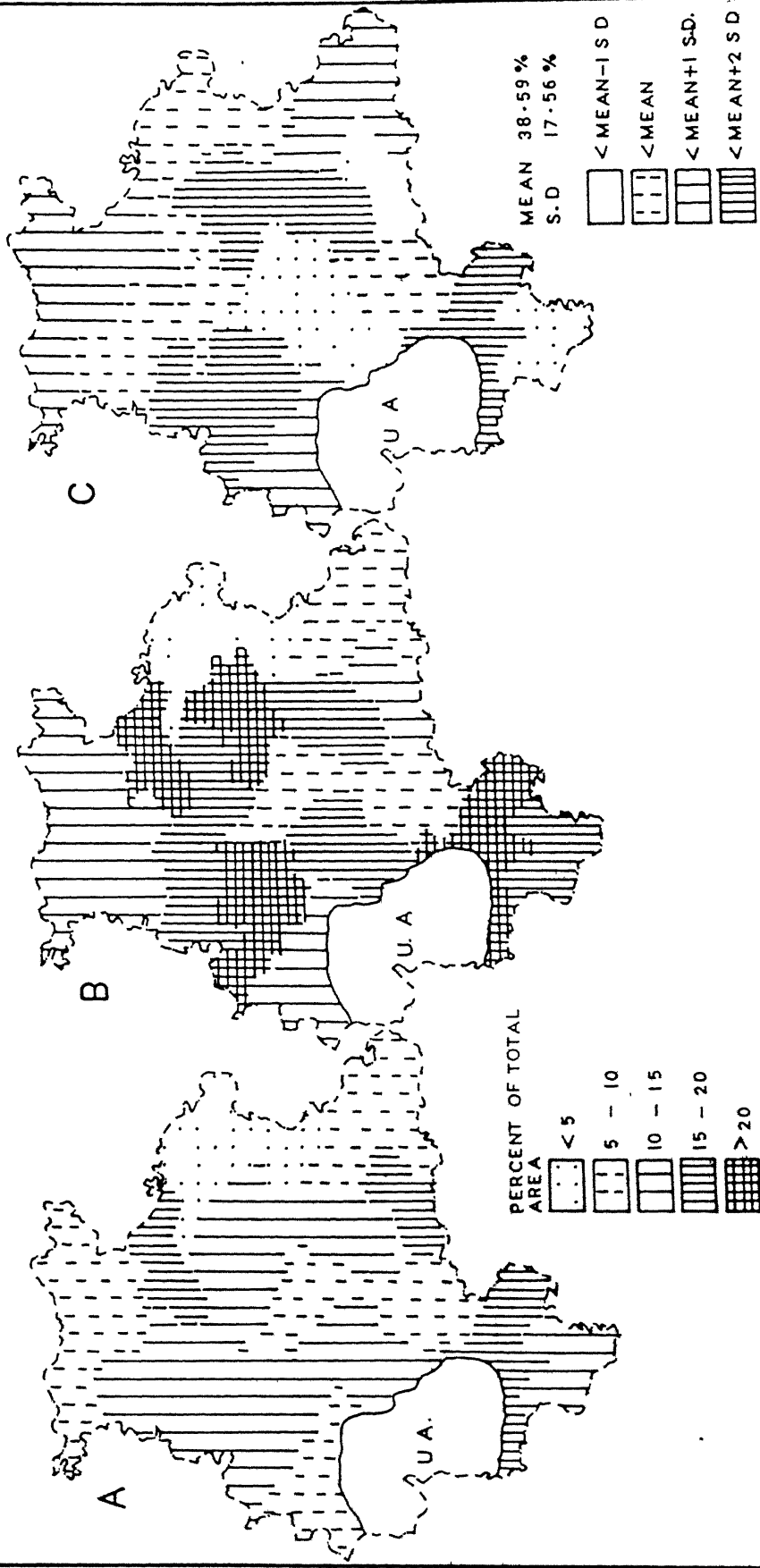
Fig 5 6

मे अप्राप्य भूमि के अन्तर्गत अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ है । केवल दोआसे और रघेली न्याय पंचायतों मे परिवर्तन नही प्राप्त है जबकि भवाडा, सौरिया परतेली तथा बेलवा में 20 प्रतिशत से भी अधिक अप्राप्य क्षेत्र का विस्तार मिलता है चूँकि राजभवाडा, बेलवा, परतेली, नगरी क्षेत्र कटिहार के सन्निकट है अर्थात इन पडोसी न्याय-पंचायतों में तीव्र गति से कृषि हेतु अप्राप्य क्षेत्र के अन्तर्गत वृद्धि हुई है , उत्तरी एव मध्यवर्ती भागों में अप्राप्य भूमि के अन्तर्गत सामान्य वृद्धि हुई है (चित्र 5 6 ए एव बी) अप्राप्य क्षेत्र एवं शुद्ध कृषित क्षेत्र में व्युत्क्रम अनुपात है जब अप्राप्य क्षेत्र बढेगा तो स्वाभाविक है कि शुद्ध कृषित क्षेत्र में कमी आयेगी चित्र 5 3 से यह स्पष्ट है कि शुद्ध कृषित क्षेत्र मे 1970 के पश्चात बहुत ही सूक्ष्य वृद्धि हुई है । चूँकि अकृष्य क्षेत्र का विस्तार हो रहा है । अत इसके विस्तार के परिणाम स्वरूप यद्यपि कृष्य बजर को शुद्ध कृषित क्षेत्र मे बदला जा रहा है लेकिन इसके बावजूद अप्राप्य क्षेत्र मे वृद्धि के परिणाम स्वरूप शुद्ध कृषित क्षेत्र में वृद्धि सम्भव नहीं हो पा रही है । अत इन दोनों में व्युत्तक्रम सम्बन्ध है । उपयुक्त बातों को ध्यान में रखते हुए जब हम प्रतिदर्श गांवों का अध्ययन करते है तो यह प्राप्त होता है कि 4 दशकों में काफी अन्तर आया है । परियाग दह 1951 से 1991 के दौरान 6.35% से 12.58%, बौरा 2.75% से 4 86%, फरही 8.26% से 27.15%, कजरी 7.65% से 24.67%, शंकरपुर 4.55% से 7.53%, सहसिया 12.35% से 28.55%, रक्सा 12 56% से 28.86%, गोपालपुर 11.93% से 20 81%, एवं खैरा में अकृष्य के अन्तर्गत 12.36% से 25.97% की वृद्धि हुई है इस तरह ग्राम स्तर पर काफी विभिन्नता पाई जाती है ।

(अ) **अप्राप्य भूमि का परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप** :- अध्ययन क्षेत्र में 1951-91 के समयान्तराल में अप्राप्य भूमि का परिवर्तनशील स्वरूप के वितरण प्रतिरूप के अध्ययन हेतु प्रतिश वृद्धि के आधार पर विश्लेषण किया गया है । सर्वप्रथम 1991 में हुए प्रतिशत वृद्धि के आधार पर माध्य और प्रामाणिक विचलन का परिकलन किया गया है । तत्पश्चात् माध्य और विचलन की सहायता से क्षेत्र में हुए परिवर्तन के स्वरूप को चार वर्गो में बाँटा गया है - निम्न (माध्य + प्रा0 वि0), मध्यम (माध्य), उच्च (माध्य + प्रा0 वि0), अति उच्च (माध्य + 2 प्रा0 वि0) । इसके लिए माध्य का मान 38.59 है एवं प्रामाणिक विचलन 17.56 है ।

(1) **निम्न वृद्धि के क्षेत्र** :- (माध्य - प्रा0 वि0) इसमे इस प्रखण्ड के चार न्याय पंचायत आते है जो हफलागंज, पहाडपुर, बेलवा, बोरनी गोरगामा है । यहाँ पर वृद्धि का प्रतिशत 21 से कम है । चकबन्दी के दौरान सड़कों विद्यालयों न्याय पंचायतों एवं अन्य सांस्कृतिक क्षेत्रों के लिए छोडे गए भूमि के कारण अप्राप्य भूमि में परिवर्तन हुआ है किन्तु आज भी इन न्याय-पंचायतों के पूर्ण विकास नही होने के कारण शक्तिशाली लोगों के प्रभाव के कारण ऐसी भूमि भी खेती के अन्तर्गत न रखी गयी है जिसके कारण यहाँ पर वृद्धि का स्तर अति न्यून है ।

(2) **मध्यम वृद्धि के क्षेत्र** :- (माध्य से कम) - यहाँ पर वृद्धि का स्तर 38% से कम है । इसमें जगन्नाथपुर, दोआसे, बलुआ, रघेली, मधेपुरा, पाँच न्याय पंचायत है । यहाँ वृद्धि का स्तर माध्य के कम हैं । इस क्षेत्र में भी प्रथम प्रकार के क्षेत्र की ही तरह अप्राप्य भूमि पर शक्तिशाली लोगो का कब्जा बरकरार है ।

(3) **उच्च वृद्धि के क्षेत्र** :- (माध्य + प्रामाणिक विचलन वाले क्षेत्र) - इसमें न्याय पंचायत चन्देली पारा, महमदिया, दलन, बिजैली एव डुमरिया, सम्मिलित हैं । यहाँ पर वृद्धि का स्तर लगभग 56% है । इन क्षेत्रों में चकबन्दी के दौरान हुए अप्राप्य भूमि में जो वृद्धि हुई, वह अब खेती के अन्तर्गत नहीं है और उन क्षेत्रों का उपयोग सांस्कृतिक कार्यों में किया जाता है ।

(4) **अति उच्च वृद्धि वाले क्षेत्र** (माध्य + प्रामाणिक विचलन वाले क्षेत्र) - इस क्षेत्र में मुख्यतः न्याय पचायत रामपुर, सौरिया, भवाड़ा, डण्डखोरा और परतेली सम्मिलित हैं । इन न्याय पंचायतों में आवागमन के साधन का पर्याप्त विस्तार हुआ है । स्थानीय लोगों में जागरूकता बढ़ी है । अत अप्राप्य भूमि के अन्तर्गत लिए गये भूमि का उपयोग उस कार्य में काफी कम हुआ है । यहाँ पर वृद्धि का स्तर 74% तक है ।

5.7 बाग-बगीचों के क्षेत्र में परिवर्तन :- चित्र संख्या 5 7 ए और बी एवं सारणी 5.8 से स्पष्ट है कि 1951-91 की अवधि में बाग-बगीचों के क्षेत्र में विशेष ह्रास हुआ है ।

सारणी 5.8

बाग-बगीचों का श्रेणीकृत वितरण (1951-91)

क्रम सख्या	श्रेणीयन	न्याय पंचायतों की संख्या		प्रतिशत	
		1951	1991	1951	1991
1	>15	5	0	30	00
2.	10-15	4	1	20	05
3.	5-10	8	6	40	30
4	<5	2	13	10	65

प्रथम श्रेणी (15%) के अन्तर्गत वर्ष 1951-91 की अवधि में 6 न्याय पंचायत से 1991 में संख्या शून्य हो गई । द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत 4 न्याय पंचायत से । न्याय पंचायत, तृतीय श्रेणी (5-10%) के अन्तर्गत 8 न्याय पंचायत से 6 न्याय पंचायत तथा चतुर्थ श्रेणी (5%) के अन्तर्गत दो न्याय पचायत से 1991 मे 13 न्याय पंचायत सम्मिलित है अर्थात प्रथम से तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत तीव्रतम ह्रास और चतुर्थ श्रेणी में वृद्धि को प्रदर्शित करता है । वनो के ह्रास से स्पष्ट होता है कि वहाँ तेजी से वनों की कटाई हुई है । जनसंख्या, सिचाई, परिवहन, उत्तम किस्म के बीजों का विकास के परिणाम स्वरूप बाग-बगीचों के क्षेत्र को शुद्ध कृषित क्षेत्र में परिवर्तित कर दिया गया है । प्रतिदर्श गांवों के अवलोकन के फलस्वरूप 1951-91 की अवधि में काफी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है जो सारणी (5 8) से स्पष्ट है , परियाग दह, फरही, कजरी, सहसिया, रकसा, गोपालपुर एवं खेरा में बाग-बगीचों के अन्तर्गत भू-क्षेत्र नगण्य हो गई जबकि 1951 में इस उपयोग में भू-क्षेत्र की अधिकता थी । अत. इन गांवों में बाग-बगीचों की कटाई अंधाधुन्ध हुई है । लोग बाग-बगीचों को शुद्ध कृषिगत क्षेत्र में परिवर्तित कर लिए हैं । बौरा, शंकरपुर में इनका ह्रास धीमी गति से हुआ है । अतः इन गांवों का अवलोकन के फलस्वरूप यह जाहिर हुआ है कि इन गांवों में वृक्षारोपण किया जाय ताकि प्रदूषण रहित हो । अच्छे स्वास्थ्य के लिए

वृक्षारोपण अति आवश्यक है साथ ही इससे हमारी अन्य बहुत सारी आवश्यकताओं जैसे - जलावन, घरेलू सामान आदि की पूर्ति होती है ।

कटिहार प्रखण्ड के बाग-बगीचों के अन्तर्गत 1951-91 की अवधि में 65.39% का ह्रास हुआ है । मानचित्र संख्या 5.7 ए तथा बी के सूक्ष्म अध्ययन के उपरान्त यह विदित होता है कि बाग-बगीचों के क्षेत्र का भरपूर शोषण किया गया है । वर्ष 1991 मे चन्देली भर्ग, महमदिया, जगन्नाथपुर, डण्डखोरा, बेलवा न्याय पचायतों में 15% से अधिक भू-क्षेत्र सम्मिलित हैं। 10-15% के बीच न्याय पंचायत हफलागंज, पारा, डुमरिया, में था शेष बलुआ और दोआसे (5%) से कम को छोडकर 5-10% भू-क्षेत्र बाग-बगीचों के अन्तर्गत थे जबकि वर्ष 1991 के मानचित्र के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि वर्तमान में अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत किसी भी न्याय पंचायत में 15% से अधिक भू-क्षेत्र पर बाग-बगीचे विद्यमान नही है। 10-15% के अर्न्तगत न्याय पचायत रामपुर देखने को मिल रहा है । शेष सभी न्याय पचायतों मे 10% से कम भू-क्षेत्र सम्मिलित हैं । यही नहीं बिजैली, बोरनी गोरगामा तथा दोआसे न्याय पंचायतों में 2% से भी कम भू-क्षेत्र बाग-बगीचों में सम्मिलित है । अतः यह स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र बाग-बगीचों का भरपूर शोषण किया गया है जो परिस्थितिकीय दृष्टि से उपयुक्त नहीं है । आवश्यकता यह है कि अध्ययन क्षेत्र मे और भू-भागों पर पेड-पौधो को लगाकर उससे परिस्थितिकीय तन्त्र को सुव्यवस्थित रखा जाय । साथ ही उससे आर्थिक लाभ भी प्राप्त किया जाय ।

(अ) बाग-बगीचों के क्षेत्र में परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप :-

सम्पूर्ण प्रखण्ड में बाग-बगीचों के क्षेत्र के अन्तर्गत स्थित भूमि में उक्त समयान्तराल में निरन्तर ह्रास हुआ है । न्याय पंचायत बलुआ एवं सौरिया में वृद्धि हुई है । यहाँ पर बाग-बगीचों में ह्रास को मापने के लिए माध्य एवं प्रामाणिक विचलन का उपयोग किया गया है । इस हेतु परिकलित किए गये माध्य का मान (-56.21%) एवं प्रामाणिक विचलन का मान (38.93%) है । उक्त दो सूचकांकों के आधार पर बाग-बगीचों के अन्तर्गत स्थित भूमि के परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप को तीन वर्गों में बाँटा गया है (चित्र 5.7 सी) ।

KATIHAR PRAKHAND.
CHANGES IN TREES AND ORCHARDS
N
1951
1991
1951-91
A
B
C
U A
U A
U A
PERCENT OF TOTAL AREA
>15
10 – 15
5 – 10
< 5
MEAN – 56·21 %
SD 38·93 %
>MEAN+3 S D.
>MEAN+2 S.D.
>MEAN
4
0
4
8
Km
Fig. 5·7
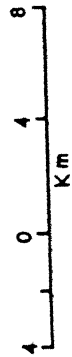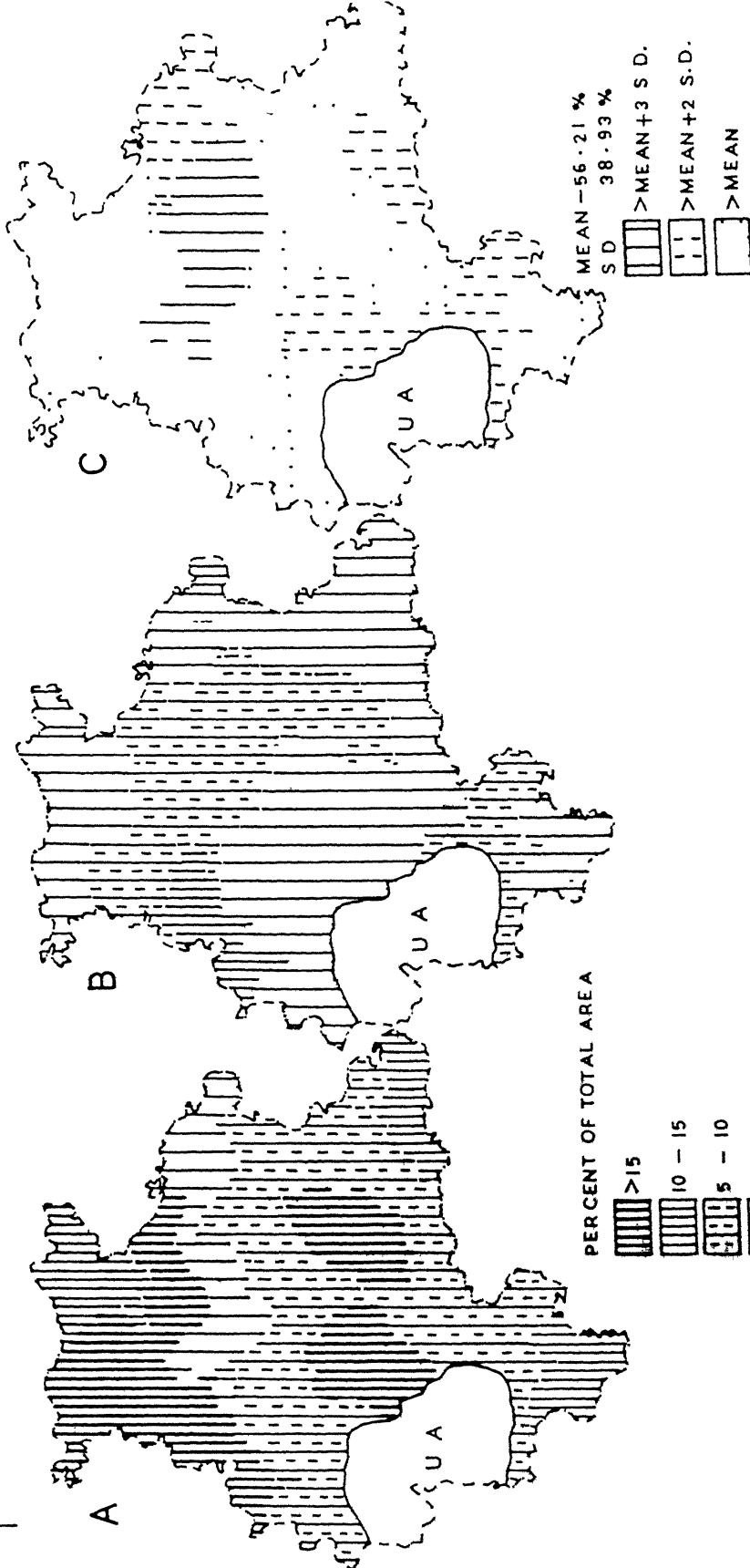
(1) जहाँ पर ह्रास माध्य से अधिक है ।

(2) जहाँ पर ह्रास (माध्य + प्रामाणिक विचलन) से अधिक हो और

(3) जहाँ पर ह्रास (माध्य +2 प्रामाणिक विचलन) से अधिक है ।

(1) **उच्च ह्रास वाले क्षेत्र** (माध्य से अधिक) - इसमें चन्देली, पारा, जगन्नाथपुर, महमदिया, रामपुर, दलन, भवाडा, डण्डखोरा, रघेली, बिजैली, डुमरिया, मधेपुरा एवं हफलागंज आदि न्याय पंचायत सम्मिलित है । इन न्याय पचायतों में जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप बाग-बगीचों का शोषण तीव्रता से हुआ है और नये बाग-बगीचों का शोषण तीव्रता से हुआ है और नये बाग-बगीचे भी नही लगाये गए है । अत: यहाँ पर बाग-बगीचों के अन्तर्गत ह्रास हुआ है ।

(2) **निम्न ह्रास** (माध्य + 1 प्रामाणिक विचलन) वाले क्षेत्र .- इसमें दोआसे, बेलवा, पहाडपुर परतेली, न्याय पंचायर्ते सम्मिलित है । यहाँ ह्रास का स्तर 17·28% से अधिक किन्तु 56·2% से कम है । इनमे भी जनसंख्या की वृद्धि के कारण बाग-बगीचों का कटाव हुआ है । जनसख्या में वृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण बगलादेशवासियों का इस प्रखण्ड में आकर बसना भी है । साथ ही लोगों का झुकाव केला तथा पटसन की खेती के तरफ होने लगा है जिससे लोग अपने बागों को काटकर प्रति एकड प्रति वर्ष की दर से रूपये दो हजार से तीन हजार तक की दर से अन्य व्यक्ति को लगान पर खेती करने के लिए दे देते हैं जिससे बाग-बगीचों के क्षेत्र में ह्रास हुआ है ।

(3) **अति न्यून ह्रास वाले क्षेत्र** (माध्य + 2 प्रामाणिक विचरण) - इसमें बलुआ एवं सौरिया न्याय पंचायत सम्मिलित है जिसमें ह्रास न होकर बाग-बगीचों के नीचे स्थिति क्षेत्रों में वृद्धि हुई है। यह वृद्धि 50% के लगभग है । बलुआ में 46 98% की वृद्धि देखी गयी है जबकि सौरिया में 58·16% है । इन क्षेत्रों में वृद्धि का मुख्य कारण लोगों का व्यापारिक दृष्टिकोण है । लोग अपने खेतों मे बाँस इत्यादि की लगाते हैं क्योंकि इन्हें बेचकर एक मुस्त रूपये की प्राप्ति होती है और उन्हें इन बाँसों की उपज के लिए किसी भी प्रकार की शारीरिक श्रम नहीं करना पड़ता है और न तो प्रति वर्ष पूँजी का निवेश ही करना पड़ता है ।

5.8 दो-फसली क्षेत्र में परिवर्तन :- दो-फसली क्षेत्र मे वर्ष 1951-91 की अवधि में काफी अन्तर हुआ है जो चित्र संख्या 5 8 ए और बी एवं सारणी (5 11) से स्पष्ट है।

सारणी 5.9

दो-फसली क्षेत्र का श्रेणीगत वितरण प्रतिरूप (1951-91)

क्रम सख्या	श्रेणीयन	न्याय पचायतों की संख्या		प्रतिशत	
		1951	1991	1951	1991
1.	>80	0	2	0	10
2.	60-80	0	3	0	15
3.	40-60	2	3	10	15
4.	<40	18	12	90	60

प्रथम श्रेणी (80%) के अन्तर्गत वर्ष 1951 में न्याय पंचायतों की संख्या दो-फसली क्षेत्र के दृष्टिकोण से एक भी नहीं थी जो वर्ष 1991 में बढ़कर 2 न्याय पंचायत सम्मिलित है । यही स्थिति द्वितीय श्रेणी (60-80%) के अन्तर्गत है जो 1951 में नगण्य थी वर्ष 1991 मे बढ़कर तीन न्याय पंचायत सम्मिलित हैं । तृतीय श्रेणी (40-60%) और चतुर्थ श्रेणी (40%) के अन्तर्गत इनकी सख्या और प्रतिशत में इस प्रकार परिवर्तन 1951-91 के मध्य क्रमश 9 न्याय पंचायत (10%) से तीन न्याय पंचायत (15%), तथा 18 न्याय पंचायत (90%) से 12 न्याय पंचायत (60%) में परिवर्तित हो गया है । चतुर्थ श्रेणी के अन्तर्गत दो-फसली क्षेत्र में काफी ह्रास हुआ है । क्षेत्र विशेष मे द्विफसली क्षेत्र का उच्च प्रतिशत उसकी भूमि उपयोग गहनता का द्योतक है तथा निम्न प्रतिशत निम्न-धरातलीय जल-जमाव क्षेत्र की अधिकता एवं बाढ़ प्रकोप जेसे प्राकृतिक कारकों का द्योतक है । इस तरह उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर जब हम प्रतिदर्श चयनित गांवों पर प्रकाश डालते हैं तो उसमें प्रर्याप्त भिन्नता देखने को मिलती है । चयनित गाँव मे दो-फसली क्षेत्र में

KATIHAR PRAKHAND
CHANGES IN DOUBLE CROPPED AREA
N
1951
1991
1951-91
A
B
C
U A
U A
U A
PERCENT OF NET AREA
AREA SOWN
< 15
15 - 30
30 - 45
45 - 60
PERCENT OF NET
AREA SOWN
< 15
15 - 30
30 - 45
45 - 60
60 - 75
>75
MEAN 188 08 %
S.D 169.84 %
< MEAN
<MEAN+1 S D
<MEAN+2 S D
<MEAN+3 S D
4
0
4
8
Km
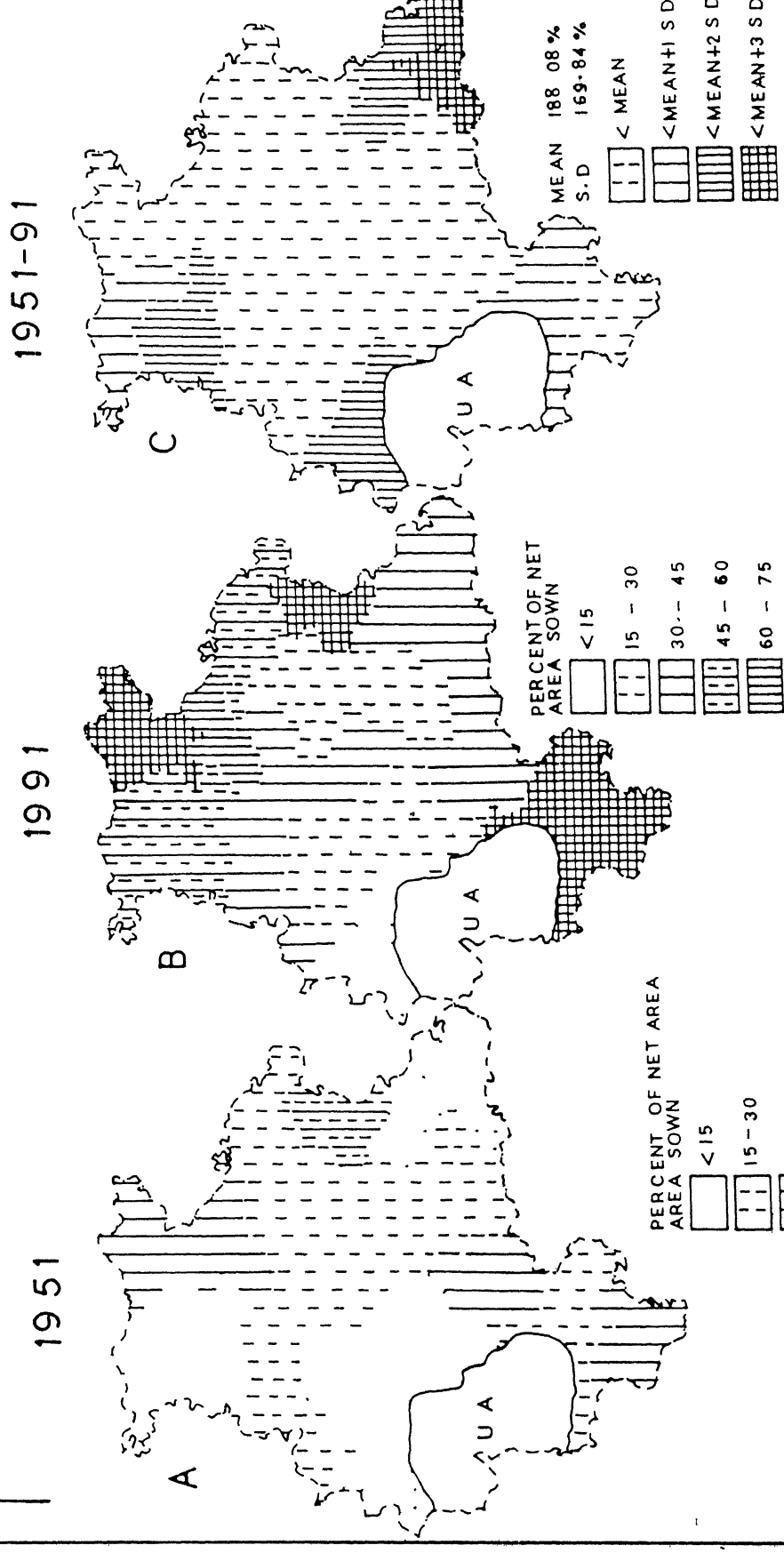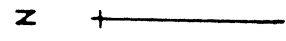
Fig 5-8

परिवर्तन 1951-91 के मध्य निम्न प्रकार है - परियाग दह 15 25% से 55.37%, बौरा 14.35% से 50 77, फरही 18 14% से 63.38%, कजरी 13 85% से 41 17%, शंकरपुर 25.35% से 90 32%, सहसिया 19 38% से 69 75%, रक्सा 18 46% से 66 61%, गोपालपुर 16.15% से 32.5% तथा खैरा का 23 25% से 88.98% हो गया अर्थात प्रतिदर्श चयनित गांवों के सभी क्षेत्रों में वर्ष 1951-91 के दो-फसली क्षेत्र में तीव्र परिवर्तन हुआ है । गाँवों में दो-फसली क्षेत्र का उचच प्रतिशत सघन जनसंख्या, सिंचाई, के नवीन साधनों की सुविधा, गेहूँ की उन्नत किस्मों के कारण गेहूँ क्षेत्र में विस्तार मुद्रादायिनी शस्यों जैसे केला, पटसन की कृषि में कृषको की बढती अभिरूचि आदि कारणों से प्रभावित है तथा इसके विपरीत गांवों में निम्न प्रतिशत, निम्न धरातलीय जल जमाव क्षेत्र की अधिकता एवं बाढ़ प्रकोप जैसे प्रकृतिक कारको के अतिरिक्त विरल जनसख्या, परम्परागत पुरानी कृषि पद्धति, सिंचाई के साधनों का अभाव, सडकों एव सेवा केन्द्रों से अत्यधिक दूरी तथा सामाजिक पिछडेपन से प्रभावित है ।

अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत विगत चार दशकों (1951-91) की अवधि में 132 68% की अभिवृद्धि हुई है। सर्वाधिक वृद्धि दो फसली क्षेत्र के अन्तर्गत दोआसे (486 08%) की हुई है । न्यूनतम वृद्धि डण्डखोरा (35.71%) में देखने को मिलता है । मानचित्र संख्या 5.8 ए और बी के अध्ययन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष में पहुँचते है कि अध्ययन निष्कर्ष मे पहुँचते हैं कि अध्ययन क्षेत्र में दो-फसली क्षेत्र के अन्तर्गत तीव्र वृद्धि हुई है । भौतिक भिन्नता के परिणाम स्वरूप वृद्धि में भी विभेद देखने को मिलता है । वर्ष 1951 के मानचित्र से यह स्पष्ट होता है कि दलन, बेलवा, चन्देली, जगन्नाथपुर, डुमरिया, बिजेली आदि न्याय पचायतों के अन्तर्गत दो-फसली क्षेत्र का प्रतिशत 15 से कम था । मध्यवर्ती भाग मे दो-फसली क्षेत्र का प्रतिशत 15-30 के मध्य था । पारा, महमदिया, मधेपुरा तथा हफलागंज में दो-फसली क्षेत्र का प्रतिशत 30-45 के मध्य देखने को मिल रहा है । मानचित्र संख्या 5.8 बी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि दो-फसली क्षेत्र में तीव्र वृद्धि हुई है । न्याय पंचायत हफलागज, परतेली, रघैली, पारा में दो-फसली के अन्तर्गत 75% से अधिक भू-क्षेत्र सम्मिलित है । मध्यवर्ती भाग मे भी तीव्र परिवर्तन देखन का मिलता है (चित्र संख्या 5.8 ए और बी) ।

(अ) दो-फसली भूमि में परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप -

जनसंख्या की वृद्धि, कृषि मे नये तकनीकी ससाधनों का उपयोग, सिंचाई के साधनों के विकास आदि कारणों से इस प्रखण्ड में लोगों का झुकाव गहन-कृषि की ओर हुआ है फलस्वरूप दो-फसली भूमि में वृद्धि हुई है । यह वृद्धि कही-कहीं तो $5\frac{1}{2}$ गुना तक हुई है । यहाँ प्रतिशत वृद्धि का माध्य 188 08% है जबकि प्रामाणिक विचलन 169 84% है । इन दो सूचकाकों के आधार पर दो-फसली भूमि में हुए वृद्धि को मुख्यत चार वर्गों में विभाजित किया गया है (चित्र 5 8 सी) । प्रथम निम्न (माध्य से कम) दूसरा सामान्य (माध्य + 1 प्रामाणिक विचलन) और तीसरा उच्च (माध्य + 2 प्रामाणिक विचलन) तथा चौथा अति उच्च (माध्य + 3 प्रामाणिक विचलन) ।

(1) **निम्न वृद्धि वाले क्षेत्र** (माध्य से कम) - इसके अन्तर्गत न्याय पंचायत पारा, रामपुर, महमदिया, दोआसे, बलुआ, राजभवाड़ा, सौरिया, बोरनी गोरगामा, बेलवा, रघेली, डण्डखोरा, मघेपुरा, पहाडपुर, हफलागंज आदि सम्मिलित है । इन न्याय पचायतों में वृद्धि का प्रतिशत माध्य (188.08%) से कम है । यहाँ पर कम वृद्धि तो है किन्तु यह वृद्धि भी लगभग दो गुना है जो अपने में विशेष महत्व रखता है । यह वृद्धि स्पष्ट करता है कि इन क्षेत्रों में वृद्धि की नई तकनीकी प्रयोग मे लाई गयी है और इस बात की पुष्टि क्षेत्रीय सर्वेक्षण के दौरान भी हुई है ।

(2) **सामान्य वृद्धि वाले क्षेत्र** (माध्य + 1 प्रामाणिक विचलन) - इसमें केवल दो न्याय पचायत चन्देली और परतेली सम्मिलित हैं । यहाँ वृद्धि का प्रतिशत 357 तक है । अर्थात् इन क्षेत्रों में दो-फसली भूमि के अन्तर्गत स्थित भूमि में $3\frac{1}{2}$ गुने से भी अधिक वृद्धि मिलती है । इन क्षेत्रो में व्यक्तिगत विशेषकर बाँस-बोरिंग का प्रचलन अधिक मिलता है जिसके कारण प्रति वर्ष दो-फसली का उत्पादन सुगमता पूर्वक प्राप्त किया जाता है ।

(3) **उच्च वृद्धि वाले क्षेत्र** (माध्य + 2 प्रामाणिक विचलन) :- इसके अन्तर्गत जगन्नाथपुर, दलन, और बिजैली न्याय पंचायत आते है । इन न्याय पचायतों में वृद्धि का स्तर 527 प्रतिशत तक है । जगन्नाथपुर और बिजैली के नहर एवं सरकारी नलकूप पाई जाती है जिससे वर्ष

में दो फसलों को उगाने में सहायता मिलती है । जल स्तर उच्च होने के कारण व्यक्तिगत स्तर पर अधिक मात्रा मे भू-स्वामियों द्वारा बॉस-बोरिंग एव ट्यूबेल को अधिकाधिक प्रयोग हुआ है । दलन न्याय पंचायत ऐसा है जो कटिहार नगर के समीप है । यहाँ पर भी सिंचाई की पर्याप्त सुविधा मिलती है । साथ ही साथ जनसंख्या के अत्यधिक वृद्धि के कारण लोगों ने वर्ष में दो-फसलों को उगाने मे काफी रूचि बढ़ी है । इस दो उक्त कारणों से दो-फसली भूमि के वृद्धि का प्रतिशत अधिक है ।

(4) **अति उच्च वृद्धि वाले क्षेत्र** (माध्य + 3 प्रामाणिक विचलन) :- इसके अंतर्गत केवल एक न्याय पचायत डुमरिया सम्मिलित है । इस न्याय पचायत में लघु एवं सीमान्त कृष्कों की अधिकता है । जिसमें अनूसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं पिछडी जाति के लोग अधिक है । सिंचाई की सुविधाओं के कारण इस न्याय पंचायत के लोग अन्नोत्पादन के साथ ही साथ सब्जी की खेती भी करते है जिसमे कोइरी जाति के लोग अधिक हैं जो गहन कृषि करते हैं । जनजाति मे आदिवासी है जो छोटे भू-क्षेत्रों पर खेती करते हैं । इनके पास भूमि की कमी है जिससे एक ही भूमि पर बार-बार कई तरह की फसलों का उत्पादन करके अपना जीविकोपार्जन करते है । इस प्रकार उपर्युक्त कारणों से दो फसली भूमि का क्षेत्र अधिक मात्रा में पाया जाता है । इन उक्त कारणों के अतिरिक्त डुमरिया में सिंचाई के साधनों की बहुतायत है ।

5.9 सिंचित क्षेत्र में परिवर्तन :- सिंचित क्षेत्र में भी दो फसलीय क्षेत्र की तरह काफी परिवर्तन हुआ है चित्र सख्या 5 9 ए और बी एव सारणी (5.12) से स्पष्ट है ।

सारणी 5.10

सिंचित क्षेत्र का श्रेणीगत वितरण प्रतिरूप (1951-91)

क्रम संख्या	श्रेणीयन	न्याय पचायत की संख्या		प्रतिशत	
		1951	1991	1951	1991
1.	>80	0	2	0	10
2.	60-80	1	1	5	5
3	40-60	1	2	5	10
4.	<40	18	15	90	75

KATIHAR PRAKHAND
N
IRRIGATED AREA
CHANGES IN IRRIGATED ARE/
1951
1991
1951-91
A
B
C
U.A.
U.A.
U.A
PERCENT OF NET SOWN AREA
< 15
15 – 30
30 – 45
45 – 60
60 – 75
>75
MEAN 291·76 %
S.D 249·29 %
<MEAN –1 S D
<MEAN
<MEAN+1 S.D
<MEAN+2 S.D
<MEAN+3 S.D
4 0 4 8
Km
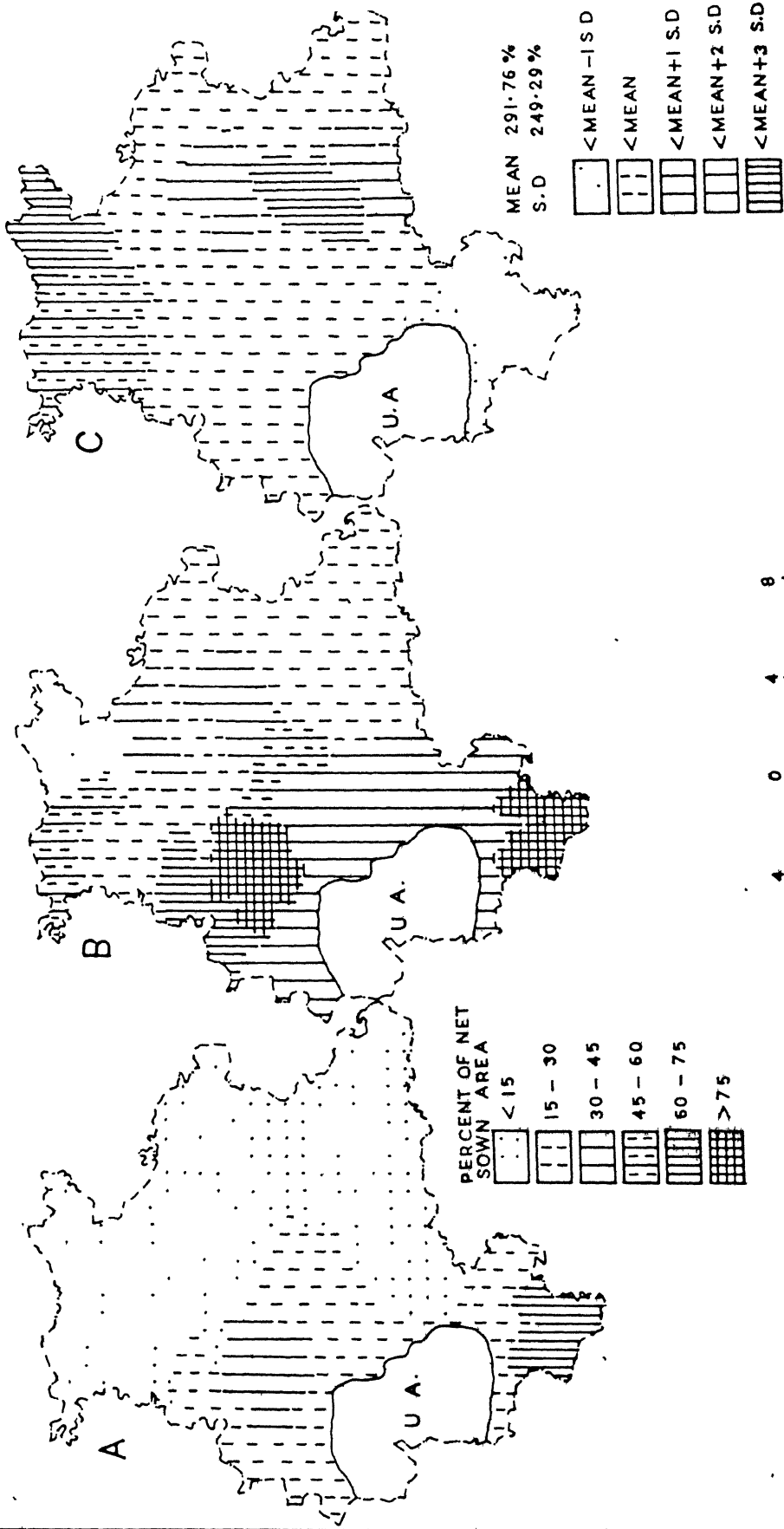
Fig. 5·9

प्रथम श्रेणी (89% से अन्तर्गत विगत 40 वर्षो (1951-91) में सिंचित क्षेत्र परिवर्तन इस प्रकार है - 1951 मे इस कोटि मे कोई न्याय पचायत नहीं थी लेकिन वर्ष 1991 मे बढकर न्याय पंचायत की संख्या 2 हो गई है । द्वितीय श्रेणी (60-80%) में कोई परिवर्तन नहीं हुआ । तृतीय श्रेणी (40-60%) में । न्याय पंचायत (5%) से बढ़कर 2 न्याय पंचायत (10%) हो गई । चतुर्थ श्रेणी में 1951 में 18 न्याय पचायत (90%) से घटकर 1991 मे 15 न्याय पंचायत (75%) हो गई है । प्रतिदर्श चयनित गांवों के सूक्ष्म अध्ययन से वहाँ पर काफी परिवर्तन देखने को मिलता है । चयनित गांवों में परिवर्तन 40 वर्षो मे क्रमश इस प्रकार रहा परियाग दह 14.13% से 43.33%, बौरा 10.25% से 40 20%, फरही 12.13% से 17 86%, कजरी 12 25% से 23 7%, शंकरपुर 18.32% से 36.19%, सहसिया 17.25% से 16 41%, रकसा 12.42% से 33.90%, गोपालपुर 11.25% से 28 27% एवं खैरा 18.16% से 41 61% वृद्धि लक्षित होता है । चयनित गांवों में सर्वाधिक परिवर्तन बौरा गाँव में है । बौरा गाँव मे गेहूँ, मक्का, धान, पटसन आदि की अच्छी खेती होती है । सिंचित क्षेत्र में वृद्धि नवीन कृषि-पद्धति के प्रति कृषकों को जागरूकता, सिंचाई के आधुनिक साधनों (नलकूप, पम्पिंग सेट, रहट, नहर आदि) के विकास एवं अनन्य सक्रिय कारकों के परिणाम-स्वरूप हुई है । जहाँ बौरा गाव मे सिंचित क्षेत्र मे वृद्धि हुई है, वहीं ग्राम सहसिया 17.25% से घटकर 16.41% हो गया है । इसका प्रमुख कारण यह है कि यह गैर आबाद गाँव है ।

वर्ष 1951 और 1991 से सम्बन्धित सिंचित मानचित्र 5.9 ए और बी के अवलोकन से यह ज्ञात है कि सिंचित क्षेत्र में भारी परिवर्तन हुआ है वर्ष 1951 में लगभग दो तिहाई भाग (उत्तरी एवं पूर्वी) मे 15% कृषि क्षेत्र या इससे कम भू-क्षेत्र सिंचित था । कटिहार नगर के समीपवर्ती प्रखण्डों में सिंचित प्रतिशत 15-30% के मध्य विद्यमान था। 1951 में राजभवाडा न्याय पंचायत के अन्तर्गत सिंचन प्रतिशत 30-45% के बीच है। सर्वाधिक सिंचन प्रतिशत हफलागज में देखने को मिलता है । जो 60 75% के मध्य है । वर्ष 1991 में 1951 की तुलना में तीव्र परिवर्तन देखने को मिलता है । तीव्र परिवर्तन रामपुर, राजभवाड़ा और चन्देली भर्रा मे हुआ है जबकि अध्ययन क्षेत्र के शेष अन्य भागों में सामान्य परिवर्तन देखने को मिलता है ।

(अ) **सिंचित क्षेत्र में परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप :-**

अध्ययन क्षेत्र मे सिंचित क्षेत्र के अन्तर्गत वृद्धि का औसत 91 76% है तथा प्रामाणिक विचलन 249 29% है । उक्त दो सूचकांकों के सहारे अध्ययन क्षेत्र के सिंचित क्षेत्र को प्रतिशत मे हुए परिवर्तन को पाँच वर्गो में बाँटा गया है (चित्र सख्या 5 9 सी) में वर्ग क्रमश निम्न, मध्य, सामान्य से उच्च एव अति उच्च वृद्धि वाले हैं ।

1. **निम्न वृद्धि वाले क्षेत्र** (माध्य - प्रामाणिक विचलन से कम) -

इसमे केवल दो न्याय पचायत सम्मिलित हैं । ये न्याय पचायत परतेली और हफलागज । इनमे सिंचित क्षेत्र के वृद्धि का प्रतिशत 40% से कम है । हफलागंज में तो वृद्धि का प्रतिशत 30% से भी कम (29 73%) है । यहाँ पर परतेली एवं हफलागंज न्याय पंचायत का अधिकांश भाग कटिहार नगर के समीपवर्ती क्षेत्र के रूप में स्थित है जिसके कारण इन क्षेत्रों के भूमि का प्रयोग कृषि अपेक्षाकृत अन्य औद्योगिक कार्यो में होने लगा है इसके कारण उक्त दोनों न्याय पचायत के सिंचित क्षेत्रफल क्रमशः कम होता जा रहा है।

2. **मध्यम वृद्धि वाले क्षेत्र** (माध्य से कम) -

इसमें 12 न्याय पंचायत है । ये न्याय पंचायत रामपुर, बलुहा, राजभवाडा, दलन, बेलवा, बोरनी, गोरगामा, मधेपुरा, कटिहार नगर के प्रभाव क्षेत्र में आते हैं । दूसरा क्षेत्र जो इस प्रखण्ड के पूर्वी भाग में स्थित है जिसमे महमदिया, दोआसे, रघैली, बिजैली, डुमरिया न्याय पंचायत सम्मिलित है । इन क्षेत्रो मे नहरों का विकास अपेक्षाकृत कम हुआ है । जो सिंचाई की जाती है । वह व्यक्तिगत स्तर पर की जाती है जिसमें सिंचित क्षेत्रों में अत्यधिक वृद्धि सम्भव नहीं हो सकता है । अत यहाँ पर सिंचित क्षेत्रों के प्रतिशत मे वृद्धि का स्तर मध्यम है ।

3. **सामान्य से अधिक वृद्धि वाले क्षेत्र** (माध्य + प्रामाणिक विचलन से कम) :-

इसमें केवल दो न्याय पंचायत सौरिया एवं जबड़ा पहाड़पुर सम्मिलित हैं । इसमें वृद्धि का प्रतिशत 541% तक है अर्थात इसमें 5 गुने से अधिक वृद्धि हुई है । इसका

मुख्य कारण इन क्षेत्रों मे कृषित क्षेत्र पर अत्यधिक दबाव के कारण क्रमश अधिक वृद्धि हो रही है ।

(4) **उच्च वृद्धि वाले क्षेत्र** (माध्य + 2 प्रामाणिक विचलन) -

इसके अन्तर्गत न्याय पचायत चन्देली और जगन्नाथपुर आते हैं । इन न्याय पंचायतों मे वृद्धि का प्रतिशत 5 60% है । चन्देली और जगन्नाथपुर में वृद्धि का प्रतिशत क्रमश 558 45% एव 570 47% है । इन क्षेत्रों में सिंचाई के सुविधाओं का अत्यधिक विस्तार हो रहा है । क्षेत्र में नहरों का विस्तार बढता जा रहा है अत सिंचित क्षेत्रों में वृद्धि होता जा रहा है । यहाँ पर सिंचन गहनता भी अधिक मिलती है ।

5. **अति उच्च वृद्धि वाले क्षेत्र** (माध्य + 3 प्रामाणिक विचलन से कम) -

इसमे वृद्धि का प्रतिशत लगभग 890% तक पहुँच गया है । इस प्रखण्ड के दो न्याय पंचायत राजपारा (886·22%) तथा डण्डखोरा (887·76%) इस वर्ग के अन्तर्गत सम्मिलित किए जाते हैं । इन न्याय पंचायतों में सिंचाई के सुविधाओं के निरन्तर विकास होने के कारण वृद्धि का स्तर अति उच्च पाया जाता है ।

xxxxxxxxxxx

संदर्भ - सूचिका (References)

1. **Vanzetti, C.** : "Land use and National Vegetation in International Geography" Edited by W. Peter Adams and Fredrick, M.: Helleiner Torento University Press, 1972, pp 1105-1106.

2. **Anuchin, V.A.** : "Theory of Geography" in Directions in Geography, Edited by chorly; R.J. Methuen London, Part 1, chapter 3, pp. 52-54.

3. **Ronald, R. Renna,**: Land Economics Principles; Problems and Poticies in Utilization of Land Resources. Harper and Brothers, New York, 1947, p. 17.

4. **Barlowe, R.** : "Land Resources Economices . The Political Economics of Rural and Urban Land Resource Use," Prentice Hall, New York 1961, p. 228.

5. **Singh, B.B.** : " Agricultural Geography (in Hindi)." Tara Publications, Varanasi, 1979, P. 106.

6. **Singh , R.L.** : India, A regional Geography, 1971, p. 204.

7. **Singh, B.B.** : "Agricultural Geography (in Hindi)". Tara Publications, Varanasi, 1979, p. 108.

****

xxxxx

xxxxxxxxxx

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

अध्याय - षष्टम
शस्य प्रतिरूप

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

xxxxxxxxxx

xxxxx

अध्याय - षष्ठम्

शस्य प्रतिरूप

6.1 शस्य स्वरूप :-

किसी भी क्षेत्र में आर्थिक विकास के कार्यक्रम अनेकानेक संभावनाओं को जन्म देते हैं, जिनमें से अधिकांश आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था के संतुलन में व्यतिक्रम के रूप में प्रकट होते है । प्राय. इन्हीं व्यतिक्रमों एवं समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में क्षेत्रीय विकास हेतु विभिन्न योजनाओं का कार्यान्वयन होता है । उदाहरण स्वरूप वर्तमान में सुदृढ़ राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था हेतु कृषि पर आधारित लघु उद्योगों के विकास के संदर्भ में अनेक परिचर्चाओं एवं परियोजनाओं की धूम मची है । औद्योगिक विकास के लिए कच्चे पदार्थो, जिनमें बहुत से कृषिजन्य हैं, के क्षेत्रीय वितरण का विशिष्ट महत्व है । सघन जनसंख्या एवं उसकी तीव्र वृद्धि से सम्बन्धित समस्या के समाधान के साथ ही क्षेत्रीय अर्थतन्त्र को गतिशीलता प्रदान करने के लिए कृषिगत क्षेत्र के उपयोग से संबंधित विविध पक्षों का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है। उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए भूमि-उपयोग प्रतिरूप, शस्य-स्वरूप एवं उसकी क्षेत्रीय विषमता की व्याख्या करने का प्रयास प्रस्तुत अध्याय में किया गया है ।

शाब्दिक अर्थ में फसलों के क्षेत्रीय वितरण से बने प्रारूप को शस्य स्वरूप की संज्ञा दी जाती है । लघु स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक अपनाये गये शस्य-स्वरूप के अनेक रूप देखने को मिलते हैं । शस्यों के वितरण संबंधी अध्ययन में क्षेत्रीय तथा कालिक पक्षों के विश्लेषण का विशिष्ट महत्व है । कालिक अन्तर पारिस्थितिक अनुक्रमों की देन है शस्य - वितरण में क्षेत्रीय एवं सामयिक अंतर मिलता है । इसके साथ ही साथ प्रायः शस्य-स्वरूप के क्षेत्रीय बीमा में समानता की अपेक्षा विषमता अधिक मिलती है, क्योंकि किसी क्षेत्र विशेष का शस्य-स्वरूप वहाँ के भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, तकनीकी तथा प्रशासनिक इत्यादि अन्यायन्य कारकों से प्रभावित होता है । लोकनाथन[1] द्वारा मध्य प्रदेश के शस्य-स्वरूप को निर्धारित करने वाले कारकों में मृदा, वर्षा, सिंचाई, जोत-आकार, जनशक्ति, पशु, पूँजी, यातायात तथा बाजार आदि कारकों की विशिष्टता का अध्ययन किया गया है । इसके अतिरिक्त विभिन्न कृषि - अर्थव्यवस्थाओं के संदर्भ में फसल क्षेत्र में अंतर मिलता है । कृषि अर्थव्यवस्था के साथ शस्य स्वरूप एवं उनके क्षेत्र में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है । इस प्रकार कृषि

एवं आर्थिक विकास का घनिष्ठ संबंध है । उत्पादकता अभिस्थापित शस्य-स्वरूप वाले क्षेत्रों में आर्थिक विकास की गति तेज होती है । प्रस्तुत अध्ययन में शस्य स्वरूप की व्याख्या विभिन्न प्रभावी कारकों के संदर्भ में की गयी है । -

कटिहार प्रखण्ड में मौसम दशाओं के अनुरूप अर्थात् वर्षा, शरद एवं ग्रीष्म ऋतुओं में क्रमशः भदई, अगहनी, रबी एवं गरमा फसलों की खेती की जाती है । यहाँ यह स्पष्ट कर देना उपयुक्त होगा कि भदई एवं अगहनी फसलों की खेती वर्षाकाल में ही थोड़े अन्तराल के बाद की जाती है । रबी की फसल शरद तथा गरमा की फसलें ग्रीष्म ऋतु में बोई जाती है । भदई, अगहनी और गरमा तीनों में ही धान प्रमुख फसल है जो वर्षा ऋतु एवं ग्रीष्म ऋतु में अध्ययन क्षेत्र के भिन्न-भिन्न भागों में उत्पन्न की जाती है । अत: अध्ययन क्षेत्र की मुख्य फसल धान है जो वर्ष में तीन बार बोई एवं काटी जाती है । प्रखण्ड के अन्तर्गत सकल कृषित क्षेत्र 54113.37 एकड है जिसमें भदई (25.74%), अगहनी (40.77%), रबी (21.02%) तथा गरमा की फसलें (12.47%) क्षेत्र में उत्पन्न की जाती है । सर्वाधिक क्षेत्र अगहनी के अन्तर्गत विद्यमान है जो सारणी (6.1) से स्पष्ट है -

सारणी 6.1

कटिहार प्रखण्ड में **शस्य-प्रतिरूप** (1991)

क्रम संख्या	फसल	क्षेत्रफल(एकड़ मे)	प्रतिशत
1.	भदई	13926.95	25.74
2.	अगहनी	22061.03	40.77
3.	रबी	11376.14	21.02
4.	गरमा	6749.25	12.47
	सकल कृषित क्षेत्र	**54113.37**	**100.00**

स्रोतः जिला सांख्यिकीय कार्यालय, कटिहार, बिहार ।

SPATIAL CROPPING PATTERN IN KATIHAR PRAKHAND
1991
CROPS→
BHADAI
AGAHANI
RABI
GARMA
PERCENTAGE OF CROPS
25·7
40·7
21·0
12·6
PERCENT OF TOTAL CPOPPED AREA
10
9
8
7
6
5
4
3
2
1
Chandeli Bharra
Jagannath pur
Rajpara
Rampur
Jabara Paharpur
Vijaili
Dumaria
Mahmadia
Baluwa
Raj Bhawara
Dalan
Belawa
Borani
Doase
Sauriya
Dand Khora
Ragheli
Haflaganj
Medhepura
Parteli
NAME OF PANCHAYATS
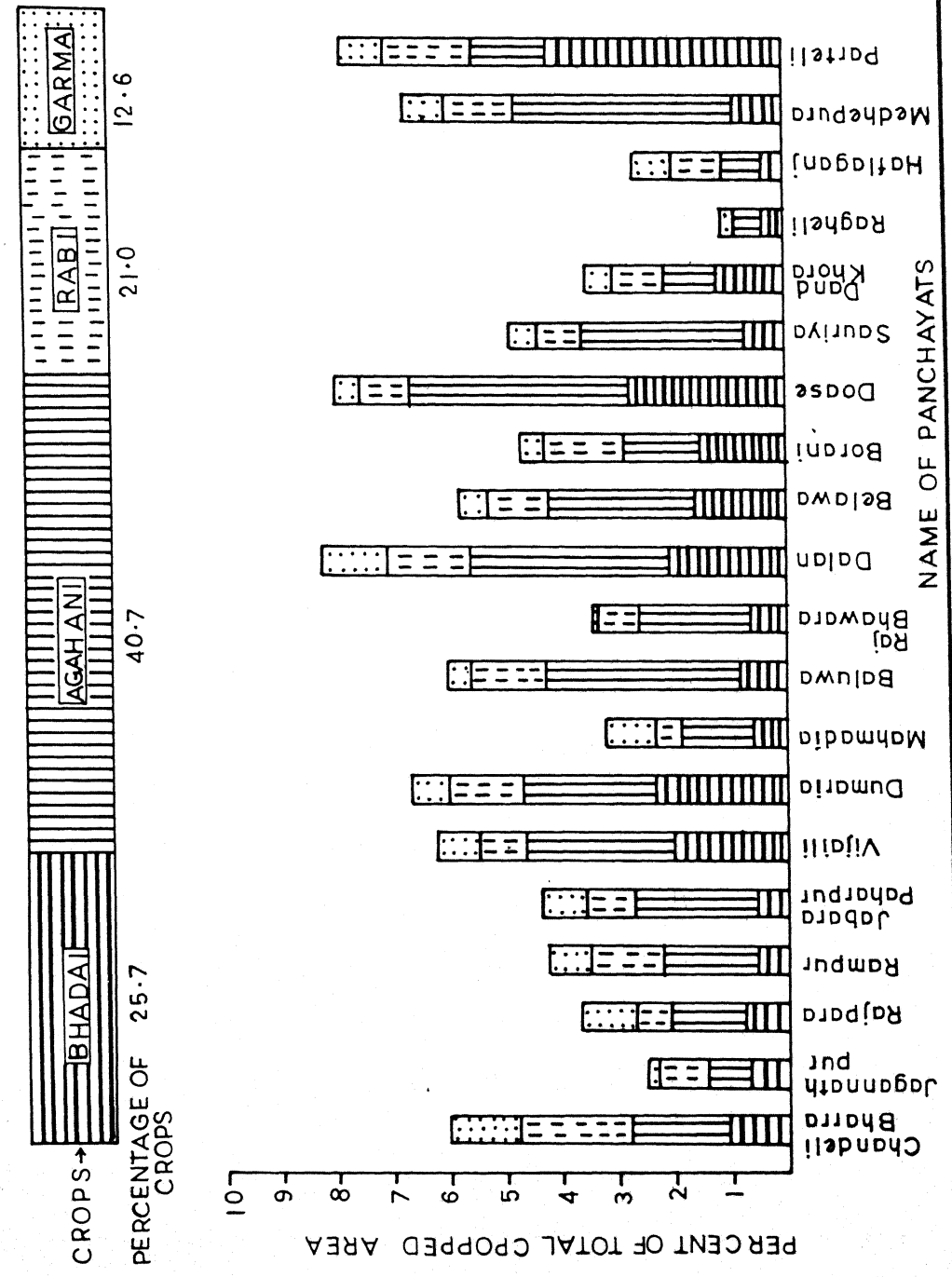
Fig·6·1

सारणी 6.2 एवं चित्र सख्या 6 । मे प्रखण्ड के सभी न्याय पंचायत स्तर पर सभी फसलो के क्षेत्रीय वितरण प्रतिरूप को प्रदर्शित किया गया है । इसके साथ ही न्याय-पंचायत स्तर पर सकल कृषित क्षेत्र को भी संगणित किया गया है । न्याय पंचायत स्तर पर सबसे अधिक सकल कृषित क्षेत्र का सान्द्रण न्याय पंचायत दलन में देखने को मिलता है, जहाँ सम्पूर्ण सकल क्षेत्र का 8 24% क्षेत्र संलग्न है । वरीयता क्रम में दूसरे और तीसरे स्थान पर दोआसे (8 09%), परतेली (7 78%), क्षेत्र सम्मिलित किए हुए है । इसके पश्चात् डुमरिया (6 71%), मधेपुरा (6.48%), बिजैली (6.26%), चन्देली भर्रा (6 05%) और बलुआ में (6 04%) क्षेत्र प्राप्त है । न्याय पंचायत सौरिया, बोरनी गोरगामा, जबड़ा पहाड़पुर और रामपुर के अन्तर्गत अध्ययन क्षेत्र का 4-5% सकल कृषित क्षेत्र प्राप्त है । न्यून सकल कृषित क्षेत्रफल वाले न्याय पचायतो मे राजपाडा, डण्डखोरा, राजभवाडा, महमदिया, हफलागंज एवं जगन्नाथपुर है । सकल कृषित क्षेत्र का न्यूनतम प्रतिशत न्याय पंचायत रघेली में (1.16%) है । इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र में सकल कृषित क्षेत्र का वितरण बहुत ही असमान है । अध्ययन क्षेत्र में सकल कृषित क्षेत्र मुख्य रूप से भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, तकनीकी एवं अन्यान्य कारकों से संबधित है । जहाँ उत्तम मृदा, पर्याप्त सिंचाई की सुविधा, यातायात, बाजार आदि कारकों की सुविधा है, वहाँ पर सकल कृषित क्षेत्र का उच्च प्रतिशत अध्ययन क्षेत्र में देखने को मिलता है । इस दृष्टि से उच्च कोटि के अन्तर्गत दलन, दोआसे, परतेली, डुमरिया, मधेपुरा, बिजैली और चन्देली भर्रा तथा बलुआ न्याय पचायते सम्मिलित है, जहाँ पर सकल कृषित क्षेत्र का प्रतिशत ऊँचा है ।

इन न्याय पंचायतों मे उच्च प्रतिशत होने का प्रधान कारण भौगोलिक कारकों की अनुकूलता एवं शहरी क्षेत्र से सन्निकटता के कारण है । मध्यम वर्ग के अन्तर्गत बेलवा, सौरिया, बोरनी गोरगामा, जबड़ा पहाडपुर, रामपुर, राजपारा, डण्डखोरा, राजभवाड़ा, महमदिया न्याय पंचायत सम्मिलित है, जहाँ पर उपर्युक्त न्याय पंचायतों के अपेक्षाकृत कम सुविधाओं की प्राप्यता है । न्यून वर्ग के अन्तर्ग न्याय पंचायत हफलागज, जगन्नाथपुर और रघेली सम्मिलित हैं, जहाँ सकल कृषित क्षेत्र का प्रतिशत अपेक्षाकृत अध्ययन क्षेत्र स्तर पर कम हैं । इन भागों में सकल कृषित क्षेत्र की कमी का मुख्य कारण प्रतिवर्ष बडी बाढों, जल-जमाव तथा विषम धरातल के कारण है ।

सारणी 6.2

कटिहार प्रखण्ड : फसल प्रतिरूप (1991)

(क्षेत्रफल एकड़ में)

क्र0सं0	न्याय पंचायत	भदई	प्रतिशत	अगहनी	प्रतिशत	रवी	प्रतिशत	गरमा	प्रतिशत	सकल कृषित क्षेत्र	प्रतिशत
1.	चन्देली भर्रा	548.57	16.74	957.80	29 23	1109 35	33 86	660 85	20.17	3275 57	6.05
2.	जगन्नाथपुर	395 54	28.33	401 35	28 74	436 55	31 26	162 85	11 67	1396 29	2.53
3.	राजपारा	412 05	20 94	773 90	39 32	356 65	18 12	425 40	21 62	1968.00	3 64
4.	रामपुर	287.50	12 36	954 84	41 04	740 88	31.84	343 65	14.76	2326 87	4 30
5.	जबड़ा-पहाड़पुर	281.54	11 93	1185 74	50 25	457.00	19 37	435 10	18 44	2359 38	4 36
6.	बिजैली	1099 45	32.42	1428 84	42 14	444 27	13 10	417 97	12 33	3390.53	6 26
7.	डुमरिया	1297 21	35 71	1260 42	34 70	722 11	19 88	352.63	9.70	3632.37	6 71
8.	महमदिया	315 80	17 94	669 90	38 05	283 25	16.09	491 55	27.92	1760 50	3.25
9	बलुआ	432 83	13.37	1901 52	58 15	719 31	21 99	216 25	6.61	3269 91	6 04
10.	राजभवाड़ा	360.91	19 33	1058.08	56 67	434 64	23 28	13 45	0 72	1867.08	3 45
11.	दलन	1124.50	25 21	1919 15	43 03	809 67	18.15	607.00	13.62	4460 32	8 24
12	बेलवा	754 95	24.00	1566.32	49 79	525 40	16.70	299 10	9.51	3145.77	5 84
13	बोरनी	817.64	32.21	676.83	26 67	803 67	31.66	239 21	9 43	2537 35	4 69

क्रमशः

14.	दोआसे	1522.99	34.80	2137.89	48.80	495.47	11.32	219.75	5.02	4376.10	8.09
15.	सौरिया	352.61	13.42	1585.43	60.40	443.81	16.89	244 64	9.31	2626.49	4.88
16.	डण्डखोरा	668 37	34.70	507.57	26.26	500.34	25.99	248.80	12 92	1925.08	3.56
17.	बघेली	242.35	38.57	316.08	50.30	46.21	7.35	23.68	3 77	628.32	1.16
18.	हफलागंज	250.20	17.26	375.75	25.92	505.30	34.86	318.00	21.94	1449.25	2 69
19.	मधेपुरा	516.55	14.74	1683.35	48.02	707.26	20.17	597.75	17 05	3504.91	6.48
20.	परतेली	2245 39	53 30	700.27	16 62	835.00	19.82	431.62	10 24	4212.28	7.78
	कुल योग	13926.95	**25.70**	22061.03	**40.70**	**11376.14**	**21.00**	6749.25	**12.60**	54113.37	

स्रोत :- जिला सांख्यिकी कार्यालय कटिहार (बिहार) ।

अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत फसल प्रतिरूप के वितरण में भी भिन्नता देखने को मिलती है (सारिणी 6 2) । सर्वाधिक सान्द्रण अगहनी (धान) फसल की है, जिसके अन्तर्गत 40·70% (22061 01 एकड़) क्षेत्र सम्मिलित है । चूँकि अध्ययन क्षेत्र में अगहनी हेतु सभी भौगोलिक दशायें उपयुक्त है अर्थात् पर्याप्त वर्षा, उच्च तापमान, मटियार-दोमट मिट्टी एवं निम्न धरातल होने के कारण अध्ययन क्षेत्र में अगहनी (धान) फसल की प्रतिशत सबसे अधिक है।-

वरीयता क्रम में दूसरा स्थान भदई फसलों का है , जिसके अन्तर्गत 25·71% (13926 95 एकड) क्षेत्र सम्मिलित है । - तृतीय क्रम में रबी फसलों का स्थान है, जिसके अन्तर्गत सकल कृषित क्षेत्र का 21% (11376 14 एकड़) क्षेत्र सम्मिलित है । भदई, अगहनी एव रबी की फसलो के अतिरिक्त अध्ययन क्षेत्र में गरमा की फसल की ग्रीष्मकाल में जहाँ पानी की विशेष सुविधा है, वहाँ उत्पन्न की जाती है , जिसका प्रतिशत 12·6% (6749 25 एकड़) है । इस प्रकार सारणी 6·2 से यह स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र में धान की तीन प्रकार की उपजें इसे क्रमश भदई, अगहनी, गरमा कहा जाता है, उत्पन्न की जाती है और इनमें न्याय पंचायत स्तर पर क्षेत्रीय विभेद देखने को मिलता है -

1951 से 1991 (चार दशकों) की अवधि मे अध्ययन क्षेत्र के चारों फसलों मे तीव्र वृद्धि हुई है । सर्वाधिक वृद्धि रबी फसल के अन्तर्गत (738·93%) है । वर्ष 1951 में रबी फसल 6 83% (1356 एकड) पर उत्पन्न की गयी थी जो बढकर 1991 में 21·05% (11376 एकड) में परिवर्तित हो गयी है । चार दशकों में 10026 एकड क्षेत्र की वृद्धि हुई है (सारणी 6·3) । रबी फसल के अन्तर्गत यह वृद्धि सिंचाई की सुविधाओं, नवीन कृषि पद्धति, उन्नत तकनीक, रासायनिक उर्वरकों तथा उन्नतशील बीजों आदि की सुविधा के कारण है ।

रबी के पश्चात वृद्धि क्रम मे दूसरा स्थान गरमा फसलों का है । 1951 से 1991 (चार दशकों में) 552·7% की वृद्धि पाई गयी है । वर्ष 1951 में इस फसल के अन्तर्गत 5·35% (1034 एकड़) भू-क्षेत्र सम्मिलित था जो बढ़कर 1991 में 12·49% (6749 एकड़)

हो गया है । रबी की ही भाँति सुविधाओं का प्राविधान गरमा फसलों के लिए भी था जिसके कारण अध्ययन क्षेत्र में वृद्धि हुई है । वरीयताक्रम मे तीसरा स्थान भदई फसलों का है जिसके अन्तर्गत 1951 से 1991 की अवधि मे 190.38% की वृद्धि हुई है । वर्ष 1951 में 24.04% (4796 00 एकड) पर भदई फसलों में सम्मिलित था जो बढकर 1991 में 25.7% (13927 एकड) में परिवर्तित हो गया है । सबसे कम वृद्धि 101.04% अगहनी फसल के अन्तर्गत है । इस फसल के अन्तर्गत वर्ष 1951 मे 10973 एकड़ क्षेत्र 1991 में 22.06 एकड़ क्षेत्र हो गया है । अत इस फसल के अर्न्तगत प्रतिवर्ष 2.5% की दर से वृद्धि हो रही है । 1951 मे ही इस फसल के अन्तर्गत सर्वाधिक क्षेत्र सम्मिलित था जिसके कारण तुलनात्मक दृष्टि से इसके अन्तर्गत कम वृद्धि हुई है ।

सारणी 6.3

कटिहार प्रखण्ड में विभिन्न फसलों में वृद्धि दर (1951-1991)

(क्षेत्रफल एकड़ में)

क्र0सं0	वर्ष	भदई	प्रतिशत	अगहनी	प्रतिशत	रबी	प्रतिशत	गरमा	प्रतिशत	योग सकल क्षेत्र
1.	1951	4796	24 04	10973	63 78	1356	6 83	1034	5 35	18159
2	1961	7478	25.51	15965	54.46	4235	14.46	1634	5.57	29312
3.	1971	10342	26 98	16950	44.22	6735	17.57	4305	11.23	38333
4	1981	11618	26 08	18809	42 22	8981	20.16	5141	11.54	44550
5	1991	13927	25 70	22061	40 77	11376	21 05	6749	12.49	54113
वृद्धि (% में)		**190.38%**		**101.04%**		**738.93%**		**552.7%**		**197.99%**

6.2(अ) भदई फसलों का शस्य प्रतिरूप :-

धान की शीघ्र पकने वाली फसल को स्थानीय कृषक (भदई) कहते हैं । इसकी बुआई जून के अन्तिम सप्ताह एवं जुलाई के प्रथम सप्ताह में की जाती है । इस फसल का

सारणी 6.4

कटिहार प्रखण्डः में फसलों (भदई, अगहनी, रबी, गरमा) का विवरण (1951)

(क्षेत्रफल एकड़ में)

क्र0सं0	न्याय पंचायत	भदई		अगहनी		रबी		गरमा		सकल कृषित क्षेत्र	
		क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत
1.	चन्देली भर्रा	215 86	20 24	511 51	47.49	200.50	18 78	249.86	13.12	1068.11	5 11
2.	जगन्नाथपुर	135 79	30 92	188 00	42.81	56.70	12.92	14.71	3 35	439.17	2 43
3.	राजपारा	123.63	17 81	413.90	60.11	44.62	6.48	107 41	15 60	688 58	3 81
4.	रामपुर	65.23	9 13	464 05	69.21	95.75	14 28	45.45	6 78	670 50	3 71
5.	जबडा पहाड़पुर	101.97	12.16	610 90	72.85	.31.45	8 37	55 51	6.62	838 58	4 64
6.	बिजैली	458 36	38 78	672.94	60.14	23 49	0.10	10.96	0.98	1118 97	6 54
7.	डुमरिया	437.86	34 71	780.22	61.85	10.95	0.98	31 03	2 46	1261 49	6 98
8.	महमदिया	80.02	14.24	286.93	51.05	11.73	2 09	99 00	17 62	562.07	3.11
9.	बलुआ	174.83	16 48	765.42	72.15	23.66	2 23	33 31	3.14	1060.88	5.87
10.	राजभवाड़ा	120 53	19.11	419 00	66 43	69 20	12.97	3.01	0.49	630.74	3.49
11.	दलन	335.62	22 87	843.81	57.50	135.01'	9.2	79.68	5.43	1467 52	8.12
12.	बेलवा	303.46	29 00	709.78	67.83	82.98	12 93	96 68	9 24	1046 42	5.79

क्रमशः

13.	बोरनी	256.23	30.23	436.10	51.45	155 29	18 32	8 47	1 00	847.62	4.69
14.	दोआसे	391.64	27.5	978 08	68.63	51 08	3.58	4 13	0 29	1425 15	7 88
15.	सौरिया	169.10	18 98	665.74	74 72	64 16	7 2	14 25	1 60	890.99	4 93
16.	डण्डखोरा	244.74	36.6	323.11	48.32	101 10	15 12	13 24	1 98	668.70	3.70
17.	रघैली	112.91	40 57	175.89	63.2	5.14	1.85	1.05	0 38	278 32	1 54
18.	हफलागंज	70.24	13.31	255.94	48.5	115.36	21 86	69.81	13 33	527 73	2 92
19.	मधेपुरा	256.99	21 81	825.08	70.02	45 60	3 87	50 66	4 30	1178 35	6 52
20.	परतेली	741.71	55 31	646 76	48 23	32.31	2.41	47 60	3 55	1341 01	7 42
	योग	**4796.72**	**24.04**	**10973.16**	**63.78**	**1356.08**		**1033.75**	**5.35**	**18159.71**	

स्रोत · जिला सांख्यिकीय कार्यालय कटिहार (बिहार)

N
KATIHAR PRAKHAND
AREA UNDER TOTAL BHADAI
CROPPING
1991
U.A.
PERCENTAGE OF TOTAL
CROPPED AREA
< 10
10 - 20
20 - 30
30 - 40
> 40
2 0 2 4 6
Km
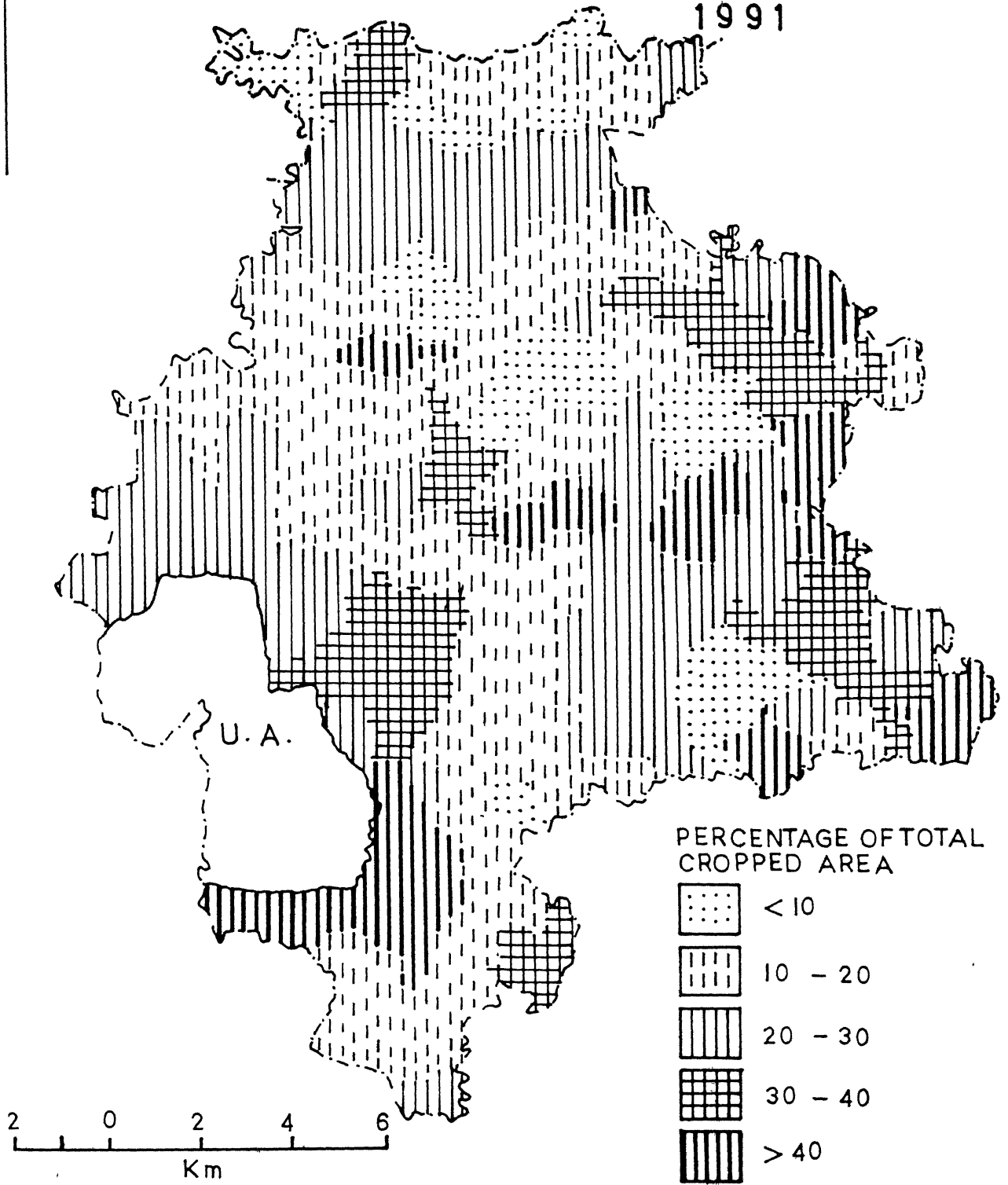
Fig. 6·2

प्रतिशत 25 60% (13926 95 एकड) है । प्रखण्ड स्तर पर भदई के अन्तर्गत क्षेत्रीय विभिन्नता मिलती है । भदई के अन्तर्गत सर्वाधिक क्षेत्रफल न्याय पंचायत परतेली (53.30%) तथा न्यून प्रतिशत न्याय पचायत जबड़ा पहाडपुर में (11.93%) देखने को मिलता है । सकल कृषित क्षेत्र के आधार पर वरीयता क्रम में न्याय पचायत रघैली (38.57%), डुमरिया (35.71%), दोआसे (34.8%), डण्डखोरा (34 7%), बिजैली (32.42%), बोरनी (32 21%), जगन्नाथपुर (28.33%), दलन (25 21%), बेलवा (24%) एवं राजपारा (20 94%) हैं । शेष सभी न्याय पंचायतों के अन्तर्गत भदई फसल 20% से कम क्षेत्र में सम्मिलित है । वर्ष 1951 से 91 (सारणी 6 2 एवं 6 4) के तुलनात्मक अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि कटिहार प्रखण्ड के अन्तर्गत चार दशकों मे 190% की वृद्धि हुई है । अध्ययन क्षेत्र के भदई फसल के वृद्धि का अध्ययन पाँच वर्गों में बाँटकर किया गया है -

1. **निम्न वृद्धि** :- इसके अन्तर्गत 125 से निम्न वृद्धि वाले न्याय पचायतों के सम्मिलित किया गया है । इस वर्ग मे वृद्धि 101% से ऊपर है । इसके अन्तर्गत न्याय पंचायत सौरिया, रघैली और मधेपुरा सम्मिलित है । चूँकि यह क्षेत्र कोशी की सहायक नदियों के प्रभाव क्षेत्र मे है, अत इनमें वृद्धि का स्वरूप निम्न कोटि का है ।

2. **सामान्य वृद्धि** :- इसके अन्तर्गत 125-150% वाले क्षेत्रों को सम्मिलित किया गया है । इसके अन्तर्गत न्याय-पचायत बिजैली, बलुआ तथा बेलवा सम्मिलित है । सामान्यतया ये क्षेत्र भी नदियों की बडी बाढ़ों से प्रभावित होते रहते हैं, अत इनके अन्तर्गत सामान्य वृद्धि स्वरूप देखने को मिलता है ।

3. **मध्यम वृद्धि** :- इसके अन्तर्गत 150-175% वाले न्याय - पंचायत को सम्मिलित किया गया है, जिसमे चन्देली भर्रा, और रघैली सम्मिलित हैं । उपर्युक्त दोनों की तुलना में इन न्याय-पंचायतों में अनुकूल दशाएँ मिलती है । अति वृष्टि से अत्यधिक जल-जमाव के कारण फसलें प्रभावित होती हैं । अपेक्षाकृत जल निकास की समस्या भी इस क्षेत्र में देखने को मिलती है ।

4. **उच्च वृद्धि** :- इस श्रेणी के अन्तर्गत 175-200% वृद्धि वाले न्याय पंचायत को सम्मिलित किया गया है । इसके अन्तर्गत न्याय पंचायत जगन्नाथपुर, जबडा पहाडपुर, डुमरिया तथा राजभवाडा सम्मिलित हैं । समतल धरातल सिंचाई की पर्याप्त सुविधा के साथ ही बाँगर क्षेत्र सम्मिलित है । बड़ी बाढों से अपेक्षाकृत कम प्रभावित होता है, जिसके कारण इस क्षेत्र को उच्च प्रतिशत वृद्धि प्राप्त है ।

5. **उच्चतम वृद्धि** :- इस श्रेणी के अन्तर्गत 200% से अधिक वृद्धि वाले न्याय पंचायतों को सम्मिलित किया गया है । इस कोटि में अध्ययन क्षेत्र के आठ न्याय-पंचायत सम्मिलित हैं । सर्वाधिक वृद्धि न्याय पंचायत रामपुर मे 337.68 है । इसके अतिरिक्त न्याय पंचायत राजपारा, महमदिया, दलन, बोरनी गोरगामा, दोआसे, हफलागज और परतेली है ।

इनमें अधिकांश न्याय पंचायत शहरी क्षेत्र कटिहार से सन्निकट हैं । इसके अतिरिक्त उर्वर मृदा, उच्च कृषि तकनीक के अलावे अपेक्षाकृत उच्च धरातलीय स्वरूप वाले क्षेत्र हैं , जहाँ नदियों के बाढ का जल नहीं पहुँच पाता । साथ ही जल निकास की भी पर्याप्त सुविधा है । सभी प्रकार से कृषि के लिए यह अनुकूल क्षेत्र है । अत इन न्याय पंचायतों मे उच्चतम वृद्धि हुई है ।

(ब) ग्राम स्तर पर भदई फसलों का क्षेत्रीय वितरण :-

ग्राम स्तर पर न्यूनतम 4 08% से लेकर उच्चतम 47 95% तक क्षेत्र भदई फसलों के अन्तर्गत लगा हुआ है, (चित्र सख्या 6.2) ग्राम स्तर पर भदई फसलों के क्षेत्रीय वितरण को पाँच भागों में वर्गीकृत कर अध्ययन किया गया है (सारणी - 6.5) ।

1. **उच्चतम श्रेणी** :- (>40%) से अधिक वाले भदई फसल के अन्तर्गत 19 गाँव (15.2%) सम्मिलित है । इनमे सबसे अधिक सात गाँव न्याय पंचायत परतेली में सम्मिलित हैं । इसके अतिरिक्त न्याय पचायत रघैली में (5), डुमरिया मे (2) तथा चन्देल एवं महमदिया, बलुआ , बोरनी, डण्डखोरा में एक-एक गाँव प्राप्त हैं । इन न्याय पंचायतों के गाँवों में भदई फसल की लोकप्रियता का मुख्य कारण मटियार-दोमट मिट्टी तथा शहरी सन्निकटता है,

सारणी 6.5

कटिहार प्रखण्ड : ग्राम्य स्तर पर भदई फसलों का क्षेत्रीय वितरण (1991)

क्र0 सं0	न्याय पचायत	उच्चतम >40	उच्च 30-40	मध्यम 20-30	निम्न 10-20	निम्नतम <10
1.	चन्देली भर्रा	1	1	1	3	3
2.	जगन्नाथपुर	-	2	2	-	-
3.	राजपारा	-	-	3	6	1
4.	रामपुर	-	-	-	3	-
5.	जबडा पहाडपुर	-	-	-	3	4
6.	बिजैली	-	4	1	-	-
7.	डुमरिया	2	2	1	2	-
8	महमदिया	1	1	-	4	1
9	बलुआ	1	-	1	3	3
10	राजभवाडा	-	-	2	2	-
11.	दलन	-	2	-	-	-
12.	बेलवा	-	2	-	-	-
13	बौरनी	1	2	-	4	-
14.	दोआसे	-	2	1	1	1
15.	सौरिया	-	-	3	2	1
16.	डण्डखोरा	1	-	1	-	-
17.	रघैली	5	3	2	1	-
18.	हफलागंज	-		1	1	-
19.	मधेपुरा	-	-	-	8	2
20.	परतेली	7	1	-	1	-
	योग	**19**	**22**	**21**	**46**	**17**
	प्रतिशत	**15.2%**	**17.6%**	**16.8%**	**36.8%**	**13.6%**

इसके साथ ही उर्वरक मृदा एवं अन्यान्य सुविधाओं के कारण प्रतिशत उच्चतम है । शहरी क्षेत्र कटिहार के पूर्वी भाग में तथा अध्ययन क्षेत्र के पूर्वी सीमान्त क्षेत्रों में उच्चतम गहनता के कृष्य क्षेत्र भदई फसल के अन्तर्गत दृष्टव्य है । मध्यवर्ती भाग में भी छिट-पुट रूप में उच्चतम प्रतिशत के क्षेत्र प्राप्त हैं (चित्र संख्या - 6.2) ।

2. **उच्च श्रेणी** :- (30-40%) के अन्तर्गत 17.6% (22 गाँव) सम्मिलित हैं । इसके अन्तर्गत सर्वाधिक संख्या न्याय पंचायत बिजैली में प्राप्त है । इसके पश्चात् दूसरे स्थान पर न्याय पंचायत रघैली हैं, जहाँ गाँवों की संख्या तीन है । न्याय पंचायत दोआसे, बोरनी, बेलवा, दलन, डुमरिया तथा जगन्नाथपुर में क्रमश दो-दो गाँवों में तथा महमदिया, चन्देली एवं परतेली में क्रमश: एक-एक गाँव इस वर्ग मे सम्मिलित है । इन उक्त सभी गाँवों में भदई के लिए अनुकूलतम दशाएँ पाई जाती है । इस वर्ग के अधिकांश गाँव शहरी क्षेत्र से लगे हुए मिलते हैं । पूर्वी सीमान्त क्षेत्रों से लगी पेटी के रूप में उच्च वर्ग के क्षेत्र विस्तृत हैं । मध्यवर्ती भाग में भी उच्च श्रेणी के भू-क्षेत्र यत्र-तत्र देखने को मिलते हैं - (चित्र संख्या- 6 2)

3. **मध्यम श्रेणी** :- (20-30%) के अन्तर्गत अध्ययन क्षेत्र के 16 8% (21 गाँव) सम्मिलित हैं । इसके अन्तर्गत सर्वाधिक तीन गाँव न्याय पंचायत सौरिया एवं राजपारा के गाँव सम्मिलित हैं । इसके अतिरिक्त जगन्नाथपुर, राजभवाडा, बेलवा तथा रघैली न्याय पंचायतों के दो-दो गाँव इस श्रेणी में प्राप्त हैं तथा न्याय पचायत चन्देली, बिजैली, डुमरिया, बलुआ, दोआसे, डण्डखोरा तथा हफलागंज के क्रमश: एक-एक गाँव इस श्रेणी मे प्राप्त है ।

4. **निम्न श्रेणी** :- (10-20%) के अन्तर्गत 36.8% (46 गाँव) सम्मिलित हैं । इसके अन्तर्गत सर्वाधिक आठ गाँव मधेपुरा न्याय पंचायत में प्राप्त हैं । दूसरा स्थान राजपारा का है, जहाँ 6 गाँव इस श्रेणी मे सम्मिलित है । महमदिया तथा बोरनी न्याय पंचायतों के चार-चार गाँव इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं । इस श्रेणी के अन्तर्गत अधिक गाँव आने का मुख्य कारण प्रतिवर्ष बाद विभीषिका है तथा कोशी, कमला, गिदरी, सौरा आदि सहायक नदियों द्वारा धरातल ऊबड-खाबड कर दिया गया है । न्याय पंचायत जगन्नाथपुर, बिजैली, दलन, डण्डखोरा में इस श्रेणी के अन्तर्गत कोई गांव नहीं है ।

5. **निम्नतम श्रेणी** - (<10%) इसके अन्तर्गत 17 गाँव सम्मिलित है। सर्वाधिक संख्या जबडा पहाडपुर में 4 पाई जाती है । इसके पश्चात् न्याय पचायत बलुआ में तीन गाँव तथा मधेपुरा, सौरिया, दोआसे, बेलवा, महमदिया, राजापारा मे केवल एक गाँव इसके अन्तर्गत मिलते है । अध्ययन क्षेत्र के ये गाँव भी कोसी एव उसकी सहायक नदियों से प्रभावित होते रहते है । इस श्रेणी का प्रसार अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी-पश्चिमी भाग, मध्यवर्ती तथा दक्षिणी-पूर्वी क्षेत्रों मे है । इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत निम्न एवं निम्नतम श्रेणी के अन्तर्गत लगभग 50% से अधिक गाँव (63) मिलते हैं । इन वर्गों में अधिक गाँव होने के मुख्य कारण यह है कि वर्षा काल में इन क्षेत्रो में बार-बार बाढ़ों से धन-जन की हानि होती है यहाँ कृषक इसी कारण भदई फसलों के अन्तर्गत बहुत कम क्षेत्र रखना चाहते है । उदाहरण के लिए पेगुआ (4 58%), हरषेली (4.08%), छोटकी रतनी (5.67%), बलुआ (4.84%), मिरचाई (6.19%), मघैली (6 64%), मथुरापुर (6 2%) आदि ऐसे गाँव है जहाँ भदई क्षेत्र के अन्तर्गत सकल बोये गये क्षेत्र के (7%) से कम भू-भाग सम्मिलित हैं । भदई के अन्तर्गत सबसे महत्वपूर्ण फसल धान है जिसका विस्तार सकल क्षेत्र का 13.35% (7224 एकड़) है, जो अध्ययन क्षेत्र की सबसे महत्वपूर्ण फसल है । इसकी कृषि सबसे अच्छी मृदा में की जाती है । इसका विस्तार न्याय-पंचायत स्तर पर सभी भागों में मिलता है ।

इस क्षेत्र की दूसरी महत्वपूर्ण फसल मक्का है जो सकल कृषित क्षेत्र का 5.25% (2845 एकड़) पर उत्पन्न किया जाता है । मक्के की फसल उन भागों में की जाती है जहाँ मिट्टी बलुई प्रकार की मिलती है तथा जल निकास की उत्तम व्यवस्था मिलती है । इस फसल के लिए शुष्क - आर्द्र जलवायु उपयुक्त होती है । मक्के की खेती अध्ययन क्षेत्र में तीन बार ली जाती है । पहले की अपेक्षा मक्के के क्षेत्र मे कमी आई है । इसकी उपज छिट-पुट रूप में अध्ययन क्षेत्र के सभी न्याय पंचायत में उत्पन्न की जाती है ।

व्यावसायिक फसल के रूप में पटसन महत्वपूर्ण उपज है । चूँकि कटिहार जूट उद्योग में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है इसलिए यहाँ पर इस उद्योग के लिए भरपूर पटसन उत्पन्न किया जाता है । यहाँ पर आज से लगभग 80 वर्ष पूर्व पटसन उद्योग शुरू किया गया था । इस उद्योग का प्रभाव पटसन की खेती पर भी पड़ा पटसन की कीमत बढ़ने के साथ ही क्षेत्र-विस्तार भी हो जाता है -

वर्ष 1991-92 मे सकल कृषित क्षेत्र का 3 98% (2153 एकड़) क्षेत्र पटसन की खेती मे सम्मिलित था । क्षेत्र में इस फसल की सकल खेती मटियार, दोमट प्रकार की मिट्टी में की जाती है । हरी शाक-सब्जियों की खेती 1.54% (836 एकड) क्षेत्र पर की जाती है । गाँव के समीपस्थ उर्वक भूमियों पर तरकारी की खेती की जाती है । इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से नेनुआ, करैला, लौकी, सतपुतिया, बोडा आदि उत्पन्न की जाती है -

इन उपर्युक्त उपजों के अतिरिक्त 1.08% (584 एकड़) क्षेत्र पर बाजरे की खेती हुई । प्राय ऊँची भूमियों पर इसकी खेती अपेक्षाकृत न्यून उर्वरता वाले क्षेत्रों पर ली जाती है ।

अध्ययन क्षेत्र मे दलहन का प्रतिशत 0 5% (285 एकड़) है जो सबसे कम क्षेत्र में विस्तृत है (सारणी - 6 6) । इसकी उपज अपेक्षाकृत निम्न प्रकार की उर्वरता वाली भूमियों पर उत्पन्न की जाती है ।

इन उपर्युक्त फसलों के अतिरिक्त ज्वार चरी (हरा चारा) शकरकन्द, तिल, मूँग, उरद, कुल्थी आदि फसलों को सम्मिलित किया जाता है जो कटिहार प्रखण्ड के सकल कृषित क्षेत्र के अतिन्यून भाग पर आवश्यकता के अनुरूप बोई जाती है । इन फसलों के अन्तर्गत अपेक्षाकृत कम उपजाऊ भूमि का उपयोग किया जाता है । यत्र-तत्र मक्का-अरहर, बाजरा-अरहर, तथा केले के साथ भी मक्के की खेती का प्रचलन देखने को मिलता है ।

6-3 (अ) अगहनी फसलों का शस्य-प्रतिरूप :-

धान की देर से पकने वाली फसल जड़इन या अगहनी की संज्ञा दी जाती है। अध्ययन क्षेत्र मे इस फसल की खेती स्थानान्तरण विधि से की जाती है । इस विधि के अन्तर्गत पहले बीज को क्यारियों मे बो देते है, जब पोधा चार सप्ताह में तैयार हो जाता है तो उन्हें उखाडकर पहले से तैयार किये गये खेत में तीन-चार पौधों को एक-एक साथ 20-25 से0मी0 के अन्तर पर रोप दिया जाता है । यह विधि अध्ययन क्षेत्र में विशेष लोकप्रिय सिद्ध हुई है । भदई धान की अपेक्षा प्रति एकड़ उत्पादन अधिक होती है । कटिहार प्रखण्ड में अगहनी

सारणी 6.6

कटिहार प्रखण्ड फसलें (भदई, अगहनी, रबी, गरमा) का वितरण (1991)

(क्षेत्रफल एकड़ में)

क्र0सं0	फसल	भदई क्षेत्रफल	सकल कृ0 का प्रतिशत	अगहनी क्षेत्रफल	सकल कृ0का	रबी क्षेत्रफल	सकल कृ0का	गरमा क्षेत्रफल	सकल कृ0का	कुल सकल क्षेत्रफल	कुल सकल क्षेत्रफल % में
1.	धान	7224		14835				3321		25380	
	प्रतिशत	51.87	13 35	67.24	27.41			49.21	6.14		46.90
2	मक्का	2845				2134		1054		6033	
	प्रतिशत	20 43	5.25			18.76	3 94	15.62	1.95		11.15
3.	बाजरा	585								585	
	प्रतिशत	4.19	1.08								1.08
4.	दलहन	285		5215		1655		875		8030	
	प्रतिशत	2.05	0 50	23.64	9 64	14.55	3 06	12.96	1.62		14.84
5.	तरकारी	836		2011		1528				4375	
	प्रतिशत	6.00	1.54	9.13	3.72	13.43	2.82				8.08
6.	पटसन	2153								2153	
	प्रतिशत	15.46	3 98								3.98
7.	तिलहन	-	-			784				784	
	प्रतिशत					6 89	1 54				1.45
8	गेहूँ	-	-			5275				5275	
	प्रतिशत					46.37	9.75				9.75
9.	फल	-	-					1499		1499	
								22 21	2.77		2.77
		13927		**22061**		11376		6749		**54113**	
		100.00	**25.70**	**100.00**	**40.77**	100.00	21.95	100.00	**12.48**		**100.00**

स्रोत - प्रखण्ड कार्यालय कटिहार, बिहार ।

धान की खेती उन खेतों मे की जाती है जहाँ हमेशा आर्द्रता बनी रहती है । इस फसल की कृषि अध्ययन क्षेत्र में विशेषकर निम्न धरातल वाली भूमियों पर मटियार मिट्टी के क्षेत्रों जहाँ आर्द्रता प्रर्याप्त होती है, उत्पन्न की जाती है ।

अध्ययन क्षेत्र में अगहनी धान की खेती के अन्तर्गत सकल कृषित क्षेत्र का 40.7% (22061 एकड) क्षेत्र पर की जाती है । अध्ययन क्षेत्र में भदई धान के अपेक्षा अगहनी धान की खेती अधिक भू-भाग (15%) पर की जाती है । न्याय पचायत स्तर पर वितरण प्रतिरूप के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि इस फसल की खेती के सान्द्रण में न्याय-पंचायत स्तर विभिन्नता परिलक्षित होती है । सर्वाधिक सान्द्रण न्याय पंचायत सौरिया में 60.4% तथा न्यूनतम न्याय पंचायत परतेली मे 16 62% प्राप्त है । इसके अलावा अतिरिक्त क्रमानुसार इनका क्षेत्रीय वितरण न्याय पंचायत बलुआ (58.15%), राजभवाडा (56.67%), जबड़ा पहाडपुर (50.25%), रघैली (50.3%), बेलवा (49.79%), दोआसे (48.8%), मघेपुरा (48.02%), दलन (43.03%), बिजैली (42.14%), एवं रामपुर (41.04%) के भू-क्षेत्र पर अगहनी फसल की खेती की जाती है । न्याय-पचायत राजपारा, महमदिया, डुमरिया में 30-40% के मध्य कृषि क्षेत्र पर अगहनी धान की खेती की जाती है । शेष न्याय पंचायतों में चन्देली भर्रा, जगन्नाथपुर, बोरनी, डण्डखोरा, हफलागंज तथा परतेली में अगहनी धान की खेती 30% से कम भू-क्षेत्र पर की जाती है । इस प्रकार इस फसल के अन्तर्गत न्याय पंचायत -स्तर पर क्षेत्रीय भिन्नता देखने को मिलती है ।

वर्ष 1951-91 की तुलनात्मक अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि अध्ययन क्षेत्र में अगहनी धान में 101.04% की वृद्धि हुई है (सारणी 6.2 और 6.4) अधिकतम वृद्धि 152.52% न्याय पंचायत राजभवाड़ा में तथा न्यूनतम 8 27% न्याय पंचायत परतेली में देखने को मिलती है । कटिहार प्रखण्ड के अगहनी फसल को वृद्धि स्वरूप पाँच वर्गों में बाँटकर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

1. **अति न्यून वृद्धि** :- (<100%) इसके अन्तर्गत 9 न्याय पंचायत सम्मिलित हैं - जिसमें चन्देली, जगन्नाथपुर, जबड़ा पहाडपुर, डुमरिया, बोरनी, डण्डखोरा, रघैली, हफलागंज

N
KATIHAR PRAKHAND
AREA UNDER TOTAL AGAHANI
CROPPING
1991
U.A.
PERCENTAGE OF TOTAL
CROPPED AREA
< 10
10 20
20 30
30 40
> 40
0 2 4 6
Km
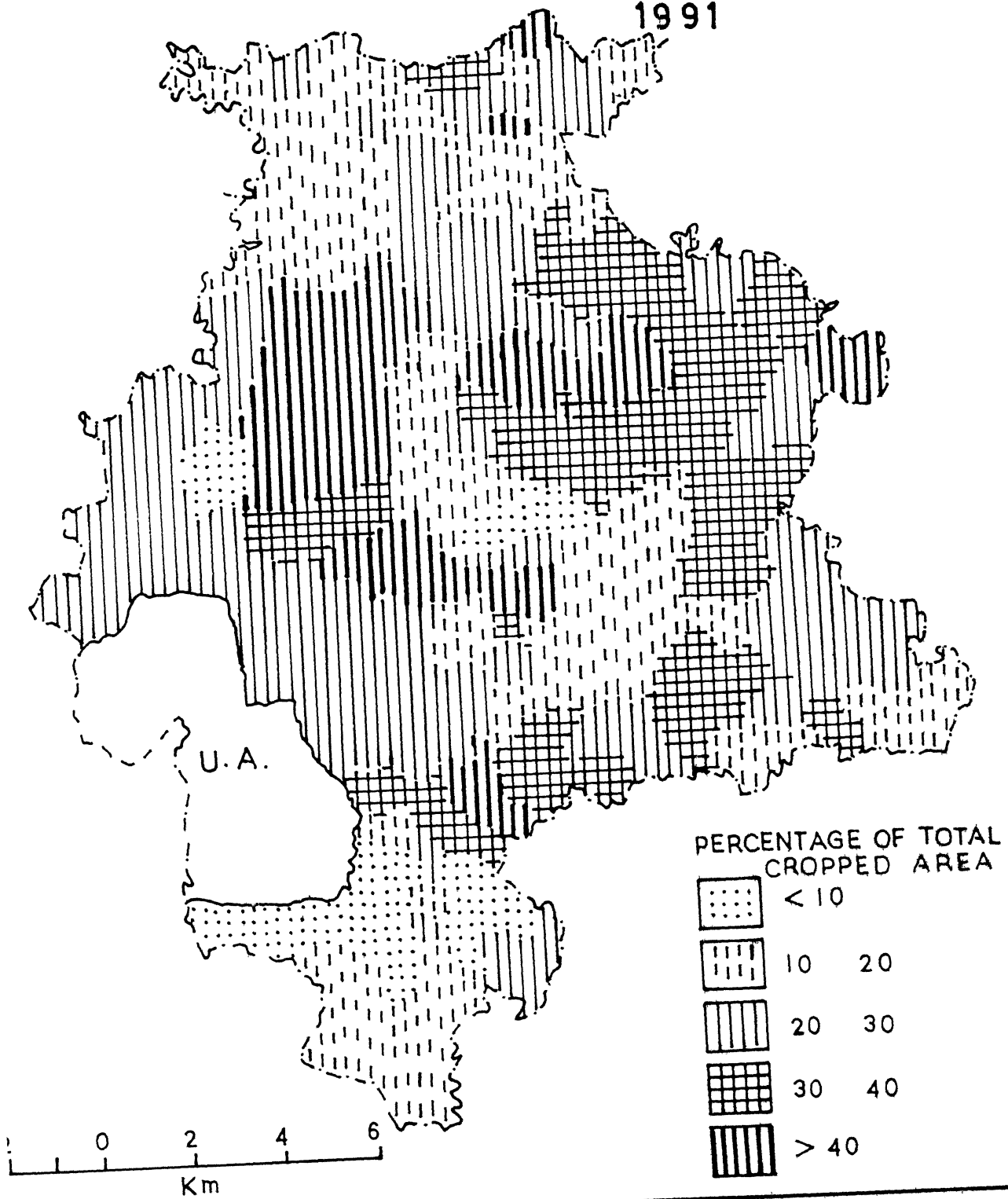
Fig.6.3

तथा परतेली न्याय पंचायत है । चूँकि इन न्याय पचायतों मे भदई धान के क्षेत्र का प्रतिशत अपेक्षाकृत अधिक है, जिसके कारण अगहनी धान के अन्तर्गत निम्न प्रतिशत मिलता है ।

2. **न्यून वृद्धि** :- (100-200%) इस प्रतिशत वृद्धि के अन्तर्गत पाँच न्याय पंचायत सम्मिलित है। इनमें न्याय पंचायत जगन्नाथपुर, रामपुर, बिजैली, दोआसे एवं मधेपुरा है । इन न्याय-पचातों के अंतर्गत अपेक्षाकृत उच्च भूमियों पर जहाँ मटियार दोमट प्रकार की मिट्टी हैं, वहाँ भदई धान की खेती लोकप्रिय है । अत इस श्रेणी में उन भू-भागों को रखा गया है, जहाँ निम्न धरातलीय भू-भगों पर पर्याप्त आर्द्रता मिलती है और अगहनी धान की खेती की जाती है ।

3. **मध्यम वृद्धि** :- (120-140%) इसके अन्तर्गत चार न्याय पंचायत सम्मिलित हैं जिसमें महमदिया, दलन, बेलवा और सौरिया प्रमुख है । इन न्याय-पंचायतों में अपेक्षाकृत निम्न धरातलीय भू-भाग का क्षेत्र प्रतिशत अधिक है । उपजाऊ , समतल, मटियार मिट्टी का क्षेत्र विस्तृत है । आर्द्रता भी पर्याप्त मिलती है । अत अगहनी धान की खेती की जाती है-

4. **उच्च वृद्धि** :- (>140%) इसके अन्तर्गत न्याय पंचायत बलुआ और राजभवाडा को सम्मिलित करते हैं । उपर्युक्त सभी क्षेत्रों की तुलना में इन न्याय पचायतों के अन्तर्गत अगहनी धान की खेती के लिए अनुकूल भौगोलिक दशाएँ विद्यमान हैं । बाढों एवे जल जमाव से भी फसल पूर्णतया वंचित रहती है, जबकि उपर्युक्त के अन्तर्गत बाढ़ों एवं जल-जमाव से फसलें विशेष रूप से प्रभावित हो जाती हैं ।

(ब) ग्राम्य स्तर पर अगहनी फसलों का क्षेत्रीय वितरण :-

गाँव स्तर पर भी अगहनी फसल के क्षेत्रीय वितरण में विभिन्नता मिलती है । न्याय पंचायत परतेली के बेगना गाँव में इस फसल के अन्तर्गत न्यूनतम 4.23% क्षेत्र संलग्न है जबकि राजापारा न्याय पंचायत के ग्राम सपनी में इस फसल के अन्तर्गत 79.55% क्षेत्र सम्मिलित हैं । इस प्रकार ग्राम्य स्तर पर अगहनी फसल की क्षेत्रीय वितरण को पाँच श्रेणियों में बाँटकर वितरण प्रतिरूप को प्रदर्शित किया गया है (चित्र सं0 -6.3 एवं सारणी सं0 -6.7) ।

सारणी 6.7

कटिहार प्रखण्ड: ग्राम्य स्तर पर अगहनी फसलों का क्षेत्रीय वितरण (1991)

क्र0सं0	न्याय पचायत	उच्चतम >60	उच्च 45-60	मध्यम 15-45	निम्न 5-30	निम्नतम <15
1	चन्देली भर्रा	-	2	4	3	-
2	जगन्नाथपुर	-	-	3	1	-
3	राजपारा	2	1	3	3	1
4	रामपुर	1	-	2	-	-
5	जबडा पहाडपुर	-	6	1	-	-
6.	बिजैली	-	1	4	-	-
7	डुमरिया	-	1	3	3	-
8.	महमदिया	-	3	2	2	-
9.	बलुआ	3	2	3	-	-
10.	राजभवाड़ा	1	2	-	-	1
11.	दलन	-	-	2	-	-
12.	बेलवा	1	2	3	1	-
13.	बोरनी	1	1	2	1	2
14.	दोआसे	1	3	1	-	-
15.	सौरिया	1	5	-	-	-
16.	डण्डखोरा	-	-	-	2	-
17.	रघैली	-	5	4	2	-
18.	हफलागंज	-	-	-	2	-
19.	मधेपुरा	3	3	3	1	-
20.	परतेली	-	-	3	2	4
	योग	**14**	**37**	**43**	**23**	**8**
	प्रतिशत	**11.2%**	**29.6%**	**34.4%**	**18.4%**	**6.4%**

1. **उच्चतम श्रेणी** :- (>60%) इसके अन्तर्गत 11.2% (14 गाँव) सम्मिलित हैं । इस श्रेणी के अन्तर्गत सर्वाधिक गाँव बलुआ और मधेपुरा में क्रमश 3-3 एवं राजपारा में दो तथा रामपुर, राजभवाडा, बेलवा, बोरनी, दोआसे, सौरिया में 1-1 गाँव सम्मिलित हैं । शेष न्याय पंचायतों के कोई भी गाँव इस श्रेणी में सम्मिलित नहीं है । अगहनी धान के अन्तर्गत उच्चतम प्रतिशत उन भू-भागों में देखने को मिलता है, जहाँ अपेक्षाकृत धरातल निम्न है, मिट्टी मटियार प्रकार की हैं और जहाँ मिट्टी में पर्याप्त आर्द्रता बनी रहती है । इसके साथ ही इस प्रतिशत वाले क्षेत्र में जलाभाव की स्थिति मे सिंचाई की सुविधा भी सुलभ है अत उच्चतम प्रतिशत इस फसल के अन्तर्गत मिलती है ।

2. **उच्च श्रेणी** :- (45-60%) इसके अन्तर्गत 30% (37) गाँव सम्मिलित हैं । इस श्रेणी के अन्तर्गत सर्वाधिक 6 गाँव जबडा पहाडपुर, तथा 5-5 गाँव सौरिया और रघैली न्याय पंचायतों में मिलते हैं । महमदिया, दोआसे, मधेपुरा न्याय - पंचायतों के अन्तर्गत तीन गाँव इस श्रेणी में सम्मिलित है । बोरनी, डुमरिया, बिजैली तथा राजपारा की एक-एक गाँव इस कोटि में प्राप्त हैं । उच्च प्रतिशत क्रम उन्ही गाँवों को प्राप्त है जहाँ इस फसल के लिए भौगोलिक दशाएँ अनुकूल है, अर्थात् समतल धरातल , उर्वर मटियार मिट्टी तथा पर्याप्त आर्द्रता विद्यमान हो ।

3. **मध्यम श्रेणी** :- (30-45%) इसके अन्तर्गत 34.4% (43) गाँव सम्मिलित हैं । इस श्रेणी क्रम मे सर्वाधिक चार गाँव चन्देली भर्रा, बिजैली, रघैली, न्याय पंचायतों में प्राप्त हैं जगन्नाथपुर, राजपारा, बिजैली, बलुआ, बेलवा, मधेपुरा, परतेली के तीन-तीन गाँव सम्मिलित है । बड़ी बाढों से एवं जल-जमाव से फसलें नष्ट हो जाती है । सिंचाई की सुविधा भी पर्याप्त नही है । अतः इस भाग में सूखा से फसलें प्रभावित होती रहती हैं ।

4. **निम्न श्रेणी** :- (15-30%) इसके अन्तर्गत 18.4% (30%) गाँव सम्मिलित है । इस वर्ग में सर्वाधिक 3-3 गाँव चन्देली भर्रा, राजपारा तथा डुमरिया न्याय पंचायत में मिलते हैं परतेली, हफलागंज, रघैली, सौरिया, महमदिया न्याय पंचायतों के अन्तर्गत दो-दो गाँव सम्मिलित हैं । मधेपुरा, बोरनी, बेलवा तथा जगन्नाथपुर के 1-1 गाँव इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं

जल-जमाव एवं नदियों की बाढ़ों से फसलें नष्ट होती रहती है । इसलिए इस श्रेणीक्रम में उक्त गाँव के अन्तर्गत अपेक्षाकृत कम प्रतिशत मिलता है ।

5. **निम्नतम श्रेणी** :- (<15%) इसके अन्तर्गत 6.4% (8) गाँव दुर्गापुर, बघौर, डहेरिया, बेगना, बोरनी गोरगामा, राम बहादुर पुर, कदेपुरा आदि मिलते हैं । ये गाँव अध्ययन क्षेत्र के मध्यवर्ती पश्चिमी तथा दक्षिणी भागों में विस्तृत हैं । कोशी और उसकी सहायक नदियों की बाढ़ों से तथा अतिवृष्टि के कारण अत्यधिक जल,जमाव के कारण इस श्रेणी के अन्तर्गत अपेक्षाकृत न्यूनतम भू-क्षेत्र सम्मिलित है । धीरे-धीरे अगहनी धान के क्षेत्रों मे भदई धान की उन्नतशील जातियों की खेती भी शुरू हो गयी है ।

6.4 (अ) रबी फसलों का शस्य प्रतिरूप :-

रबी फसल के अन्तर्गत कई महत्वपूर्ण फसलें उगाई जाती हैं । वर्ष 1991 में सकल बोये गये क्षेत्रफल का 21% (11376 14 एकड़) क्षेत्र पर लगा हुआ है जो अध्ययन क्षेत्र के भदई एवं अगहनी की अपेक्षा कम हैं, लेकिन रबी फसलों से कृषकों को महत्वपूर्ण खाद्यान्नों की प्राप्ति होती है ।

रबी के फसलों के अन्तर्गत गेहूँ, दलहन (चना, मटर) जौ, तिलहन, हरी सब्जियाँ एवं मक्का प्रमुख हैं, जिनकी बुआई अक्टूबर के अंतिम सप्ताह से लेकर नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक की जाती है । ये फसलें मार्च अप्रैल तक पक कर तैयार हो जाती है ।

रबी फसल के अन्तर्गत न्याय पंचायत स्तर पर पर्याप्त विभिन्नता देखने को मिलता है । (सारणी 6.2) सर्वाधिक क्षेत्र न्याय पचायत हफलागंज में 34.86% प्राप्त है तथा अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत न्यून क्षेत्र न्याय पचायत रघैली में 7.35% है । इसके अतिरिक्त चन्देली भर्रा (33.86%), रामपुर (31 84%), बोरनी (31.66%), जगन्नाथपुर (3.26%) न्याय पंचायतों के क्षेत्र रबी फसलों के अन्तर्गत सम्मिलित हैं । न्याय पंचायत मधेपुरा, डण्डखोरा, राजभवाड़ा, बलुआ के अन्तर्गत कृषित क्षेत्र 20-30% के मध्य सम्मिलित है जबकि शेष न्याय पंचायतों में रबी फसलों के अंतर्गत 20% से कम क्षेत्र सम्मिलित है जिनमें रघैली, परतेली, दोआसे, सौरिया,

बेलवा, बिजैली, राजपारा, जबडा-पहाडपुर, डुमरिया, महमदिया एवं दलन न्याय पंचायत हैं।

रबी मे वर्ष 1951-91 (चार दशकों) के दौरान 738.89% की वृद्धि दृष्टव्य है (सारणी 6 2 और 6 4) । सबसे उच्च वृद्धि न्याय पचायत परतेली में 2484.33% की है । जबकि न्यून वृद्धि न्याय पचायत हफलागंज मे 338.02% की है । भदई एवं अगहनी की तुलना मे रबी की फसल के अन्तर्गत अत्यधिक वृद्धि हुई है । अध्ययन क्षेत्र मे प्रतिशत वृद्धि को पाँच वर्गो में विभाजित कर वृद्धि को स्पष्ट किया गया है ।

1. **सामान्य वृद्धि** - (<500) के अन्तर्गत हफलागज, डण्डखोरा, बोरनी, दलन एवं चन्देली भर्रा न्याय पंचायत सम्मिलित है । ये असमतल धरातल के साथ ही प्रतिवर्ष नदियों की बाढ तथा अक्टूबर, नवम्बर महीने में अतिवृष्टि तथा न्यून धरातल के कारण इन भागों में रबी फसलों के अन्तर्गत न्यून प्रतिशत प्राप्त है । इसके साथ ही सिंचाई की सुविधा भी इन न्याय पंचायतों में अपेक्षाकृत कम हैं ।

2. **उच्च वृद्धि** :- (500-1000%) के अन्तर्गत रघैली, सौरिया, दोआसे, बेलवा, राजभवाडा, डुमरिया, रामपुर, राजपारा, जगन्नाथपुर न्याय पंचायत सम्मिलित है । इस श्रेणी में प्रखण्ड के लगभग 1/2 न्याय पचायत सम्मिलित है । हरित क्रांति के फलस्वरूप रबी फसल के अन्तर्गत तीव्र वृद्धि हुई है । यह वृद्धि मुख्य रूप से नदई कृषि पद्धति, नवीन कृषि यन्त्रों-उपकरणों, अत्यधिक उत्पादन देने वाले बीजों , कीटनाशक दवाओं तथा सिंचाई की सुविधा के फलस्वरूप हुई है । भदई एव अगहनी की तुलना में सरकारी तंत्र के द्वारा रबी फसलों के क्षेत्र में वृद्धि की गई । कम ब्याज पर कृषकों को सिंचाई सुविधाओं हेतु ऋण प्रदान किया गया, जिसके फलस्वरूप रबी फसलों के अन्तर्गत तीव्र वृद्धि हुई है ।

3. **उच्चतम वृद्धि** :- (>1000%) के अन्तर्गत परतेली, मधेपुरा, बलुआ, महमदिया, बिजैली, न्याय पंचायतों को सम्मिलित करते हैं । यहाँ सभी प्रकार की भौगोलिक दशाएँ रबी फसल के लिए अनुकूल सिद्ध हुई । अतः रबी फसलों की लोकप्रियता बढ़ी है । कृषक इसके क्षेत्र विस्तार की ओर भी उन्मुख हुए । इसके साथ ही भदई एवं अगहनी की फसलें बाढ़ों, जल-जमाव आदि के कारण नष्ट हो जाया करती हैं, जो इस कमी की पूर्ति कृषक रबी की फसलों

KATIHAR PRAKHAND
AREA UNDER TOTAL RABI CROPPING 1991
N
U. A.
PERCENTAGE OF TOTAL CROPPED AREA
< 10
10 - 20
20 - 30
> 30
2 0 2 4 6
Km
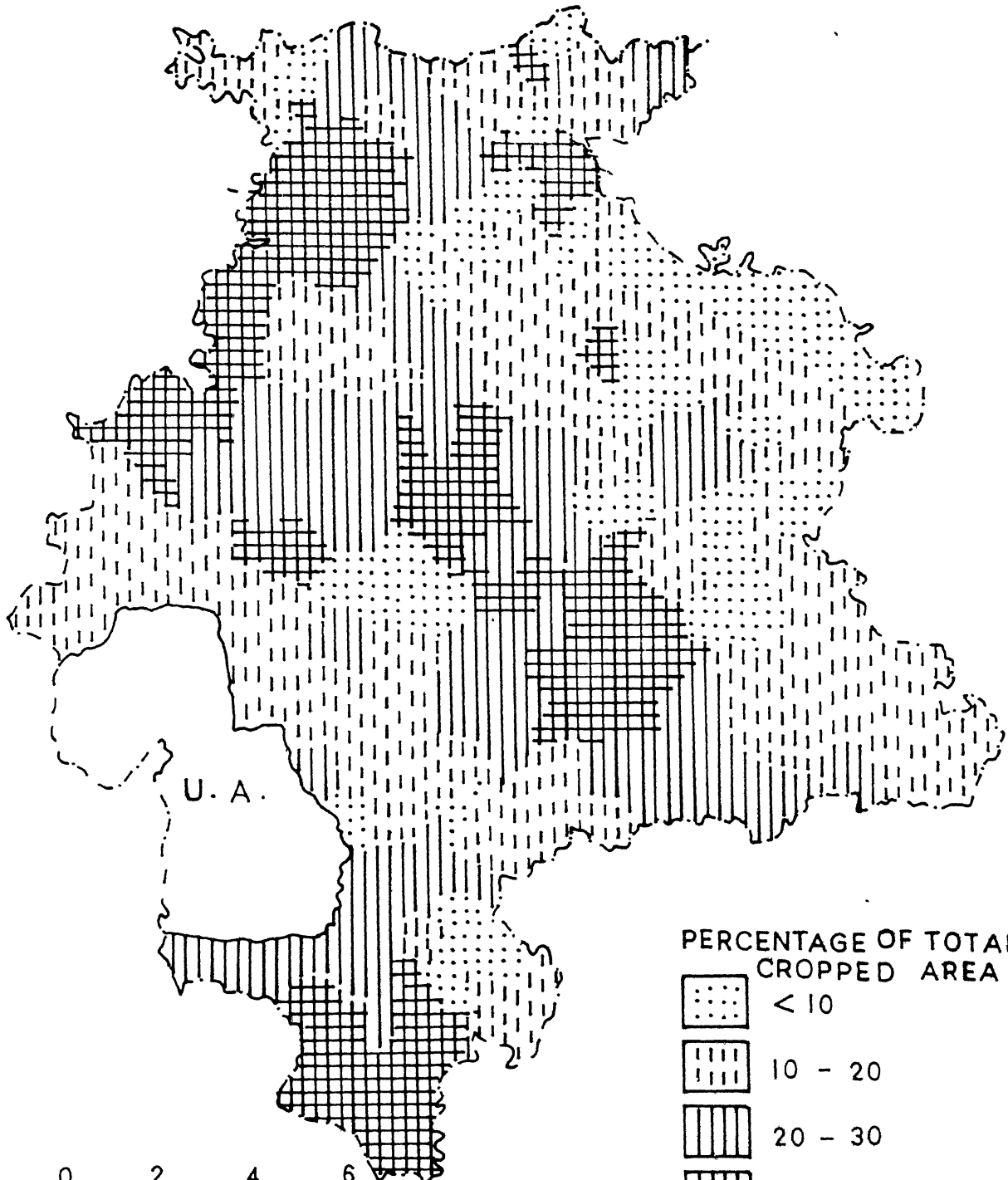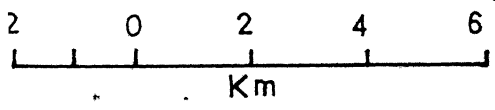
Fig. 6.4

से करते है । इन न्याय पचायतों के अन्तर्गत नदियों द्वारा लाई गई कॉप मिट्टी से निर्मित समतल धरातल जिसकी उर्वरा शक्ति उच्च कोटि की है । दोमट, बलुआर-दोमट मिट्टी का विस्तार है । नहरों एवं बॉस बोरिंग (व्यक्तिगत नलकूप) की अधिकता के कारण इन न्याय पचायतों के अतर्गत उच्चतम वृद्धि मिलती है । इस क्षेत्र में किसानों का विशेष झुकाव रबी के फसलों के उत्पादन के प्रति सन् 1970 के उपरान्त हुआ है । इसके पूर्व यह धान प्रधान क्षेत्र था । लोगों का मुख्य झुकाव जीविकोपार्जन हेतु धान के ही प्रति था लेकिन 1970 के दशक से उनका झुकाव रबी फसलों के प्रति भी हुआ और रबी फसलों की कृषि की ओर अग्रसारित होते रहे हैं । परिणामस्वरूप आज अध्ययन क्षेत्र की मुख्य फसल रबी भी हो गयी है ।

(ब) ग्राम्य स्तर पर रबी फसलों का वितरण प्रतिरूप :-

ग्राम्य स्तर पर रबी फसलों के वितरण में विभिन्नता मिलती है । ग्राम स्तर पर अधिकतम प्रतिशत एराजी-महकोल में 48.64% बोरनी गोरगामा गाँव में 45.9%, देवखंड में 43.06% है । वहीं दूसरे तरफ अति न्यून सपनी (6.62%) जबड़ा (7.8%), भवानीपुर (5.9%), कजरी (7.0%), पिपरा (2.23%), खण्डपैली (1.25%), बुधैली (3.45%), महुआ (6.7%) और रघैली (4.20%), छपरा (5.87%), तरजन्ना (5.25%), दुर्गापुर (4.0%) का भू-क्षेत्र रबी फसलों के अन्तर्गत सम्मिलित है । इस प्रकार ग्राम्य स्तर पर 45% से ऊपर तथा 5% से नीचे (सकल कृषित क्षेत्र के) भू-क्षेत्र रबी फसलों के अन्तर्गत सम्मिलित है (सारणी - 6.8) । अतः इनमें ऊँची भिन्नता मिलती है । ग्राम्य - स्तर पर अध्ययन हेतु कटिहार प्रखण्ड के रबी फसल के अन्तर्गत गाँवों को चार श्रेणियों में विभाजित कर विश्लेषण किया गया है । (चित्र संख्या - 6.4) ।

1. **उच्चतम श्रेणी** :- (>30%) इसके अन्तर्गत प्रखण्ड के 15.2% (19) गाँव सम्मिलित हैं । इस श्रेणी में सर्वाधिक गाँव न्याय पंचायत बोरनी गोरगामा एवं बलुआ के क्रमशः 3-3 गाँव मिलते हैं । न्याय पंचायत राजपारा, बेलवा, तथा हफलागंज के दो-दो गाँव इस कोटि में सम्मिलित हैं । न्याय पंचायत जगन्नाथपुर, महमदिया, राजभवाड़ा, डण्डखोरा और मधेपुरा के 1-1 गाँव इस कोटि में हैं । अन्य न्याय पंचायतों में एक भी गाँव इस कोटि

सारणी 6.8

कटिहार प्रखण्ड : ग्राम्य स्तर पर रबी फसलों का क्षेत्रीय वितरण (1991)

क्र0सं0	न्याय पंचायत	उच्चतम	उच्च	मध्यम	न्यून
		>30	20-30	10-20	<10
1	चन्देली भर्रा	-	5	4	-
2	जगन्नाथपुर	1	-	2	1
3	राजपारा	2	2	4	2
4.	रामपुर	2	-	1	-
5.	जबड़ा पहाडपुर	-	3	3	1
6	बिजेली	-	-	4	1
7	डुमरिया	-	3	4	-
8.	महमदिया	1	1	2	3
9	बलुआ	3	1	4	-
10.	राजभवाडा	1	2	1	-
11.	दलन	-	-	2	-
12.	बेलवा	2	2	2	1
13.	बौरनी	3	-	2	2
14.	दोआसे	-	-	1	4
15.	सौरिया	-	2	1	3
16.	डण्डखोरा	1	-	1	-
17.	रघैली	-	-	5	6
18.	हफलागज	2	-	-	-
19.	मघेपुरा	1	4	4	1
20.	परतेली	-	2	4	3
	योग	19	**27**	**51**	**28**
	प्रतिशत	**15.2%**	**21.6%**	**40.8%**	**22.4%**

में सम्मिलित नही है । मानचित्र संख्या - 6.4 से यह स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी, पश्चिमी, मध्यवर्ती भागो में तथा नगरी क्षेत्रों के सन्निकट उच्च प्रतिशत वाले गाँव सकेन्द्रित है । ये वे गाँव हैं जहाँ पर उर्वर मृदा के साथ ही सिचाई के साधनों की प्रचुरता है । इसके कारण उच्चतम प्रतिशत क्रम प्राप्त है ।

2. **उच्च श्रेणी** :- (20-30%) इसके अन्तर्गत 21 6% (27) गाँव सम्मिलित हैं । इस वर्ग मे सर्वाधिक पाँच गाव चन्देली भर्रा, मघेपुरा, न्याय पचायतो में अवस्थित हैं । न्याय पंचायत जबड़ा-पहाड़पुर , डुमरिया के अन्तर्गत तीन-तीन गाँव विद्यमान हैं । राजपारा, राजभवाड़ा, बेलवा, सौरिया और परतेली मे क्रमश. दो-दो गाँव मिलते है तथा महमदिया एवं बलुआ न्याय पंचायतों के एक-एक गाँव इस कोटि मे है। ये गाँव अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी, मध्यवर्ती भागों में तथा शहरी क्षेत्र के सन्निकट वाले भागों में हैं । इन गाँवों में भी उपर्युक्त की भाँति सभी भौगोलिक सुविधाएँ सुलभ है, जिसके कारण उच्च प्रतिशत क्रम को प्राप्त है -

3. **मध्यम श्रेणी** :- (10-20%) इसके अन्तर्गत 40 8% (51) गांव सम्मिलित है । सर्वाधिक गांवों की संख्या न्याय पंचायत रघैली में 5 तथा न्याय पंचायत परतेली, मघेपुरा, बलुआ, डुमरिया, बिजैली, राजपारा, तथा चन्देली भर्रा में 4-4 गाँव इस कोटि में मिलते हैं जबडा-पहाडपुर में तीन गाँव तथा जगन्नाथपुर, महमदिया, दलन, बेलवा, बोरनी, न्याय पंचायतों के अन्तर्गत 2-2 गाव इस श्रेणी में प्राप्त है । न्याय पचायत रामपुर, राजभवाड़ा, दोआसे, सौरिया, डण्डखोरा में क्रमशः एक-एक गाँव इस क्रम मे अवस्थित है । इस वर्ग के अधिकांश गाँव दक्षिणी-पूर्वी सीमान्त क्षेत्र में तथा दक्षिणी एवं उत्तरी सीमान्त क्षेत्रों में विद्यमान है । उपर्युक्त दोनों वर्गो की तुलना में इस श्रेणी के गावों में आधुनिक तकनीकी विकास न होने के कारण इनका विकास संभव न हो सका है । - साथ ही इस वर्ग के अन्तर्गत निम्न क्षेत्रफल होने का प्रमुख कारण सिंचाई के साधनों का अभाव है ।

4. **निम्न श्रेणी** :- (<10%) इसके अन्तर्गत 22.4% (28) गाँव सम्मिलित है । - इस वर्ग में सवाधिक 6 गाँव रघैली, 4 गाँव दोआसे तथा क्रमशः 3-3 गाँव महमदिया, सौरिया तथा परतेली में प्राप्त है । राजपारा में दो गाँव तथा जगन्नाथपुर, जबड़ा पहाड़पुर, बिजैली, बेलवा और मघेपुरा न्याय पंचायतों के 1-1 गाँव इस कोटि में आते हैं । शेष न्याय पंचायतों

के एक भी गाँव सम्मिलित है जहाँ पर धरातल विषम है या अत्यधिक आर्द्रता या सिंचाई की कमी तथा आधुनिक कृषि उपकरणों की कमी के कारण इस कोटि के गाँवों में रबी फसल के अन्तर्गत न्यून प्रतिशत मिलता है ।

इस प्रकार ग्राम्य स्तर पर रबी फसल के अन्तर्गत विशेष भिन्नता दृष्टिगोचर होती है । इस विभिन्नता को आधुनिक उपकरणों, सिंचाई की सुविधाओं तथा कृषि पद्धति प्रणाली व्यवस्था में परिवर्तन करके कम किया जा सकता है ।

रबी फसल के अन्तर्गत मुख्य फसल गेहूँ है जो सकल कृषित क्षेत्र के 9 75% (5275 एकड) भू-भाग पर उत्पन्न किया जाता है । गेहूँ का क्षेत्र लगभग सभी न्याय-पंचायतो मे मिलता है, विशेषकर जहाँ धरातल समतल है , मिट्टी दोमट एवं बलुआर-दोमट दोनों प्रकार की है । सिंचाई की पर्याप्त सुविधा है । उन भागों में गेहूँ की सफल खेती की जाती है ।

वरीयता क्रम में रबी फसल के अन्तर्गत दूसरी महत्वपूर्ण फसल मक्का है जो कटिहार प्रखण्ड में 3 94% (2134 एकड) क्षेत्र पर उत्पन्न की जाती है । नई अनुसंधानों से संकर मक्का के बीज आ जाने से वर्ष में तीनबार मक्के की खेती की जा रही है । अध्ययन क्षेत्र में वर्षाकाल में वर्षा की अनिश्चितता, अतिवृष्टि, जल-जमाव आदि के कारणों से इस फसल को विशेष हानि होती थी । इस कमी की पूर्ति कृषकों ने रबी फसल के अन्तर्गत मक्के की बुआई करके पूरी कर ली है । रबी फसल के मक्के से पर्याप्त उत्पादन भी प्राप्त होता है जिससे सर्वाधिक लोगों के जीविकोपार्जन में सहयोग मिलता है ।

रबी की फसल के अन्तर्गत तीसरी महत्वपूर्ण फसल दलहन की है जो सकल कृषित क्षेत्र के 2.82% (1528 एकड़) पर उत्पन्न की जाती है । दलहन फसलों में चना, मटर एवं मसूर प्रमुख है । इनमें लगभग 50% क्षेत्र पर चने की खेती होती है । चने की खेती विशेषकर कोसी और उसकी सहायक नदियों के कछार क्षेत्र में मिश्रित फसल के रूप में (जौ-चना इत्यादि) की जाती है ।

रबी फसल के अन्तर्गत सब्जियों में आलू की कृषि विशेष महत्वपूर्ण है जो अध्ययन क्षेत्र में लगभग सभी न्याय पंचायतों में उत्पन्न किया जाता है । सकल कृषित क्षेत्र के लगभग 2% भू-भाग पर आलू की खेती 1061 एकड़ क्षेत्र पर विस्तृत है । शेष पर गोभी, बन्डा तथा टमाटर की खेती होती है । यत्र-तत्र बोड़ा एवं लौकी की खेती भी देखने को मिलती है । अध्ययन क्षेत्र के अधिकांश लोग सब्जी की खेती व्यावसायिक दृष्टि से करते हैं । आलू की खेती सम्पूर्ण अनजपद में कटिहार प्रखण्ड के अन्तर्गत सर्वाधिक होती है और यहाँ से आलू पड़ोसी जनपदों को भेजा जाता है ।

6.5 (अ) गरमा फसलों का शस्य-प्रतिरूप :-

भदई, अगहनी तथा रबी की फसल की भाँति अध्ययन क्षेत्र में गरमा के अन्तर्गत कई महत्वपूर्ण फसलें उगाई जाती है । वर्ष 1991 में सकल बोये गये क्षेत्रफल का 12.60% (6749.25 एकड़) क्षेत्र पर लगा हुआ है जो अध्ययन क्षेत्र के भदई, अगहनी तथा रबी के अनुपात में कम हैं लेकिन इस फसल से अच्छी ऊपज कृषकों को मिल जाती है । यह फसल विशेषकर उन स्थानों पर की जाती है जहाँ पर जल की पर्याप्तता एवं सिंचाई की सुविधा होती है ।

गरमा फसल के अन्तर्गत धान, मक्का, दलहन तथा फलों की अच्छी खेती होती है । इस फसल की बुआई अप्रैल के अंतिम सप्ताह से लेकर मई के प्रथम सप्ताह तक की जाती है । ये फसलें जुलाई तक पककर तैयार हो जाती है ।

गरमा फसल के अंतर्गत न्याय पंचायत स्तर पर पर्याप्त भिन्नता देखने को मिलती है (सारणी 6.2)। इस फसल का सर्वाधिक क्षेत्रफल 27.9% (491.55 एकड़) न्याय पंचायत महमदिया में मिलता है तथा अति न्यून क्षेत्र 0.72% (13.45 एकड़) न्याय पंचायत राजभवाड़ा में मिलता है। वरीयता क्रम में न्याय पंचायत हफलागंज (21.94%), राजपारा (21.62%), चन्देली भर्रा (20.17%), जबड़ा पहाड़पुर (18.44%), मधेपुरा (17.05%), रामपुर (14.76%), दलन (13.62%) डण्डखोरा (12.92%), बिजैली (12.33%), जगन्नाथपुर (11.67%) तथा

परतेली में (10.24%) कृषित क्षेत्र सम्मिलित है । शेष सभी न्याय पंचायतों में 10% से कम क्षेत्र लगा हुआ है -

1951-1991 (चार दशकों) में गरमा फसल के अन्तर्गत 748.82% की वृद्धि हुई है । अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक वृद्धि गरमा फसल के अन्तर्गत ही प्राप्त है ।

न्याय पंचायत स्तर पर कटिहार प्रखण्ड के सभी न्याय पंचायतों में वृद्धि प्रतिरूप को चार भागों में बाँटकर व्याख्या किया जा सकता है (सारणी 6.2 एवं 6.4)।

1. **सामान्य वृद्धि** :- (<500%) इसके अन्तर्गत अध्ययन क्षेत्र के 5 न्याय पंचायत चन्देली भर्रा, राजपारा, महमदिया तथा बेलवा एवं हफलागंज सम्मिलित है । इन न्याय पंचायतों में सिंचाई की पर्याप्त सुविधा नहीं है इसलिए अपेक्षाकृत गरमा फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र में कम वृद्धि हुई है । साथ ही ये क्षेत्र शहरी प्रभाव क्षेत्र से भी दूर है जिसके कारण गरमा फसलों के अंतर्गत वृद्धि प्रतिशत अल्प है ।

2. **मध्यम वृद्धि** :- (500-1000%) इस श्रेणी में न्याय पंचायत परतेली, दलन, बलुआ, जबड़ा-पहाड़पुर, एवं रामपुर सम्मिलित हैं । अपेक्षाकृत इसमें वृद्धि का प्रतिशत मध्यम प्रकार का है , क्योंकि इन न्याय पंचायतों के अधिकांश भू-भाग निम्न हैं जहाँ अगहनी धान की खेती होती है । मृदा मटियार प्रकार की है जहाँ गरमा की खेती के लिए अत्यधिक श्रम एवं पूँजी के साथ ही सिंचाई की आवश्यकता है । जिसकी इस भाग में अल्पता मिलती है।

3. **उच्च वृद्धि** :- (1000-1500%) इसके अन्तर्गत मधेपुरा, जगन्नाथपुर और डुमरिया न्याय पंचायतों को सम्मिलित करते हैं । यहाँ गरमा फसल के लिए सभी भौगोलिक दशाएँ अनुकूल हैं । अतः इन न्याय पंचायतों में गरमा फसल के अंतर्गत 1000% से लेकर 1500% तक वृद्धि हुई है ।

4. **उच्चतम वृद्धि** :- (>1500%) इस श्रेणी में डण्डखोरा, सौरिया, दोआसे, बोरनी, बिजैली, न्याय पंचायत आते हैं । ये न्याय -पंचायत अध्ययन क्षेत्र के मध्यवर्ती भाग में स्थित हैं जहाँ

N
KATIHAR PRAKHAND
AREA UNDER TOTAL GARMA
CROPPING
1991
U. A.
PERCENTAGE OF TOTAL
CROPPED AREA
< 5
5 - 10
10 - 15
>15
0
2
4
6
Km
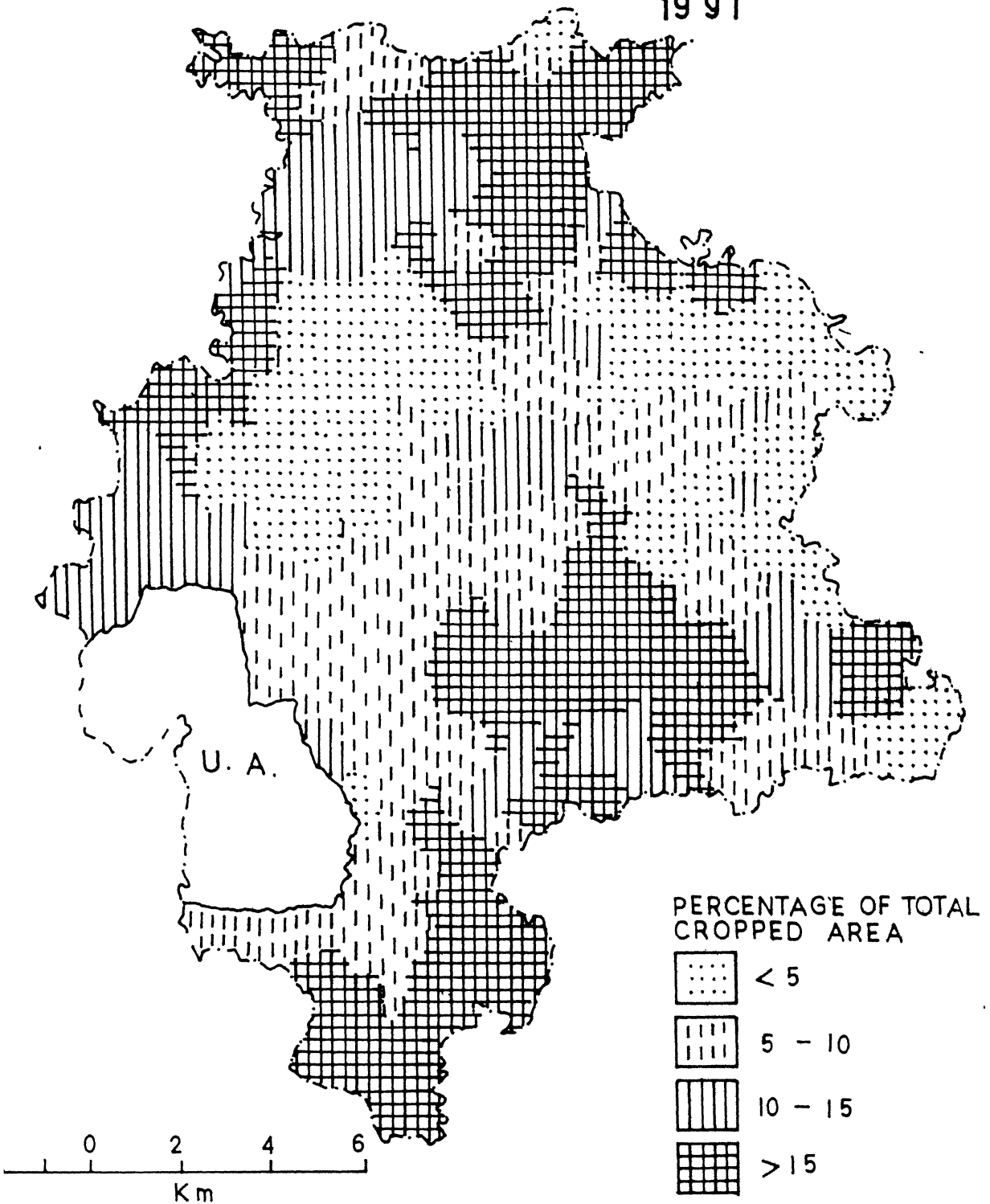
Fig. 6·5

धरातल समतल है, मृदा उर्वर प्रकार की (दोमट एवं बलुआर दोमट) है । यह क्षेत्र नदियों के बाढ़ से प्रभावित नहीं होता है । सिचाई की पर्याप्त सुविधा है, जिसके कारण इन न्याय पंचायतों के अतर्गत गरमा फसल मे निरन्तर क्षेत्र वृद्धि हो रही है ।

ग्राम्य स्तर पर गरमा फसल का क्षेत्रीय वितरण प्रतिरूप -

ग्राम्य स्तर पर गरमा फसलों के वितरण प्रतिरूप में विशेष अंतर मिलता है (सारणी - 6.9) । गोरगामा (0 55%), देवराही (4.14%), महेशपुरा (5.11%) तथा न्याय पंचायत राजभवाड़ा के सभी गाँवों मे (राजभवाडा, कदेपुरा, महदेई, खोडवा) में 1% से कम, लोहारी तथा नोहारी मे (3%), मधेली (2 5%), रघैली, बोधिया, घफ्कोल में भी लगभग 2% भू-क्षेत्र गरमा फसलो के अन्तर्गत सम्मिलित है । वहीं दूसरी ओर गरमा फसलों के अंतर्गत उच्च प्रतिशत देखने को मिलता है । थेगुआ (39%), भवानीपुर एवं महमदिया क्रमशः 34% और 35%, घुम्मर बेलवा में 33% भू-भाग गरमा फसलों के अंतर्गत विद्यमान है । अत यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नही होगा कि गरमा फसलों में ग्राम्य स्तर पर काफी भिन्नता है -

ग्राम्य स्तर पर गरमा फसलों के क्षेत्रीय वितरण की व्याख्या हेतु चार वर्गों में वर्गीकृत किया गया है (चित्र संख्या-6.5) ।

1. **न्यून श्रेणी** :- (<5%) इस श्रेणी के अन्तर्गत 19.2% (24) गांव सम्मिलित हैं । इस वर्ग 6 गाँव रघैली न्याय पचायत मे तथा दोआसे, राजभवाड़ा मे 4-4 गाँव सम्मिलित है । बलुआ , सौरिया, तथा परतेली न्याय पंचायतों में दो-दो गाँव एवं डण्डखोरा, राजपारा तथा रामपुर न्याय पंचायतों के अंतर्गत 1-1 गाँव मिलते हैं । अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत ये गाँव मध्यवर्ती भाग मे सकेन्द्रित है, जहाँ सिंचाई की सुविधा पर्याप्त न होने के कारण गरमा फसलों का लगाव कम प्राप्त है । साथ ही ये भू-क्षेत्र अगहनी धान वाले हैं ।-

2. **मध्यम श्रेणी** :- (5-10) इस श्रेणी के अन्तर्गत 21.6% (27) गाँव सम्मिलित है । इसके अन्तर्गत सर्वाधिक 5 गाँव न्याय पंचायत बेलवा में तथा बोरनी और डुमरिया में क्रमशः 3-3 गाँव, परतेली, रघैली, सौरिया, बलुआ एवं चन्देली भर्रा में 2-2 गाँव तथा महमदिया,

सारणी 6.9

कटिहार प्रखण्डः ग्राम्य स्तर पर गरमा फसलों का क्षेत्रीय वितरण (1991)

क्र0सं0	न्याय पंचायत	उच्चतम	उच्च	मध्यम	निम्न
		>15	10-15	5-10	<5
1	चन्देली भर्रा	7	-	2	-
2	जगन्नाथपुर	1	3	-	-
3	राजपारा	8	-	1	1
4	रामपुर	2	-	-	1
5	जबडा पहाड़पुर	7	-	-	-
6	बिजैली	2	1	1	1
7.	डुमरिया	1	3	3	-
8	महमदिया	5	1	1	-
9.	बलुआ	-	4	2	2
10.	राजभवाडा	-	-	-	4
11.	दलन	-	2	-	-
12.	बेलवा	1	1	5	-
13	बौरनी	1	3	3	-
14	दोआसे	1	-	-	4
15.	सौरिया	1	1	2	2
16	डण्डखोरा	1	-	-	1
17	रघैली	-	3	2	6
18.	हफलागंज	2	-	-	-
19	मधेपुरा	6	2	2	-
20	परतेली	4	-	3	2
	योग	50	**24**	**27**	**24**
	प्रतिशत	40.00%	**19.2%**	**21.6%**	**19.2%**

बिजैली, राजपारा न्याय पचायतों मे क्रमश १-१ गाँव प्राप्त है । इन न्याय पंचायतों में पर्याप्त सुविधा न होने के कारण गरमा फसलों का क्षेत्र मध्यम कोटि मे है । ये भी क्षेत्र अध्ययन क्षेत्र के मध्यवर्ती भागों मे ही है -

3. **उच्च श्रेणी** :- (10-15%) इस श्रेणी के अन्तर्गत 19.2% (24) गाँव सम्मिलित है इस श्रेणी में सर्वाधिक 4 गाँव न्याय पंचायत बलुआ में मिलते हैं । इसके अलावा रघैली, बोरनी, डुमरिया, जगन्नाथपुर न्याय पंचायतों में 3-3 गाँव एवं मधेपुरा, दलन में 2-2 तथा सौरिया, बेलवा, महमदिया में क्रमश· १-१ गाँव आते हैं । इन न्याय पंचायतों के अन्तर्गत गांवों की भूमि समतल, उर्वर एव सिंचाई की सुविधा होने के कारण उपर्युक्त के अपेक्षा अधिक क्षेत्रफल में खेती होती है ।- ये गाँव अध्ययन क्षेत्र के मध्यवर्ती भू-भाग में ही स्थित है । परन्तु यहाँ - बाँस-बोरिंग एवं सिंचाई की पर्याप्त सुविधा है, जिसके कारण यहाँ गरमा फसलों की खेती अच्छी होती है ।

4. **उच्चतम श्रेणी** :- (>15%) इस वर्ग मे 40% (50) गाँव आने है, जिसमें सर्वाधिक 8 गाँव न्याय- पंचायत राजपारा में सम्मिलित है । चन्देली भर्रा एवं जबड़ा-पहाड़पुर में 7 मधेपुरा में 6 महमदिया, में 5, परतेली में 4 एव बिजैली, रामपुर, हफलागंज में क्रमशः 2-2 तथा शेष न्याय पंचायतों में क्रमश १-१ गाँव सम्मिलित हैं । इस श्रेणी के अन्तर्गत सभी गाँवों में पर्याप्त सिचाई की सुविधा, व्यक्तिगत स्तर पर बाँस-बोरिंग, ट्यूबेल के साथ ही नहरों की पर्याप्त सुविधा है जिसके फलस्वरूप यहाँ गरमा फसल की अच्छी खेती होती है ।

इस प्रकार ग्राम्य स्तर पर गरमा फसल के अन्तर्गत विशेष भिन्नता दिखाई पड़ती है । इसका प्रमुख कारण आधुनिक सुविधाओं का प्राविधान, सिंचाई के साधन तथा कृषि पद्धति है, जिसकी व्यवस्था में परिवर्तन करके ठीक किया जा सकता है ।

गरमा फसल के अन्तर्गत मुख्य फसल धान है जो सकल कृषित क्षेत्र के 6.14% (3321 एकड) पर उत्पन्न किया जाता है । धान का क्षेत्र सभी न्याय पंचायतों में मिलता है । विशेषकर जहाँ धरातल निम्न है , मिट्टी दोमट-मटियार है तथा सिंचाई

की पर्याप्त सुलभता है, वहाँ इसकी खेती अच्छी खेती की जाती है ।

वरीयता क्रम में गरमा फसल के अन्तर्गत दूसरी महत्वपूर्ण फसल फलों की है जो अध्ययन क्षेत्र में 2.17% (1499 एकड़) क्षेत्र पर उत्पन्न की जाती है । इनमें मुख्यत· केला, लीची, आम, अमरूद, पपीता तथा नारियल की खेती देखने को मिलती है । केले की खेती के प्रति लोगों का झुकाव विशेष रूप से देखने को मिलता है । इसे नगदी फसल मानते हैं । इस अध्ययन क्षेत्र से केला अन्य जनपदों को ट्रक द्वारा भेजा जाता है । ग्राम प्रधान एवं भूस्वामियों से मिलने के फलस्वरूप अध्ययन क्षेत्र मे शोधकर्ता ने यह भी देखा कि जिनके पास भूमि नही है, लेकिन यदि उसके पास पूँजी है, तो वे भूस्वामियों से भूमि (लीज पर) लेकर उसमें केले की खेती करते हैं । गरमा फसल के अन्तर्गत तीसरे क्रम में मक्के की खेती 1.95% (1054 एकड) पर होती है । क्षेत्रान्तर्गत मुख्य रूप संकर मक्का प्रधानता है । उन्नतशील बीज तथा अन्य सुविधाओ के फलस्वरूप इसकी पैदावार में निरंतर वृद्धि हो रही है । चौथे स्थान पर दलहन की खेती 1.62% (875 एकड) क्षेत्र पर होती है । इनमें उरद, कुल्थी, मूँग प्रधान है । अध्ययन क्षेत्र मे उन स्थानों पर उत्पन्न की जाती है जहाँ समयानुसार सिंचाई की अच्छी सुविधा उपलब्ध है । जल-स्तर ऊँचा होने के कारण क्षेत्र में जगह-जगह बाँस -बोरिंग देखने को मिलती है, जो कम लागत मे ही उपयोग में आ जाती है । इससे काफी सुलभता होती है ।

इस प्रकार उपर्युक्त तीनों फसलें (भदई, अगहनी, रबी) के अलावा गरमा फसल की अपनी अलग विशेषता है ।-

6.6 (अ) शस्य गहनता :-

शस्य गहनता से अभिप्राय उस फसल क्षेत्र से है जिस पर वर्ष में एक फसल के अतिरिक्त अन्य कई फसलें उगाई जाती है।[2] किसी क्षेत्र के अन्तर्गत शुद्ध बोये गये क्षेत्र की अपेक्षा सकल कृषिगत क्षेत्र का अधिक होना गहन शस्य-क्रम का परिचायक है । शस्य क्रम गहनता वह सामायिक बिन्दु है जहाँ भूमि, श्रम, पूँजी तथा प्रबन्धन का सम्मिश्रण सर्वाधिक लाभप्रद सिद्ध होता है।[3] शस्य क्रम गहनता के आकलन के संबंध में अनेक विद्वानों तथा भूगोलविदों ने

अपने अलग-अलग विचार व्यक्त किये है जो मुख्यत गहनता के क्षेत्रीय वितरण से सम्बन्धित है । त्यागी[4] ने शस्य गहनता के स्थान पर 'कृषि गहनता' शब्द का प्रयोग किया है और संबंधित गणना को तीन स्तरों के द्वारा स्पष्ट किया है ।

(अ) कुल क्षेत्र मे से भू-उपयोग के अनेक पक्षों द्वारा अधिकृत क्षेत्र का प्रतिशत ज्ञात करना, अर्थात् कुल भौगोलिक क्षेत्रफल से शुद्ध कृषित क्षेत्र की गणना,

(ब) सम्पूर्ण फसल क्षेत्र मे से प्रत्येक फसल के अन्तर्गत अधिकृत क्षेत्र का प्रतिशत ज्ञात करना अर्थात् अध्ययन क्षेत्र के सकल कृषित क्षेत्र से खरीफ, रबी एवं जायद फसलों के प्रत्येक शस्य का उत्पादन क्षेत्र ज्ञात करना तथा -

(स) शुद्ध फसल क्षेत्र में से रबी तथा खरीफ मौसमों में बोयी गई फसलों के प्रतिशत की गणना करना ।

इन उपर्युक्त घटकों की गणना के उपरान्त क्षेत्रीय शस्य गहनता का आकलन किया । त्यागी की ही भाँति त्रिपाठी[5] ने भी शस्य गहनता के स्थान पर 'कृषि गहनता' शब्द को उपयुक्त बताया है । इनके अनुसार कृषि गहनता दो फसली अथवा बहुफसली कृषित क्षेत्र से संबंधित है जो भौतिक (जलवायु, मृदा) तकनीकी, प्रबन्धीय और जैवीय कारकों का योग है । इन्हीं उपर्युक्त कारकों के सहयोग के फलस्वरूप वर्ष में एक से अधिक फसलें उत्पन्न की जाती है । इन्होंने कृषि गहनता के आकलन हेतु निम्न सूत्र का प्रयोग किया है -

$$I = \frac{G}{N}$$

Where -I = Index of Agricultural Intensity

G = Gross Sown Area

N = Net Sown Area

सिंह[6] ने शस्य गहनता के स्थान पर 'भूमि-उपयोग क्षमता' शब्द का उपयोग करना उचित बताया है और इन्होंने इसकी गणना हेतु निम्न सूत्र का प्रयोग किया है -

$$\text{शस्य गहनता} = \frac{\text{सकल कृषित क्षेत्र}}{\text{शुद्ध बोया गया क्षेत्र}} \times 100$$

KATIHAR PRAKHAND
CROPPING INTENSITY
1991
N
U. A.
IN PER CENT
< 100
100 - 120
120 - 140
140 - 160
>160
2 0 2 4 6
Km
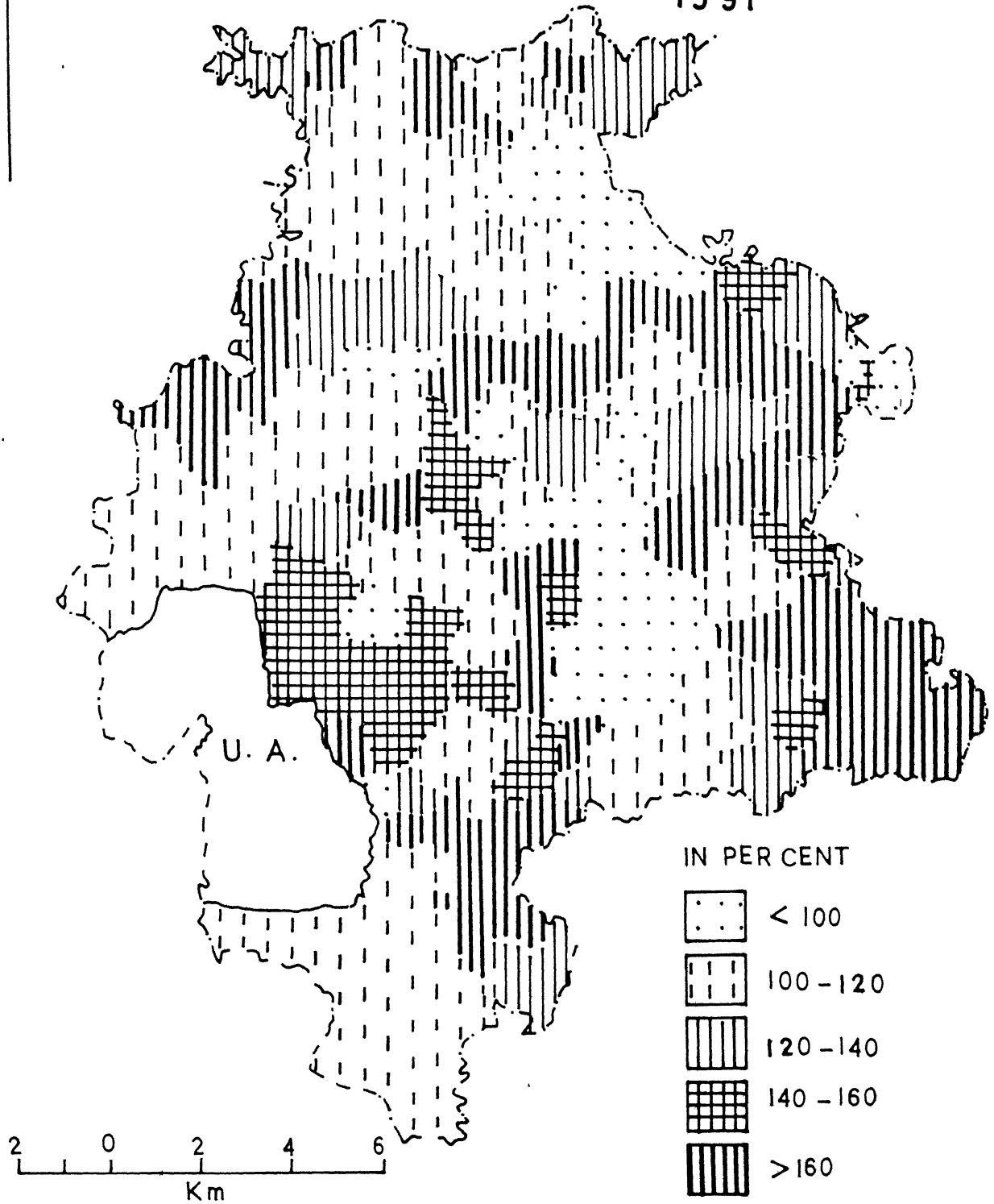
Fig. 6·6

शोधकर्ता ने भी कटिहार प्रखण्ड की 'शस्य गहनता' की गणना हेतु सिंह द्वारा प्रस्तावित विधि का प्रयोग किया है । प्रत्येक गाँवों की गहनता प्राप्त कर मानचित्र पर अंकित किया है (चित्र सख्या- 6 6) ।

वर्ष 1951 के ग्राम्य स्तर पर भूमि उपयोग से संबंधित आँकड़ों के अभाव में प्रखण्ड स्तर पर ही शस्य गहनता का आँकलन कर अतर के आधार पर प्रतिशत वृद्धि की गणना की गयी है । प्रखण्ड स्तर पर 1951-91 की शस्य-गहनता को संगणित कर वृद्धि के आधार पर कटिहार प्रखण्ड के न्याय पंचायतों को चार श्रेणियों मे निर्धारित किया है जो सारणी 6 10 से स्पष्ट है । वर्ष 1951-91 की अवधि में शस्य गहनता वृद्धि में न्याय पंचायत स्तर पर बहुत ही अंतर देखने को मिलता है । शस्य गहनता में सर्वाधिक वृद्धि न्याय पंचायत दोआसे मे 227.44% देखने को मिलता है एवं न्यूनतम शस्य गहनता में वृद्धि रघेली में 24.43% प्राप्त है । न्याय पचायत स्तर पर शस्य गहनता वृद्धि के अध्ययन हेतु 4 श्रेणियों में विभाजित किया गया है जो निम्न प्रकार है -

1. **निम्न वृद्धि** .- (<100%) इसके अन्तर्गत न्याय पंचायत मधेपुरा, हफलागंज, रघेली, डण्डखोरा, बेलवा और जगन्नाथपुर है । इन न्याय पंचायतों के शस्य गहनता में 4 दशकों में वृद्धि का अन्तर निम्न कारणों से कम देखने को मिलता है -

मधेपुरा में पहले से ही शस्य गहनता का प्रतिशत बहुत ऊँचा है, यद्यपि वर्ष 1991 में भी सकल कृषित क्षेत्र में वृद्धि हुई है, लेकिन वृद्धि प्रतिशत कम है ।

2. **मध्यम वृद्धि** :- (100-150%) इसके अन्तर्गत निम्नलिखित न्याय पंचायत सम्मिलित है - चन्देली भर्रा, राजपारा, जबडा पहाडपुर, डुमरिया, महमदिया, राजभवाडा, बेलवा, दलन तथा बोरनी गोरगामा प्रमुख है । इन न्याय पंचायतों मे भी वर्ष 1951 में कृषि गहनता का प्रतिशत ऊँचा है । यद्यपि इन न्याय पचायतों में वृद्धि हुई है लेकिन अपेक्षाकृत सामान्य प्रकार की । ये न्याय पंचायत प्राय बाढों से प्रभावित होते रहते हैं, जिसके कारण इनमें वृद्धि अपेक्षाकृत कम है ।

3. उच्च वृद्धि :- (150-200%) इसके अन्तर्गत न्याय पंचायत परतेली, सोरिया, बलुआ, बिजैली तथा रामपुर सम्मिलित है । इन क्षेत्रो मे कृषि से संबंधित सभी प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध हैं जैसे सिंचाई की पर्याप्त सुविधा, शहरी क्षेत्र से सडकों से ग्रामीण क्षेत्रों का सम्बन्ध समतल धरातल, उपजाऊ मिट्टी के कारण इन न्याय पंचायतों में प्रतिशत क्रम ऊँचा है ।-

4. उच्चतम वृद्धि :- (200%) इस क्रम में अध्ययन क्षेत्र का एक न्याय पंचायत दोआसे सम्मिलित है जिसमें वर्ष 1951 में शस्य गहनता 179.26% तथा 1991 में 406.7% पाई गई है जो अध्ययन क्षेत्र के सभी न्याय पंचायतों की तुलना मे अधिक है । इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र के न्याय पंचायतों के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि सभी न्याय पंचायतों के अंतर्गत वृद्धि हुई है । न्याय पंचायत स्तर के वृद्धि मे अन्तर भौतिक, आर्थिक एवं तकनीकी कारणों से है, जहाँ पर ये दशाएँ उच्च कोटि में है, वहाँ वृद्धि अपेक्षाकृत अल्प है ।

(ब) ग्राम्य स्तर पर शस्य गहनता -

न्याय पचायत स्तर की ही भाँति ग्राम्य स्तर पर भी शस्य गहनता में पर्यापत अन्तर मिलता है । उदाहरणार्थ सबसे कम गहनता ग्राम कजरी में 70% है, जो अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी-पूर्वी भाग में महमदिया, न्याय पचायत के अन्तर्गत है वहीं उच्च गहनता 229% ग्राम नीमा न्याय पंचायत बोरनी गोरगामा में है । यह गाँव अध्ययन क्षेत्र के मध्यवर्ती भाग मे स्थित है । विश्लेषण हेतु अध्ययन क्षेत्र की शस्य गहनता को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है (सारणी 6 10, चित्र सं0 -6.6) ।

सारणी से स्पष्ट होता है कि **निम्नतम** (100% से कम) शस्य गहनता श्रेणी के अन्तर्गत 10 4% (13) गांव पाये जाते है । इस श्रेणी में सर्वाधिक 4 गाँव अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी-पूर्वी भाग मे स्थित न्याय पचायत महमदिया में 3, गाँव न्याय पचायत बलुआ में तथा राजपारा, बोरनी, गोरगामा, दोआसे, सौरिया, डण्डखोरा एवं परतेली में क्रमशः 1-1 गाँव सम्मिलित हैं । इन सभी गाँवों में निम्न गहनता का मुख्य कारण यह है कि उपर्युक्त सभी गाँव कोसी की सहायक नदियों के बाढ के जल से प्रतिदर्श प्रभावित होते रहते हैं ।

सारणी 6-10

कटिहार प्रखण्ड : ग्राम्य स्तर पर शस्य महनता का क्षेत्रीय वितरण (1991)

क्र0सं0	न्याय पंचायत	उच्चतम	उच्च	मध्यम	निम्न	निम्नतम
		>160	140-160	120-140	100-120	<100
1.	चन्देली भर्रा	5	-	1	2	-
2.	जगन्नाथपुर	-	-	1	3	-
3.	राजपारा	2	-	3	4	1
4.	रामपुर	2	-	1	-	-
5.	जबडा पहाडपुर	1	-	2	4	-
6.	बिजैली	3	-	1	1	-
7.	डुमरिया	5	1	1	-	-
8	महमदिया	-	-	-	3	4
9	बलुआ	3	-	1	1	3
10.	राजभवाड़ा	1	-	1	2	-
11.	दलन	-	1	-	1	-
12	बेलवा	2	-	3	2	-
13.	बौरनी	2	2	1	1	1
14.	दोआसे	1	2	1	-	1
15.	सौरिया	1	-	2	2	1
16.	डण्डखोरा	1	-	-	-	1
17	रघैली	5	2	4	-	-
18.	हफलागंज	-	-	-	2	-
19	मधेपुरा	5	2	1	2	-
20.	परतेली	3	1	2	3	1
	योग	**42**	**11**	**26**	**33**	**13**
	प्रतिशत	**33.6%**	**8.8%**	**20.8%**	**26.4%**	**10.4%**

निम्न श्रेणी :- (100-120%) के मध्य अध्ययन क्षेत्र के 26 4% (33) गाँव पाये जाते हैं जिनमे क्रमश 4-4 गाँव न्याय पचायत राजपरा और जबडा पहाडपुर में, जगन्नाथपुर, महमदिया, तथा परतेली में 3 गाँव, मधेपुरा, हफलागंज, सौरिया, बेलवा , राजभवाडा तथा चन्देली भर्रा मे क्रमश 2-2 गाँव एव बिजैली, बलुआ, दलन, बोरनी मे एक-एक गाँव इस श्रेणी में स्थित है । ये गाँव कृषि के दृष्टि से पिछडे हुए हैं तथा कृषि सम्बन्धित नवीन तकनीक का अभाव भी देखने को मिलता है ।

मध्यम शस्य गहनता :- (120-140%) के अन्तर्गत 20.8% (26) गाँव सम्मिलित हैं । मध्यम प्रकार के शस्य गहनता के अन्तर्गत सर्वाधिक 4 गाँव न्याय पंचायत रघेली जो अध्ययन क्षेत्र के पूर्वी भाग में स्थित है,मिलते है । राजपारा, बेलवा मे क्रमश. 3-3 गाँव एवं परतेली, सौरिया, जबडा पहाडपुर के अन्तर्गत 2 गाँव तथा चन्देली भर्रा, जगन्नाथपुर, रामपुर, बिजैली, डुमरिया, बलुआ, राजभवाडा, बोरनी, गोरगामा, दोआसे तथा मधेपुरा के अन्तर्गत एक-एक गाँव सम्मिलित है ।

उच्च शस्य गहनता - (140-150%) के अन्तर्गत 8 8% (11) गाँव सम्मिलित है । इस कोटि में बोरनी, दोआसे, रघेली तथा मधेपुरा में क्रमश· 1-1 गाँव तथा डुमरिया, दलन एंव परतेली में 1-1 गाँव आते हैं । ये गाँव मुख्यत मध्यवर्ती भाग में स्थित है जहाँ बाढों का प्रभाव अपेक्षाकृत कम है , साथ ही सिचाई के साधनों का भी समुचित विकास नहीं हो पाया है ।

उच्चतम श्रेणी :- (>160%) के अन्तर्गत अध्ययन क्षेत्र के 33 6% (42) गाँव सम्मिलित है जो मुख्यत. उत्तरी-पूर्वी सीमान्त क्षेत्र तथा मध्यवर्ती एव कटिहार नगर के सन्निकट क्षेत्रों में स्थित है । इस वर्ग मे अध्ययन क्षेत्र के सर्वाधिक गाँव विद्यमान हैं । इस वर्ग में चन्देली भर्रा, डुमरिया, रघेली तथा मधेपुरा न्याय पंचायतों के क्रमश· 5-5 गाँव सम्मिलित है । बिजैली, बलुआ, परतेली, न्याय पचायतों के 3-3 गाँव बेलवा, बोरनी, राजपारा तथा रामपुर के 2-2 गाँव एवं जबड़ा पहाडपुर, राजभवाडा, दोआसे, सौरिया तथा डण्डखोरा न्याय पंचायतों के क्रमश· 1-1 गाँव इस वर्ग में सम्मिलित है । उच्चतम वर्ग में सर्वाधिक 42 गाँव के सम्मिलित है।

इससे यह ज्ञात होता है कि अध्ययन क्षेत्र मे गहन कृषि की जाती है । ये गाँव उन क्षेत्रों को प्रदर्शित करते है जहाँ सिंचाई की सुविधाओं का भरपूर प्राविधान है अथवा ये उदीयमान ग्राम कस्बा केन्द्रों की समीपता आदि के कारण कृषकों में गहन कृषि के प्रति गहनता बढी है ।

इस प्रकार शस्य गहनता सबधी अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र के लगभग 42% गाँव उच्च एवं उच्चतम कृषि गहनता वाले हैं । अध्ययन क्षेत्र के कृषि गहनता से हम इस आशय पर पहुँचते हैं कि कटिहार प्रखण्ड के अधिकांश गाँवों में बहुफसली कृषि (भदई, अगहनी, रबी एवं गरमा) के कारण शस्य गहनता का प्रतिश उच्च एवं उच्चतम श्रेणी में आ गया है । मध्यम श्रेणी को भी नवीन कृषि तकनीक की सुविधा प्रदान कर उच्च श्रेणी में बदला जा सकता है ।

xxxxxxxxxxx

सन्दर्भ-सूचिका (*REFERENCES*)

1. ***Loknathan, P.S.*** *"Cropping Pattern in Madhya Pradesh" National Council of Applied Economic Research, New Delhi, 1967, pp. 6-20.*

2. **सिंह, ब्रजभूषण**: कृषि भूगोल 1979, पृ0 128.

3. *Tendon, R.K. and Dhondyal S.P.: Princeples and Methods of Farm Management, 1967, p. 60.*

4. *Tyagi B.S.: Agricultural Intensity in Chunar Tahsil, Distt. Mirzapur, U.P. N.G.J.I. Vol. XVIII Pt. I, 1972, pp. 42-48.*

****
****

xxxxx

xxxxxxxxxx

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

अध्याय - सप्तम्

प्रतिदर्श गाँवों में भूमि उपयोग : एक सूक्ष्म विवेचन

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

xxxxxxxxxx

xxxxx

अध्याय - सप्तम्

प्रतिदर्श गाँवों मे भूमि उपयोग : एक सूक्ष्म विवेचन

भूमि उपयोग सम्बन्धी अध्ययनो मे शोधकर्ता को या तो सर्वव्यापी पद्धति का अनुसरण करना पडता है । जिसमे किसी क्षेत्र विशेष के सभी इकाइयों का सर्वेक्षण किया जाता है । इस तरह यह पद्धति अपने आप मे एक विस्तृत और जटिल कार्य है । सुविधा की दृष्टि से शोधकर्ता भूमि उपयोग या किसी भी सामाजिक विज्ञान सबंधी अध्ययनों में प्रतिदर्श पद्धति को अपनाकर क्षेत्र विशेष के कुछ प्रतिनिधि इकाइयों के चयन के आधार पर सर्वेक्षण कार्य पुरा करता है और उन्हीं के आधार पर वह अपनी व्याख्या प्रस्तुत करता है । इन्हीं चयनित गाँवों के आधार पर प्राप्त परिणामो को सम्पूर्ण क्षेत्र के लिए सही और सन्तोषप्रद मान लिया जाता है । मुख्य रूप से यह प्रतिनिधित्व विधि है जिसमें प्रतिदर्श भाग किसी सम्पूर्ण क्षेत्र का चुना हुआ छोटा-सा अश मात्र होता है, जिसे समुचित नियमों के आधार पर सावधानी से चुना जाता है एवं जो सम्पूर्ण क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है ।

कटिहार प्रखण्ड के अन्तर्गत आठ ऐसे प्रत्यक्ष गाँवों का चयन यादृच्छिक पद्धति से भौतिक एवं सांस्कृतिक सभी विशेषताओं को ध्यान मे रखकर किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में इन्ही चयनित आठों गाँवों के उपयोग का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है।

7.1 ग्राम बौरा .- यह गाँव ($25^0 38'$ उत्तरी अक्षाश तथा $87^0 41'$ पूर्वी देशान्तर) कटिहार मुख्यालय से 27 कि0 मी0 दक्षिण-पूर्व में स्थित है । इस गाँव मे जनसख्या का घनत्व 2.16 व्यक्ति प्रति एकड तथा शुद्ध बोया क्षेत्र का औसत 0.43 एकड प्रति व्यक्ति है । भू-उपयोग की दृष्टि से वर्ष 1991 में इस गाँव का 95 93% भाग शुद्ध बोये गये क्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित है । कृषि अप्राप्य भूमि 4 86%, बाग-बगीचों 1 46%, दो फसली 50.77% तथा सिंचित क्षेत्र 40.2% भाग सुविधाओं से युक्त है । इस गाँव के मध्य से सोनौली को पक्की सडक जाती है । यह समतल उर्वर मिट्टी वाला महत्वपूर्ण गाँव है, जहाँ शुद्ध कृषित क्षेत्र का प्रतिशत बहुत ऊँचा है । इस गाँव की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि कृषि बंजर का क्षेत्र बहुत ही अल्प मात्रा मे है (चित्र 7.1 एव सारणी 7.1)।

सारणी 7.1

ग्राम - बोरा, न्याय पंचायत - डुमरिया

भूमि उपयोग में परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप (1951-91)

(क्षेत्रफल एकड में)

क्र0सं0	भूमि उपयोग प्रतिरूप	1951 क्षेत्रफल	1951 प्रतिशत	1991 क्षेत्रफल	1991 प्रतिशत	अन्तर	परिवर्तन (% में)
1.	क्षेत्रफल(एकड़ में)	102.04		102.04	-	-	-
2.	शुद्ध बोया गया क्षेत्र	56.36	54.85	95.93	93.68	39.57	(+) 70.21
3.	कृषि अप्राप्य	28.36	2.75	4.98	4.86	23.38	(-) 82.44
4.	कृष्य बंजर	02.80	28.25	0.00	-	2.80	(-) 100.00
5.	बाग-बगीचा	14.88	14.15	1.49	1.46	13.39	(-) 89.98
6.	सिंचित क्षेत्र	08.08	10.25	48.70	40.20	40.62	(+) 502.72
7.	दो-फसली	05.77	14.35	38.60	50.77	32.83	(+) 568.97
8.	सकल कृषित	80.45	-	175.03	-	94.58	(+) 117.56

स्रोत : जिला सांख्यिकीय कार्यालय कटिहार (बिहार)

भूमि उपयोग की दृष्टि से वर्ष 1991 में 93.68% भू-भाग शुद्ध बोये गये क्षेत्र के अन्तर्गत विद्यमान है । इस गाँव में सड़क के दोनों ही तरफ विस्तृत क्षेत्र पर कृषि क्षेत्र आच्छादित है । कृषि के अन्तर्गत सर्वाधिक क्षेत्र होने का अभिप्राय है कि यहाँ पर कृषि सम्बन्धित सभी भौगोलिक दशाएँ अनुकूल हैं, इसलिए इस गाँव में भदई, अगहनी, रबी तथा

A
1951
GENERAL LANDUSE PATTERN
VILLAGE-BAURA, PRAKHAND-KATIHAR
DUMARIA
JHUNAKI BASANTA
TO SONAILI
N
KAVATIA
TIKALI
1991
B
DUMARIA
JHUNAKI BASANTA
TO SONAILI
KAVATIA
TIKALI
CULTIVATED LAND
CULTIVABLE WASTE
NON-CULTIVABLE
GARDEN AND ORCHARDS
120 0 120 240 480
METRES
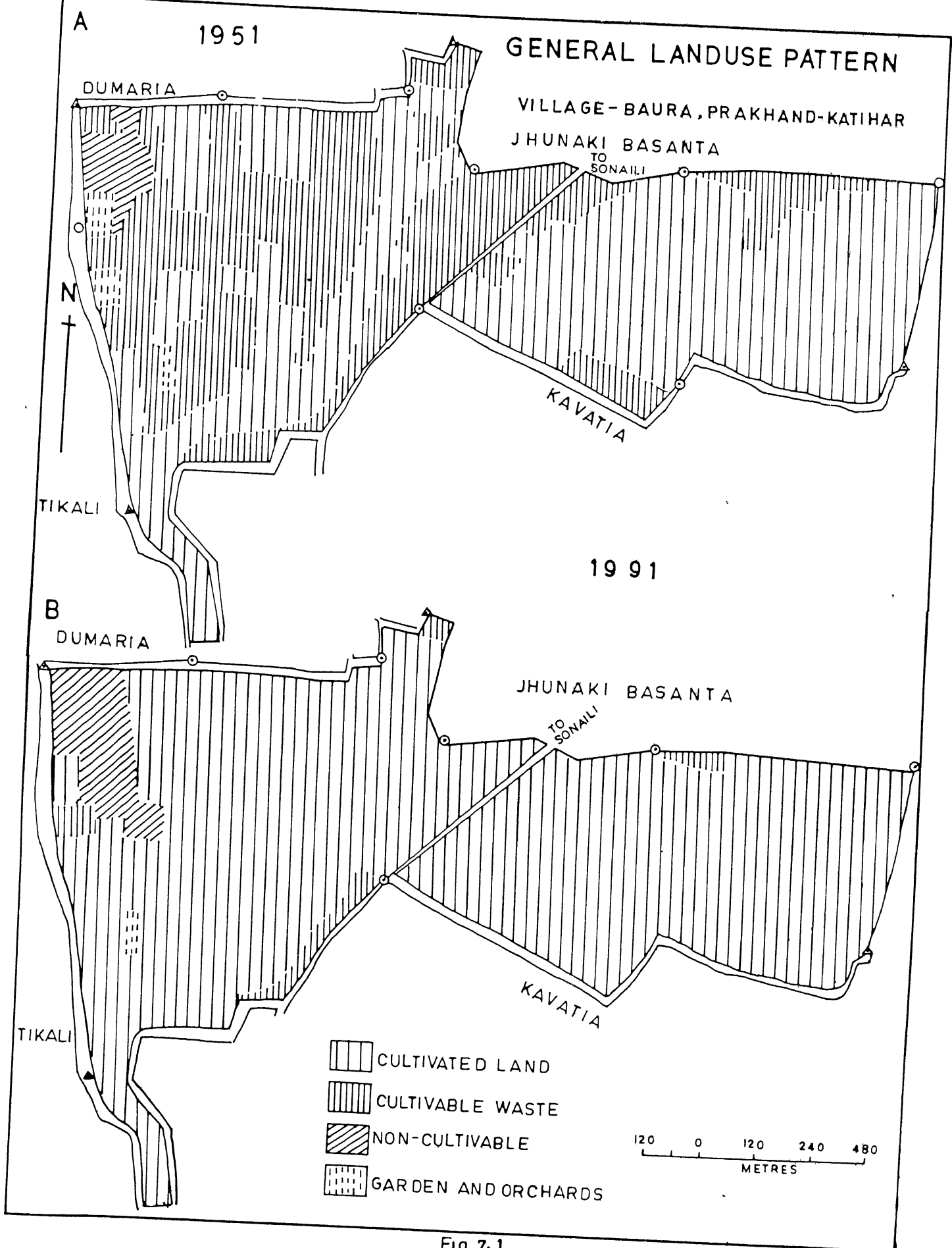
Fig 7.1

गरमा की फसलें पर्याप्त भूमियों पर उत्पन्न की जाती है । फसलों के अन्तर्गत भूमि की अधिकता के कारण इस गाँव में वर्ष 1991 मे कृषि बंजर का क्षेत्र बहुत ही कम हो गया है । कृष्य-बंजर भूमि आबादी के दक्षिण-पश्चिम तथा सड़क के किनारे संकीर्ण पतली पट्टी के रूप में विस्तृत है । अकृष्य भूमि जो सामान्य रूप से आबादी एवं सड़कों के रूप में विद्यमान है, मुख्य रूप से आबादी का क्षेत्र मानचित्र में उत्तरी-पश्चिमी भाग में तथा सड़कों का जाल इस गाँव के सीमान्त क्षेत्र में उत्तरी-पश्चिमी भाग, दक्षिणी भाग तथा सम्पूर्ण पश्चिमी भाग में विस्तृत है । बहुत ही छोटे भू-भाग पर अध्ययन क्षेत्र के दक्षिणी भाग में बाग-बगीचों के अन्तर्गत क्षेत्र विस्तृत है (चित्र संख्या 7.1)।

सारणी 7.1 से ग्राम - बौरा के भूमि उपयोग में परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप को प्रदर्शित किया गया है । सारणी के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि भूमि-उपयोग से सम्बन्धित सभी घटकों में तीव्र परिवर्तन हुआ है । वर्ष 1951-91 (चार दशकों) की अवधि में शुद्ध बोए गए क्षेत्र के अन्तर्गत 70.21% भू-क्षेत्र की वृद्धि हुई है । इसी भाँति अन्य घटकों के अन्तर्गत भी अन्तर देखने को मिलता है ।

अकृष्य क्षेत्र के अन्तर्गत 82.44% का ह्रास हुआ है । 1951 से इस गाँव के अन्तर्गत 28.36 एकड़ भू-क्षेत्र 1991 में घटकर 4.98 एकड़ भू-क्षेत्र अकृष्य के अन्तर्गत परिवर्तित हो गया । चित्र संख्या 7.1 ए को देखने से यह ज्ञात होता है कि अध्ययन-क्षेत्र में छिट-पुट रूप से कृष्य बंजर क्षेत्र का विस्तार है । कृष्य-बंजर भूमि का विशेष जमाव टिकैली की सीमा, उत्तरी भाग में डुमरिया की सीमा, सोनौली को जाने वाली सड़क के पश्चिमी भाग में तथा झुनकी बसन्ता की सीमा पर विस्तृत है । वर्ष 1951 के चित्र-संख्या 7.1 ए की तुलना जब हम 1991 के मानचित्र 7.1 बी से करते हैं तब हम यह पाते हैं कि कृष्य बंजर का क्षेत्र वर्ष 1951 की तुलना में कृषित क्षेत्र परिवर्तन हो गया है । यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि ग्राम बौरा में वर्ष 1951 के अन्तर्गत जो कृष्य-बंजर तथा बाग-बगीचों के अन्तर्गत क्षेत्र सम्मिलित था, वह परिवर्तित होकर कृषित क्षेत्र में आ गया । बौरा में पुराने बाग-बगीचे वाले क्षेत्रों में जूट एवं केले की खेती शुरू की गई है । यहाँ केले और आम के फलों की खेती प्राय. एक साथ देखने को मिलती है ।

शोधकर्ता के सर्वेक्षण के समय प्रस्तुत चयनित गाँव में जो कृष्य बंजर क्षेत्र प्रदर्शित किया गया है उसके अन्तर्गत भी केले की खेती का विस्तार देखने को मिला । इस प्रकार ग्राम बौरा के अन्तर सम्पूर्ण कृषि बंजर को कृषि भूमि के अन्तर्गत परिवर्तित कर दिया गया है ।

अकृष्य क्षेत्र के अन्तर्गत भी वर्ष 1951 की तुलना में (अधिवासों, सड़कों के अन्तर्गत) क्षेत्र का विस्तार हुआ है । 1951 से 1991 की तुलना में बाग-बगीचों के क्षेत्र में ह्रास दृष्टिगोचर होता है । ग्रामवासी अपने बाग-बगीचों को काटकर उस क्षेत्र पर केले की खेती तथा पटसन की खेती के अन्तर्गत उपयोग में ला रहे हैं । भूमि-उपयोग की दृष्टि से सर्वाधिक ह्रास बाग-बगीचों के अन्तर्गत ही हुआ है । पारिस्थितिकीय दृष्टि से क्षेत्र के विकास हेतु बाग-बगीचों का क्षेत्र होना आवश्यक है ।

भूमि-उपयोग विशेषकर कृषि भूमि-उपयोग में सिंचित क्षेत्र का ऊँचा होना गहन कृषि का परिचायक है । सिंचित क्षेत्र के अन्तर्गत चार दशकों में 502.72% की वृद्धि हुई है । बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण-पोषण हेतु सिंचाई की सुविधाओं का प्राविधान कर अत्यकिधक उत्पादन प्राप्त करने का प्रयास जारी है । सिंचाई के साधनों के रूप में व्यक्तिगत नलकूपों के फलस्वरूप सिंचित क्षेत्र में तीव्र वृद्धि हुई है ।

दो-फसली क्षेत्र का उच्च प्रतिशत गहन कृषि का उद्बोधक है । वर्ष 1951-91 की तुलना में 568.97% की वृद्धि दृष्टिगोचर होती है । तुलनात्मक दृष्टि से वर्ष 1951 में 14.35% से बढ़कर 1991 में 50.77% के रूप में परिवर्तित हो गया है । सर्वेक्षण से यह ज्ञात हुआ कि इस गाँव के अन्तर्गत सभी प्रकार की फसलों की खेती भदई, अगहनी, रबी तथा गरमा की कृषि वर्ष के सभी मौसमी दशाओं में विस्तृत क्षेत्र पर उत्पन्न की जाती है । सिंचाई की सुविधा को और अधिक बढ़ाकर दो-फसली क्षेत्र का विस्तार किया जा सकता है ।

सिंचाई की सुविधा एवं बहुफसली कृषि के परिणामस्वरूप सकल कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत पर्याप्त भू-भाग सम्मिलित है । तुलनात्मक दृष्टि से वर्ष 1951 में 80.45 एकड़ क्षेत्र सकल कृषित के रूप में व्याप्त था जो 1991 में बढ़कर 175.03 एकड़ के रूप में बदल गया है इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र का सूक्ष्म अध्ययन के फलस्वरूप यह ज्ञात हुआ है कि चार 17.50%

की वृद्धि सकल कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत प्राप्त है । यह प्रतिशत क्रम सिंचाई तथा दो-फसली बहुफसली क्षेत्रों में वृद्धि कर बढ़ायी जा सकती है । सकल कृषित क्षेत्र के विकास की अभी भी सम्भावना है ।

7.2 ग्राम - गोपालपुर :- यह गाँव ($25^0$36' उत्तरी अक्षांश एवं $87^0$28' पूर्वी देशान्तर) कटिहार मुख्यालय से लगभग 23 कि0 मी0 की दूरी पर न्याय पंचायत हफलागंज में दक्षिणी-पूर्वी भाग में स्थित है । इस गाँव का कुल क्षेत्रफल 342 एकड़ है । इस गाँव में जनसंख्या का घनत्व 0.25 व्यक्ति एकड़ तथा शुद्ध बोया क्षेत्र 2.35 एकड़ प्रति व्यक्ति है । इस गाँव के उत्तरी-पूर्वी भाग में कमला नदी बहती है जिसका प्रवाह उत्तर से दक्षिण की ओर है जो मैरा तथा भखरीपुर गाँव की सीमा निर्धारण करती है । यह नदी पूर्वी भाग में मियान्डर बनाती हुई प्रवाहित होती है । इस गाँव के दक्षिणी भाग में बसंतपुर तथा पश्चिमी भाग में नारायणपुर एवं उत्तरी-पश्चिमी भाग में ग्राम सिरनियाँ स्थित है । गाँव के मध्य भाग में पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पूर्वी भाग में सड़क है । इस गाँव का चयन कृष्य बंजर भूमि के रूप में किया गया है ।

भूमि उपयोग परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप (1951-91) की दृष्टि से चार दशकों की अवधि में तीव्र परिवर्तन देखने को मिलता है ।

कृष्य बंजर के अन्तर्गत वर्ष 1951 में 35.84% (122.57 एकड़) भू-क्षेत्र सम्मिलित था जो वर्ष 1991 में 20.64% (70.6 एकड़) हो गया, अर्थात् चार दशकों में 42.40% (51.97 एकड़) भू-भाग कृषि तथा अन्य कार्यों में लगा लिया गया है, जो सारणी (7.2) से स्पष्ट है । शोधकर्ता ने अध्ययन की अवधि में एक वर्ष के अन्तर्गत प्रतिदर्श गाँव में पर्याप्त अन्तर पाया है । अधिकांश भू-भाग जो पहले डीह, बंजर था, उसे कृषि, आवास, सड़क, नहर तथा अन्य सांस्कृतिक कार्यों के उपयोग में ला लिया गया है, जो मानचित्र 7.2 ए तथा 7.2 बी से स्पष्ट हो जाता है ।

शुद्ध बोया गया क्षेत्र पर जब विचार करते हैं तो पाते हैं कि चार दशकों (1951-91) की अवधि में पर्याप्त अन्तर है । यहाँ जनसंख्या विरल है, फिर भी शुद्ध

बोया गया क्षेत्र वर्ष 1951 में 37.27% (127.32 एकड़) भू-क्षेत्र वर्ष 1991 में 58.54% (200-20 एकड़) अर्थात् 57.24% (72.88 एकड़) की वृद्धि हुई ।

आज कृषि के प्रति लोगों की रूझान बढ़ी है फिर भी गाँव का अधिकांश भाग आज भी बंजर के रूप में विस्तृत है । सिंचाई की पर्याप्त सुविधा न होने के कारण कृषि कार्य ठीक ढंग से नहीं हो पाता है । पश्चिमी भाग की भूमि ऊँची है । इस पर मुख्य रूप से दलहन की खेती होती है। गाँव का पूर्वी भाग जो कमला नदी के समीप है, वहाँ धान, पटसन, गेहूँ तथा गरमा धान की खेती होती है ।

सारणी 7.2

ग्राम - गोपालपुर, न्याय पंचायत - हफलागंज

भूमि-उपयोग में परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप (1951-91)

(क्षेत्रफल एकड़ में)

क्र0सं0	भूमि-उपयोग प्रतिरूप	1951 क्षेत्रफल	1951 प्रतिशत	1991 क्षेत्रफल	1991 प्रतिशत	अंतर वर्ष-1951-1991 के क्षेत्रफल पर आधारित	परिवर्तन (% में)
1.	क्षेत्रफल	342.00	-	342	-	-	-
2.	शुद्ध बोया गया क्षेत्र	127.32	37.23	200.20	58.54	72.88	(+) 57.24
3.	कृष्य अप्राप्य क्षेत्र	40.80	11.93	71.20	20.81	30.40	(+) 74.50
4.	कृष्य बंजर	122.57	35.84	70.60	20.60	51.97	(-) 42.40
5.	बाग-बगीचा	51.31	15.00	00.00	0.0	51.31	(-)100.00
6.	सिंचित क्षेत्र	14.32	11.25	56.59	28.27	42.27	(+)295.18
7.	दो-फसली क्षेत्र	20.56	16.15	65.06	32.5	44.60	(+)216.43
8.	सकल कृषित क्षेत्र	150.35	-	203.50	-	53.15	(+) 35.35

GENERAL LANDUSE PATTERN.
VILLAGE-GOPALPUR
PRAKHAND-KATIHAR
N
1951
A
BHAKHARIPUR
ROAD
MAIRA
RIVER
KAMLA
NARAYANPUR
BASANTPUR
PULHARA
1991
B
BHAKHARIPUR
ROAD
MAIRA
KAMLA RIVER
NARAYANPUR
BASANTPUR
PULHARA
CULTIVATED LAND
CULTIVABLE WASTE
NON-CULTIVABLE
GARDEN AND ORCHARD
160 0 160 320 480
METRES
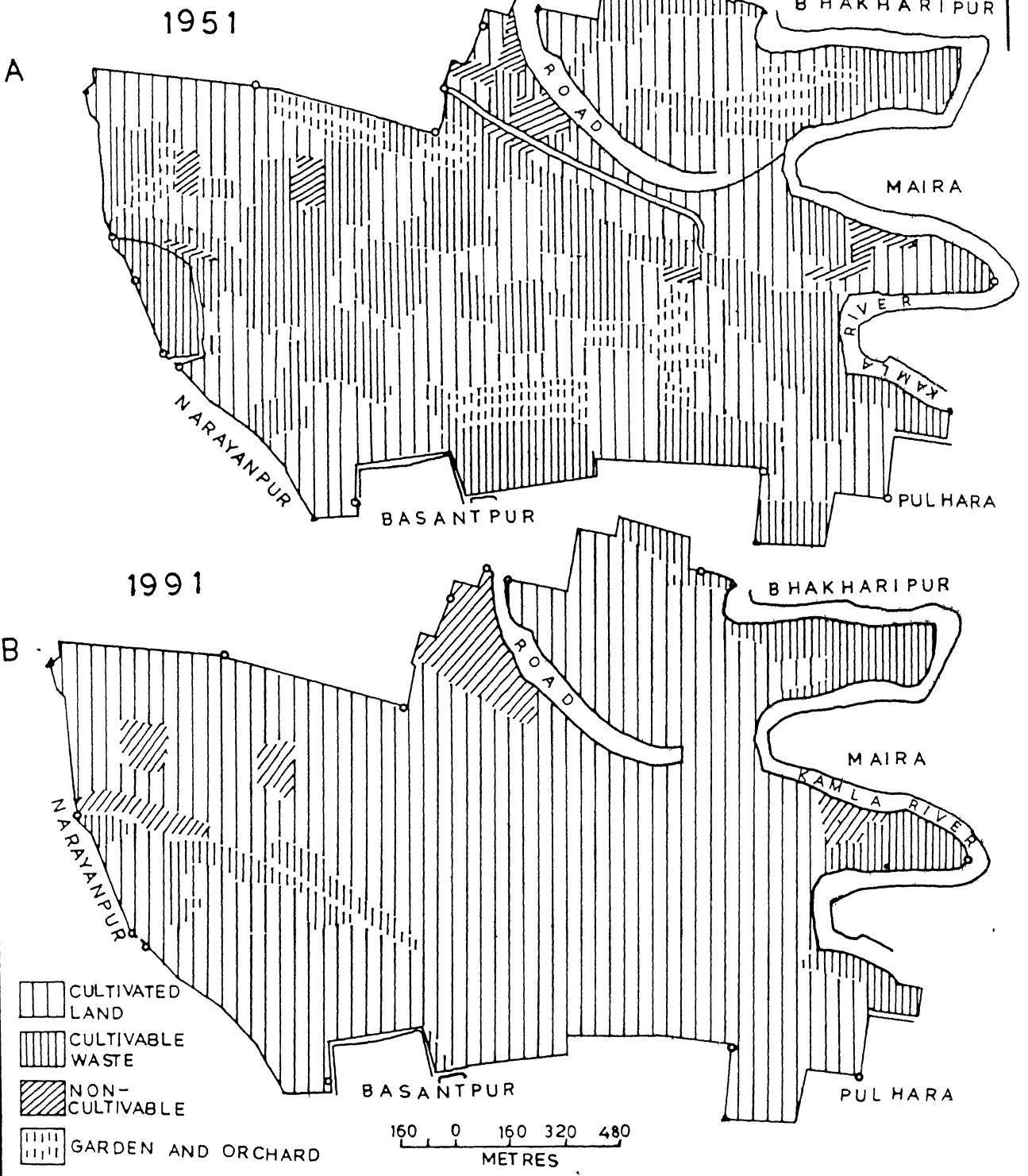
Fig.7.2

वृष्य अप्राप्य के अन्तर्गत भी पर्यात अंतर विगत चार दशकों में देखने को मिलता है । वर्ष 1951 में 11.93% (40.80 एकड़) भू-भाग अप्राप्य के अन्तर्गत था जो वर्ष 1991 में बढ़कर 20.81% (71.2 एकड़) हो गया, अर्थात् इन चार दशकों में 74.50% (30.40 एव.ड़) भू-भाग, आवास, सड़क, शैक्षिक संस्थान तथा अन्य सांस्कृतिक उपयोगों में ले लिया गया है । कृषि अप्राप्य के विभिन्न पक्षों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि कृषि अप्राप्य भूमि का 62.44% मानव अधिवास, परिवहन एवं सिंचाई के साधनों के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है । भूमि अनुपयुक्त होने के कारण इस गाँव के अधिकांश लोग जीविकोपार्जन हेतु बाहर (पंजाब) चले जाते हैं । गाँव में छोटे-छोटे लघु उद्योग देखने को मिलते हैं जिसमें हालर (धान कूटने की मशीन) चूड़ा कूटने की मशीन, स्पेलर (तेल तैयार करने की मशीन) आदि प्रमुख हैं ।

बाग-बगीचो के क्षेत्र में विशेष परिवर्तन शोधकर्ता को मिला है, क्योंकि वर्ष 1951 में 15% (51.31 एकड़) भू-भाग बाग-बगीचों के अन्तर्गत था जो वर्ष 1991 में नगण्य हो गया है । विगत चार दशकों में 100% का ह्रास बाग-बगीचों के अन्तर्गत हुआ है । बाग-बगीचों की कटाई से संबंधित अनेक उद्योग-धंधे विकसित किए गए । दुर्भाग्य इस बात का है कि सभी सरकारी कार्यक्रमों के बावजूद भी इस गाँव के बगीचों की कटाई पर कोई नियंत्रण नहीं लग पाया है । इसकी पूर्ति वृक्षारोपण करके की जा सकती है । जो बंजर क्षेत्र हैं, वहाँ वृक्षारोपण किया जाय । नदी के तटीय क्षेत्रों पर वृक्षारोपण कार्यक्रम द्वारा मृदा अपरदन से बचाया जा सकता है ।

सिंचित क्षेत्र में भी पर्याप्त अंतर देखने को मिलता है । वर्ष 1951 में 11.25% (14.32 एकड़) भू-भाग संचित क्षेत्र के अंतर्गत था जो वर्ष 1991 में बढ़कर 28.27% (56.59 एकड़) भू-भाग हो गया, अर्थात विगत चार दशकों में 295.18% (42.27 एकड़) की वृद्धि हुई है । कमला नदी से कई छोटे नलिकाओं का निर्माण हुआ है जिससे किसानों को सिंचाई कार्य में विशेष रहात मिलती है । गाँव के मध्यवर्ती भू-भाग जो समतल है वहाँ व्यक्तिगत बोरिंग करके सिंचाई कार्य होता है ।

द्वि-फसली क्षेत्र में भी पर्याप्त अन्तर हुआ है, क्योंकि वर्ष 1951 में 16.15% (20.56 एकड) भू-भाग द्वि-फसली क्षेत्र के अन्तर्गत था जो वर्ष 1991 में बढ़कर 32.5% (65.06 एकड़) भू-भाग हो गया अर्थात् चार दशकों में 216.43% (44.60 एकड़) की वृद्धि हुई है । इन क्षेत्रों में पहले मूल रूप से धान की खेती होती थी, लेकिन अब धान (भदई, अगहनी, गरमा) गेहूँ, पटसन का उत्पादन होता है । नदी के समीप वाले भू-भाग में परवल, भिन्डी, लौकी, बन्डा की खेती देखने को मिलती है ।

उपर्युक्त के अतिरिक्त जब हम सकल कृषित क्षेत्र पर विचार करते हैं तो इनमें भी पर्याप्त अन्तर देखने को मिलता है । वर्ष 1951 में 150.35 एक भू-भाग पर सकल कृषि होती थी जो अब 1991 में 203.50 एकड़ भू-भाग पर सकल कृषि हो रही है । अर्थात् चार दशकों में 35.35% (53.5 एकड़) की वृद्धि हुई है । इस प्रकार शोधकर्ता ने देखा कि जिस तरह से शुद्ध कृषि, अप्राप्य भूमि में परिवर्तन देखने को मिलता है , उस अनुपात में कृष्य बंजर के अंतर्गत नहीं हुआ है अर्थात् आज भी बड़ा भू-भाग कृष्य बंजर के रूप में विद्यमान है । इस भू-भाग को कृषित क्षेत्र तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में परितर्वन करके आर्थिक स्थिति को सुधारा जा सकता है, एवं ग्रामीण लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है । नदियों पर बाँध का निर्माण करके जो भूमि आज भी अनुपयुक्त है, वहाँ सिंचाई की सुविधा प्रदान करके फसलों का उत्पादन किया जा सकता है ।

7.3 ग्राम - कजरी :- यह गाँव ($25^0 38'$ उत्तरी अक्षांश एवं $87^0 39'$ पूर्वी देशान्तर) कटिहार - मुख्यालय से लगभग 19 कि0 मी0 उत्तरी-पूर्वी भाग में स्थित है। इस गाँव में जनसंख्या का घनत्व 2.93 व्यक्ति प्रति एकड़ तथा शुद्ध बोया गया क्षेत्र 0.39 एकड़ प्रति व्यक्ति है । इस गाँव का कुल क्षेत्रफल 211.00 एकड़ है। इस गाँव के पश्चिमी सीमान्त में कमला नदी प्रवाहित होती है जो सीमा का निर्धारिण भी करती है । कमला नदी पूर्वी भाग में चयनित गाँव कजरी को पकडिया से अलग करती है । उत्तरी-पश्चिमी भाग में ढेड़वा, दक्षिणी-पश्चिमी भाग में महमदिया तथा दक्षिणी-पश्चिमी भाग में भारीडीह गाँव स्थित है । कृषि उपयोग की दृष्टि से वर्ष 1951 में इस गाँव में 45.65% (78.98 एकड़) शुद्ध बोया गया क्षेत्र, 6.35% (10.98 एकड़) कृषि अप्राप्य, 26.48% (45.81 एकड़) कृष्य बंजर तथा

21.52% (37.23 एकड़) बाग-बगीचों के अन्तर्गत सम्मिलित था जो चार दशकों (1951-1991) के अन्तराल बाद क्रमशः 83.12% (143.79 एकड़) शुद्ध बोया गया क्षेत्र 12.58% (21.77 एकड़) कृषि अप्राप्य 4.39% (7.6 एकड़) कृष्य बजर में परिवर्तित हो गया बाग-बगीचों के अन्तर्गत 100% का ह्रास हुआ है अर्थात् वर्ष 1951-1991 की अवधि में विशेष अन्तर देखने को मिलता है, जो सारणी (7.3) से स्पष्ट है । वर्ष 1951-91 (चार दशकों) की अवधि में प्रतिशत परिवर्तन क्रमशः क्षेत्रफल के अन्तर्गत कुछ भी नहीं , परन्तु शुद्ध बोये गये क्षेत्र में 59.01% की वृद्धि, कृष्य अप्राप्य में 222.55% की वृद्धि तथा कृषि बंजर एवं बाग-बगीचों में 100% का ह्रास हुआ है । इसके साथ ही सिंचित क्षेत्र, दो फसली क्षेत्र और सकल कृषित क्षेत्र में भी परिवर्तन हुआ है जो क्रमशः 208%, 372.90% तथा 81.39% है । शोधकर्ता ने अपने सूक्ष्म अध्ययन के आधार पर यह पाया कि चयनित गाँव के अन्तर्गत भूमि-उपयोग से संबंधित सभी घटकों में तकनीकी विकास के कारण भरपूर परिवर्तन हुआ है । कृष्य बंजर तथा बाग-बगीचों का ह्रास बहुत ही तेजी से हुआ है ।

कजरी गाँव का चयन कृषि हेतु अप्राप्य भूमि के रूप में किया गया है, क्योंकि यादृच्छिक प्रतिदर्श आठ गांवों में से कजरी गाँव इसके लिए उपयुक्त पाया गया है इसलिए इसे इस श्रेणी में रखा गया । कजरी गाँव का विस्तार उत्तर से दक्षिण अपेक्षाकृत अधिक है । इस गाँव का अधिकांश भाग खेती के योग्य नहीं है । कमला नदी के प्रवाह के कारण समतल भूमि का अभाव है, जिसके कारण सही ढंग से खेती नहीं हो पाती है । खेती के लिए सभी भौगालिक दशाएँ प्रतिकूल है, जबकि गाँव के समीप ही कमला नदी प्रवाहित होती है । भदई एवं अगहनी की फसल अतिवृष्टि एवं बाढ़ से प्रभावित होती है । वर्षाकाल की अधिकांश फसलें बाढ़ के कारण नष्ट हो जाती है लेकिन प्रस्तुत गाँव में विस्तृत क्षेत्र पर बाग-बगीचों का क्षेत्र भी विस्तृत था (सारणी 7.3 एवं मानचित्र 7.3) । तीव्र गति से जनसंख्या वृद्धि एवं तकनीकी विकास के कारण बाग-बगीचों को काटकर केले एवं जूट की कृषि कर रहे हैं । चयनित गाँव में यह भी देखने को मिला कि आम, लीची, कटहल के बगानों के बीच में केले की सफल खेती सम्पन्न हो रही है । मानचित्र संख्या-7.3.ए को देखने से स्पष्ट होता है कि पहले जंगल, बाग-बगीचों के अंतर्गत 33.86 एकड़ क्षेत्र सम्मिलित था, लेकिन जब मानचित्र 7.3 बी पर दृष्टि डालते हैं तो गाँव में बाग-बगीचों

का भू-क्षेत्र समाप्त प्राय दिखाई पड़ता है । पारिस्थितिकीय तन्त्र को ध्यान में रखते हुए भूमि-उपयोग का उचित उपयोग आवश्यक है । इस दृष्टि से जो क्षेत्र बाग-बगीचों के लिए उपयुक्त है, उन पर शीघ्र वृक्षारोपण आवश्यक है । चयनित गाँव में कजरी गाँव के अंतर्गत विगत चार दशकों (1951-91) की अवधि में अधिकांश भूमि आवास, विद्यालय, सड़क, खलिहान, न्याय पंचायत तथा अन्य सांस्कृतिक उपयोगों में परिवर्तित हो गया है ।

सारणी 7.3

ग्राम - कजरी, न्याय पंचायत - महमदिया

कृषि उपयोग में परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप (1951-91)

(क्षेत्रफल एकड़ में)

क्र0सं0	भूमि उपयोग प्रतिरूप	1951 क्षेत्रफल	1951 प्रतिशत	1991 क्षेत्रफल	1991 प्रतिशत	अन्तर	परिवर्तन (% में)
1.	क्षेत्रफल	211.00	-	211.00	-	-	
2.	शुद्ध बोयागया क्षेत्र	99.92	47.35	158.98	75.35	59.06	(+) 59.01
3.	कृषि अप्राप्य	16.14	7.65	52.06	24.67	35.92	(+) 222.55
4.	कृष्य बंजर	61.08	28.95	00.00	00.00	61.08	(-) 100.00
5.	बाग-बगीचा	33.86	16.05	00.00	00.00	33.86	(-) 100.00
6.	सिंचित क्षेत्र	12.24	12.25	37.7	23.7	25.46	(+) 208.00
7.	दो-फसली क्षेत्र	13.84	13.85	65.45	41.17	51.61	(+) 372.90
8.	सकल कृषित क्षेत्र	185.15	-	335.85	-	150.7	(+) 81.39

सारणी 7.3 से ग्राम कजरी के भूमि-उपयोग में परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप को प्रदर्शित किया गया है । सारणी से यह ज्ञात होता है कि भूमि उपयोग से सम्बन्धित सभी घटकों में तीव्र परिवर्तन हुआ है । वर्ष 1951-91 (चार दशकों) की अवधि में कृषि अप्राप्य क्षेत्र के अन्तर्गत 222.55% की वृद्धि हुई है । इसी भाँति अन्य घटकों के अन्तर्गत भी अन्तर देखने को मिलता है ।

GENERAL LANDUSE PATTERN
VILLAGE-KAJARI
PRAKHAND-KATHIHAR
1951
A
1991
B
TEDAWA
PAKARIA
KAMLA RIVER
ROAD
BHARIDIH
MOHMADIA
MOHMADIH
140 0 140 28 420
METRES
CULTIVABLE LAND
CULTIVABLE WASTE
NON-CULTIVABLE
GARDEN & ORCHARDS

Fig.7·3

शुद्ध बोये गए क्षेत्र के अन्तर्गत 59.01% की वृद्धि हुई है । 1951 में इस गाँव के अन्तर्गत 99.92 एकड़ भू-क्षेत्र सम्मिलित था, वह बढ़कर 1991 में 158.98 एकड़ शुद्ध कृषित में परिवर्तित हो गया । इस गाँव में विशेषकर पटसन, धान, गरमा धान की खेती होती है । यत्र-तत्र केले की भी खेती देखने को मिलती है । पटसन और केला यहाँ की मुद्रादायिनी फसल के रूप में उत्पन्न की जाती है । पटसन का उत्पादन अधिक होने का एक मुख्य कारण कटिहार जिले में जूट उद्योग की स्थापना है । बढ़ती जनसंख्या के कारण लोग कृष्य बंजर भूमि पर भी खेती का कार्य शुरू कर दिए हैं । जिसके कारण कृष्य बंजर क्षेत्र को कृषित भूमि को परिवर्तित कर दिया गया है ।

कृषि अप्राप्य भूमि के अन्तर्गत वर्ष 1951 में 16.14 एकड़ भू-क्षेत्र था, जो वर्ष 1991 में बढ़कर 52.06 एकड हो गया अर्थात् चार दशकों के दौरान 222.55% (35.92 एकड़) की वृद्धि हुई है ।

कृष्य बंजर के अन्तर्गत वर्ष 1951 में 61.08 एकड़ भू-क्षेत्र था जो वर्ष 1991 में समाप्त प्राय हो गया है अर्थात् 100% (61.08 एकड़) की कमी आयी है ।

बाग-बगीचों के अन्तर्गत वर्ष 1951 में 33.86 एकड़ भू-क्षेत्र सम्मिलित था जो वर्ष 1991 (चार दशकों) की अवधि में सम्पूर्ण बाग-बगीचों को कृषि क्षेत्र में परिवर्तित कर दिया गया । गाँव के लोगों का झुकाव भी वृक्षारोपण के प्रति दिखाई पड़ रहा है । विभिन्न प्रकार के फलदार वृक्षों का रोपण केले के साथ मिश्रित रूप में कर रहे हैं ।

भूमि-उपयोग के लिए कृषि-भूमि उपयोग में सिंचित क्षेत्र का ऊँचा होना गहन कृषि का परिचायक होता है । सिंचित क्षेत्रों के अन्तर्गत चार दशकों में 208.00% की वृद्धि हुई है । जनसंख्या बढ़ने के साथ-साथ सिंचाई की सुविधाओं में सतत् बढ़ोत्तर की जा रही है । इसके बावजूद कुछ क्षेत्र सिंचाई से वंचित रह जाते हैं ।

दो फसली क्षेत्र में चार दशकों के दौरान 372.9% की वृद्धि हुई है । सर्वेक्षण के दौरान इस गाँव में लगभग सभी प्रकार की फसलों का उत्पादन होता है । उनमें अधिकांश

पटसन और धान की खेती होती है । पटसन कृषि की मौसमी दशाओं में विस्तृत क्षेत्र पर उत्पन्न की जाती है । यदि सिंचाई की सुविधा बढ़ा दी जाय तो अनुमान है कि उत्पादन की मात्रा में दुगुनी वृद्धि हो जायेगी । अत. सिंचाई, उन्नत कृषि उपकरणों तथा उन्नतशील बीजों की व्यवस्था प्रदान कर दो-फसली क्षेत्र तथा उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है । अध्ययन क्षेत्र में व्यक्तिगत बाँस-बोरिंग की सुविधा है, जिससे समयानुसार फसलों की सिंचाई हो जाती है ।

बहुफसली कृषि के परिणाम स्वरूप सकल कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत पर्याप्त भू-भाग सम्मिलित है । तुलनात्मक दृष्टि से वर्ष 1951 में 185.15 एकड़ सकल कृषि प्राप्त था जो वर्ष 1991 में बढ़कर 335.85 एकड़ के रूप में परिवर्तित हो गया है । अर्थात् 150.7 एकड़ (81.39%) सकल कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत विद्यमान है । यह वृद्धि चार दशकों की अवधि में हुई । सकल कृषित क्षेत्र को सिंचाई, उन्नतशील बीज, नवीन कृषि पद्धति, कृषि यंत्रों आदि अन्यान्य सुविधाओं को प्रदान कर सकल कृषित क्षेत्र को बढ़ाया जा सकता है ।

7.4 ग्राम - शंकरपुर :- यह गाँव ($25^0 34'$ उत्तरी अक्षांश एवं $87^0 38'$ पूर्वी देशान्तर) कटिहार मुख्यालय से लगभग 19 कि0 मी0 पूर्वी भाग में न्याय पंचायत बोरनी गोरगामा के अन्तर्गत स्थित है । यह एक गैर, आबाद गाँव है । इसका चयन दो - फसली भूमि अधिक होने के फलस्वरूप अध्ययन हेतु किया गया है । यह गाँव तीन तरफ से कमला नदी से घिरा हुआ है जो पूर्व में रतनपुरा, दक्षिण में रतनपुर एवं दक्षिण-पश्चिम में घुसमर बेलवा की सीमा से अलग करती है । इस गाँव के उत्तर में नीमा गाँव स्थित है । भौगोलिक दृष्टिकोण से यह गाँव नदी के प्रवाह क्षेत्र में पड़ता है । कमला नदी का अपरदन और निक्षेपण का प्रभाव इस गाँव पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है ।

भूमि-उपयोग परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप (1951-91) की दृष्टि से चार दशकों में विशेष परिवर्तन हुआ है जो सारणी 7.4 से स्पष्ट है ।

दो फसली क्षेत्र के अन्तर्गत इस गाँव का वर्ष 1951 की अवधि में 25.35% (13.20 एकड़) भू-क्षेत्र सम्मिलित था जो वर्ष 1991 में बढ़कर 90.32% (76.1 एकड़) भू-क्षेत्र में परिवर्तित हो गया, अर्थात चार दशकों (1951-91) की अवधि में 62.90 एकड़ की एवं 476.5% की वृद्धि हुई । कमला नदी के द्वारा प्रतिवर्ष नई मिट्टी के विस्तृत जमाव के फलस्वरूप भरपूर उत्पादन प्राप्त होता है । वर्ष में भदई, अगहनी, रबी एवं गरमा की फसलें पर्याप्त क्षेत्र पर उत्पन्न की जाती है । धरातल निम्न होने के फलस्वरूप भदई, अगहनी की फसल पर्याप्त होती है । सिंचाई की सुविधा से रबी एवं गरमा की फसलें भी विस्तृत क्षेत्र पर उत्पन्न की जाती है । अपेक्षाकृत उत्पादन भी अधिक होता है । मानचित्र संख्या 7.4 ए एवं 4.4 बी को देखने से स्पष्ट होता है कि विस्तृत क्षेत्र पर कृषि कार्य होता है । प्रतिवर्ष नये जलोढ़ मृदा के फलस्वरूप खाद एवं सिंचाई की भी कम आवश्यकता पड़ती है । अल्प श्रम में ही पर्याप्त उत्पादन मिल जाता है ।

शुद्ध बोये गये क्षेत्र के अन्तर्गत भी पर्याप्त अंतर देखने को मिलता है । वर्ष 1951 में 52.07 एकड़ (48.36%) भू-क्षेत्र सम्मिलित था जो वर्ष 1991 में बढ़कर 84.25 एकड़ (78.27%) भू-क्षेत्र में परिवर्तित हो गया । यह परिवर्तन चार दशकों (1951-91) की अवधि में 32.18 एकड़ तथा 61.80% की वृद्धि हुई । मानचित्र 7.4 बी देखने से स्पष्ट हो जाता है कि वर्ष 1991 में शुद्ध बोये गये क्षेत्र में परिवर्तन हुआ है । इसका प्रमुख कारण तकनीकी ज्ञान तथा खेती के प्रति बढ़ती उत्सुकता है । गाँव के मुखिया एवं सरपंच से मिलने के फलस्वरूप यह ज्ञात हुआ कि चार दशकों के बाद पैदावार में काफी वृद्धि हुई है । फसलों का प्रतिरूप बदला है । अत्यधिक उत्पादन देने वाली फसलों की खेती हो रही है ।

कृष्य अप्राप्य क्षेत्र में भी पर्याप्त अंतर देखने को मिलता है । वर्ष 1951 में 4.55% (4.89 एकड़) भू-क्षेत्र सम्मिलित था जो वर्ष 1991 में बढ़कर 7.53% (8.1 एकड़) भू-क्षेत्र में परिवर्तित हो गया है । यह परितर्वन चार दशकों में 65.64% की वृद्धि हुई है । मानचित्र से स्पष्ट हो जाता है कि वर्ष 1951 में यत्र-तत्र कृष्य अप्राप्य भूमि दिखाई दे रहा है लेकिन 1991 के मानचित्र में इसके अन्तर्गत तीव्र परिवर्तन देखने को मिलता

है । अर्थात् अनुपयुक्त भूमियों पर सड़क, अधिवास, नहर तथा अन्य सांस्कृतिक क्षेत्रों के रूप में उपयोग में लाया गया है ।

सारणी 7.4

ग्राम - शंकरपुर, न्याय पंचायत - बौरनी

भूमि उपयोग में परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप (1951-91)

(क्षेत्रफल एकड़ में)

क्र0सं0	भूमि उपयोग प्रतिरूप	1951 क्षेत्रफल	1951 प्रतिशत	1991 क्षेत्रफल	1991 प्रतिशत	अंतर		परिवर्तन (% में)
1.	क्षेत्रफल	107.63	-	107.63	-	-		-
2.	शुद्ध बोया गया क्षेत्र	52.07	48.36	84.25	78.27	32.18		61.80
3.	कृष्य अप्राप्य	4.89	4.55	8.10	7.53	3.21	(+)	65.64
4.	बाग-बगीचा	17.69	16.44	5.02	4.66	12.67	(-)	71.62
5.	कृष्य बंजर	32.98	30.65	10.26	9.53	22.72	(-)	68.89
6.	सिंचित क्षेत्र	9.54	18.32	30.50	36.19	20.96	(+)	219.71
7.	दो-फसली क्षेत्र	13.20	25.35	76.10	90.32	62.90	(+)	476.51
8.	सकल कृषित क्षेत्र	95.06	-	158.80	-	63.74	(+)	67.05

कृष्य बंजर के अन्तर्गत भी पर्याप्त अन्तर देखने को मिलता है । शोधकर्ता ने अध्ययन क्षेत्र में भ्रमण के दौरान पाया कि कृष्य बंजर का प्रतिशत कम हो गई जो सारणी (7.4) से स्पष्ट है । वर्ष 1951 में 26.48% (45.81 एकड़) भू-क्षेत्र सम्मिलित था जो वर्ष 1991 में घटकर 4.39% (7.6 एकड़) भू-क्षेत्र में परिवर्तित हो गया, अर्थात चार दशकों के अन्तर्गत 68.81% का ह्रास हुआ । अनुपयुक्त भूमि को कृषि की नई तकनीक के फलस्वरूप खेती कार्य में लाया गया जिसके कारण इनके भू-क्षेत्र में तेजी से ह्रास हुआ ।

GENERAL LANDUSE PATTERN
VILLAGE - SHANKER PUR
PRAKHAND - KATIHAR
N
A
1951
NEEMA
RATAN PURA
GHUSMAR BELWA
RIVER
KAMLA
DANDKHORA
ROAD
CULTIVATED LAND
CULTIVABLE WASTE
NON-CULTIVABLE
GARDEN
B
1991
NEEMA
RATANPURA
GHUSMAR BELWA
RIVER
KAMLA
RATANPUR
DANDKHORA
ROAD
120 0 120 180 240
METRES
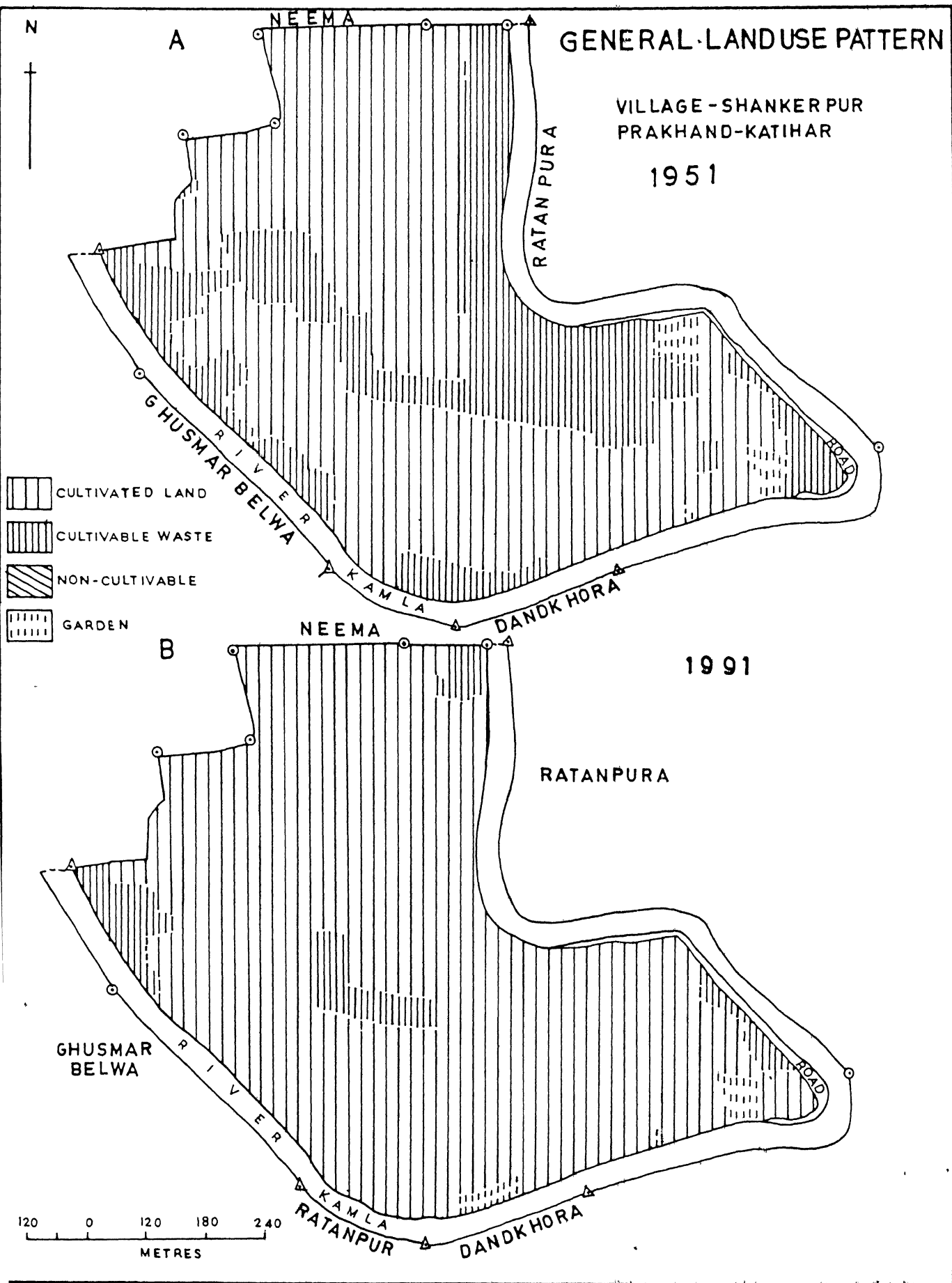
Fig.7.4

बाग-बगीचों मे विशेष परितर्वन हुआ है, क्योंकि वर्ष 1951 में 16.44% (17.69 एकड) भू-क्षेत्र इसके अन्तर्गत सम्मिलित था जो वर्ष 1991 में घटकर 4 66% (5 02 एकड) भू-क्षेत्र शेष रह गया है । यह अन्तर 71.62% (12 67 एकड) का हुआ । वर्तमान में जो भी बाग-बगीचा का क्षेत्र विद्यमान है उसके मुख्य रूप से आम, कटहल, लीची तथा अमरूद के वृक्ष देखने को मिलते हैं । साथ ही क्षेत्रीय जागरूकता के परिणामस्वरूप इन बगीचों में बीच-बीच में केले की खेती की जा रही है । बाग-बगीचों के तीव्र कटाव से प्रतिदर्श गाँव वनस्पति विहीन होने के कगार पर पहुँच गया है । अत इस पर नियंत्रण आवश्यक है, अन्यथा क्षेत्र असन्तुलन का शिकार बन सकता है ।

सिंचित क्षेत्र को ध्यान मे रखते हुए जब प्रतिदर्श गाँव का अध्ययन किया गया तो चार दशकों (1951-91) की अवधि मे काफी परिवर्तन मिला है । वर्ष 1951 में 18 32% (9 54 एकड़) भू-क्षेत्र सिंचित था जो वर्ष 1991 में बढ़कर 36.19% (30.5 एकड़) पहुँच गया है । अर्थात् सिचाई की पर्याप्त सुविधा देखने को मिलती है । सिंचाई के रूप में नदी के जल का प्रयोग करते हैं । इस गाँव की 80% भूमि की सिंचाई कमला नदी के जल से सम्पन्न होती है । पम्पिग सेट का प्रयोग विशेष रूप से देखने को मिलता है । मध्यवर्ती भाग में बाँस - बोरिंग की सहायता से सिंचाई की जाती है । इन सब सुविधाओं के कारण उत्पादन में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है । सिंचन क्षेत्र में पर्याप्तता के कारण दो-फसली क्षेत्र में वृद्धि हुई है । सिंचाई की सुविधा एवं दो फसली क्षेत्र की अधिकता के कारण सकल कृषित क्षेत्र भी अधिक है । वर्षाकाल में अतिवृष्टि से बाढ़ के फलस्वरूप निम्न भूमि पर आच्छादित फसलें नष्ट हो जाती हैं । वर्षाकाल में विशेषकर भदई एवं अगहनी की फसलें निम्नवर्ती भू-भाग में जो बोई गई रहती है, प्रभावित होती हैं । फसलों के बचाव के लिए नदी के किनारे-किनारे बाँध का निर्माण आवश्यक है । बाँध के निर्माण से कृषि क्षेत्र के विस्तार की और पर्याप्त संभावना है तथा कृषि कार्य में विशेष विकास देखने को मिलेगा ।

इस प्रकार उपर्युक्त बातों के साथ जब हम सकल कृषित क्षेत्र पर ध्यान देते हैं तो चार दशकों की अवधि (1951-91) में विशेष परिवर्तन मिलता है, क्योंकि वर्ष 1951

में 95.06 एकड़ भू-क्षेत्र सम्मिलित था जो वर्ष 1991 में बढ़कर 158.80 एकड़ अर्थात् 63.74 एकड़ की वृद्धि हुई है जो 67.05% की वृद्धि की प्रदर्शित करती है ।

इस तरह सभी बिन्दुओं पर प्रकाश डालने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नदियों के किनारे बाँध बनाकर इस गाँव की स्थिति में विशेष सुधार लाया जा सकता है ।

7.5 ग्राम- परियाम दह :- यह गाँव ($25^0 40'$ उत्तरी अक्षांश एवं $87^0 36'$ पूर्वी देशान्तर) कटिहार मुख्यालय से लगभग 24 कि0 मी0 दूर चन्देली भर्रा न्याय-पंचायत में स्थित है । इस गाँव का कुल क्षेत्रफल 173.00 एकड़ है । इस गाँव में जनसंख्या का घनत्व 2.83 व्यक्ति प्रति एकड़ तथा शुद्ध बोया गया क्षेत्र 0.23 एकड़ प्रति व्यक्ति है । इस गाँव के उत्तरी भाग में हरखा, पूर्वी भाग में चन्देली, दक्षिणी भाग में जगन्नाथपुर तथा पश्चिमी भाग में रामपुर कोसपाली गाँव स्थित हैं । इस गाँव का चयन संचित क्षेत्र के रूप में किया गया है ।

भूमि-उपयोग परिवर्तनशील वितरण - प्रतिरूप (1951-1991) की दृष्टि से चार दशकों में काफी परिवर्तन देखने को मिलता है , सारणी 7.5 से स्पष्ट है ।

सिंचित क्षेत्र के अन्तर्गत इस गाँव का 11.15 एकड़ (14.13%), भू-क्षेत्र वर्ष 1951 के अन्तर्गत था, जो वर्ष 1991 में बढ़कर 62.34 एकड़ (43.35%) भू-क्षेत्र में परिवर्तित हो गया । यह अन्तर चार दशको में 51.19 एकड़ का हुआ, अर्थात 459.10% परिवर्तन वृद्धि हुई । इस गाँव में पर्याप्त सिंचाई की सुविधा है । गाँव के सरपंच तथा मुखिया से साक्षात्कार फलस्वरूप गाँव का सूक्ष्म अध्ययन करने में शोधकर्ता को काफी सहूलियत मिली अध्ययन अवधि में यह पाया गया कि कृषक सिंचाई के साधन के रूप में ट्यूबेल, बाँस-बोरिंग, नहर, नलकूप तथा पवन चक्की का प्रयोग करते हैं । धरातल समतल है । गाँव की मिट्टी दोमट, मटियार, दोमट प्रकार की है । पड़ोसी गाँवों की तुलना में इस गाँव में पैदावार अधिक होती है । गाँव के उत्तरी-पश्चिमी तथा मध्यवर्ती भाग में सड़क गुजरती है, जिसके चलते

आवागमन की सुविधा है, चित्र संख्या 7.5 बी ।

शुद्ध बोये गये क्षेत्र के अन्तर्गत भी पर्याप्त विषमता है । वर्ष 1951 में कुल क्षेत्रफल 173.00 एकड़ में 78.98 एकड़ (45.65%) भू-क्षेत्र शुद्ध बोये गये क्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित था, जो वर्ष 1991 में बढ़कर 143.79 एकड़ (83.12%) भू-क्षेत्र हो गया अर्थात 64.81 एकड़ की वृद्धि हुई जो 82.5% वृद्धि को प्रदर्शित करता है । कृषकों के अन्तर्गत चार दशकों की अवधि में विशेष चेतना एवं दक्षता आई है । अनुपयुक्त भूमियों को कृषि क्षेत्र में परिवर्तित कर फसलोत्पादन प्राप्त कर रहे हैं । 1951 में कृषित क्षेत्रों पर केवल ज्वार, बाजरा, धान आदि मोटे अनाजों का उत्पादन होता था । जो अब कई फसलों का उत्पादन हो रहा है । वर्तमान में धान, गेहूँ, दलहन, तिलहन तथा व्यावसायिक फसलों में केला, पटसन आदि की खेती देखने को मिल रहाहै । नहर की सुविधा तो इस गाँव में है लेकिन समय से पानी नहीं आने के कारण कृषकों को काफी परेशानी उठानी पडती है । यदि नहर में समय से पानी तथा सरकारी नलकूप की पर्याप्त सुविधा प्रदान किया जाय तो इस गाँव में फसलोत्पादन का आशातीत परिवर्तन देखने को मिलेगा ।

सारणी 7.5

ग्राम - परियामदह, न्याय पंचायत - चन्देली भर्रा

भूमि-उपयोग में परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप (1951-91)

(क्षेत्रफल एकड़ में)

क्र0सं0	भूमि-उपयोग	1951 क्षेत्रफल	1951 प्रतिशत	1991 क्षेत्रफल	1991 प्रतिशत	अंतर	परिवर्तन (% में)
1.	भौगोलिक क्षेत्रफल	173.00	-	173.00	-	-	-
2.	शुद्ध बोया गया क्षेत्र	78.98	45.65	143.79	83.12	64.81 (+)	82.05
3.	कृष्य अप्राप्य क्षेत्र	10.98	6.35	21.77	12.58	10.79 (+)	98.26
4.	कृष्य बंजर	45.81	26.48	7.60	4.39	38.21 (-)	42.32
5.	बाग-बगीचा	37.23	21.52	00.00	0.00	37.23 (-)	100.00
6.	सिंचित क्षेत्र	11.15	14.13	62.34	43.35	51.19 (+)	459.10
7.	दो-फसली	12.04	15.25	79.61	55.37	67.57 (+)	561.21
8.	सकल कृषित क्षेत्र	166.90	-	285.82	-	118.92 (+)	71.25

N
GENERAL LANDUSE PATTERN
1951
VILLAGE-PARIYAGDAH
PRAKHAND-KATIHAR
A
KOSPALI
RAMPUR
HARAKHA
CHANDELI
JAGARNATHPUR
B
1991
RAMPUR KOSPALI
HARAKHA
CHANDELI
CULTIVATED LAND
CULTIVABLE WASTE
NON CULTIVABLE
GARDENS & ORCHARDS
JAGARNATH PUR
134 0 134 268 402
METRES

Fig. 7·5
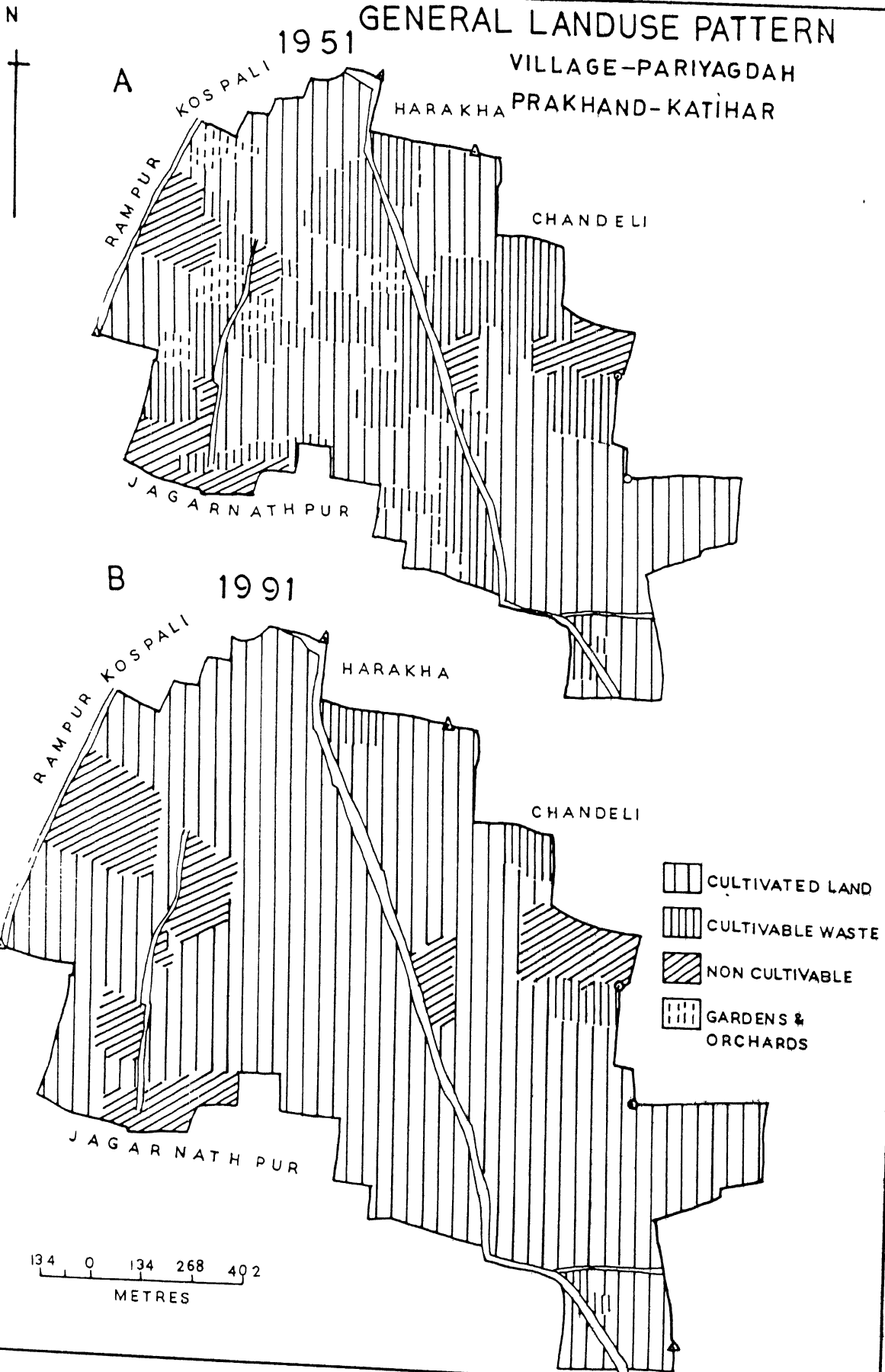
कृषि अप्राप्य क्षे9 के अन्तर्गत भी पर्याप्त अंतर आया है क्योंकि वर्ष 1951 में कुल क्षेत्रफल का 10.98 एकड़ (6.35%) भू-क्षेत्र सम्मिलित था जो 1991 में बढ़कर 21.77 एकड़ (12.58%) भू-क्षेत्र हो गया है । यह परिवर्तन चार दशकों के दौरान 10.79 एकड़ तथा प्रतिशत परिवर्तन वृद्धि 98.26% की हुई है, क्योंकि मानचित्र संख्या 7.5 ए में आबादी पश्चिमी भाग तथा उत्तरी-पूर्वी भाग में गाँव विस्तृत था जो मानचित्र संख्या 7.5 बी वर्ष 1991 में इसका काफी फैलाव देखने को मिलता है । जनसंख्या बढ़ती गई, लोग आवास के रूप में भूमियों पर विस्तृत होते गये। साथ ही सड़क, न्याय-पंचायत, विद्यालय, नहर, नलकूप, चकरोड आदि में विशेष भूमि उपयोग में आ गयी है, जिसके फलस्वरूप कृषि अप्राप्य में काफी वृद्धि हुई है । यहाँ तक कि लोग बाग-बगीचों को काटकर वहाँ अपना मकान बना लिए हैं । प्रायः अध्ययन क्षेत्र के सभी गाँवों में बाग-बगीचों का कटाव देखने को मिला है । पेड़-पौधों के क्षेत्र में तेजी से ह्रास हुआ है ।

कृष्य बंजर के अन्तर्गत भी काफी परिवर्तन हुआ है, क्योंकि वर्ष 1951 में 45.81 एकड़ (26.48%) भू-क्षेत्र सम्मिलित था जो वर्ष 1991 में घटकर 7.6 एकड़ (4.39%) भू-क्षेत्र कृष्य बंजर के रूप में शेष रह गया । यह परिवर्तन चार दशकों की अवधि में 38.21 एकड़ अर्थात् 42.32% की कमी हुई । इससे स्पष्ट होता है कि लोग अनुपयुक्त भूमियों को खेती तथा अन्य सांस्कृतिक कार्यों में लगाये हैं । भीठ,डीह आदि ऊँची जमीन को जोतकर खेती में परिवर्तन कर लिए हैं । मानव की जैसे-जैसे आवश्यकता बढ़ती गई, अनुपयुक्त भूमि को उपयुक्त बनाकर उपयोग में लाये हैं, और यह क्रम अनवरत चलता ही रहेगा ।

बाग-बगीचों में विशेष परिवर्तन देखने को मिला है, क्योंकि वर्ष 1951 में 37.27 एकड़ (21.52%) भू-क्षेत्र सम्मिलित था जो वर्ष 1991 तक तीव्र शोषण के फलस्वरूप नगण्य हो गया अर्थात् चार दशकों - 1951-91 के बाद 37.23 एकड़ का ह्रास अर्थात् 100% की कमी हुई । सम्पूर्ण गाँव बाग-बगीचों से वीरान हो गया, दुर्भाग्य इस बात का है कि विस्तृत व्यापक सरकारी योजना के बावजूद भी वृक्षारोपण इस प्रतिदर्श गाँव में वंचित रहा । आज भी इस गाँव के लोगों की चेतना वृक्षारोपण की ओर नहीं हुआ है । यदि इस पर ध्यान नहीं दिया गया तो इस गाँव में रहने वाले लोग अनेक प्रकार के भौतिक एवं-

सांस्कृतिक बाधाओं का शिकार हो जायेंगे । अतः इस गाँव के नहरों, सड़कों तथा अन्य सांस्कृतिक स्थलों पर गहन वृक्षारोपण करके इस कमी की पूर्ति की जा सकती है ।

दो फसली क्षेत्र में भी पर्याप्त अन्तर मिलता है । वर्ष 1951 में 12.04 एकड़ (15.25%) भू-क्षेत्र दो-फसली के अन्तर्गत सम्मिलित था जो वर्ष 1991 में बढ़कर 79.61 एकड़ (55.37%) भू-क्षेत्र में परिवर्तित हो गया है । यह वृद्धि चार दशकों की अवधि में 67.57 एकड़ अर्थात् 561.21% की वृद्धि हुई है । गाँव के भूस्वामियों से बातचीत के दौरान यह पाया गया कि वर्ष 1951 में केवल इस भू-क्षेत्र पर मोटे अनाजों वाली फसलों की खेती होती थी, परन्तु आज तक्नीकी ज्ञान, सिंचाई की सुविधा, उन्नतशील बीज एवं अन्य भौगोलिक सुविधाओं के फलस्वरूप दो फसली क्षेत्र में काफी वृद्धि हुई है । फसलों में आज पटसन, गेहूँ, धान, मक्का तथा दलहन का भरपूर उत्पादन होता है । जो छोटे कृषक हैं उनके पास सुविधा न होने के कारण अच्छी पैदावार नहीं कर पाते हैं । .अतः इन्हें सरकारी सुविधा जैसे बीज, ऋण, भूमि एवं सिंचाई की व्यवस्था प्रदान कर उन्हें अच्छे उत्पादन के लिए प्रोत्साहित किया जाय एवं इनके जीवन - स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है ।

सकल कृषित क्षेत्र का अवलोकन करने के बाद काफी अन्तर देखने को मिला है क्योंकि वर्ष 1951 में 166.90 एकड़ भू-क्षेत्र पर सकल कृषित क्षेत्र था, जो बढ़कर वर्ष 1991 में 285.82 एकड़ भू-क्षेत्र में परिवर्तित हो गया । यह परिवर्तन 118.92 एकड़ का चार दशकों (1951-91) के दौरान 71.25% की वृद्धि के रूप में हुआ ।

प्रतिदर्श गाँव मे लोगो की जीविका का मुख्य आधार कृषि है । शिक्षा का स्तर निम्न है । मजदूर कृषक अधिक है । इस गाँव के अधिकतर लोग जीविकोपार्जन हेतु देश के विभिन्न भागों विशेषकर पंजाब में मजदूरी करने के लिए जाते हैं । गाँव में कुटीर उद्योग के रूप मे जूता-चप्पल, धनकुट्टी, मुर्गीपालन आदि देखने को मिलता है । वर्तमान में इस गाँव के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए सिचाई की पर्याप्त सुविधा, विद्यालय, बिजली की आवश्यकता है । जो लोग बाहर जाकर दैनिक मजदूरी करते है, अर्द्ध-ऋण प्रदान कर छोटे-छोटे उद्योग लगवाये जायें तो निश्चय ही इस गाँव का आने वाले समय में द्रुतगति से विकास तथा लोगों

का जीवन-स्तर ऊँचा होगा ।

7.6 **ग्राम सहिसिया** :- यह गाँव ($25^0 31'$ उत्तरी अक्षाँश एवं $87^0 36'$ पूर्वी देशान्तर) कटिहार मुख्यालय से लगभग 15 कि0 मी0 की दूरी पर दक्षिणी-पूर्वी भाग मे स्थित है । इस गाँव का चयन 'गैर आबाद गाँव' के रूप मे किया गया है । इस गाँव के उत्तरी भाग में बेगना, पश्चिमी भाग मे महदेई तथा दक्षिण-पूर्वी भाग मे डहरिया गाँव स्थित है । इस गाँव का कुल क्षेत्रफल 36 42 एकड है । क्षेत्रफल की दृष्टि से यह छोटा गाँव है । शोधकर्ता ने इस चयनित गाँव के निरीक्षण के दौरान पाया कि गांवों में फसलों का सम्मिश्रण प्राय नहीं है अथवा सम्मिश्रण बहुत ही कम है ।

भूमि उपयोग परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप (1951-91) की दृष्टि से चार दशकों के अन्तराल बाद क्षेत्रफल मे कोई परिवर्तन नहीं मिला, परन्तु शुद्ध बोया गया क्षेत्र वर्ष 1951 मे 16 86 एकड (46.32%) वर्ष 1991 में 26.02 एकड़ (71.44%) में परिवर्तित हो गया है । चार दशकों के दौरान 9.16 एकड का अन्तर और 54.32% की वृद्धि हुई । -

कृषि अप्राप्य के अन्तर्गत वर्ष 1951 मे 4 49 एकड (12 35%) क्षेत्र था जो वर्ष 1991 मे 10 4 एकड (28.55%) में परिवर्तित हो गया है । यह परिवर्तन चार दशकों के अन्तराल बाद 5.91 एकड का हुआ अर्थात् प्रतिशत परिवर्तन वृद्धि 131.62% की हुई है । प्रतिदर्श गाँव में कृषि अप्राप्य के विभिन्न पक्षों के अध्ययन के फलस्वरूप इसके निम्नांकित परिवर्तन देखने को मिलता है । जलयुक्त क्षेत्र के अन्तर्गत (1951-91) चार दशकों में 32.92% का ह्रास, मानव-अधिवास, परिवहन, सिंचाई के अन्तर्गत 72.08% की वृद्धि, कब्रिस्तान एवं मरघट के अन्तर्गत कोई परिवर्तन नहीं है । अब कृषि अयोग्य क्षेत्र में 74 61% का ह्रास तथा कुल कृषि अप्राप्य क्षेत्र के अन्तर्गत 49.56% की वृद्धि देखने को मिलता है ।

कृषि बजर के अंतर्गत 6 68 एकड भू-क्षेत्र (1951-91) चार दशकों बाद कृषि क्षेत्र में

परिवर्तित कर लिया गया, अर्थात् कृषि बंजर भूमि मे 100 00% का ह्रास हुआ -

बाग-बगीचों के अन्तर्गत वर्ष 1951 में 8 39 एकड (22 27%) भू-क्षेत्र था जो वर्ष 1991 में कटकर साफ हो गया । चार दशकों (1951-91) के दौरान इस गाँव में 100.00% का ह्रास हुआ, सारणी 7.6 से स्पष्ट है ।

सारणी 7.6

ग्राम - सहिसिया, न्याय पंचायत - परतेली

भूमि उपयोग में परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप (1951-91)

(क्षेत्रफल एकड़ में)

क्र0सं0	भूमि-उपयोग प्रतिरूप	1951 क्षेत्रफल	1951 प्रतिशत	1991 क्षेत्रफल	1991 प्रतिशत	अंतर		परिवर्तन (% में)
1.	क्षेत्रफल	36.42	-	36.42	-	-		-
2.	शुद्ध बोया गया क्षेत्र	16.46	46.32	26.02	71.44	9.16	(+)	54.32
3.	कृषि अप्राप्य	4.49	12.35	10.40	28.55	5.91	(+)	31.62
4.	कृष्य बंजर	6.68	18 36	00.00	00 00	6.68	(-)	100.00
5	बाग-बगीचा	8.39	22 97	00 00	00.00	8.39	(-)	100.00
6	सिंचित क्षेत्र	2.99	17 73	4.27	16.41	1.28	(+)	42.80
7.	दो-फसली क्षेत्र	3.27	19.38	18.15	69.75	14 88	(+)	455.04
8	सकल कृषित क्षेत्र	25.85	-	35 95	-	10.1	(+)	39.07

सिंचित क्षेत्र के अन्तर्गत भी परिवर्तन देखने को मिलता है । वर्ष 1951 में 2.99 एकड (17 25%) भू-क्षेत्र सिंचित के अन्तर्गत था जो वर्ष 1991 में 4 27 एकड (16.41%) में परिवर्तित हो गया, अर्थात अन्तर 1 28 एकड का और परिवर्तन 42.80% की वृद्धि देखने को मिलती है ।

N
A
GENERAL LANDUSE PATTERN
VILLAGE-SAHISIYA
PRAKHAND-KATIHAR
1951
ROAD BAIGANA
MAHADAI
1991
B
ROAD BAIGANA
MAHADAI
ROAD
CULTIVATED LAND
CULTIVABLE WASTE
NON-CULTIVABLE
GARDENEN & ORCHARDS
80 0 80 160
METRES
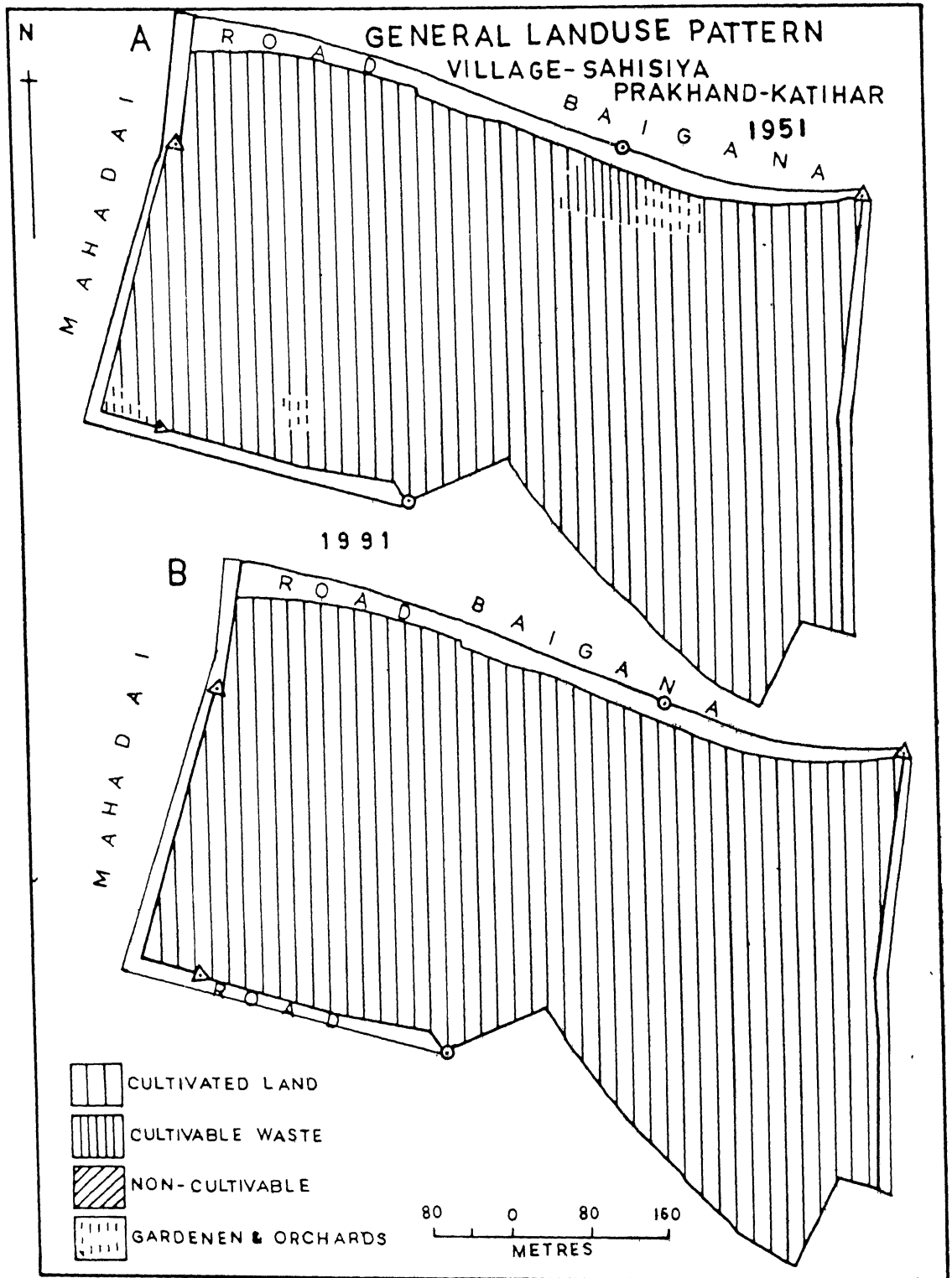
Fig-7-6

दो-फसली क्षेत्र के अन्तर्गत वर्ष 1991 में 3.27 एकड़ (19.38%) भू-क्षेत्र सम्मिलित था जो वर्ष 1991 में 18 15 एकड (69.75%) अर्थात 14.88 एकड़ का अन्तर हुआ अर्थात् 455 04% की वृद्धि हुई ।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए अध्ययन क्षेत्र के प्रतिदर्श गाँव के सकल कृषित क्षेत्र में भी परिवर्तन देखने को मिलता है । वर्ष 1951 में 25.85 एकड़ भू-क्षेत्र सकल कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत था जो वर्ष 1991 में 35.95 एकड़ में परिवर्तित हो गया, अर्थात् 10.1 एकड़ का अन्तर प्राप्त है जो 39.07% की वृद्धि को प्रदर्शित करता है । उपर्युक्त बातों से स्पष्ट होता है कि वर्ष 1951-91 (चार दशक) के दौरान प्रतिदर्श गाँव में काफी अंतर देखने को मिलता है । सर्वाधिक परिवर्तन कृष्य बंजर तथा बाग-बगीचों के अन्तर्गत हुआ है ।

मानचित्र संख्या 7 6 ए को देखने से स्पष्ट होता है कि गाँव के उत्तरी भाग में बेगना से सटे पश्चिम से पुर्व की ओर आवागमन हेतु मार्ग है । सड़क के किनारे कृष्य बंजर, बाग-बगीचों का क्षेत्र विस्तृत है, जबकि मानचित्र संख्या 7.6 बी को देखने से स्पष्ट होता है कि बाग-बगीचा, कृष्य बंजर क्षेत्र कृषित क्षेत्र में परिवर्तित हो गया है । साथ ही गाँव के पश्चिम -पूर्व तथा दक्षिणी-पश्चिमी दिशा में आवागमन के लिए मार्ग का निर्माण किया गया है ।

प्रतिदर्श गाँव के मुख्य रूप से गेहूँ, धान, पटसन, मटर तथा दलहन की खेती देखने को मिलती है । सर्वेक्षण से यह ज्ञात हुआ कि इस गाँव में सिंचाई तथा कृषि उपकरणों का पर्याप्त अभाव है । कहीं-कहीं केले की खेती भी देखने को मिलती है । सिंचाई यहाँ व्यक्तिगत साधन द्वारा किया जाता है । यदि सिंचाई की सुविधा, अच्छे बीच, कृषि-उपकरण तथा कृषि के लिए भौगोलिक सुविधायें पर्याप्त मिले तो सम्भव है कि उत्पादन की क्षमता को बढ़ाया जा सकता है । प्रतिदर्श गाँव में तत्काल वृक्षारोपण की नितांत आवश्यकता है क्योंकि सरकार का ध्यान वृक्षापरोण के क्षेत्र मे सर्वव्यापी होते हुए भी प्रतिदर्श गाँव इससे

वंचित है । सांस्कृतिक भूमियों पर वृक्षारोपण करके गाँव का उन्नयन किया जा सकता है। प्रतिदर्श गाँव के दक्षिणी भाग की मिट्टी काफी उपयुक्त है । यदि यहाँ सिंचाई की सुविधा दी जाय तो बहुफसली (गेहूँ, चना, मटर, धान, पटसन) का उत्पादन पर्याप्त मात्रा में किया जा सकता है ।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि गाँव के उन्नयन के लिए, शिक्षा, मार्ग, सिचाई तथा कुटीर उद्योगों की नितात आवश्यकता है ।

7.7 ग्राम - खैरा :- यह गाँव $25^0 33'$ उत्तरी अक्षांश एवं $87^0 37'$ पूर्वी देशान्तर) कटिहार मुख्यालय से लगभग 16 कि0 मी0 पूर्वी भाग न्याय पचायत मधेपुरा में स्थित है । इस गाँव में जनसंख्या का घनत्व 129 व्यक्ति प्रति एकड तथा शुद्ध बोया गया क्षेत्रक 0.57 एकड़ प्रति व्यक्ति है । इस गाँव की पश्चिमी सीमा पर कमला नदी उत्तर-दक्षिण की ओर प्रवाहित होती है । यह नदी अध्ययन क्षेत्र के मध्यक मियाण्डर बनाती हुई प्रवाहित होती है । इस गाँव के उत्तर-पूर्व मे रतनपुरा, पूर्व में डण्डखोरा, दक्षिण में बतेली, दक्षिण-पश्चिम में गरमैली, पश्चिम में घुसमर तथा उत्तर पश्चिमी में घुसमर बेलवा गाँव स्थित है । इस गाँव के उत्तरी भाग से छोटी रेलवे लाइन (एन0एफ0रेलवे) कटिहार से सिलीगुडी को जाती है । सड़कों का निर्माण एवं शहर क्षेत्र से जुड़ा होने के कारण इस गाँव का चयन यातायात उन्मुख गाँव के रूप में किया गया है ।

भूमि उपयोग परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप की दृष्टि से चार दशकों (1951-91) की अवधि में इस प्रतिदर्श चयनित गाँव में काफी परिवर्तन देखने को मिलता है । जो सारणी 7.7 से स्पष्ट है ।

शुद्ध बोये गये क्षेत्र पर प्रकाश डालने के फलस्वरूप यह देखा गया कि वर्ष 1951 में 43.83% (178.97 एकड़) भू भाग इसके अन्तर्गत था, जो वर्ष 1991 में बढ़कर 74.03% (302.30 एकड़) भूभाग में परिणत हो गया । यह परिवर्तन चार दशकों (1951-91) की अवधि में 68.91% (123.33 एकड़) की वृद्धि देखने को मिला है

सारणी 7.7

ग्राम - खैरा न्याय पंचायत - मधेपुरा

भूमि उपयोग में परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप (1951-91)

(क्षेत्रफल एकड़ में)

क्र0सं0 भूमि उपयोग प्रतिरूप	1951 क्षेत्रफल	प्रतिशत	1991 क्षेत्रफल	प्रतिशत	अन्तर	प्ररिवर्तन (% में)
1. क्षेत्रफल	408.35	-	408.35	-	-	-
2. शुद्ध बोया गया क्षेत्र	178.97	43.83	302.30	74.03	123.33	(+) 68.91
3. कृषि अप्राप्य	50.47	12.36	106.05	25.97	55.58	(+) 110.12
4. कृष्य-बंजर	78.52	19.23	00.00	00.00	78.52	(-) 100.00
5. बाग-बगीचा	100.39	24.58	00.00	00.00	100.39	(+) 100.00
6. सिंचित क्षेत्र	32.50	18.16	125.80	41.61	93.30	(+) 287.07
7. दो-फसली	41 61	23 25	269.00	88.98	227.39	(+) 546.57
8 सकल कृषित क्षेत्र	215.15	-	571.90	-	356.75	(+) 165.81

GENERAL LANDUSE PATTERN
VILLAGE-KHAIRA
PRAKHAND-KATIHAR
A
1951
B
1991
N
RATAN PURA
GHUSMAR BELWA
NE RAILWAY
GHUSMAR
DANDKHORA
GARBHAILI
BATELI
BIATELI
CULTIVATED LAND
CULTIVABLE WASTE
NON-CULTIVABLE
GARDEN AND ORCHARDS
160 0 160 320 480
METRES
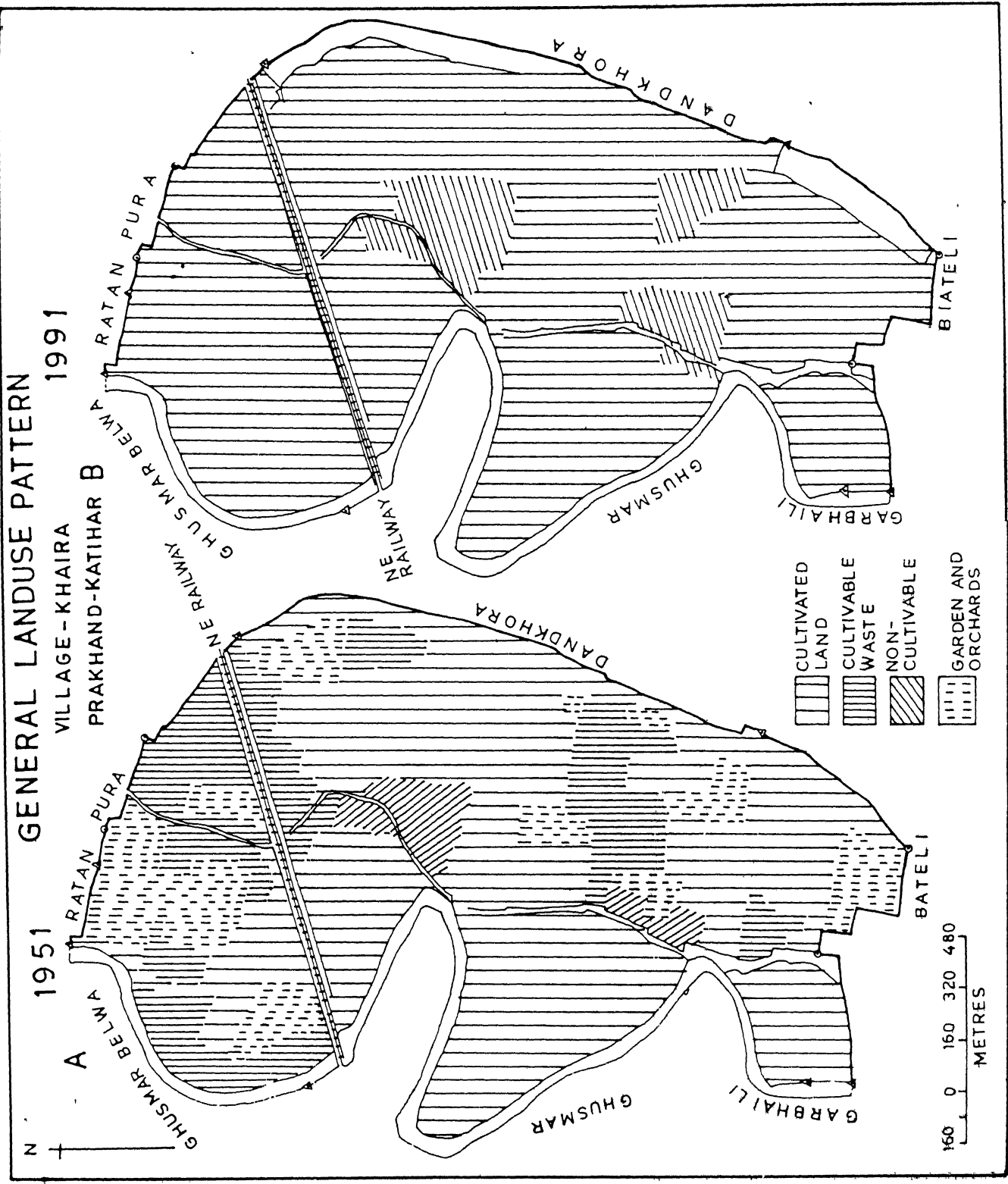
Fig 7·7

चयनित गाँव की मिट्टी दोमट एवं बलुआर दोमट प्रकार की है । साथ ही नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी से निर्मित है , जिसके कारण उर्वर मृदा कृषि कार्य के लिए विशेष भूमि-उपयोग में तीव्र परिवर्तन नवीन कृषि तकनीकी के कारण अनुकूल भी हुआ है । मानचित्र 7.7 ए तथा 7.7 बी को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि पहले कृषि-भूमि का क्षेत्र कम था । वर्तमान में अधिकांश भू-भाग पर कृषि कार्य देखने को मिल रहा है । रेलेवे लाइन के दोनों तरफ कृषि क्षेत्र विस्तृत है । नदियों के समीपस्थ भागों में धान की अच्छी खेती होती है ।

कृष्य अप्राप्य क्षेत्र के अन्तर्गत भी पर्याप्त अन्तर देखने को मिलता है । वर्ष 1951 में 12.36% (50.47 एकड़) भू-भाग कृष्य अप्राप्य के अन्तर्गत सम्मिलित था जो वर्ष 1991 में बढ़कर 25.97% (106.05 एकड़) भू भाग में बदल गया अर्थात् यह वृद्धि चार दशकों (1951-91) की अवधि में 110.12% (55.58 एकड़) भूभाग की वृद्धि हुई है । कृष्य अप्राप्य के अन्तर्गत 1951-91 की अवधि में 13.53% का ह्रास जलयुक्त क्षेत्र, 70.47% की वृद्धि मानव-अधिवास, परिवहन, सिंचाई के साधनों के अन्तर्गत 44.60% ह्रास कब्रिस्तान एवं मरघट के अन्तर्गत कृषि अयोग्य क्षेत्रों में 19.8% का ह्रास हुआ है । अतः कुल वृद्धि अप्राप्य क्षेत्र में चार दशकों (1951-91) के अन्तर्गत 52.61% की हुई है ।

कृष्य बंजर के क्षेत्र में विशेष परिवर्तन हुआ है । वर्ष 1951 में 19.23% (78.52 एकड़) भूक्षेत्र था जो वर्ष 1991 में नगण्य हो गया अर्थात् चार दशकों (1951-91) की अवधि में 100% (78.52 एकड़) का ह्रास हुआ है । अतः जो भूमि 1951 में अनुपयुक्त थी, आज वहाँ पर कृषि कार्य देखने को मिलता है । मानचित्र 7.7 ए में रेलवे लाइन के उत्तरी-पश्चिमी एवं उत्तरी -पूर्वी भाग में कृष्य-बंजर का क्षेत्र विस्तृत था जहाँ पर अब खेती की जा रही है जो चित्र संख्या 7.7 बी से स्पष्ट है ।

बाग-बगीचों के अन्तर्गत वर्ष 1951 में 24.58% (100.39 एकड़) भूभाग सम्मिलित था जो वर्ष 1991 में पूर्णतया समाप्त हो गया । विगत चार दशकों (1951-91)

में 100% (24.58 एकड़) का ह्रास हुआ । बंगला देश से प्रवासियों के आगमन से जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई है । यातायोन्मुख होने के कारण कुटीर उद्योग धन्धों का विकास हुआ है । मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बाग-बगीचों का शोषण तेजी से किया है । अत· इसकी पूर्ति सड़कों, नहरों, चकरोड़ो तथा रेलवे लाइन के किनारे बेकार पड़ी जमीन पर वृक्षारोपण करके किया जा सकता है । इससे न केवल हमें ईधन की प्राप्ति होगी बल्कि पर्यावरण की सन्तुलित एवं शुद्ध रहेगा ।

सिंचित क्षेत्र में परिवर्तन विगत चार दशकों (1951-91) की अवधि में हुई है । वर्ष 1951 में 18.16% (32.50 एकड़) भूभाग सम्मिलित था जो वर्ष 1991 में बढ़कर 41.61% (125.8 एकड़) भूभाग में परिवर्तित हो गया - यह परिवर्तन 287.07% (93.30 एकड़) वृद्धि हुई है । अध्ययन क्षेत्र में सिंचाई के रूप में ट्यूबेल, पम्पिंग सेट, बाँस - बोरिंग, पवन-चक्की तथा नहर आदि देखने को मिलता है । जल स्तर ऊँचा होने के कारण बाँस-बोरिंग की सुविधा है । अध्ययन क्षेत्र के प्रतिदर्श गाँव में 20 से 25 फीट पाइप के द्वारा आसानी से पानी आ जाता है । जिससे लोगों को कम खर्च में बाँस बोरिंग करके अपनी आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है। गाँव के दक्षिणी भाग में सिंचाई की पर्याप्त सुविधा न होने के कारण कृषकों को काफी परेशानी का सामना करना पड़ता है । अतः इन क्षेत्रों में नहर, सरकारी ट्यूबेल आदि की नितान्त आवश्यकता है ।

द्विफसली क्षेत्र में परिवर्तन अधिक हुआ है, जो सारणी 7.7 से स्पष्ट है । वर्ष 1951 में 23.25% (41.61 एकड़) भूभाग पर द्वि-फसली का उत्पादन होता था जो अब 1991 में 88.98 (269.00 एकड़) भूभाग पर द्विफसली फसलों का उत्पादन कार्य हो रहा है । इस प्रकार चार दशकों (1951-91) में 596.57% (227.39 एकड़) भू-भाग की वृद्धि हुई है । शोधकर्ता द्वारा प्रतिदर्श गाँव में भूस्वामियों से मिलने के उपरान्त यह पता चला कि पहले इस भू-भाग पर केवल मोटे अनाज वाली फसल होती थी लेकिन अब तकनीकी ज्ञान , उत्तम बीज तथा सिंचाई की सुविधाओं के फलस्वरूप बहुफसली उत्पादन हो रहा है । अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी भाग में अर्थात् रेलवे लाइन के दोनों तरफ केला, पटसन, गेहूँ, धान (भदई, अगहनी, गरमा) तथा सब्जियों की खेती देखने को मिलती है । गाँव के

पश्चिमी भाग में कमला नदी के तटवर्ती भाग सब्जियों की मिश्रित खेती, जैसे - लौकी, परवल, कद्दू, टमाटर, भिन्डी आदि एक साथ उत्पादन की जाती है । कहीं -कहीं केला के साथ मिर्चा की खेती भी देखने को मिला । मक्का के साथ धान की खेती पर्याप्त होती है ।

सकल कृषित क्षेत्र में भी उपर्युक्त परिवर्तन की भाँति चार दशकों (1951-91) की अवधि में परिवर्तन देखने को मिलता है । वर्ष 1951 में 215.15 एकड़ भू-भाग सम्मिलित था जो वर्ष 1991 में 571.90 एकड़ भूभाग पर सकल कृषि कार्य होने लगा । यह परिवर्तन विगत चार दशकों में 165.81% (356.75 एकड़) भूभाग का हुआ है । इससे स्पष्ट होता है कि गाँव का उन्नयन तेजी से हुआ है , परन्तु बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है । यहाँ उद्योग-धन्धों का पर्याप्त अभाव है । गाँव स्तर एबं जन-जीवन को ऊँचा बनाने के लिए कुटीर उद्योग धन्धे (मुर्गी पालन, चमड़ा, बढ़ईगिरी, सिलाई, कढ़ाई, मत्स्य पालन) की नितान्त आवश्यकता है । छोटे-छोटे उद्योग जैसे पशु पालन, मुर्गी पालन आदि देखने को मिलता है । यदि इन्हें पर्याप्त सुविधा प्रदान किया जाय तो निश्चय ही इस गाँव का आने वाले समय में काफी विकास होगा ।

7.8 ग्राम - रकसा :- यह गाँव ($25^0$32' उत्तरी अक्षांश तथा $87^0$37' पूर्वी देशान्तर) कटिहार मुख्यालय से लगभग 18 कि0 मी0 दूर दक्षिण-पूर्वी भाग में न्याय पंचायत मघेपुरा में अवस्थित है । इस गाँव का कुल क्षेत्रफल 437 एकड़ है । यहाँ जनसंख्या का घनत्व 1.34 व्यक्ति प्रति एकड़ एवं शुद्ध बोया गया क्षेत्र 0.76 एकड़ प्रति व्यक्ति है । इस गाँव के उत्तर-पूर्वी भाग में रामपारा अराजी, दक्षिण-पूर्वी भाग में बेरझल, दक्षिणी भाग में बुधनगर, दक्षिण पश्चिम में परानपुर, मधुरापुर तथा पश्चिमी भाग में परानपुर, उत्तर पश्चिम में तरजना एवं उत्तर में बुधैली गाँव स्थित है । भौगोलिक दृष्टि से इस गाँव का धरातल निम्न है जिसके कारण वर्षाकाल में उत्तर से प्रवाहित होने वाली कमला नदी के जल से जल प्लावन एवं जल-जमाव के कारण विस्तृत क्षेत्र की फसलें नष्ट हो जाती है । इस गाँव की फसलें प्रति वर्ष जल-जमाव एवं जल-प्लावन से प्रभावित होती रहती है । अत: इस गाँव का चयन बाढ़ग्रस्त गाँव के रूप में किया गया है ।

भूमि उपयोग परिवर्तनशील वितरण प्रतिरूप की दृष्टि से चार दशकों (1951-91) की अवधि में इस प्रतिदर्श चयनित गाँव में काफी परिवर्तन देखने को मिलता है, जो सारणी (7.8) से स्पष्ट है ।

सारणी 7.8

ग्राम - रकसा, न्याय पंचायत - मधेपुरा

भूमि-उपयोग में परिवर्तन वितरण प्रतिरूप (1951-91)

(क्षेत्रफल एकड़ में)

क्र0सं0	भूमि-उपयोग प्रतिरूप	1951 क्षेत्रफल	1951 प्रतिशत	1991 क्षेत्रफल	1991 प्रतिशत	अंतर	परिवर्तन (% में)
1.	क्षेत्रफल	437.00	-	437.00	-	-	-
2.	शुद्ध बोया गया क्षेत्र	195.23	44.67	310.85	71.13	115.62	(+) 59.22
3.	कृष्य अप्राप्य	54.88	12.56	126.15	28.46	71.27	(+)129.86
4.	कृष्य बंजर	119.38	27.32	00.00	00.00	119.38	(-)100.00
5.	बाग-बगीचा	67.51	15.45	00.00	00.00	67.51	(-)100.00
6.	सिंचित क्षेत्र	24.25	12.42	105.40	33.90	81.15	(+)334.63
7.	दो-फसली क्षेत्र	36.04	18.46	207.05	66.61	171.01	(+)474.50
8.	सकल कृषित क्षेत्र	215.45	-	517.83	-	302.38	(+)140.34

शुद्ध बोया गया क्षेत्र के अन्तर्गत काफी परिवर्तन देखने को मिला है, क्योंकि वर्ष 1951 में 44.67% (195.23 एकड़) भूभाग पर शुद्ध कृषि की जाती थी जो वर्ष 1991 में बढ़कर 71.13% (310.85 एकड़) भूभाग पर कृषि कार्य होने लगा, अर्थात् विगत चार दशकों (1951-91) की अवधि में 59.22% (115.62 एकड़) भूभाग की वृद्धि हुई । इसका प्रमुख कारण कमला नदी द्वारा प्रतिवर्ष बहाकर लाई गई मिट्टी से इस क्षेत्र की मिट्टी में काफी जीवांश की मात्रा बढ़ जाती है । उत्पादन पर्याप्त होता है , सिंचाई की आवश्यकता

GENERAL LANDUSE PATTERN
VILLAGE-RAKSA
PRAKHAND-KATIHAR
1951
1991
N
A
B
BATHAILI
TARJANA
PARANPUR
MATHURAPUR
RAMPARA ARAZI
BARJHALA
BUDHA NAGAR
CULTIVABLE LAND
CULTIVABLE WASTE
NON-CULTIVABLE
GARDEN & ORCHARDS
140 0 140 280 420
METRES
Fig.7.8
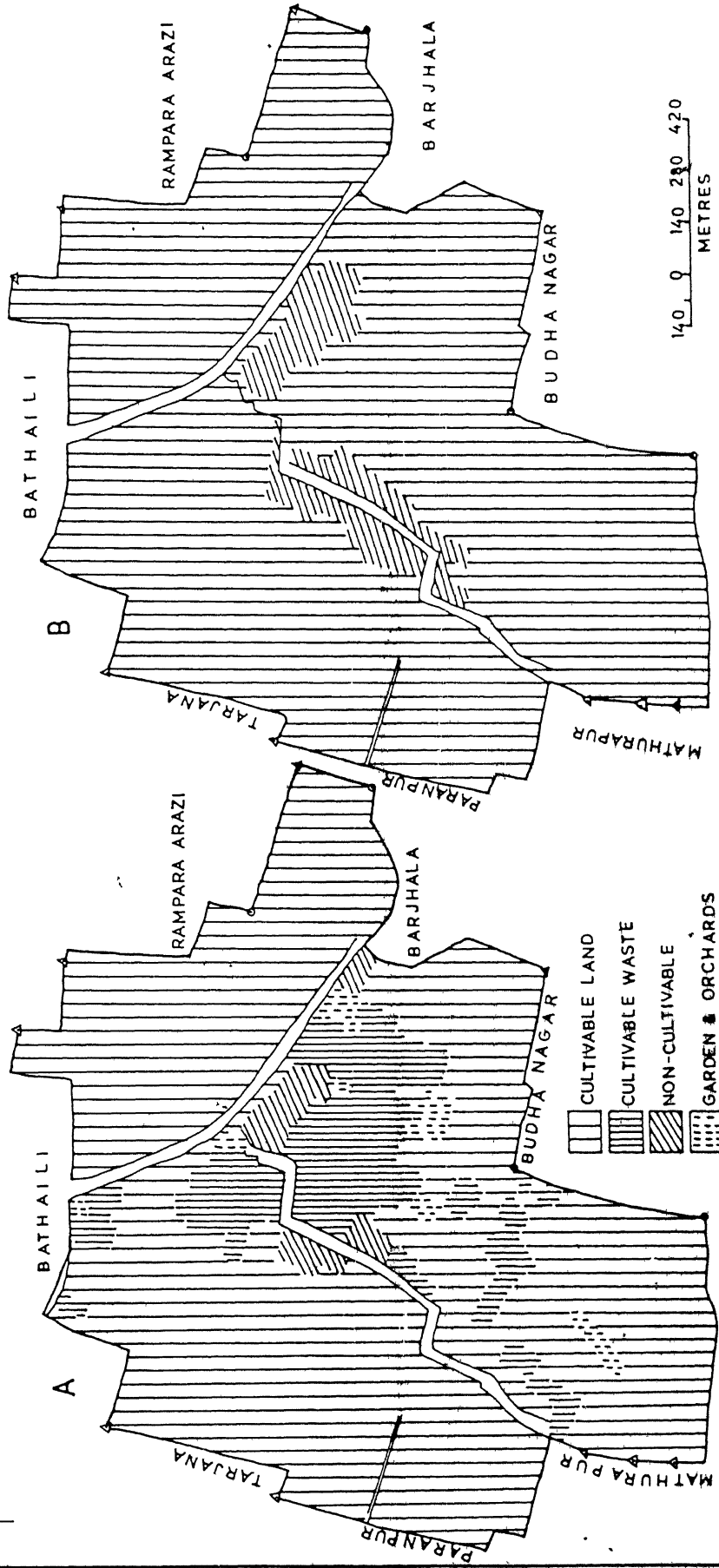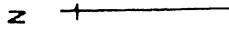
अपेक्षाकृत कम पड़ती है ,जिसके फलस्वरूप शुद्ध बोय गये क्षेत्र में उत्तरोत्तर वृद्धि-दर रही है । मानचित्र संख्या 7.8 ए को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि शुद्ध कृषित क्षेत्र का प्रतिशत कम था तथा मानचित्र 7.8 बी को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश क्षेत्रों में कृषित कार्य हो रही है ।

कृष्य अप्राप्य क्षेत्र में भी पर्याप्त परिवर्तन देखने को मिलता है । वर्ष 1951 में 12.56% (54.88 एकड़) भू-भाग सम्मिलित थं जो वर्ष 1991 में बढ़कर 28.86% (126.15 एकड़) भूभाग हो गया है । यह परिवर्तन चार दशकों (1951-91) की अवधि में 129.86% (71.27 एकड़) भूभाग की वृद्धि हुई । सम्पूर्ण कृष्य अप्राप्य क्षेत्र का 52.97% जलयुक्त क्षेत्र में 66.49% मानव-अधिवास, परिवहन एवं सिंचाई के अन्तर्गत वृद्धि हुई जबकि कृषि अयोग्य क्षेत्र में 27.76% का ह्रास हुआ ।

कृष्य बंजर के क्षेत्र में विशेष अन्तर देखने को मिलता है । शोधकर्ता के अध्ययन के दौरान क्षेत्र में कृषि कार्य विशेष देखने को मिला है । कृष्य बंजर की मात्रा नगण्य रही जिसकी पुष्टि मानचित्र एवं सारणी से स्पष्ट हो जाती है । वर्ष 1951 में 27.32% (119.38 एकड़) भूक्षेत्र सम्मिलित था जो वर्ष 1991 में घटकर 100% (119.38 एकड़) का ह्रास हुआ, अर्थात् चार दशकों (1951-91) की अवधि में सम्पूर्ण बंजर क्षेत्र को कृषि कार्य एवं अन्य कार्यों में लगा लिया गया । जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप अनुपयुक्त भूमियों को अधिवास, परिवहन तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों के रूप में उपयोग किया जा रहा है ।

बाग - बगीचों के क्षेत्र में भी इसी प्रकार का ह्रास देखने को मिला है जो कृष्य बंजर में हुआ है । वर्ष 1951 में 15.45% (67.51 एकड़) भूभाग सम्मिलित था जो वर्ष 1991 में बाग-बगीचे समाप्त प्राय हो गये । अर्थात् चार दशकों (1951-91) की अवधि में 100% का ह्रास हुआ है जो मानचित्र 7.8 ए एवं 7.8 बी को देखने से स्पष्ट हो जाताहै बाग-बगीचों की कटाई तेजी से हुई है । धरातल निम्न होने के कारण जल जमाव प्राय: बना रहता है । जिसके फलस्वरूप यहाँ वृक्षारोपण भी सम्भव नहीं हो पाता है । इसके लिए आवश्यक है कि गाँव के जल निकास के लिए नालियों का निर्माण किया जाय ताकि

पानी एकत्रित न होकर प्रवाहित हो जाय। इससे बाढ़ से बचा जा सकता है। साथ ही फसल भी नष्ट होने से बचाया जा सकता है।

सिंचित क्षेत्र मे भी परिवर्तन पर्याप्त देखने को मिला है, क्योंकि वर्ष 1951 में 12.42% (24.25 एकड़) भूभाग इसके अन्तर्गत सम्मिलित था जो वर्ष 1991 में बढ़कर 33% (105.4 एकड़) भूभाग हो गया है, अर्थात चार दशकों - (1951 - 91) की अवधि में 334.63% (81.5 एकड) की वृद्धि हुई है। प्राय. इन क्षेत्रों में सिंचाई की आवश्यकता कम पड़ती है।

दो फसली क्षेत्र में भी पर्याप्त अंतर विगत चार दशकों (1951-91) की अवधि में हुआ है, क्योंकि वर्ष 1951 में 18.66% (36.04 एकड़) भू-भाग इसके अन्तर्गत सम्मिलित था जो वर्ष 1991 में बढ़कर 66.61% (207.05 एकड़) भूभाग हो गया, अर्थात् यह वृद्धि 474.50 (171.01 एकड़) भू क्षेत्र की हुई । मानचित्र को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कृषि कार्य के उन्नयन तेजी से हुआ है। साथ ही शोधकर्ता ने सर्वेक्षण की अवधि में इन चयनित गांवों का प्रत्येक फसल में निरीक्षण किया है। निरीक्षण के समय यह ज्ञात हुआ कि इन गांवों में दो फसली क्षेत्र पर्याप्त है। निम्न धरातल होने के कारण अधिकांश कृषित क्षेत्र पर भदई एवं अगहनी फसलों के पटसन, धान की खेती, रबी में गेहूं और आलू, जौ, मटर चना आदि फसलें उत्पन्न करते हैं। यहां पर मिश्रित खेती का प्रचलन है अर्थात गेहूं जौ, जौ-चना, जौ-मटर आदि मिश्रित खेती करते हैं। गांव के मध्यवर्ती में भाग में सड़क के दोनों ओर द्विफसली क्षेत्र देखने को पर्याप्त मिला ।

सकल कृषि क्षेत्र के स्वरूप में उपर्युक्त परिवर्तन के अनुरूप ही देखा गया है । वर्ष 1991 में 215 45 एकड भूभाग पर कृषि कार्य होता था । चार दशक अन्तराल बाद जो वर्ष 1991 में बढ़कर 517.84 एकड़ हो गया। यह वृद्धि चार दशकों के दौरान 140.34% (302.38 एकड़) भूभाग की हुई है। अध्ययन के दौरान गांव के सरपंच, मुखिया से मिलने के फलस्वरूप यह बात स्पष्ट हुई कि पहले बहुत कम लोग एक साथ कई फसल उगाते थे, आज नई तकनीक, उत्तम बीज तथा नये कांप मृदा एवं बढ़ती जनसंख्या के कारण एक साथ कई फसलों का उत्पादन किया जाता है। जहां भूमि ऊंची है, वहां अरहर के

साथ हल्दी की खेती देखने को मिला।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए तत्काल इस गांव के जल-जमाव के निकास के लिए मध्यवर्ती भाग में नालों की आवश्यकता है। इस कार्य से इस गांव का गुणोत्तर विकास हो सकता है। साथ ही गांव के पश्चिमी ओर पूर्वी भागों में बांध बनाकर बाहर से प्रवेश करने वाले जल को रोका जा सकता है। उद्योग-धंधों की दृष्टि से गांव काफी पिछड़ा हुआ है। पशुपालन कार्य देखने को मिला है लेकिन मात्र इससे इस गांव का उन्नयन सम्भव नहीं है। लघु कृषकों को ऋण प्रदान कर कुटीर उद्योग धंधों को विकसित किया जा सकता है। पटसन से यहां चटाई का कार्य होता है। यदि इन्हें सुविधा प्रदान किया जाय तो अपने कार्य को ऊंचे स्तर पर ला सकते हैं।

कटिहार प्रखंड के चयनित गांवों के भूमि-उपभोग के तुलनात्मक अध्ययन से निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है -

1. अधिकांश गांवों में कृषित क्षेत्र अपनी चरमावस्था पर पहुंच चुका है जिसमें और अधिक वृद्धि बहुत कम सम्भावनायें हैं। वर्ष 1951-91 की अवधि में तकनीकी विकास के फलस्वरूप कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत सतत् वृद्धि हुई है।

2. इन गांवों में कृषिगत बेकार भूमि (परती, बंजर, डीह) आदि का क्षेत्रफल उत्तरोत्तर ह्रासोन्मुख है। तीव्र गति से जनसंख्या बढ़ने एवं नवीन कृषि उपकरणों कृषि पद्धति तथा अन्य तकनीकी विकास के फलस्वरूप कृष्य बंजर क्षेत्र में कमी आयी है। चयनकृत गांवों में इसका प्रतिशत बहुत ही अल्प था, कुछ गांवों में कृष्य बंजर क्षेत्र समाप्त प्राय है। 3- अप्राप्य भूमि का क्षेत्र क्रमश: बढ़ रहा है, इसके परिणाम स्वरूप बाग-बगीचों एवं चारागाहों का क्षेत्र विस्तार सिकुड़ता जा रहा है। जबकि जनसंख्या के बढ़ते दवाब के कारण अधिवासों, परिवहन एवं सिंचाई के साधनों का तीव्र गति से विकास हो रहा है। उदाहरणार्थ ग्राम कजरी जिसका 24.67% क्षेत्र कृषि हेतु अप्राप्य भूमि के रूप में विद्यमान है, सड़कों, अधिवासों, सांस्कृतिक स्थलों आदि के रूप में है। इस गांव के बाग-बगीचों का क्षेत्र समाप्त हो गया

है। बाग-बगीचों को काटकर कृषक केले तथा जूटकी कृषि के प्रति उन्मुख हुए हैं।

4. चयनित गांवों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि बाग - बगीचों के अन्तर्गत क्षेत्रफल का निरन्तर ह्रास हो रहा है। परियाम दह, कजरी, सहसिया, रकसा, गोपालपुर एवं खैरा में बाग-बगीचों के अन्तर्गत क्षेत्रफल समाप्त प्राय है। यदि गांवों में इस हरीतिमा को समाप्त होने से न रोका गया तो निकट भविष्य में पर्यावरण के संकड़ खड़ा हो जाने की पूर्ण शंका है ।

5. वर्ष 1951-91 के सिंचित क्षेत्रों के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत सिंचित क्षेत्र की तेजी से वृद्धि हुई है। सिंचित क्षेत्र में यह वृद्धि सिंचाई के नये साधनों नहरों, नलकूपों (व्यक्तिगत, सरकारी) पम्पिंग सेट के कारण सम्भव हुई है। सिंचाई की सुविधा के फलस्वरूप कृष्य बंजर क्षेत्र के ह्रास के साथ ही फसल प्रतिरूप में भी परिवर्तन हुआ है।

6. सिंचाई एवं नवीन कृषि, पद्वतियों के विकास के साथ-साथ द्विफसली एवं बहुफसली क्षेत्रों में तीव्रवृद्धि हो रही है। 1951-91 की अवधि में द्विफसली क्षेत्रों में भी तीव्र परिवर्तन देखने को मिलता है। विशेषकर यह परिवर्तन रवि एवं गरमा के फसलों में देखने को मिलता है। इन दोनों फसलों में क्षेत्र-विस्तार के साथ ही फसलों का प्रतिरूप भी बदला है। हरी-साग सब्जियां, दलहन, तिलहन एवं उन्नत कोटि के खाद्यान्न फसलों की कृषि के प्रति उन्मुख हैं।

7. वर्ष 1951-91 के विभिन्न फसलों के अध्ययन के उपरान्त यह देखने को मिला कि भदई एवं अगहनी फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र का प्रतिशत कम हो रहा है जबकि रबी एवं गरमा फसलों के अन्तर्गत वृद्धि मुख्य रूप से सिंचाई के साधनों नवीन तकनीकी एवं समुन्नत कृषि पद्वति के फलस्वरूप हुई है।

8. अध्ययन क्षेत्र में आज भी परम्परागत कृषि की प्रधानता है। गरीबी, अशिक्षा, आदि के कारण कृषक नई कृषि-पद्धतियों को अपनाने में असमर्थता व्यक्त करते हैं, जिसके कारण नवीन कृषि पद्धतियों के विकास को पर्याप्त अवसर नहीं मिल पा रहा है।

9. भूमि उपयोग में खाद्यान्न फसलों के कृषि को प्राथमिकता प्राप्त है। इस प्रकार कृषि का स्वरूप गहन जीवन निर्वाहन प्रकार की है। हाल के वर्षों में केले की कृषि की शुरूआत की गई है। कृषकों के आर्थिक स्तर के उन्नयन हेतु मुद्रादायिनी फसलों (जूट, केला) आदि के उत्पादन पर बल देने के अतिरिक्त कृषि को व्यापारिक स्तर देने की आवश्यकता है।

10. अधिकांश गांवों में कृषित क्षेत्र अनुकूलतम अवस्था को प्राप्त कर चुका है। अतः इसके अनतर्गत वृद्धि की संभावनायें अल्प है। गहन कृषि पद्वति को अपनाकर कृषि उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

****

xxxxx

xxxxxxxxxx

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

अध्याय - अष्टम्

भूमि उपयोग नियोजन

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

xxxxxxxxxx

xxxxx

अध्याय - अष्टम्

भूमि-उपयोग नियोजन

भूमि उपयोग के विभिन्न पक्षों का सम्यक विश्लेषण किसी भी क्षेत्र में उसके भूमि-उपयोग नियोजन की रूपरेखा प्रस्तुत करने के उद्देश्य से किया जाता है, जिससे उपलब्ध भूमि उपयोग प्रतिरूप अपनाया जा सके । विकासोन्मुख राष्ट्र में, जिसकी अधिकांश जनसंख्या गांवों में रहती है तथा अधिकांश राष्ट्रीय आय कृषि से प्राप्त होती है और अधिकांश श्रमिक प्राथमिक कार्यो में संलग्न होते हैं । ग्रामीण भूमि-उपयोग नियोजन समन्वित ग्रामीण विकास की दिशा मे एक सामाजिक एवं सही प्रयास है । यद्यपि ग्रामीण विकास की प्रक्रिया अपेक्षाकृत अधिक व्यापक एव बहुलक्षीय होती है, फिर भी कृषि विकास एवं भूमि-उपयोग नियोजन उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है । समुन्नत कृषि ग्रामीण विकास की आधारशिला होती है एव उसकी प्रक्रिया को आत्म-निर्भरता प्रदान करती है तथा ग्रामीण विकास की भू-वैन्यासिक रूपरेखा, भूमि-उपयोग नियोजन हेतु दिशा -निर्देशन प्रदान करती है ।

उपर्युक्त सदर्भ मे ग्रामीण जनसख्या की विभिन्न आवश्यकताओं की संतुष्टि सीमित भूमि-संसाधन द्वारा किस प्रकार की जाय, इसका एक मात्र समाधान भूमि-उपयोग नियोजन है । प्रो0 स्टैम्प[1] के शब्दों में नियोजन द्वारा भूमि की प्रत्येक इकाई के अनुकूलतम उपयोग को निर्धारित किया जाताहे । इस उद्देश्य से नियोजन प्रक्रिया में आवश्यकतानुसार परिमार्जन एवं संशोधन की सुविधा के साथ ही समयानुसार बदलती परिस्थितियों के संदर्भ में उसमें परिवर्तन की संभाविता होनी चाहिए ।

अध्ययन क्षेत्र पूर्णत. ग्रामीण है, अतएव इसके विकास के लिए कृष्योत्पादन हेतु योजनाबद्ध प्रयास आवश्यक है । साथ ही कृषि पर जनसंख्या भार को कम करने के लिए कृषि पर आधारित उद्योगों एवं अन्य कृष्येत्तर व्यवसायों को प्रोत्साहन देकर रोजगार के अतिरिक्त अवसरों का प्राविधान किया जाना चाहिये।

भूमि उपयोग के विधि पक्षों, यथा शुद्ध कृषित भूमि, कृष्य-बंजर अप्राप्य तथा

बाग-बगीचों आदि का अध्ययन किया गया है । विश्लेषणों से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र का भू-उपयोग गहन जीवन निर्वाहक भूमि,- उपयोग अथवा परम्परागत परन्तु विकासोन्मुख कृषि-तन्त्र से संबंधित है । अध्ययन क्षेत्र में अनुकूलतम भूमि उपयोग की स्थिति की प्राप्ति मे भौतिक कारको के साथ ही साथ आर्थिक एव सामाजिक कारक अवरोध उपस्थित करते रहे है । अध्ययन क्षेत्र के समन्वित विकास एवं इस प्रक्रिया में कृषि की भूमिका को दृढ़ता बनाने के लिए प्राकृतिक विपदाओ एवं सामाजिक आर्थिक समस्याओं के निवारण हेतु प्रस्तुत अध्याय मे भूमि-उपयोग नियोजन की रूपरेखा प्रस्तुत करते समय अध्ययन क्षेत्र के सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखा गया है । क्योंकि गहन उत्पादक कृषि समन्वित ग्रामीण विकास की आधारशिला होती है । कृष्येत्तर रोजगार अवसरों मे वृद्धि, विकास कार्यक्रमों की आत्मनिर्भरता तथा स्थानीय जनसहयोग कृषि के उत्पादन आदि पर ही निर्भर करता है ।

पूर्व विश्लेषणों से स्पष्ट है कि भौतिक एवं मानवीय वातावरण के विभिन्न तत्व संयुक्त रूप से किसी भी क्षेत्र के भूमि-उपयोग को विशिष्टता एवं विविधता प्रदान करते हैं । उल्लेखनीय है कि प्राकृतिक कारक (जलवायु, मिट्टी एवं उच्चावच) भूमि-उपयोग, शस्य स्वरूप, प्रतिरूप एवं शस्य संयोजन के निर्धारक है, जबकि जल -प्लावन, जल-जमाव, नदी-मार्ग परिवर्तन जैसे स्थानीय, प्राकृतिक कारकों के साथ ही आर्थिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक कारक सामान्य प्रतिरूप में क्षेत्रीय विभिन्नता को जन्म देते हैं । अतएव किसी भी क्षेत्र-विशेष में भौतिक परिवेश के विभिन्न तत्वों की एकरूपता के बावजूद ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सामाजिक परिवेश एवं आर्थिक संसाधनता के क्षेत्रीय आयाम के अनुरूप भू-वैन्यासिक प्रतिरूप विकसित होता है । प्राकृतिक कारक (जल प्रभाव, जल-प्लावन, जल-जमाव एवं नदी मार्ग परिवर्तन) अपने प्रभाव क्षेत्र में भूमि को प्रायः पूर्णरूपेण नष्ट कर देते हैं । इनके द्वारा नष्ट होने पर जागरूक कृषक भी असहाय हो जाता है और देखते-देखते उनकी सारी आशाओं पर पानी फिर जाता है । अत· कृषि को प्रभावित करने वाली प्राकृतिक विपत्तियों की रोकथाम ग्रामीण-विकास की दिशा में अत्यावश्यक एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण कदम है । आर्थिक विपन्नता एवं सामाजिक मान्यताओं के साथ ही कृषि विकास हेतु आवश्यक सुविधाओं तथा कृषि पूरक सेवाओं का अभाव कृषि के आधुनिकीकरण एवं व्यवसायी करण की गति एवं कृष्योत्पादन

की मात्रा को प्रभावित करता है । परिणामस्वरूप क्षेत्रीय भूमि-उपयोग एवं कृषि भूमि उपयोग निम्न उत्पादकता के दुश्चक्र से ग्रसित खाद्यानों तथा प्रधान परम्परागत स्वरूप भी बनी रहती है । ग्रामीण अर्थतंत्र के इस निम्नस्तरीय सन्तुलन को बनाये रखने में प्राकृतिक कारकों की भूमिका महत्वपूर्ण है ।

8.1 प्राकृतिक समस्याओं के समाधान हेतु योजना :-

प्राकृतिक विपदाओं में जल-प्लावन, जल-जमाव, नदियों द्वारा अपरदन एवं मार्ग-परिवर्तन इत्यादि प्रमुख कारक है, जिनसे प्रतिवर्ष करोड़ों रूपये की फसल नष्ट हो जाती है । अध्ययन क्षेत्र का दक्षिणी -पूर्वी भाग एक विस्तृत जल-जमाव का क्षेत्र है । मध्यवर्ती भाग में सौरा, गिदरी, कमला आदि नदियों के कारण अधिकांश भाग जल-प्लावित रहता है अथवा नमी की मात्रा अधिक रहती है । इन क्षेत्रों में या तो रबी की फसलों का बोया जाना कठिन हो जाता है अथवा ये विलम्ब से बोई जाती है । अधिक जल-जमाव वाले क्षेत्रों में तो धान की फसलें नष्ट हो जाती है । उदाहरणार्थ न्याय पंचायत मधेपुरा और हफलागंज में लगभग 70% भाग जलमग्न रहता है, जिसके कारण यहाँ केवल रबी तथा गरमा की फसलें ही हो पाती हैं । कभी-कभी कोसी का बाँध टूट जाने से इन क्षेत्रों में जल-प्लावन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । इसका ज्वलन्त प्रमाण वर्ष 1988-89 की बाढ़ के दृश्य से मिलता है । रातों रात पानी गाँवों में प्रवेश कर गया था । सैकड़ों लोग पानी में बह गए थे तथा शेष ऊँचे स्थानों पर जाकर शरण लिए । इस भयावह स्थिति से बचने के लिए हर वर्ष प्रयास होता है लेकिन सफलता हाथ नहीं लग पाती है । धन-जन की विशेष हानि होती है । अत जल-प्लावन की समस्या के निवारण हेतु निम्न उपायों का प्रयोग किया जा सकता है -

1. नदियों एवं नालों को गहरा कर जल-निकास की समुचित व्यवस्था करना ।

2. कोशी नदी एवं सहायक नदी (गिदरी, सौरा, कमला, फरही) के किनारे जल संग्रहण हेतु बड़े-बड़े तालाबों का निर्माण ।

3. नहरों द्वारा वर्षा जल को सूखाग्रस्त क्षेत्रों में स्थानान्तरण।

4. उत्तरी एवं पूर्वी भाग में कमला नदी के विशर्पो को सीधा करना ।

5. कटानग्रस्त एवं खड्ड भूमि वाले क्षेत्रों में वृक्षारोपण कार्य को विकसित करना।

6. क्षेत्र के दक्षिणी एवं पूर्वी भाग में नलकूपों तथा पम्पिंग सेटों का अधिकाधिक मात्रा में लगवाना ताकि सिंचाई की सुविधा हो सके ।

7. उत्तरी-पश्चिमी भाग में नहरों द्वारा सिंचित क्षेत्रों में नलकूपों आदि द्वारा अधोभौमिक जल स्तर को नीचा करना ।

8. मध्यवर्ती भाग में विशेषकर न्याय-पंचायत महमदिया, बलुआ, बौरनी तथा मधेपुरा आदि जल-जमाव वाले क्षेत्रों में खेतो की मेड़ों, नालों, नदियों एवं सड़कों के किनारे वृक्षारोपण करना ।

9. मध्यवर्ती भाग विशेषकर कमला, मोनाली एवं गिदरी नदियों के तटवर्ती भागों में बाँधों को ऊँचा करना ।

10. कोशी घाट एवं कमला नदी के तटबन्धों पर मुख्य-मुख्य स्थानों पर जहाँ प्रवाह तीव्र रहता है, सुरक्षा चौकियाँ स्थापित हो ताकि यदि तटबन्ध क्षतिग्रस्त हो या टूटे तो स्थानीय जनता को पूर्व सूचना दी जा सके ।

11. तटबन्धों की सुरक्षा हेतु इनके दोनों ओर घास, मूँज, कास, पतहर, मेंउड़ तथा ताड़ और खजूर का वृक्षारोपण किया जाय ।

12. बाढ़ क्षेत्रों में बड़ी-बड़ी नौकाओं एवं स्टीमरों की समुचित व्यवस्था हो जिससे लोगों को सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाया जा सके एवं धन-जन की हानि को कम किया जा सके ।

13. नहरों, नालों आदि की बराबर सफाई हो ताकि जल का निकास बराबर होता रहे ।

14. कोशी बाँध से नहरों तथा नालों का निर्माण किया जाय ताकि जल-स्तर अधिक न होने पाये, क्योंकि अक्सर देखा जाता है कि प्रतिवर्ष कोशी का बाँध टूट जाता है । करोड़ों रूपये प्रति वर्ष मरम्मत में खर्च होता है । इसका प्रमुख कारण जल-स्तर का ऊँचा

होना होता है और कोशी का पानी तेजी से (रातों-रात) अध्ययन क्षेत्र को जलप्लावित कर देता है ।

15. बरसात के पूर्व सभी तटबन्धों की जाँच एवं मरम्मत कर ली जाय ताकि वैसे स्थान पर पुनः कटाव कार्य न हो सके ।

16. बाढ़ग्रस्त इलाकों में नवयुवक मंगलदल की स्थापना कर निगरानी समिति का गठन किया जाय ताकि ये नवयुवक वर्ग तटबन्धों की देख-रेख कर सके ।

17. नवयुवक वर्ग में सामुदायिक भावना का प्रचार-प्रसार एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय ताकि विषम परिस्थितियों में तत्काल कारगर हो ।

8.2 सामाजिक - आर्थिक समस्याओं का समाधान :-

अध्ययन क्षेत्र की सामाजिक, आर्थिक समस्याओं के समाधान हेतु निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाना अपेक्षित है ।

(अ) भूमि उपयोग के वर्तमान स्वरूप में सुधार ।

(ब) कृषि भूमि उपयोग में परिवर्तन हेतु आवश्यक सुविधाओं का प्राविधान ।

(स) शस्य स्वरूप में परिवर्तन ।

(द) कृष्येत्तर ग्रामीण उद्योगों की संस्थापना एवं

(य) स्थानीय जनसंख्या के जीवन स्तर में सुधार ।

(अ) **भूमि उपयोग के वर्तमान स्वरूप में सुधार** .- अध्ययन क्षेत्र में भूमि सम्पदा के समुचित दोहन हेतु भूमि उपयोग के सन्तुलित एवं वैज्ञानिक अध्ययन पर बल दिया जाना अति आवश्यक है, एतदर्थ भूमि-उपयोग के सुधार के कार्यक्रम को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

शुद्ध कृषित भूमि के अन्तर्गत अध्ययन खेत्र का 75.56% (20255 है0) भू-भाग सम्मिलित है, जिस पर कृषि कार्य हो रहा है । प्रयास करने पर इसे 80.52% भू-भाग में बदला जा सकता है । अध्ययन क्षेत्र में कुछ ऐसे न्याय पंचायत है, जहाँ शुद्ध कृषित

भूमि का क्षेत्र अपेक्षाकृत कम है, जिनमें मुख्य रूप से महमदिया 57.17% (665 हे0), परतेली 61.05% (1469 हे0), रामपुर 61.42% (688 हे0), सौरिया 65.22% (784 हे0) एवं राजयवाड़ा का 65.97% (917 हे0) सम्मिलित है । इन न्याय पंचायतों के शुद्ध कृषित भूमि में लगभग 5 से 15% तक की वृद्धि की जा सकती है । शुद्ध कृषित भूमि का सर्वाधिक क्षेत्र न्याय पंचायत रखेली का 93.31% है । सिंचाई की सुविधा, नवीन -तकनीक तथा कृषि पद्धति में सुधार कर उच्च कृषित प्रतिशत में बदला जा सकता है ।

कृषि अप्राप्य भूमि कुल क्षेत्रफल का 14.74% है जिसके अन्दर अधिवास, परिवहन, सिंचाई तथा अन्य सांस्कृतिक भू-भाग सम्मिलित है । अध्ययन क्षेत्र के न्याय पंचायत रखेली का 2.43%, दोआसे 3.89%, मधेपुरा 6.95%, बोरनी 7.03%, बिजैली 8.56% भू-भाग कृषि अप्राप्य भूमि के अन्तर्गत है जो बहुत ही कम है । इन न्याय पंचायतों में आवास, परिवहन, तथा सिंचाई सहित अन्य सांस्कृतिक स्थलों की आवश्यकता है । न्याय पंचायतों में सड़क तथा शिक्षण संस्थाओं का अभाव देखने को मिलता है । अतः इनमें 10% की वृद्धि कर उपर्युक्त कमी की पूर्ति की जा सकती है । भूमि को सांस्कृतिक उपयोग में लेने के पूर्व यह हमेशा ध्यान में रखना आवश्यक है कि भूमि की सक्षमता कैसी है ? सक्षमता के आधार पर ही भूमि का उपयोग विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक प्रयोगों में लाना श्रेयष्कर होगा।

कृष्य बंजर भूमि पर विचार करने पर स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र में ह्रास हुआ है । कृषक अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु बेकार भूमि का उपयोग किए है लेकिन कुछ ऐसे न्याय पंचायत है, जहाँ कृष्य बंजर भूमियों का प्रतिशत अभी भी अधिक है, उनमें मुख्य रूप से न्याय पंचायत राजभवाड़ा 10.07%, रामपुर 9.37%, जगन्नाथपुर 7.83%, परतेली 7.81%, महमदिया 7.30%, डण्डखोरा 6.98% है । इन उपर्युक्त न्याय पंचायतों के कृष्य बंजर भूमि को घटाकर कृष्य बंजर के रूप में 5% तक लाया जा सकता है । बाग-बगीचों, सामुदायिक विकास केन्द्र, विद्यालय तथा आवासीय व्यवस्था कर ग्रामीण जन-जीवन के स्तर को सुधारा जा सकता है । साथ ही जो अनुपयुक्त क्षेत्र कृषि के लिए उपयुक्त हैं उन्हें कृषि क्षेत्र में परिवर्तित करना लाभप्रद होगा । बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण-पोषण के लिए

खाद्यान्न फसलों की आवश्यकता भी अपेक्षित है ।

बाग-बगीचों के अन्तर्गत क्षेत्र का ह्रास तेजी के साथ अध्ययन क्षेत्र में हुआ है विगत चार दशकों (1951-91) की अवधि में अध्ययन क्षेत्र के बाग-बगीचों में अधिकांश कृषित क्षेत्र में परिवर्तित कर दिए गये हैं । बाग-बगीचों के सन्दर्भ में यदि यही क्रम जारी रहा तो यहाँ की जनता को भयावह परिणाम का सामना करना होगा । यहाँ की पारिस्थितिकीय तन्त्र अस्त-व्यस्त हो जायेगा । सम्पूर्ण तन्त्र प्रभावित हो सकता है क्योंकि वर्ष 1951 में अध्ययन क्षेत्र के कुल क्षेत्रफल का 12.28% (3294 हे0) बाग-बगीचों का विस्तार था जो वर्ष 1991 में मानव अविवेक उपयोग से मात्र 4.25% (1139 हे0) भू-भाग ही बाग-बगीचों के रूप मे रह गया है । न्याय पंचायत स्तर पर सर्वाधिक ह्रास डुमरिया 0.71%, बिजैली 1.63%, बौरनी 1.44%, दोआसे 1.55%, दलन 2.29%, रघेली 2.43%, भू-भाग शेष रह गया है । अतः इन न्याय पंचायतों में पारिस्थितिकीय सन्तुलन हेतु शीघ्र वृक्षारोपण की नितान्त आवश्यकता है । क्षेत्र में कृष्य बंजर भूमियों पर वृक्ष लगाकर लगभग 10% भू-भाग को हरीतिमा के अन्तर्गत लाना आवश्यक है ।

सिंचित क्षेत्र के सन्दर्भ में विचार-विमर्श करने के उपरान्त यह पाया कि विगत चार दशकों में क्षेत्र विस्तार तेजी से हुआ है लेकिन यह क्षेत्रफल सिंचाई की दृष्टि से अनुकूलतम नहीं है । बढ़ती हुई जनसंख्या की दर को ध्यान में रखते हुए सिंचित क्षेत्र के प्रतिशत में वृद्धि आवश्यक है क्योंकि वर्ष 1951 में 15.7% क्षेत्र सिंचन के अन्तर्गत था । वर्ष 1991 में बढ़कर 38.01% हो गया है, अपेक्षाकृत यह प्रतिशत कम है । इसमें लगभग 25% की वृद्धि कर फसलोत्पादन में तीव्रता लायी जा सकती है । न्याय पंचायत स्तर पर सर्वाधिक कम सिंचन कार्य राजपारा 9.79%, दोआसे 17.56%, रघैली 23.17%, डण्डखोरा 23.42%, जगन्नाथपुर 25.21%, जबड़ा पहाड़पुर 27.54%, भू-भाग पर होता है जो बहुत ही कम है । सिंचाई सम्बन्धी आधुनिक साधनों की वृद्धि का सिंचन क्षेत्र में बढ़ोत्तरी आवश्यक है । अतः इन न्याय पंचायतों में लगभग 12% क्षेत्र की वृद्धि कर सिंचन प्रतिशत को बढ़ाया जा सकता है जिससे निश्चय ही क्षेत्र का सर्वाधिक विकास सम्भव है ।

दो फसली क्षेत्र के अन्तर्गत वर्तमान में 41.65% भू-भाग सम्मिलित है । यद्यपि हाल के वर्षो में द्विफसली के अन्तर्गत वृद्धि तेजी से हुई है । द्विफसली क्षेत्रों में वृद्धि, सिंचाई की सुविधा, नवीन कृषि तकनीक तथा शीघ्र तैयार होने वाले बीजों को अपनाकर दो फसली क्षेत्र का विस्तार किया जा सकता है । इस प्रकार बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए दो फसली क्षेत्र में वृद्धि को अपनाकर उत्पादकता में बढ़ोत्तरी आवश्यक है । अतः लगभग 10% क्षेत्र को दो फसली क्षेत्र में बदलना अपरिहार्य है । न्याय पंचायत स्तर पर सबसे कम द्विफसली क्षेत्र दलन 11.37%, बेलवा 16.76%, डण्डखोरा 20.67%, सौरिया 23.59% एवं राजभवाड़ा 24.31% भू-भाग पर द्विफसली के अन्तर्गत है जबकि सर्वाधिक हफलागंज 85.13% भू-भाग पर द्विफसली क्षेत्र विद्यमान है । इस अनुपात में अन्य न्याय पंचायत के अन्तर्गत दो फसली प्रतिशत कम है । अत. इन न्याय पंचायतों में लगभग 15 से 25% भू-भाग को अतिरिक्त द्विफसली में परिवर्तन आवश्यक है । इस कार्यक्रम से खाद्य पदार्थो और जनसंख्या के बीच खाद्यान्नों के अभाव को पूरा किया जा सकता है ।

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि प्रखण्ड तथा न्याय पंचायत स्तर पर उपर्युक्त सभी घटकों में विरोधाभास है । अत. सुझाए गए प्रतिशत वृद्धि द्वारा अध्ययन क्षेत्र में गुणोत्तर विकास किया जा सकता है ।

(ब) आवश्यक सुविधाओं का प्राविधान :-

कटिहार प्रखण्ड में कृषि भूमि पर प्रति हेक्टेयर अधिक उत्पादन हेतु आवश्यक सेवाओं का उपलब्ध कराना अति आवश्यक है, क्योंकि अध्ययन क्षेत्र में लघु कृषकों की संख्या अधिक है, जो अत्यन्त गरीब है । इनके उन्नयन तथा क्षेत्र के चतुर्दिक विकास के लिए सिंचाई की सुविधाओं में वृद्धि की जानी चाहिए एवं खाद-उर्वर, उन्नतशील बीज, नवीन कृषि यंत्र आदि सुविधाओं को सुलभ बनाया जाना चाहिए ।

1. **सिंचाई** :- सिंचाई का किसी क्षेत्र के भूमि उपयोग क्षमता, दो-फसली क्षेत्र, प्रति हेक्टेयर उत्पादन, शस्य-स्वरूप एवं शस्य-गहनता आदि पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है । यद्यपि अध्ययन क्षेत्र में शुद्ध कृषित क्षेत्र का लगभग 38.01% भाग सिंचाई की सुविधाओं से लाभान्वित है,

जो अत्यन्त ही अल्प है । सबसे कम सिंचित क्षेत्र न्याय पंचायत दोआसे (17.56%), रवैली (23.17%), डण्डखोरा (23.41%) तथा जगन्नाथपुर में (25.21%) मिलता है । अतः कृषि उत्पादन में वृद्धि हेतु क्षेत्र के इन न्याय पंचायतों सहित अन्य कम सिंचित क्षेत्रों में इसकी सुलभता की आवश्यकता है । इस भाग में राजकीय नलकूपों एवं सहकारी वित्तीय सहायता द्वारा व्यक्तिगत नलकूपों के लगाए जाने का प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए । इसी प्रकार अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी भाग में यद्यपि नहरों का जाल बिछा हुआ है, परन्तु इन नहरों में समयानुसार पानी नहीं मिल पाता । साथ ही नहरें मिट्टी से भर गयी हैं । इनकी सफाई होनी चाहिए। तथा दक्षिणी भाग में नहरों का निर्माण होना चाहिए । प्रखण्ड के नालों-नदियों एवं तालाबों में भी पम्पिंग सेटों द्वारा सिंचाई की सुविधा को बढ़ाया जा सकता है ।

2. **खाद एवं उर्वरक** :- कृषि उत्पादकता की वृद्धि हेतु खाद एवं उर्वरकों का अधिकाधिक प्रयोग 1970 के बाद हुआ है । उर्वरकों के वितरण हेतु सहकारी समितियाँ हैं, जो कृषकों को ऋण की सुविधायें प्रदान करती है । इन सहकारी समितियों को प्रखण्ड के आन्तरिक भागों (इण्टीरियर) में भी स्थापित कर कमजोर वर्ग के कृषकों को उर्वरकों की सुविधा प्रदान की जा सकती है । अध्ययन क्षेत्र में मृदा-परीक्षण की सुविधायें न्याय-पंचायत मुख्यालयों पर प्रदान की जानी चाहिए, जिससे कृषकों को उर्वरकों की किस्मों में मात्रा के बारे में सही जानकारी प्रदान की जा सके । प्रखण्ड में गोबर गैस प्लाण्टों की संख्या 45 है । सरकारी सहायता आदि प्रदान कर इनकी संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए ताकि किसानों को सस्ता ईंधन एवं अच्छी खाद प्राप्त हो सके । साथ ही हरी खाद के लिए मूँग, सनई आदि फसलों की कृषि को प्रोत्साहित किया जाना अति आवश्यक है ।

3. **उन्नतशील बीजों का प्रयोग** :- क्षेत्रान्तर्गत उन्नतशील बीजों की कमी है, जो सुगमतापूर्वक कृषकों को सुलभ नहीं हो पाता है । कृषकों को अधिक उत्पादन देने वाली एवं रोगों से बचने वाली नयी किस्म के बीजों के बारे में जानकारी दी जानी चाहिए ताकि इनका अधिकाधिक प्रयोग कर कृषि उत्पादन में प्रर्याप्त वृद्धि की जा सके । प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि 19% उपज केवल उन्नतशील बीजों के प्रयोगों से बढ़ाई जा सकती है । धान, गेहूँ, केला, मक्का, चना, मटर, अरहर, ज्वार, बाजरा, आलू, मूँगफली तिलहन आदि उन्नतशील बीजों की किस्में उपलब्ध हैं । विशेषकर छोटी जोत वाले कृषकों के लिए 50-60 क्विंटल

प्रति हेक्टेयर ऊपज देने वाली - परमल, मन्सूरी, जया, पूसा, पंझाली, पदमा आदि किस्मों का प्रयोग लाभकारी सिद्ध होगा । इन किस्मों की उत्पादन अवधि कम होती है जिससे वर्ष में इनकी दो फसलें उगाई जा सकती हैं । धान की कृषि की सिंचाई के सुविधा के अनुसार तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है । असिंचित ऊपरी भूमि (अपर लैंड) के लिए परमल, मंसूरी, जया की किस्में उपयुक्त होगी । मध्यवर्ती भूमि (मिडलैण्ड) के लिए सीता, रामगुलर पंझाली आदि का प्रयोग किया जा सकता है । इसी प्रकार संरक्षित सिंचाई वाले उपरवार क्षेत्र में कजर गौड़, दूधकांड, सिंघरा ललमुनिया, नाजिर, मड़वाडोंगर किस्म की धान को बोया जा सकता है । विशेषकर निचली भूमि (लो-लैण्ड) के लिए पानी की गहराई के आधार पर बीजों का चयन किया जाना चाहिए । इसी प्रकार गेहूँ की कृषि के अन्तर्गत अधिक उपज देने वाली उन्नतशील किस्म की बीजों का प्रयोग किया जाना चाहिए ।

केला की जातियों का चयन क्षेत्रीय विशेषताओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए । अध्ययन क्षेत्र में केला की (सिंगापुरी, अल्पान, चम्पा, मालभोग, सकरचिनिया, बागलर, मुठिया) विभिन्न प्रजापतियाँ देखने को मिलती है, जो विशेष उपयुक्त है । यदि इनके लिए समुचित खाद पानी की व्यवस्था की जाय तो निश्चय ही मुद्रादायिनी फसलों में इनका विशेष स्थान रहेगा । पटसन की जातियों का चयन क्षेत्रीय विशेषताओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए ताकि पैदावार में सहीं ढंग से वृद्धि हो सके । केला और पटसन जिन क्षेत्रों में भूमि पर गिर जाता हो ऐसे क्षेत्रों में छोटे-छोटे किस्म वाली प्रजातियाँ लाई जाय, ताकि वे भूमि पर न गिर सके । क्षेत्र में शरदकालीन पटसन और केला की खेती को बढ़ावा देने के लिए पटसन और केला की बुआई सह-फसलों के रूप में तोरी, मटर, आलू, प्याज, मसाला (धनिया) आदि के साथ की जा सकती है । इन फसलों में आवश्यकतानुसार उर्वरक एवं सिंचाई की व्यवस्था की जानी चाहिए । सह-फसलों की कतारें क्रम में होनी चाहिए ।

मक्का की खेती में संकर मक्का आदि उन्नतशील जातियों का प्रयोग कर उत्पादन बढ़ाया जा सकता है । विशेषकर अध्ययन क्षेत्र में अल्पान, सिंगापुरी, मालभोग, आदि उन्नतशील जातियाँ लाभदायक सिद्ध हो सकती हैं ।

बाजरा की औसत ऊपज 5 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है जिसे संकर एवं मेनुपुर आदि जातियों द्वारा 20-25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक बढ़ाया जा सकता है । ज्वार जो चारे एवं अनाज दोनों के लिए उगाया जाता है , टाइप 8वीं, टा0 22, सी0एस0एच0 5, 6,7 आदि उन्नतशील जातियों को अपनाकर उत्पादन में प्रगति किया जा सकता है ।

अरहर जो दलहन की मुख्य फसल है, के उत्पादन को टाइप-7, टा0-17, एवं टा0-21 आदि जातियों द्वारा बढ़ाया जा सकता है । इसे उड़द, मूँग, तिल, ज्वार, बाजरा एवं मक्का आदि के साथ मिलाकर भी बोया जा सकता है । इसी प्रकार चना एवं मटर की अनेक उन्नतशील जातियाँ जिनके प्रचार प्रसार द्वारा उत्पादन बढ़ाया जा सकता है ।

रबी एवं खरीफ की सब्जियां हेतु आलू, गोभी, भिन्डी, बैंगन, टमाटर, प्याज आदि की कृषि को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ।

4. **नवीन कृषि यन्त्र** :- अध्ययन क्षेत्र में वैज्ञानिक यंत्रीकरण का अभाव है । केवल बड़े कृषकों के पास ही ट्रैक्टर, नलकूप, पम्पिंग सेट, थ्रेसर, केयर हल, शाबास हल, पडवर, स्तर हल, कल्टीवेटर, हैरों, सीडकम, फर्टिलाइजर ड्रील, ए0 एस0 पी0 टाइप हैण्ड सीड ड्रिल, सिंह हैण्ड हो, पहियेदार हो, थार्डन रेक आदि नवीन कृषि उपकरण उपलब्ध है । इन यंत्रों के प्रचार-प्रसार हेतु सरकारी सहयोग की आवश्यकता है । विकास खण्ड या सहकारी समितियों द्वारा भारी कृषि यन्त्रों जैसे- ट्रैक्टर, पम्पिंग सेट, लेबर विनेविंग पैन आदि की सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए ।

(स) शस्य स्वरूप में परिवर्तन :-

शस्य प्रतिरूप में परिवर्तन से अभिप्राय अधिक ऊपज देने वाली फसलों को प्राथमिकता देने से है । अध्ययन क्षेत्र में सर्वत्र जीवन निर्वाहक खाद्यान्न प्रधान कृषि की प्रमुखता है। शस्य स्वरूप में परिवर्तन, व्यापक मृदा सर्वेक्षण, सिंचाई के साधनों की सुलभता एवं उर्वरक के आधार पर किया जा सकता है । एतदर्थ अधिक उत्पादन एवं मूल्य देने वाली फसलों

के कृषि को बढ़ावा देने की आवश्यकता है । अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी भाग उत्तरी-पश्चिमी भाग में गेहूँ, धान, केला, मध्यवर्ती भाग में धान, पटसन, गेहूँ एवं दक्षिणी भाग में धान, पटसन की खेती की प्रधानता पाई जाती है । 1951-52 से 1991-92 के मध्य शस्य -परिवर्तन के अध्ययन के फलस्वरूप यह ज्ञात होता है कि हाल के वर्षों में प्रति हेक्टेयर अधिक उत्पादन एवं अधिक मूल्य देने वाली फसलों के क्षेत्रों में आशातीत वृद्धि हुई है । गेहूँ की नई उन्नतशील किस्मों के प्रयोग के कारण पिछले दशक में गेहूँ के क्षेत्रफल में (121.68%) की वृद्धि हुई है । इसके विपरीत धान के कृषि क्षेत्रों में अच्छे बीजों के फलस्वरूप 85.35% की वृद्धि देखी गयी है । उन्नतशील बीजों के प्रयोग से इसी प्रकार की वृद्धि, अन्य फसलों के क्षेत्रों एव उत्पादन में करने की आवश्यकता है ।

मुद्रादायिनी फसलों मे केला और पटसन के क्षेत्रफल में वृद्धि परिवहन के साधनों के विकास के द्वारा की जा सकती है । इसी प्रकार सब्जियों एवं मसालों (धनिया, सौंफ, मिर्चा इत्यादि) के कृषि क्षेत्रों में वृद्धि कर कृषकों की आर्थिक दशा को सुधारा जा सकता है । न्याय पंचायत दलन, राजभवाड़ा तथा जगन्नाथपुर के क्षेत्रों में रबी फसल के अन्तर्गत मक्के की खेती को प्रोत्साहित किया जा सकता है । अध्ययन क्षेत्र के दक्षिणी भाग में न्याय पंचायत हफलागंज, मधेपुरा में मखाना की खेती को प्रोत्साहित किया जा सकता है ।

खरीफ एवं रबी के अतिरिक्त अगहनी एवं गरमा की फसलों के प्रतिरूप में भी परिवर्तन की आवश्यकता है जबकि विगत दस वर्षो (1981-91) के मध्य इन दोनों फसलों में क्रमश 38.51% तथा 55.68% की वृद्धि हुई है परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है । गरमा फसलों में उन्नतशील बीजों की सुविधा प्रदान कर इनकी उपज को बढ़ाया जा सकता है । पश्चिमी एवं उत्तरी बिहार की भाँति बागों, उद्यानों आदि में फलदार वृक्षों के साथ ही विभिन्न फसलों को उगाकर उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है । ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे तालाबों एवं पोखरों को विकसित कर मत्स्य पालन हेतु उपयोगी बनाया जा सकता है।

1. **फसल चक्र** :- प्रति हेक्टेयर अधिक उत्पादन प्राप्त करने एवं मृदा की उर्वरत को बनाये रखने के लिए सही फसल चक्र का ज्ञान कृषकों के लिए लाभदायक होता है । परन्तु निरक्षता, आर्थिक विपन्नता, सिंचाई एवं परिवहन की असुविधा तथा प्राचीन कृषि पद्धति के

कारण आज भी अध्ययन क्षेत्र के कृषक खाद्यान्न प्रधान पारम्परिक फसल चक्र को ही अपनाते आ रहे हैं । यद्यपि हाल के वर्षो में फसल चक्र में कुछ नवीनता अवश्य आई परन्तु उसमें कभी भी सन्तुलन एवं वैज्ञानिकता का अभाव है । प्रखण्ड की भौतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों को देखते हुए निम्नलिखित फसल चक्र का प्रस्ताव किया जा सकता है ।

2. प्रस्तावित फसल चक्र :-

भदई, अगहनी, रबी, गरमा ।

(अ) एक फसलल चक्र :-

1. धान	धान	गेहूँ	धान
2. मक्का	मक्का	मटर	मक्का
3. चारा	चारा	चना,जौ	चारा
4. सब्जी	सब्जी	मसूर	सब्जी

भदई	अगहनी	रबी	गरमा
5. केला	-	-	-
6. पटसन	पटसन	-	-
7. मूँग	-	गेहूँ, तोरी	प्याज, लहसून

(ब) दोफसली चक्र:-

भदई	अगहनी	रबी	गरमा
1. धान + पटसन	धान + पटसन	गेहूँ + जौं	धान + पटसन
2. धान + मक्का	धान + मक्का	चना + मटर	धान + मक्का
3. धान + केला	धान + हल्दी	लतरी + उड़द	उड़द + मूँग
4. पटसन + मूँग	पटसन + मूँग	पटसन + सनई	पटसन + मूँग
5. मक्का + गन्ना	गन्ना + आलू	गन्ना + धनियाँ	आलू + प्याज + गन्ना

3. बहुफसली कृषि :- बहुफसली कृषि एक वर्षीय फसल नियोजन है, जिनके अनुसार किसी खेत में एक ही वर्ष में दो तीन या इससे अधिक फसलें उर्वरक, सिंचाई एवं अन्य सुविधाओं

आदि के समुचित प्रयोग के फलस्वरूप उगाई जाती है । परन्तु नवीन परिस्थितियों को देखते हुए इसे अन्य फसलों के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है । कटिहार प्रखण्ड के अधिकांश क्षेत्र पर कोई-न-कोई फसल वर्ष भर सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है और इस प्रकार एक ही वर्ष में किसी एक खेत में तीन-चार फसलों को लेकर लाभ कमाया जा सकता है । बहुफसली कृषि के अन्तर्गत एक फसली गहरी जड़ वाली हो तो उसके बाद उथली जड़वाली फसल बोना चाहिए । इस कृषि में एक दालवाली फसल अवश्य होनी चाहिए । साथ ही भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने के लिए प्राकृतिक एवं कृत्रिम रसायनों का उपयोग एवं सिंचाई की सम्यक व्यवस्था ऐसी कृषि के लिए अनिवार्य है ।

बहुफसली कृषि के फसल-चक्र

(अ) दो फसल वाले - 1. धान या मक्का गेहूँ
2. धान मटर या चना
3. चरी - बरसीम

(ब) तीन फसल वाले - 1. मक्का - आलू - बेहन (धान)
2. धान - गेहूँ - मूँग
3. ज्वार + बाजरा - गेहूँ - मूँग
4. मक्का - तोरी - गेहूँ

(स) चार फसल वाले :- 1. मक्का - तोरी - गेहूँ - मूँग
2. मक्का - आलू - गेहूँ - सब्जी
3. ज्वार + बाजरा - आलू - गेहूँ - मूँग
4. ज्वार + चरी - तोरी - गेहूँ - मूँग

(द) ग्रामीण औद्योगीकरण :-

ग्रामीण उद्योगों की स्थापना कृषि द्वारा प्राप्त कच्चे मालों पर आधारित है इन उद्योगों के द्वारा न केवल कृषि भूमि पर जनसंख्या के दबाव को कम कर सकते हैं,

ग्रामीणी बेरोजगारी को कम कर सकते हैं वरन् इसके द्वारा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ किया जा सकता है ।

अध्ययन क्षेत्रों में कृषि उत्पादनों पर आधारित चावल, दाल, ऑटा, तेल निकलने की मिलें बड़े गांवों में जहाँ विद्युत उपलब्ध है, स्थापित की गई है । उदाहरणार्थ दलन, परतेली, हफलागंज, डण्डखोरा आदि न्याय पंचायतों के ग्रामीण केन्द्रों में देखने को मिलता है । अध्ययन क्षेत्र के जो ग्रामीण केन्द्र शहरी क्षेत्र से जुड़े हुए हैं वहाँ पर लघु उद्योग विकसित है। यदि अध्ययन क्षेत्र में उद्योग कर्ता को पर्याप्त सुविधा प्रदान की जाय तो निश्चय ही अध्ययन क्षेत्र का चतुर्दिक विकास संभव है क्योंकि कटिहार में बडे उद्योग जैसे - दो जूट मिल, दो फ्लावर मिल, अभियन्त्रण उद्योग, वन आधारित उद्योग, बिस्कुट निर्माण उद्योग स्थापित है । इन उद्योगों के सम्पर्क से अब छोटे लघु उद्योग आसानी से ग्रामीण क्षेत्र में स्थापित की जा सकती है ।

न्याय पंचायत चन्देली, जगन्नाथपुर एवं महमदिया में छोटे उद्योग दिखाई देते हैं, जैसे मुर्गी पालन, मत्स्यपालन, जूट पर आधारित उद्योग परन्तु इनसे सही ढंग से उत्पादन नहीं प्राप्त किया जा रहा है । ग्रामीण केन्द्रों पर औद्योगिक विकास के लिए यदि ऋण प्रदान की जाय तो निश्चय ही आर्थिक विकास संभव है । इनका न्याय पंचायत स्तर के ग्रामीण केन्द्रों में आइसक्रीम, कूट, कागज आदि उद्योगों की भी स्थापना की जा सकती है।

इसी प्रकार हाल के वर्षो में कटिहार शहरी क्षेत्र में साबुन, बिस्कुट, अल्यूमीनियम, जूट, चप्पल आदि कई इकाइयों की स्थापना की गयी है । इन उद्योगों को अध्ययन क्षेत्र के न्याय पंचायत हफलागंज, परतेली, मधेपुरा, बेलवा, डुमरिया तथा पहाड़पुर में लघु इकाइयों को स्थापित किया जा सकता है , क्योंकि इन न्याय पंचायतों के अधिकांश कारीगर कटिहार प्रतिदिन काम करने आते हैं । इनको विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है । इन्हें पूँजी (ऋण) प्रदान कर ग्रामीण क्षेत्रों में उद्योगों को स्थापित किया जा सकता है । इसके साथ-ही-साथ चमड़े से बनी वस्तुएँ (जूता, चप्पल, बैग आदि) टोकरी, रस्सी एवं आइसक्रीम निर्माण सम्बन्धी लघु उद्योगों का भविष्य अध्ययन क्षेत्र में उज्जवल है ।

न्याय पंचायत दोआसे, रघैली, बिजैली, बलुआ, बेलवा तथा अन्य कई न्याय पंचायतों में पशुपालन उद्योग को विकसित कर दूध एवं दूध से बनी वस्तुओं का उत्पादन किया जा सकता है । अन्तोदय कार्यक्रम के अन्तर्गत छोटे जोतवाले कृषकों को दुधारू पशु खरीदने हेतु सरकारी सहायता प्राप्त होती है । इसके लिए बाजार-समिति बनायी गई है । अध्ययन क्षेत्र के कृषक अधिकांशतः भैंस, गाय आदि खरीदने के लिए कटिहार बाजार समिति आते हैं । यह राजेन्द्र कृषि महाविद्यालय के पास है । यहाँ दुधारू किस्म की अच्छी भैंस प्राय· खरीद एवं बिक्री की आती है । परन्तु ऋण आदि के वितरण की त्रुटिपूर्ण पद्धति के कारण कृषकों को पर्याप्त लाभ सम्भव नहीं हो पाता है ।

अध्ययन क्षेत्र में अण्डे की खपत न्याय पंचायत सौरिया, दोआसे, बेलवा, दलन, हफलागंज, बिजैली, डुमरिया तथा महमदिया में उत्तरोत्तर बढ़ रही है । अतः कृषकों को मुर्गीपालन के लिए प्रोत्साहन दिया जाना आवश्यक है । एतदर्थ मुर्गियों की उन्नतिशील नस्लों के वैज्ञानिक तरीकों के बारे में कृषकों को प्रशिक्षण आवश्यक है ।

क्षेत्रान्तर्गत फल-उद्योग की स्थिति दयनीय है । तेजी से बाग-बगीचों की कटाई हुई है । अत· आम, अमरूद, कटहल, आँवला, नींबू, पपीता, लीची, लगाकर फल उद्योग को विकसित करना अति आवश्यक है । अध्ययन क्षेत्र के बेहतर बंजर भूमि में इस प्रकार के वृक्षों को लगाया जा सकता है । खेतों के मेड़ों आदि के किनारे शहतूत आदि के वृक्षों को लगाकर रेशम उद्योग को प्रोत्साहित किया जा सकता है । फलों को डिब्बों में भरने एवं उनसे आम, जैली आदि पदार्थों के निर्माण हेतु छोटे उद्योग भी गाँवों में खोले जा सकते हैं जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या का समाधान हो सके एवं कृषकों को कुछ अतिरिक्त लाभ प्राप्त हो सके ।

अध्ययन क्षेत्र में कुछ न्याय पंचायतों में भेंड पालन व्यवसाय देखा जाता है परन्तु इन भेड़ों से ऊन, माँस एवं दूध का वार्षिक उत्पादन बहुत ही कम है । उत्पादन में वृद्धि हेतु भेड़ों की नस्लों में सुधार के अतिरिक्त रख-रखाव को ठीक ढंग से व्यवस्थित करने की आवश्कता है, ताकि व्यवसाय को आर्थिक दृष्टि से उपयोगी बनाया जा सके ।

इन भेड़ों से प्राप्त उन का उपयोग गाँवों में स्थापित कंबल, गलीचे आदि बनाने वाले उद्योगों में किया जा सकता है ।

अध्ययन क्षेत्र में तालाबों की अधिकता है । पटसन का उत्पादन की अधिक होता है । उसकी सफाई आदि के लिए प्रत्येक गाँव के आस-पास छोटा-बड़ा तालाब देखने को मिलता है । इन तालाबों को सुधार कर मत्स्य-व्यवसाय को प्रोत्साहित किया जा सकता है । विकास - केन्द्रों से यदि इन्हें सहायता दी जाय तो निश्चय ही मत्स्य उद्योग का विकास संभव होगा और इससे आय की प्राप्ति होगी । इसके लिए विकसित तकनीकी को अपनाकर देशी मछलियों के साथ कुछ चुनी हुई उत्तम मछलियों को पालकर न केवल ग्रामीणों के भोजन स्तर को सुधारा जा सकता है वरन् इनके आर्थिक स्तर को भी ऊपर उठाया जा सकता है । इन तालाबों का उपयोग 'सिंघाड़ा' (जिसे पानी फल कहते हैं) मखाना आदि लगाकर अर्थोपार्जन किया जा सकता है ।

अध्ययन क्षेत्र में कुछ ग्रामीण केन्द्रों पर लघु औद्योगिक इकाइयों की स्थापना न्याय पंचायत परतेली, चन्देली, दोआसे, डुमरिया, हफलागंज आदि में की जा सकती है, जहाँ परिवहन, बैंक, तकनीकी प्रशिक्षण आदि सुविधायें देकर बड़े कृषकों को उद्योगों की स्थापना हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए । इन न्याय पंचायतों के सेवा केन्द्रों में बनी वस्तुओं के विक्रय हेतु समुचित प्रबन्ध अत्यावश्यक है । यदि सरकार लघु एवं ग्रामीण उद्योगों में उत्पादित वस्तुओं को बड़े उद्योगो में न बनने दें तो निश्चय ही इनकी खपत और माँग बढ़ेगी तथा इससे धीरे-धीरे बड़े उद्योगों की स्थापना हो सकेगी ।

ग्रामीण सेवा केन्द्रों के समीप जहाँ बीज उर्वरक आदि के वितरण के केन्द्रों की आवश्यकता है वहाँ आलू, प्याज जैसी कृषयोत्पादित वस्तुओं के भण्डारण हेतु हफलागंज, परतेली, रघैली, बिजैली, डुमरिया एवं दलन आदि सेवा केन्द्रों में शीतगृहों का होना अतिआवश्यक है । राजेन्द्र कृषि महाविद्यालय एवं शोध-संस्थान कटिहार में जहाँ अध्ययन एवं अध्यापन कार्य सम्पादित किया जाता है , को विकसित कर कृषि बीजों, बीमारियों आदि के अध्ययन हेतु तथा कृषि तकनीक प्रशिक्षण हेतु शोध केन्द्रों को विकसित कर क्षेत्र के उन्नयन एवं चतुर्दिक विकास को और प्रोत्साहित किया जा सकता है ।

(य) **सामाजिक एवं सांस्कृतिक सुविधायें :-**

किसी भी क्षेत्र के आर्थिक विकास में परिवहन साधनों का विशेष योगदान होता है । अध्ययन क्षेत्र में मुख्य सडकें-कटिहार-पूर्णियाँ, कटिहार गेड़ावाड़ी, कटिहार-मनिहारी, कटिहारी-मनसाही, कटिहार-सोनाली, कटिहार-प्राणपुर है । इसके अलावा अन्य कई छोटी कच्ची सड़के हैं जिसका रख-रखाव अच्छा नहीं है । इन पर अपेक्षाकृत कम बसें चलती हैं । इन्हें जनपद के मध्यम श्रेणी के मार्गों मे परिवर्तित करना अति आवश्यक है । वैसे यहाँ प्रथम श्रेणी के मार्ग भी काफी टूटे-फूटे हैं, जिनकी स्थिति काफी दयनीय है । अधिकांश सड़कें बरसात में जल-स्तर ऊपर आ जाने से शीघ्र नष्ट हो जाती है । इनकी सहीं ढंग सें मरम्मत नहीं होती है । अत अध्ययन क्षेत्र के इन सभी भागों का मरम्मत आवश्यक है क्योंकि कोई कोई भी उद्योग - धंधे चलाने के लिए परिवहन की आवश्यकता अपरिहार्य है । अत. इनके अभाव में कोई भी विकास संभव नहीं हो सकेगा ।

अध्ययन क्षेत्र मे पॉच रेलमार्ग हैं जो कटिहार से असम (ब्राड गेज), कटिहार से दिल्ली (ब्राड गेज), कटिहार से सिलीगुड़ी (मीटरगेज), कटिहार से पूर्णियाँ (मीटर गेज), कटिहार से मनिहारी (मीटर गेज) को जाती है कटिहार एन0 एफ0 रेलवे का मुख्यालय है छोटी रेलवे लाइनों को बडी रेल लाइन में बदलने की आवश्यकता है, क्योंकि बस, टैम्पू, आदि गाड़ियों की पर्याप्त सुविधा न होने के कारण ट्रेनों का ही सहारा लेते हैं । कटिहार शहर एक औद्योगिक प्रतिष्ठान होने के कारण देहात से हजारों श्रमिक प्रतिदिन काम करने आते हैं जो अक्सर बस और ट्रेनों की छतों पर देखे जाते हैं इसलिए क्षेत्र विकास के लिए परिवहन साधनों की और अधिक आवश्यकता है । अध्ययन क्षेत्र के न्याय-पंचायत स्तर पर प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, जच्च-बच्चा केन्द्र एवं परिवार नियोजन केन्द्रों को और अधिक विकसित कर दवाई इत्यादि की पर्याप्त सुविधा प्रदान किया जाय । इसके अतिरिक्त पशुपालन एवं चिकित्सा केन्द्रों की ओर ध्यान दिया जाय क्योंकि अधिकांशत चिकित्सा केन्द्रों की स्थिति जर्जर औरदयनीय हो गयी है इनकी मरम्मत तथा दवाइयों की पर्याप्त व्यवस्था की जाय, क्योंकि अध्ययनक्षेत्र का अधिकांश भाग बाढ़ग्रस्त रहता है । जिसके चलते अनेक प्रकार की बीमारियाँ देखने को मिलती है । इसके साथ ही पशु - चिकित्सा केन्द्रों पर नस्ल सुधार की योजना को बढ़ावा दिया जाना चाहिए ।

शिक्षा के विकास हेतु प्राथमिक स्कूलों में शिक्षकों की नियुक्ति, जर्जर स्कूलों की मरम्मत, ग्रामीण स्तर माध्यमिक स्कूल और इसके साथ 10 + 12 की शिक्षा लागू करनी चाहिए । शिक्षा ही वह कड़ी है जिससे राष्ट्र का गुणोत्तर विकास संभव हो सकेगा । ग्रामीण क्षेत्रों मे प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम को प्रोत्साहित करना आवश्यक है । ग्रामीणों के सहयोग एवं भाई-चारे की भावना को बनाये रखने के लिए सामाजिक उत्सवों, मनोरंजन के साधनों, सद्भावना यात्राओं का आयोजन किया जाना चाहिए ।

8.3 ग्राम्य स्तर पर नियोजन

ग्राम्य स्तर एवं परिवार स्तर पर भूमि उपयोग नियोजन, विकासशील अर्थव्यवस्था के सम्वर्द्धन के लिए अति आवश्यक है । इसकी महत्ता उस दशा में और भी बढ़ जाती है, जब किसी क्षेत्र की अर्थव्यवस्था कृषिगत आय पर ही आधारित हो । ग्राम्य स्तर पर भूमि उपयोग नियोजन में निम्न समस्याएँ नियोजकों के समक्ष उभरकर आती है .-

1. प्रति व्यक्ति भूमि की औसत मात्रा का निर्धारण ।
2. प्रति व्यक्ति उत्पादित खाद्य पदार्थो की मात्रा को आँकलन ।
3. भावी जनसख्या का पूर्वानुमान एवं उसके लिए खाद्यान्न की मात्रा का ऑकलन।
4. उत्पादक कृषि मे लगने वाले लोगों की अधिकतम संख्या ।
5. अतिरिक्त जनसंख्या के लिए उद्योगों का चयन एवं विकास ।
6. सामाजिक एवं सांस्कृतिक उत्थान हेतु सुविधाओं का विकास ।

उपर्युक्त इन सभी बातों का ध्यान रखते हुए प्रतिदर्श स्वरूप 'गोपालपुर' गाँव का चयन किया गया है । इस गाँव का कुल क्षेत्रफल 342 एकड़ है । इस गाँव की 58.54% (200.20 एकड़) भूमि पर शुद्ध कृषि की जाती है , जबकि 20.64% (70.60 एकड़) कृष्य बंजर के रूप में विद्यमान है । शोधकर्ता द्वारा प्रतिदर्श गाँव का सूक्ष्म सर्वेक्षण करने के उपरान्त वर्तमान शुद्ध कृषित क्षेत्र को 58.54% से 63.00%, कृषि अप्राप्य भूमि को

20.81% से 22% के रूप में परिणत किया जा सकता है । प्रतिदर्श गाँव में बाग-बगीचों का क्षेत्र नगण्य है जबकि कृष्य बंजर के रूप में 20.64% क्षेत्र विद्यमान है । इस अनुपयुक्त क्षेत्र के 5% भू-भाग पर आसानी से वृक्षारोपण कार्य किया जा सकता है । साथ ही कृष्य बंजर के शेष क्षेत्र पर अधिवास, परिवहन तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में उपयोग कर गाँव का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है । शुद्ध कृषित क्षेत्र के 28.27% के बजाय सिंचन कार्य 38.25% भूभाग पर होना चाहिए । द्विफसली फसलोत्पादन किया जा रहा है । इसको क्रमश: 30.25% के बजाय 4.05% तक उपयोग में लाया जा सकता है, जो सारणी 8.1 से स्पष्ट है ।

सारणी 8.1

गोपालपुर का प्रस्तावित भूमि-उपयोग

क्र0सं0	वर्तमान क्षेत्रफल (एकड़ में)	क्षेत्र प्रतिशत	प्रस्तावित क्षे0 (एकड़ में)	क्षेत्र प्रतिशत
1. गाँव का क्षेत्रफल	342.00	-	342.00	-
2. शुद्ध बोया गया क्षेत्र	200.20	58.54	215.46	63.00
3. कृषि अप्राप्य	71.20	20.81	75.24	22.00
4. कृष्य बंजर	70.60	20.64	34.20	10.00
5. बाग-बगीचा	-	-	17.10	05.00
6. सिंचित	56.59	28.27	82.41	38.25
7. द्विफसली	65.06	32.05	86.29	40.05

स्रोत प्रखण्ड कार्यालय कटिहार (बिहार)

गोपालपुर गाँव के शस्य स्वरूप का सूक्ष्म अवलोकन के उपरान्त पाया गया कि सिंचाई आदि सुविधाओं के फलस्वरूप इसके वर्तमान क्षेत्र को प्रस्तावित क्षेत्र में बदला जा सकता है जो सारणी 8.2 से स्पष्ट है ।

सारणी 8.2

गोपालपुर का प्रस्तावित शस्य स्वरूप

क्र0सं0	फसल	वर्तमान क्षेत्र क्षे0(एकड़ में)	प्रतिशत	प्रस्तावित क्षेत्र क्षे0(एकड़ में)	प्रतिशत
1.	भदई	-	-	-	-
	धान	48.1	13	56.70	14
	मक्का +अहरहर	29.6	8	32.40	8
	पटसन	33.3	9	28.35	7
	केला	18.5	5	24.30	6
2.	अगहनी	-	-	-	-
	धान	37.00	10	36.45	9
	मक्का	25.09	7	24.30	6
	मूँग + खेसारी	18.05	5	12.15	3
3.	रबी	-	-	-	-
	गेहूँ	54.8	14	64.90	16
	जौ + चना	14.8	4	12.15	3
	मटर-उड़द	7.4	2	08.10	2
	तेलहन	7.4	2	12.15	3
4.	गरमा	-	-	-	-
	धान	40.7	11	48.60	12
	मक्का	14.8	4	16.20	4
	पटसन	11.1	3	12.15	3
	सब्जी	11.1	3	16.20	4
	कुल योग	**370.00**	**100**	**405.00**	**100**

भदई फसलो में मुख्य रूप से धान और पटसन है, जिसका वर्तमान क्षेत्र 13% एवं 9% है, इसमें धान के क्षेत्र को 14% में बदला जा सकता है ।

अगहनी फसलों में मुख्यत. धान, मक्का, मूँग और खेसारी की खेती की जाती है जिसका वर्तमान क्षेत्र 10%, 7%, एव 5% है । इसे क्रमशः 9.1%, 6%, 3% में परिणत कर मुख्य खाद्यान्न फसलों के वर्तमान क्षेत्र को प्रस्तावित क्षेत्र में बदला जा सकता है ।

रबी की फसल का वर्तमान क्षेत्र कम है, इसके वर्तमान क्षेत्र को गेहूँ का 14% से 16% में बदला जा सकता है ।

उपर्युक्त फसलों के अलावा एक प्रमुख फसल गरमा है । इसमें मुख्य रूप से धान, मक्का, पटसन एवं शब्जी का उत्पादन होता है । धान तथा शब्जी के वर्तमान क्षेत्र क्रमश. 11%, एवं 3% है । प्रस्तावित क्षेत्र 12% एवं 4% में परिवर्तित किया जा सकता है ।

प्रतिदर्श गाँव के सामाजिक एवं सांस्कृतिक उत्थान हेतु गन्दे जल के निकासी हेतु नालियों का होना आवश्यक है । गाँव के गलियों को ईंटों के खड़न्जों से बरसात में यातायात हेतु सुगम बनाया जा सकता है । गाँव में प्राविधिक एवं तकनीकी शिक्षा हेतु व्यवस्था आवश्यक है, जिससे ग्रामीण नवयुवकों में आत्मनिर्भरता की भावना का सृजन हो सके एवं ग्रामीण औद्योगीकरण को प्रोत्साहन मिल सके ।

गाँव में स्वास्थ्य केन्द्र की सुविधा उपलब्ध है जिसे विकसित करने की आवश्यकता है । समीप ही पशु-केन्द्र की स्थापना पशुओं के स्वास्थ्य एवं नस्ल सुधार हेतु आवश्यक है । सड़क-व्यवस्था में सुधार कर परिवहन की सुविधाओं के विकास की भी तीव्र आवश्यकता है जिससे गाँव का प्रखण्ड के अन्य भागों से सम्पर्क बना रह सके ।

इसी प्रकार पंचायत-गृह, नवयुवक केन्द्र, क्रीड़ा क्षेत्र, सार्वजनिक पुस्तकालय

आदि की सुविधाओं से गाँव वासियों में भाई चारे की भावना का संचार अथवा स्वास्थ्य वातावरण के विकास में सहायता मिल सकती है । गाँव में छोटे-छोटे कई लघु उद्योग है जिन्हें सहकारी सहायता प्रदान कर बड़े उद्योगों में विकसित किया जा सकता है ।

यद्यपि गाँव में बिजली की सुविधा है, परन्तु समय से उपलब्ध नहीं होने के कारण जनता को काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । यदि गाँव में गोबर गैस प्लाण्ट की व्यवस्था कर दी जाय तो जनता को काफी राहत मिलेगी । साथ ही इसका उपयोग लघु-उद्योगों में भी किया जा सकता है । पटसन और धान की खेती अच्छी होती है , इससे सम्बन्धित उद्योग स्थापित कर गाँव का उन्नयन किया जा सकता है । ग्रामीण विकास हेतु सरकार द्वारा अनेक योजनाएँ लागू होती है परन्तु अधिकारियों की शोषक-प्रकृति, प्रबन्ध-व्यवस्था दोषपूर्ण एवं ग्राम वासियों की तटस्थता के कारण कार्यक्रमों को अपने लक्ष्य प्राप्ति में पर्याप्त सफलता नहीं मिल पाती है । एतदर्थ ग्रामीण प्रशासन को अधिक सक्रिय प्रभावकारी बनाने की आवश्यकता है ।

8.4 भूमि विकास में विधि नियमन :-

भूमि के उपयोग में विकासशील प्रवृत्तियों के उद्भूत करने के लिए यह आवश्यक है कि कृषि भूमि के अधिकार एवं प्रयोग का पुन: नियमन किया जाए । सरकार ने इस दिशा में कुछ सक्रिय प्रयास किये हैं जिनमें कृषि भूमि सीमा निर्धारण उल्लेखनीय है । इस नियम के अन्तर्गत जिन कृषकों के पास एक निश्चित सीमा से अधिक कृषि भूमि है, उनसे अतिरिक्त भूमि का अधिग्रहण कर कृषि-हीन या सीमान्त कृषकों में स्थानान्तरित किया जाता है । यद्यपि यह कार्यक्रम पूर्णत: सफल नहीं हो पाया है, तथापि इससे उन कृषकों को कृषि भूमि मिलने में कुछ हद तक सफलता हुई है, जो कृषि कार्य में रूचि रखते हैं पर जो भूमि-विहीन है ।

भारत के भिन्न-भिन्न गांवों में कृषि भूमि में चकबन्दी का प्रयास भी कृषि भूमि सुधार की दृष्टि से सहायक सिद्ध हुआ है । इससे छोटे-छोटे जोतों को एकत्र कर

बड़े-बड़े जोतों में परिणत किया जा रहा है, जिनके माध्यम से कृषि कार्य सम्पन्न करना कम व्यय साध्य एवं लाभदायक होगा । इन बड़े जोतों को पुनः लघु जोतों में परिवर्तित होने से बचाने के लिए उत्तराधिकार के नियमों में भी यथोचित संशोधन की आवश्यकता है ।

8.5 भूमि विकास में व्यवधानों का नियन्त्रण :-

भूमि विकास में कई ऐसे व्यवधान उपस्थित हो जाते हैं जिनके नियंत्रण के बिना कृषि का लाभदायक होना कठिन हो जाता है । बाढ़ भूक्षरण एवं सूखे आदि प्राकृतिक आपदाएं इसी प्रकार के व्यवधान है । कटिहार प्रखण्ड इन आपदाओं से प्रायः उत्पीड़ित रहता है । इस क्षेत्र में बाढ़ एवं भू-क्षरण की समस्याएँ अब भी बनी हुई है, जिनके नियन्त्रण से कृषि विकास में निश्चय ही सहायता मिलेगी ।

अध्ययन क्षेत्र में कीड़ों एवं बीमारियों के कारण भी अधिक क्षति पहुँचती है धान, गेहूँ तथा पटसन में ऐसे कीड़ों तथा बीमारियों का प्रकोप अधिक पाया जाता है । इनमें कुछ बीमारियाँ (जैसे- राइस एलगी) पौधों के जड़ों, तनों एवं पत्तियों को क्षति पहुचाती है इसके अतिरिक्त पत्तियों, फूलों आदि मे कई प्रकार के कीड़ों का भी प्रकाप होता है जैसे हिस्पा, राइसवर्म, गाल फ्लाई इत्यादि । यदि इन बीमारियों एवं कीड़ों से फसल को नहीं बचाया जाता है तो अनुमानतः 40 से 60% तक फसल नष्ट हो जाती है ।

सरकार द्वारा यदि इन कीड़ों और बीमारियों का बड़े पैमाने पर रोकथाम नहीं किया गया तो कृषि उत्पादन का एक बहुत बड़ा भाग नष्ट हो जायेगा तथा किसनों को इससे प्रति वर्ष अधिक हानि उठानी पड़ेगी । सरकार के कृषि विभाग ने 'प्लाण्ट प्रोटेक्शन' अनुभाग द्वारा इन कीड़ों तथा बीमारियों को रोकने का प्रयास किया है किन्तु उनका प्रयास अपर्याप्त है और इससे समस्या का वांक्षित समाधान सम्भव नहीं हो पा रहा है । इस अनुभाग को विस्तृत एवं सशक्त करने की आवश्यकता है जिससे 'प्लाण्ट प्रोटेक्शन' का कार्य अधिक सक्रिय एवं अधिक प्रशस्त बनाया जा सके ।

बीमारियों तथा कीड़ों से फसलों को बचाने के लिए कुछ रासायनिक धूलियों का भी प्रयोग किया जाता है । जिन्हें इन्सेक्टोसाइड एण्ड पेस्टीसाइड पाउडर कहते हैं । किसानों में इनके प्रति ज्ञान एवं जिज्ञासा उत्पन्न करना आवश्यक है ।

फसलों के उत्पादन के उपरान्त उत्पादित अन्न को सुरक्षित रखने की भी एक कठिन समस्या है । समुचित व्यवस्था के अभाव में अनुमानतः लगभग 15 से 25% तक उत्पादित अन्न सीलन एवं कीड़ों द्वारा प्रति वर्ष नष्ट हो जाता है । बड़े कृषक 'बखार' एवं 'ठेक' में रसायन का प्रयोग कर रख देते हैं लेकिन लघु कृषक के पास इसका पूर्णतः अभाव होता है, जिससे उनका अधिकांश अनाज नष्ट हो जाता है। ऐसी स्थिति में सरकारी प्रयासों द्वारा वैज्ञानिक ढंग से निर्मित ऐसे बखारों का निर्माण किया जाना चाहिए, जहाँ लघु कृषक अपने उत्पादन का एक भाग कम खर्च पर संचित रख सके ।

अध्ययन क्षेत्र के अधिकांश भागों में आलू की खेती की जाती है जो गाँव, नगर या कस्बों के निकट है, वे आलू के अतिरिक्त विपणन के दृष्टिकोण से पर्याप्त मात्रा में साग-सब्जी भी उगाते हैं । ऐसे कच्चे पदार्थ शीघ्र नाशवान होते हैं । इनके संरक्षण के लिए यद्यपि शीतालयों का प्रचलन हुआ है किन्तु ये बहुत ही कम हैं, साथ ही पर्याप्त विद्युत सुलभता न होने के कारण ये शीतालय भी सुचारू रूप से क्रियाशील नहीं रह पाते हैं जिससे प्रति वर्ष संचित आलू का एक बड़ा भाग नष्ट हो जाता है । सरकारी एवं निजी प्रयत्नों द्वारा शीतालयों की संख्या बढ़ाना तथा उनमें विद्युत की पर्याप्त आपूर्ति करना अति आवश्यक है ।

कृषि से संलग्न पशुपालन उद्योग को कुछ हद तक कृषि का ही अनुभाग समझा जाता है । वहाँ भी दुग्ध, अण्डे आदि जैसे शीघ्र नाशवान पदार्थो के संचय एवं विपणन की बड़ी समस्या है । अतः यह आवश्यक है कि कृषि में प्रयुक्त तथा किसानों के लिए लाभदायी जानवरों की नस्लों में सुधार के साथ-साथ उनसे प्राप्त उत्पादनों को संरक्षित रख कर कृषकों को अधिकाधिक लाभ देने की व्यवस्था की जानी चाहिए ।

8.6 कृषि उत्पादनों का विपणन :-

सभी किसान अपने उत्पादनों के कुछ भाग अवश्य बेचते हैं, जिससे द्रव्य प्राप्त कर वे अपनी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं । बहुधा ऐसा पाया जाता है कि इन किसानों को अपने उत्पादनों का उचित मूल्य नहीं मिलता और जिन सामानों का वे क्रय करते हैं उसके लिए इन्हें अधिक मूल्य देना पड़ता है । इस प्रकार व्यापारी उनसे दोनों दशाओं में अधिक लाभ प्राप्त करते हैं । कृषकों को ऐसे परोक्ष शोषणों से बचाने के लिए आवश्यक उपाय होने चाहिए । निर्धन किसान सक्षम रूप से एव सफलतापूर्वक कृषि भूमि उपयोग नहीं कर सकता । सरकार ने इस समस्या से निपटने के लिए कृषि मण्डियों का आयोजन किया है, जहाँ किसान अपना उत्पादन उचित मूल्य पर बेच सकता है । किन्तु इन मण्डियों की कार्य प्रणाली दोषपूर्ण होने से किसनों को उचित लाभ नहीं मिल पाता है । कभी-कभी तो उन्हें सामान्य विपणन से भी कम मूल्य पर कृषि उत्पादनों को बेचना पड़ता है ।

किसानों में मिल-जुलकर कृषि-कार्य, लेन-देन कार्य एवं विपणन कार्य करने के लिए कृषि सहकारी समितियों का गठन किया गया है । किन्तु किसानों में इनके प्रति विशेष अभिरूचि के अभाव एवं उनके आपसी तनावों के कारण ऐसी समितियों का कार्य शिथिल पाया जाता है । यही कारण है कि सहकारिता एवं सहकारी समितियों से किसान दूर कतराते हैं । यदि इनकी कार्य विधि को सुधारा जाय तो किसानों को अधिक लाभ दिया जा सकता है ।

8.7 अभिनव प्रवृतियों का प्रसरण :-

(अ) **भूमि सक्षमता** :- आज के वैज्ञानिक युग में भूखण्डों के भिन्न-भिन्न उपयोग बढ़ते जा रहे हैं । कृषि भूमि उपयोग में भी ऐसी विधियाँ प्रचलित हो गयी है । यदि किसानों को इनसे अवगत कराया जाय तो उनमें कृषि भूखण्ड़ों के उचित उपयोग के प्रति जागरूकता उत्पन्न होगी और नूतन विधियों द्वारा अधिक सुनियोजित ढंग से अपने कृषि क्षेत्रों का उपयोग कर सकेगें ।

(ब) **बहुफसलीकरण** :- भारत जैसे घने आबाद देश में एक ही कृषित क्षेत्र से एक ही

वर्ष में कई फसलें प्राप्त करना आवश्यक सा होने लगा है क्योंकि बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण पोषण के लिए अधिक साधनों की मांग बढ़ने लगी है । कटिहार प्रखण्ड भी एक घना आबाद क्षेत्र है, अत यहाँ भी बहुफसली क्षेत्र में वृद्धि से कृषि उत्पादनों को बढ़ाया जा सकता है एवं इसे बढ़ती हुई जनसंख्या की उदर पूर्ति की समस्या का समुचित समाधान खोजा जा सकता है ।

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में केवल 41.65% कृषि भूमि ही दो-फसली कृषि में प्रयुक्त होती है । साधनों की प्रचुरता को बढ़ाकर इस क्षेत्र में पर्याप्त वृद्धि की जा सकती है । ऐसा करने से मुद्रादायिनी फसलों के विकास में वृद्धि होगी और किसानों को अधिक द्रव्य लाभ हो सकेगा ।

कटिहार प्रखण्ड में दो फसली क्षेत्रों में धान के बाद गेहूँ एवं मक्का तथा पटसन बोने की प्रथा है । इसके साथ ही कई न्याय पंचायतों में तीन फसलो के उत्पादन का भी प्रयास किया जाता है जैसे - धान के बाद गेहूँ और तत्पश्चात ग्रीष्मकालीन धान, मक्का और मूँग बोया जाता है, इसे गरमा फसल के नाम से जाना जाता है । यदि किसानों में अभिरूचि उत्पन्न कर दो-फसली एवं तीन फसली कृषि को बढ़ाया जाय तो कृषि उत्पादन में तीव्र वृद्धि की जा सकती है । इस प्रकार यह भूमि का अनुकूलतम उपयोग होगा ।

(स) **कृषि कार्य कुशलता** :- फसल सान्द्रण एवं फसल विविधता कृषि कुशलता पर बहुत हद तक निर्भर है । सान्द्रण इस तथ्य का द्योतक है कि किस प्रकार साधनों का उपयोग कर सक्रिय एवं जागरूक किसानों ने कृषि गहनता को सम्पादित किया है । यदि उनमें कृषि कुशलता नहीं होती तो ऐसा सम्भव नहीं था । कृषि विविधता भी कृषि कुशलता से विशेष रूप से संलग्न है ।

कृषि कुशलता के सम्बन्ध में वीवर[2] ने (1954), रामचन्द्रन[3] (1963), भाटिया[4] (1965) एवं जार्ज[5] (1965) आदि ने सराहनीय कार्य किए हैं । कृषि कुशलता को विश्लेषित करने और समझने में सबसे अधिक कठिनाई यह है कि कृषि के समरूप एवं विश्वसनीय आँकड़े नहीं उपलब्ध

होते हैं ।

खाद्यान्नों, दालों, तिलहनों एवं लघु खाद्यान्नों के सन्दर्भ में पृथक-पृथक कृषि कुशलता का अनुमान लगाया जा सकता है । उत्कल विशविद्यालय के प्रो0 वी0एन0 सिन्हा[6] ने इस सन्दर्भ में सराहनीय कार्य किया है । उन्होंने अलग-अलग फसल समूहों का विवेचन किया है और उनसे संबंधित कृषि कुशलता का अनुमान लगाया है । इनके अनुसार भारत के 320 जिलों में से 227 जिलों में धनात्मक और 93 जिलों में ऋणात्मक कृषि कुशलता पाई जाती है ।

यदि ऐसे अध्ययनों को प्रखण्ड स्तर पर अपनाया जाय तो इन विश्लेषणों से अधिक वास्तविक प्रतिफल प्राप्त किया जा सकता है ।

8.8 कृषि उत्पादकता :- किसी भी क्षेत्र में कृषि सक्रियता, कृषि गहनता एवं कृषि कुशलता को प्रदर्शित करने में कृषि उत्पादकता का विशेष स्थान है । यदि उत्पादकता क्षीण होती है तो स्वतः कृषि कुशलता घट जाती है । कृषि उत्पादकता बढ़ाने के जिन कारकों का महत्वपूर्ण योगदान है उनमें भौतिक पृष्ठभूमि के अतिरक्त सुधारे हुए बीजों, उर्वरकों, सिंचन साधनों , यंत्रण क्रियाओं कृषक प्रशिक्षण आदि अधिक उल्लेखनीय है ।

कृषि उत्पादकता में असन्तुलन भी एक ऐसा कारक है जिससे कृषि कुशलता के होते हुए भी उत्पादन क्षीण होने लगता है । अली मुहम्मद[7] के अनुसार सुविधाओं के आधार पर गहन खेती का अभियान चलाने से भारत के कुछ क्षेत्रों में उत्पादन अवश्य बढ़ा है लेकिन इससे क्षेत्रीय उत्पादन में असन्तुलन उत्पन्न हो गया है । इसलिए यह आवश्यक है कि संसाधनों का अधिक विस्तार किया जाय और असन्तुलनताओं को घटाया जाय ।

कृषि उत्पादकता से कृषि उत्पादन का गहरा सम्बन्ध है क्योंकि पहला जहाँ समक्षमता का द्योतक है वहीं दूसरा वास्तविकता का प्रतीक है । अतः कृषि उत्पादन का निर्धारण भी आवश्यक है जिससे कृषि उत्पादकता के प्रयासों का प्रतिकलन ज्ञात हो सके कुछ विद्वानों के अनुसार कृषि उत्पादन का तृविभात्मक ऑकलन किया जा सकता है । सिंह

और चौहान[8] (1977) ने इस विधियों द्वारा उत्तर प्रदेश में कृषि उत्पादकता का परिमणन किया है । उन्होंने निम्न तीन विधियों का आश्रय लिया है :-

(अ) मानक उत्पादन सूचकांक

(ब) फसल मात्रा तुल्य सूचकांक

(स) फसल गहनता संकेतांक

8.9 भूमि उपयोग नियोजन तथा कृषि विकास सम्बन्धी योजनाएँ[9] :-

भारत में भूमि उपयोग नियोजन तथा कृषि विकास योजनाओं के अन्तर्गत निम्न उल्लेखनीय है ।

(अ) सघन कृषि विकास योजना :- इसके अन्तर्गत कृषि की सघनता को बढ़ाने के लिए कृषि सुविधाओं को बढ़ाया जाता है। कृषकों को वैज्ञानिक धारणा प्रदान की जाती है । इसके अन्तर्गत फसलों का चयन, फसलों का चक्र तथा पशुधन विकास भी सम्मिलित किया जाता है ।

(ब) अधिक उपज वाली फसलों के विकास की योजना :-

इस योजना के अन्तर्गत कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा विकसित अधिक उपज वाली फसलों का प्रचार किया जाता है और कृषकों को उनके उपज की वृद्धि से अवगत कराया जाता है । भारत जैसे सघन आबाद देश में इस योजना का विशेष महत्व है ।

(स) बहुफसली योजना :-

कृषि पर जनसंख्या के अधिक धार के कारण एक ही कृषि क्षेत्र से कई फसलों का उगाना अधिक लाभदायी है । कृषि विद्वानों ने अपने प्रयोगों द्वारा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में बहुफसली योजना का विश्लेषण किया है और क्षेत्रों के सम्बन्ध में उनकी सार्थकता को अवगत कराया है । इसमें फसल को इस रूप में चलाया जाता है ताकि मृदा की उर्वरता

भी बनी रहे और मौसमी साधनों का लाभ उठाकर उपज भी अधिक प्राप्त की जा सके ।

(द) लघु कृषक विकास योजना :-

इस योजना के अन्तर्गत छोटे-छोटे किसानों की कृषि समस्याओं का अध्ययन और उनके समाधान का प्रयास किया जाता है । भारत में ऐसे किसानों की संख्या अधिक होने से इस प्रकार योजना का विशेष महत्व है । छोटे कृषक पृथक-पृथक आधुनिक संसाधनों का उचित लाभ नहीं उठा सकते है इसलिए उन्हें संगठित रूप में लाभ प्रदान करने की योजनाएँ बनाई जाती चाहिए । इन कृषकों के पास पूँजी कम होने से अच्छे बीजों अथवा रासायनिक उर्वरकों या कृषि नियन्त्रण सुविधाओं से भरपूर लाभ उठाना कठिन हो जाता है एतएव उन्हें सामूहिक रूप से ऐसे सुविधाओं से लाभान्वित करने का प्रयास करना चाहिए।

(य) साझा विकास योजना :-

कृषि विकास योजनाओं पर सामाजिक रूप-रेखा, आर्थिक प्रक्रिया, प्रशासनिक विधि तंत्र तथा राजनैतिक ढांचे आदि का भी उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है । लघु प्रदेश नियोजन के अन्तर्गत कृषि, संलग्न अर्थ क्रिया क्षेत्रों एवं सामाजिक प्रारूप क्षेत्रों को सन्निहित करते हुए विकास योजनाए बनाई है जिनमें पंचायत राज्य, सहकारिता, एकीकृत ग्रामीण विकास ऐसी अनेक योजनाए सम्मिलित की गई है । इसी उद्देश्यों से प्रखण्ड के रूप में छोटी ईकाइयों का निर्धारण किया गया है, जो आधुनिक विकास योजना के आधार के रूप में क्रियाशील हो रहे हैं । यदि ये प्रखण्ड व्यवधानों एवं भ्रष्टाचारों से अलग होकर कार्य करें तो निश्चय ही कृषकों की अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है और कृषि विकास योजनाए भी सफल होगी ।

(र) कृषि श्रमिकों हेतु विकास योजनाएँ :-

कृषि विकास में कृषि श्रमिकों का महत्वपूर्ण योगदान है । सघन कृषि वाले क्षेत्रों में तो उपादेयता और भी बढ़ जाती है । धान या केले वाली फसलों में इन कृषक मजदूरों का योगदान और भी उल्लेखनीय होता है । फलों तथा तरकारियों की खेती में भी श्रमिकों का कार्य महत्वपूर्ण होता है।

भारत में कृषि यन्त्रण का विशेष प्रसार न होने से आज भी श्रमिकों का कृषि में महत्वपूर्ण योगदान है ।

ग्रामीणी अंचलों में भूमिहीन कृषि श्रमिक भी पाए जाते हैं जो दूसरे कृषकों के कृषि क्षेत्रों पर कार्य करते हैं । यदि इन कृषकों की कार्य पद्धति में विकास नहीं किया गया तो कृषि में नवीन विकासों का प्रचलन कठिन हो जायेगा । ऐसे कृषि श्रमिक अपने श्रम का उचित पारिश्रमिक नहीं पाते हैं और बड़े किसान उनका शोषण करते हैं । ये प्रायः हरिजन या पिछड़ी जातियों से सम्बन्धित होते हैं । अतः इन पर यातनाओं का भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । भारत सरकार ने सन 1970-71 में इन श्रमिकों की आर्थिक दशा सुधारने हेतु अनेक योजनाएँ चलायी है जिससे इनकी सामाजिक और आर्थिक स्तर में धीरे-धीरे सुधार हो रहा है ।

(ल) कृषि ऋण योजना :-

भूमि विकास में कृषि योजना को सफल बनाने के लिए पूँजी का प्रसारण भी आवश्यक है । लघु एवं सीमान्त कृषकों के सन्दर्भ में तो कम ब्याज पर ऋण की सुलभता आवश्यक है । ऐसी सुविधा कृषि उधार बैंक एवं कृषि उधार समितियों द्वारा प्रदान की जाती है किन्तु इनके सुचारू रूप से कार्य न करने तथा दोषपूर्ण व्यवस्था से इन कृषकों को वांछित लाभ नहीं मिल पाता है । इन समितियों की कार्य प्रणाली में सुधार के अतिरिक्त ऋण नीति उधार बनाने की आवश्यकता है ।

उपर्युक्त विवेचनों से यह स्पष्ट है कि कटिहार प्रखण्ड ऐसे कृषि प्रधान क्षेत्र के लिए भूमि उपयोग में कृषि नियोजन का विशेष महत्व है क्योंकि इसके बिना कृषकों की कार्य पद्धति तथा उनकी कार्य कुशलता में वांछित सुधार नहीं लाया जा सकता है । कृषि से सम्बन्धित नवीनताओं के प्रसारण के लिए भी कृषि नियोजन आवश्यक है ।

आधुनिक कृषि धीरे-धीरे उद्योगों का रूप धारण कर रही है इसलिए इसमें पूँजी, श्रम, साहस, वितरण तथा विपणन जैसे कार्यो की सह सम्बद्धता आवश्यक है ।

इन सम्बन्धों को निर्धारित करने में नियोजित विधियों का विशेष योगदान होता है ।

कटिहार प्रखण्ड में अभी तक भूमि उपयोग का सार्थक स्वरूप नहीं विकसित हो सका है । आशा की जाती है कि वर्तमान अध्ययन से इन उद्देश्यों की पूर्ति में अभीष्ट सफलता मिलेगी ।

सन्दर्भ - सूचिका (References)

1. **Stampt** L.D. : "The Land of Britain :Ist use and misuse." 1962, p.246. (Third Edition)

2. Weaver **J.C.** : Crop Combination Reqions in middle west, Geograpnical Review , 1954, Vol. 44, No.2 pp. 175-200.

3. Ram **Chandran**, R. : "Crop Regions of India". The Indian Geographical Journal, 1963 Vol. 38.

4. **Bhatia**, S.S. : "A New measure of Agricultural Efficiency, in U.P." Economic Geography 1967, Vol 43, No.3 p. 248.

5. **Blyn**, Geogre, : Measurment of Geographical Association,. The Indian Geographical Journal, 1965, Vol 40, July, Sept. & Oct. - Dec. No. 3 and 4.

6. Sinha, B.N. : Agricultural Efficiency in India, Vol. 4 Chap Ten in Perspecteves in Agricultural Geography 1980, pp. 183-209.

7. **Mohammade Ali** : Regional Imbalances in levels of Agricultural Productivity, Vol.4, 1980, p. 227.

8. **Singh, Surendra and Chauhan**, V.S. : Measurment of of Agricultural Productivity in U.P. Geog. Rev. of India, 1977, Vol, 39, No 3, pp. 222-31.

9. *Jana, **M.M.** Programme for Agricultural Development in India Ed. Noor Mohammad Perspective in **Agricultural** Geography vol.4, 1980, pp. 289-303.*

सारांश

भूमि उपयोग सर्वेक्षण भौगोलिक अध्ययन का एक महत्वपूर्ण पहलू है । इसकी संकल्पना गत्यात्मक है । मानव अपने आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु दो प्रकार की सांस्कृतिक प्रक्रियाएं सम्पन्न करता है । प्रथमत· नये-नये क्षेत्रों की खोज तथा दूसरा भूमि-उपयोग की गहनता में वृद्धि । विश्व स्तर पर बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण भूमि-उपयोग सम्बन्धी अध्ययन की उपादेयता और अधिक बढ़ गयी है । बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण-पोषण के लिए वनों के कटान के फलस्वरूप भूमि बन्ध्या होती जा रही है । आज का मानव तकनीकी विकास के मद में चूर होकर इस बात को भूल बैठा है , और वह प्रकृति पर विजय श्री प्राप्त करने की होड़ में अपने अस्तित्व को ही संकट मे डाल लिया है । मानव का सर्वांगीण विकास एवं कल्याण प्रकृति के साथ सामंजस्यता पर ही निर्भर है , उस पर विजय प्राप्त करने में नहीं ।

मनुष्य अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु भूमि का उपयोग विविध रूपों में करता है । भूमि -उपयोग की अज्ञानता के कारण भूमि दुरूपयोग तेजी से बढ़ रहा है । अतः भूमि के लिए भूमि संबंधी सर्वेक्षण एवं उसका मूल्यांकन आवश्यक है । जो प्राकृतिक सामाजिक, आर्थिक एवं तकनीकी दशाओं के सन्दर्भ में अध्ययन किया जाना चाहिए । भूमि उपयोग सम्बन्धी अध्ययन में कृषि के स्वरूप एवं प्रतिरूप संबंधी अध्ययन महत्वपूर्ण है । जो कृषि नियोजन की पहली सीढ़ी है । भूमि उपयोग सर्वेक्षण से भूमि की उर्वरता, उत्पादकता एवं गहनता आदि की दृष्टि से भूमि के वर्गीकरण में सहायता मिलती है । इसके आधार पर भूमि का सही मूल्यांकन होता है - तद्नुरूप भूमि का उपयोग किया जाता है । इस प्रकार भूमि उपयोग सम्बन्धी अध्ययन उन देशों के लिए और भी महत्वपूर्ण हो जाता है, जहाँ जनसंख्या सघन है एवं उनके भरण पोषण हेतु कृषि उत्पादों की विशेष माँग है ।

मानवीय आर्थिक-क्रियाओं में कृषि कार्य का विशेष महत्व है क्योंकि यह उदर पूर्ति का सबसे बड़ा साधन है । जहाँ पर जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है वहाँ खाद्यान्नों की आवश्यकता भी अधिक होती है तथा वहाँ कृषि कार्य भी अधिक होता है। कृषि से हमें खाद्यान्न के साथ ही चारा एवं फलों की भी प्राप्ति होती है । कृषि उत्पादों

से सम्बन्धित अनेक छोटे-बडे उद्योग हैं । इस प्रकार कृषि से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में खाद्य, वस्त्र एवं गृह निर्माण के पदार्थ उपलब्ध होते रहते हैं । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य भूमि उपयोग के साथ ही कृषि प्रधान कटिहार प्रखण्ड के कृषि भूमि उपयोग की समुचित व्याख्या प्रस्तुत करना भी है, जिससे भौतिक, मानवीय एवं ऐतिहासिक कारकों के सन्दर्भ में भूमि-उपयोग की क्षेत्रीय एवं कालिक विशिष्टताओं की समुचित व्याख्या, सम्भाव्य क्षमता का मूल्यांकन तथा प्रखण्ड वासियों की आवश्यकताओं एवं उनके आर्थिक उन्नयन हेतु भूमि उपयोग से सम्बन्धित वैज्ञानिक नियोजन हेतु कुछ कार्यक्रम प्रस्तावित किये जा सके।

कटिहार प्रखण्ड बिहार के उत्तरी -पूर्वी भाग में स्थित है, जिसका विस्तार $25^0$28' उत्तरी से $25^0$41' उत्तरी अक्षांश एवं $87^0$32' से $87^0$43' पूर्वी देशान्तर के मध्य 26807 हे0 क्षेत्र पर है । 1991 की जनगणना के अनुसार इसकी कुल जनसंख्या 127,683 थी । प्रशासनिक दृष्टि से कटिहार को 20 न्याय पंचायतों एवं 126 गाँवों में विभाजित किया गया है ।

उच्चावच की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र नदियों द्वारा लाई गई जलोढ़ मिट्टी द्वारा निर्मित समतल मैदान है, जिसका सागर तल से औसत ऊँचाई लगभग 31.2 मीटर है । भौतिक दृष्टि से कटिहार प्रखण्ड को दो भौतिक रूपों बागर क्षेत्र एवं कछारी क्षेत्रों में बाँटा गया है । अपवाह तन्त्र की दृष्टि से कोसी धार, कमला, मोनाली तथा गिदारी नदिया मुख्य हैं अधिक वर्षा एवं मन्द ढाल के कारण प्रखण्ड का लगभग 45% क्षेत्र बाढ़ों से प्रभावित होता है । बाढ़ का विशेष प्रभाव इसके उत्तर में बहने वाली कोसी एवं उसकी सहायक नदियों की घाटी क्षेत्र में परिलक्षित होता है । बड़ी बाढ़ों के समय लगभग 85 गाँव बरसात में जलमग्न हो जाता है ।

संरचनाकत्मक दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र कोसी मैदान का एक भाग है । इसका निर्माण हीलोसीन युग से लेकर अद्यतन जमाव के परिणाम स्वरूप हुआ है । जलवायु की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र की स्थिति आर्द्र- उपोष्ण मानसूनी प्रकार की है । जहाँ औसत वार्षिक तापमान 24.4^0 से0 तथा औसत वार्षिक तापान्तर 8.10^0 से0 पाया जाता है । वायु प्रवाह की दिशा अधिकांश अवधि में पूरब से पश्चिम की ओर है । यहाँ जनवरी माह में सर्वाधिक वायुभार

1032 मिलीवार पाया जाता है । औसत वायुगति लगभग 5.48 कि0मी0 प्रति घंटा है । सापेक्षिक आर्द्रता लगभग 43-85% के बीच पाई जाती है । वर्षा का वार्षिक औसत 196.24 से0मी0 है । अध्ययन क्षेत्र के मौसम को प्रमुख तीन ऋतुओं शीत, ग्रीष्म एवं वर्षा में विभाजित किया जा सकता है ।

कटिहार प्रखण्ड की मिट्टियों को दो मुख्य प्रकारों एवं 6 उपविभागों में विभाजित किया जा सकता है । पेड़-पौधों के रूप में आम, जामुन, कटहल, लीची, अमरूद, महुआ, तथा सेमल नारियल एवं ताड के वृक्ष पाये जाते हैं । इसके अलावा मूँज, कूश तथा अन्य घासें पाई जाती है । दलदल वाले स्थानों पर बाँस खरही (नरकल) आदि देखने को मिलता है।

अध्ययन क्षेत्र के भू-आर्थिक संसाधनों में जनसंख्या के अन्तर्गत वृद्धि, विकासदर, घनत्व वर्ग, यौन अनुपात, साक्षरता, क्रियाशीलता एवं व्यवसायिक संरचना आदि का अध्ययन किया गया है । अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या की वृद्धि एवं वितरण में असमानता मिलती है । ग्रामीण क्षेत्र में औसत घनत्व 476 व्यक्ति, नगरीय क्षेत्र कटिहार का औसत घनत्व 4281 तथा नगरीय एवं ग्रामीण दोनों मिलार 927 व्यक्ति प्रति वर्ग कि0मी0 जनघनत्व मिलता है । सामान्य जनघनत्व 6.3 वयक्ति प्रति हेक्टेअर एवं कृषि घनत्व 2.26 व्यक्ति प्रति हेक्टेअर पाया जाता है । यौन अनुपात 1991 की जनगणना के अनुसार प्रति हजार पुरूषों पर महिलाओं की संख्या 923 पाई गई है । 1991 की जनगणना के अनुसार कटिहार प्रखण्ड में 18.74% जनसंख्या शिक्षित है जिसमें स्त्रियों का अनुपात 23.7%, पुरूषों की साक्षरता 76.23% की तुलना में बहुत ही कम है ।

कार्य करने वाले श्रमिकों का 95.74% भाग प्राथमिक वर्ग उत्पादन में लगा हुआ है जिसमें 18% कृषक, 25.03% खेतिहार मजदूर एवं 0.16% पशुपालक है । पशु संसाधनों में गौ-पशु, भैंस, भेंड़, बकरी, सूअर, कुक्कुट, बत्तख, मुर्गे, मुर्गियाँ, कबूतर एवं भेड़ों का महत्व है ।

खनिज सम्पदा की दृष्टि से कटिहार प्रखण्ड एक विपन्न क्षेत्र है क्योंकि यहाँ खनिजों का पर्याप्त अभाव है । सिंचाई के साधन में नहर नलकूप तालाब आदि का

प्रमुख स्थान है । सड़क परिवहन की अपेक्षा रेल परिवहन काफी सक्रिय है । कटिहार एन0 एफ0 रेलवे का मुख्यालय है । यहाँ से पाँच दिशाओं की ओर ट्रेनें जाती हैं ।

अध्ययन क्षेत्र के लगभग 64.28% गांवों में विद्युत की सुविधा प्राप्त है । कृषि यन्त्रों में लोहे एवं लकड़ी का हल, ब्लेड हैरो, पडलर, ट्रैक्टर, सीड ड्रीलर , प्लेट थ्रेसर एवं दवा छिड़कने वाली मशीनों आदि का प्रयोग विगत दो दशकों से प्रारम्भ हुआ है । खाद एवं उर्वरक के लिए सभी न्याय पंचायत कार्यालयों एवं गोदाम उपलब्ध है । उद्योग की दृष्टि से जूट उद्योग का प्रखण्ड के आर्थिक विकास में मुख्य योगदान है । इसके अतिरिक्त तेल पेरने, धान कूटने, आटा-चक्की आदि लघु उद्योग देखने को मिलते हैं । कटिहार शहर में जूट उद्योग के अलावा फ्लावर मिल्स, सिलकेट उद्योग, बड़े पैमाने पर विस्तृत है । यहाँ का जूट उद्योग तो बिहार मे अपना विशेष स्थान रखता है । उपर्युक्त उद्योगों के अलावा अन्य छोटे उद्योग जैसे - बढ़ईगिरी, दर्जीबिगरी, लौहारी, चर्म कार्य, प्रिंटिंग, ईंट तथा मिट्टी के बर्तनों से सम्बन्धित उद्योगों का विकास हुआ है ।

कृषि भूमि-उपयोग सिद्धान्तों वानथ्यूनेन, ओलोफ जोनासन, ओ0 ई0 वेकर, आगस्ट लॉश एवं वाल्टर इजार्ड प्रकृति विद्वानों के विचारों का अध्ययन किया गया है । अध्ययन क्षेत्र के सन्दर्भ में यह पाया जाताहै कि भूमि उपयोग में किसी सर्वमान्य एवं सर्वव्यापी विधि तन्त्र के विकास में अनेक कठिनाइयाँ है । वास्तव में भूमि उपयोग भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक आदि ऐसे चिचलकों से प्रभावित होता है जो निरन्तर परिवर्तनशील है । ऐसा पाया गया है कि भूमि-उपयोग में प्रायोगिक पक्ष सैद्धान्तिक पक्ष के विकास के द्वारा ही भूमि-उपयोग की समस्याओं का समाधान तथा भावी सम्भावनाओं का प्रारूप निश्चित करना चाहिए।

सामान्य भूमि-उपयोग का विश्लेषण शुद्ध कृषित क्षेत्र बाग-बगीचों, अप्राप्य एवं बंजर भूमि के अन्तर्गत किया गया है । कटिहार प्रखण्ड के कुल 26807 हेक्टेअर क्षेत्र का 75.56% कृषि के अन्तर्गत है । कृषि अप्राप्य एवं कृष्य बंजर के अन्तर्गत क्रमशः 14.74% एवम् 5.45% क्षेत्र सम्मिलित है । शेष 4.25% क्षेत्र बाग-बगीचों के अन्तर्गत है । भूमि को प्रभावित करने वाले प्राकृतिक एवं मानवीय कारकों के क्षेत्रीय वितरण के आधार

पर क्षेत्र के भूमि उपयोग में पर्याप्त भिन्नता मिलती है । जनसंख्या वृद्धि एवं मानवीय आर्थिक, सामाजिक क्रियाओं के विकास के कारण कृषि हेतु अप्राप्य भूमि की मात्रा उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है, जबकि कृष्य बंजर एव बाग-बगीचों के क्षेत्रों में सतत् ह्रास हो रही है ।

कृषित भूमि से अभिप्राय कृषि फसलों में लगे क्षेत्र से है, के अन्तर्गत सिंचित क्षेत्र एव दो फसली क्षेत्रों का अध्ययन किया गया है । अध्ययन क्षेत्र में कृषित क्षेत्र मुख्यतः सिंचाई के साधनों, उर्वरकों, उन्नतिशील बीजों, नवीन कृषि यंत्रों , नतून कृषि पद्धति एवं प्राविधिक ज्ञान आदि से प्रभावित होता है । भूमि-उपयोग को प्रभावित करने वाले सांस्कृतिक कारकों में सिंचाई का महत्वपूर्ण स्थान है । यही कारण है कि वर्ष 1951 में शुद्ध कृषित क्षेत्र का 50.75% से बढ़कर 1991 में 75.56% हो गया है । इस प्रकार 1951 और 1991 की अवधि मे शुद्ध बोये गए क्षेत्र के अन्तर्गत 24.81% की वृद्धि हुई है ।

इस तरह अध्ययन क्षेत्र में लगभग 95% गांवों में शुद्ध बोये गये क्षेत्रफल में वृद्धि की सम्भावनायें समाप्त प्राय है । दो फसली क्षेत्र का उच्च प्रतिशत भूमि उपयोग गहनता का सूचक है । वर्तमान में शुद्ध बोये गये क्षेत्रफल का 41.65% दो फसली है । ग्राम्य स्तर पर भी इसमें पर्याप्त अन्तर मिलता है ।

अध्ययन क्षेत्र में भदई, अगहनी, रबी एवं गरमा का क्रमश. 25.74%, 40.77%, 21.02% एवं 12.47% क्षेत्र सम्मिलित है । इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण फसल अगहनी है जिसके अन्तर्गत सकल कृषित क्षेत्रफल का 46.9% सम्मिलित है । मक्का का उत्पादन भी भदई, रबी एवं गरमा फसलों के अन्तर्गत किया जाता है जिसका प्रतिशत 11.15 है । दलहन के अन्तर्गत चना, मूँग, अरहर, उरद, कुल्थी खेसारी का उत्पादन सकल कृषित क्षेत्र के 14.84% क्षेत्र पर की जाती है । पटसन और साग-सब्जी का उत्पादन क्रमशः 3.98% एवं 8.08% भू-क्षेत्र पर की जाती है ।

रबी की सबसे महत्वपूर्ण फसल गेहूँ है जो 9.75% भू-क्षेत्र पर उत्पन्न की जाती है । इसके अलावा आलू, मक्का, साग-सब्जी का उत्पादन किया जाता है ।

गरमा फसलों में धान, साग-सब्जी तथा फलों का उत्पादन किया जाता है । शुद्ध बोये गए क्षेत्रफल के लगभग 68.07% पर खाद्योत्पादन होता है । पटसन, केला एवम् तिल मुख्य मुद्रादायिनी फसलें जिसके अन्तर्गत 8 2% क्षेत्र सम्मिलित हैं ।

1951-91 (चार दशकों) में फसलों के प्रतिरूप में तीव्र परिवर्तन हुआ है भदई फसलों में 190.38%, अगहनी फसल 101% क्षेत्र सम्मिलित । रबी की फसल 738.93% एवं गरमा फसल 552.7% की वृद्धि हुई है । इस प्रकार तुलनात्मक सर्वाधिक वृद्धि रबी फसलों के अन्तर्गत हुआ है ।

अध्ययन क्षेत्र की शस्य गहनता 1951 में 53.39% की जो बढ़कर 1991 में 130% हो गई । न्याय पंचायत एवं ग्राम्य स्तर पर भी इसमें पर्याप्त भिन्नता देखने को मिलती है । सर्वाधिक शस्य गहनता न्याय पंचायत दोआसे में 227.44% एवं ग्राम नीमा में 229% तथा न्यूनतम शस्य गहनता न्याय पंचायत रघेली में 24.43% एवं ग्राम कजरी में 70% पाया गया ।

इस प्रकार शस्य गहनता सम्बन्धी अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत लगभग 42% गाँव उच्च एवं उच्चतम कृषि गहनता वाले हैं । न्यून गहनता वाले क्षेत्रों को नवीन कृषि तकनीक, उत्तम बीज, सिंचाई की सुविधा आदि प्रदान कर उच्च श्रेणी में बदला जा सकता है ।

प्रतिदर्श गांवों का अध्ययन करते समय 8 गांवों का चयन भौतिक , सामाजिक, सांस्कृतिक आदि विशेषताओं को ध्यान में रखकर किया गया है । अधिकांश गांवों में कृषित क्षेत्र का विकास अपनी चरमा अवस्था पर पहुँच चुका है । गांवों में कृषि बंजर एवं बाग-बगीचों में क्षेत्रफल उत्तरोत्तर ह्रासोन्मुख है । अधिकांश चयनकृत गांवों में पारम्परिक कृषि की प्रधानता पाई गई है । कृषकों की अशिक्षा गरीबी के कारण नई कृषि पद्धतियों के विकास को पर्याप्त अवसर नहीं मिल पा रहा है । अतः कृषकों के आर्थिक स्तर को उठाने के साथ ही साथ व्यापारिक स्तर का भी ध्यान देना अति आवश्यक है ।

कटिहार प्रखण्ड में भूमि उपयोग के नियोजन हेतु कुछ ठोस सुझाव प्रस्तावित किए गए हैं । अध्ययन क्षेत्र में बाढ़ एवं जल - जमाव आदि प्राकृतिक समस्याओं के निराकरण हेतु कोसी धार, कमला, गिदरी, मोनाली नदी के तटबन्धों को मजबूत करने तथा इनके विसर्पो को सीधा करने की आवश्कता है । अध्ययन क्षेत्र के आर्थिक समस्याओं के समाधान हेतु भूमि उपयोग के वर्तमान स्वरूप में सुधार करके अध्ययन क्षेत्र की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ किया जा सकता है ।

अध्ययन क्षेत्र में कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत 75.56% भू-भाग सम्मिलित है । कृष्य बंजर के अन्तर्गत 5.45% क्षेत्र है । कृष्य बंजर क्षेत्र को आधुनिक सुविधाओं के द्वारा कृषित क्षेत्र में बदला जा सकता है ।

क्षेत्रान्तर्गत 4.25% क्षेत्र बाग-बगीचों में सम्मिलित है जो बहुत ही कम है अतः अप्राप्य भूमि जो अधिवासों, सड़कों, रेलवे लाइन नहरों या विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक उपयोगों में सम्मिलित है वहाँ बहुत सी बंजर भूमि पड़ी है, उस पर वृक्षारोपण कर विरान क्षेत्र को हरीतिमा से परिपूर्ण किया जा सकता है ।

अध्ययन क्षेत्र में कटिहार नगर पालिका को छोड़कर पूर्णतः ग्रामीण क्षेत्र है अतः इसके विकास के लिए उच्चतम भूमि उपयोग क्षमता एवं अधिकतम कृषि उत्पादन हेतु योजनाबद्ध प्रयास आवश्यक है । अध्ययन क्षेत्र के समन्वित विकास को दृढ़तर बनाने के लिए प्राकृतिक विपदाओं एवं सामाजिक आर्थिक समस्याओं के निराकरण हेतु सुझाव प्रस्तुत है ।-

(अ) (1) जल जमाव की समस्या के निराकरण हेतु - जल निकासी की सुविधा का प्राविधान, तालाबों, पोखरों को गहरा कर उसकी जल ग्रहण क्षमता में वृद्धि, जहाँ जल स्तर ऊँचा हो वहाँ भूमिगत जल का अधिकाधिक उपयोग । नहरों, सड़कों, तालाबों तथा अन्य बेकार पड़ी भूमि पर वृक्षारोपण किया जाय ।

(2) कोसी धार एवं सहायक नदियों की बाढ़ नियन्त्रण हेतु बाँधों का निर्माण, नदी विसर्पो को सीधा करना, नदियों में रेत, बालू को निकाल कर घाटी को गहरा करना,

बाढ़ सम्बन्धी नियन्त्रण हेतु सुझाव प्रस्तावित करना ।

(1) आर्थिक, सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु - भूमि उपयोग के वर्तमान स्वरूप में सुधार, भूमि उपयोग में परिवर्तन हेतु आवश्यक सुविधाओं का प्राविधान, कृष्येत्तर ग्रामीण उद्योगों की स्थापना, स्थानीय जनसंख्या के जीवन यापन में सुधार सम्बन्धी योजना प्रस्तावित की गयी है ।

(2) नवीन कृषि पद्धति, सिंचाई, उन्नतशील बीज, उर्वरकों तथा अच्छे फसल चक्र के माध्यम से कृषि उत्पादकता में भी वृद्धि की जा सकती है । अध्ययन क्षेत्र में चकबन्दी के द्वारा बिखरे हुए खेतों को इकट्ठा किया जा सकता है । स्थानीय कृषि उत्पादनों पर आधारित - चावल, दाल, आटा एवं तेल मिलों की स्थापना सभी न्याय पंचायत स्तर पर की जाय । लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना हेतु कृषकों को कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध कराया जाय । अध्ययन क्षेत्र की सड़के अत्यन्त ही दयनीय स्थिति में है । अतः इनकी प्रति वर्ष मरम्मत की जाय । जिला मुख्यालयों से सभी सड़कों को जोड़ा जाय आदि बातों का सुझाव किया गया है । अध्ययन क्षेत्र के चतुर्दिक एवं गुणोत्तर विकास हेतु शिक्षा के प्रचार-प्रसार पर विशेष जोर देते हुए इनकी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति एवं स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थिति में सुधार की जाय ।

इन उपर्युक्त सभी सेवाओं के प्रसार तथा वृद्धि के लिए सरकारी प्रयास के साथ क्षेत्रीय नवयुवकों की जागरूकता अति आवश्यक है । इस तरह यदि उपर्युक्त बातों पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय तो निश्चय ही अध्ययन क्षेत्र का सर्वांगीण, चतुर्दिक एवं गुणोत्तर विकास होगा ।

BIBLIOGRAPHY

Alonso,W.: Location and Land use, Towards a General Theory of Landrent,Cambridge, Mass, Harvard Uni. Press.

Anuchin, V.A.: "Theory of Geography " in Direnctions in Geography, Edited by Chorley, R.J. Methuen London 1973.

Ahmad, A. and Siddiqui, M.F., Crop Association Patterns in Luni Basin; The Geographer 1967.

अग्निहोत्री, एन0के0 एवं अग्निहोत्री सुनीता : भूमि - उपयोग मानचित्रण, राष्ट्रीय एटलस एवं थिमैटिक मानचित्रण सगठन, कलकत्ता, 1986.

Barlowe, R. and Johnson, V.W.: Land Problems and Policies, Mac Graw Hill Book Company, New York, 1954.

Barlowe, R.: "Land Resources Economics, The Political Economics of rural and urban land Resource use, Prentice Hall Newyork, 1961.

Baron Miston: The Geography of On Indian village Geography. Quarterly Jr. of the Geographical Association, Manchester, 1935.

Baker, O.E.: Agricultural Regions of North America, Economic Geography, 1926.

Bhardwaj, O.P.: Problems of soil Erosion in East Jullunder doab (Punjab) 1960, N.G.J.I. 1960.

Landuse in the low land of Beas in the Bist-Jullunder Doab 1961, N.G.J.I.

Land use in the low land of Sutlej in the Bist-Jullunder Doab, Sample study, 1964.

Bhatia, S.S.: Patztern of crop concentration and Diversification of in India Economic Geography, 1965.

A New measure of Agricultural Efficiency in U.P. Economic Geog. 1967.

Blyn George: Measurement of Geographical Association, The Indian Geographical Journal, 1965.

Buchanan, R.O.: Some Reflection on Agricultural Geography, 1956.

Buck, J.L.: Land Utilization in China Nanking University Press, 1937.

बसु जे0के0, वैद्य डी0सी0, रामाराव एम0एस0बी0: भारत मृदा सर्वेक्षण, उत्तर प्रदेश हिन्दी एकादमी, लखनऊ 1973

Chatterjee, S.P.: Landuse Survey in India, Proceedings of International Georaphical Seminar, Aligarh, India, 1965.

Land Utilization survey in India, Proceedings of summer school in Geography, Simala Proceedings of Summer school in Geography, Simala India.

Land Utilization in the Distt. of 24 Purganas west-Bengal, 1945, Calcutta.

Land Utilization survey of Howrah Distt. Geographical Review of India, 1954.

Chauhan, D.S.: *Studies in Utilization of Agricultural Land, Agrwal & Company, Agra, 1966.*

Cannon, A.M.O.: *New Railway Construction and the Pattern of economic development in East Africa, Transactions I.B.G. 36, 1965.*

Christaller Walter: *Die Zemtralen Orte in Suddentsch land, fisher Jena 1933. Translated as "Central Places in Southern Germany" by Carlisle W.Baskin, Prentice Hall, N.J. 1966.*

Chischolm, M.: *Problems in the classification and use of farming - Type Regions, Inst. of British Geographers, Transjections and Paper 1954, Vol. 35.*

Donahue, R.L.: *Our soil and their management, Indian Edition, Asia Publishing House, Bombay 1963.*

Dunn, E.S.: *The Location of Agricultural Production, Gainsville, Univ. of Florida Press 1954.*

दत्त, ज्ञानेन्द्र कुमार: भूमि उपयोग-मूल्याकन एवं मानचित्रण, राष्ट्रीय एटलस एवं थिमैटिक मानचित्रण संगठन, कलकत्ता, 1988

Garrison, W.L. and D.F. Marble: *The spatial Structure of Agricultural Activities, Annuals of Assn. of Amer. Geogrs. 1957.*

Grotewald, A.: *Van Thunen in Retrospect Economic Geography, 1956.*

गौरी शंकर: भूमि उपयोग-मूल्यांकन एवं मानचित्रण, राष्ट्रीय एटलस एवं थिमैटिक मानचित्रण संगठन, कलकत्ता, 1988

Hoover, E.M.: *The Location of Economic Activity New York, Mac Graw Hill 1948.*

Harvarth, *R.J.: Van Thunen's Isolated State and ground Addis - Ababa, Geogrs. 1969.*

Hartshorn R. and S.N. Dicken: *A Classification of the Agricultural Regions of Europe and North America on a Uniform satistical Basis, Annals, 1935.*

Isard, W.: "Industrial Location" by David M. Smith, 1977.

Jha, M.K.: Land use in Katihar Anchal, A Study in Problems, Development Planning, Unpublished Ph.D. Thesis, Bhagalpur University, 1990.

Jenna, M.M.: *Programme for Agricultural Development in India, Edited by Noor Mohd., Perspective in Agricultural Geography, 1980.*

Jones, W.D. and Finch, *V.C.: Detailed field Mapping of American Geographer, Vol. 15, 1925.*

Jonasson, *O.: Agriculturla Regions of Europe, Economic Geography, 1925.*

Kariel, B.G. and Kariel, *P.E.: Exploration in Social Geog., Addision welsley Publishing Comp. 1972.*

Losch, A.: *The Economics of Location, New Haven, Conn. Yale University Press, 1954.*

Lokanathan, P.S.: *Cropping Pattern in Madhya Pradesh, National Council of Applied Economic Research New Delhi, 1967.*

Marsh, *G.P.: Man and Nature, Physical Geog. As modified by Human Action, New York, 1984.*

Mamorta, C.B.: *Agricultural Problems in India. (Kitab Mahal, Alld.), 1960.*

Mohammad Ali: *Regional Imbalances in Levels of Agricultural Productivity, 1980.*

मिश्र, सूर्यमणि: भूमि उपयोग-मूल्यांकन एवं मानचित्रण, राष्ट्रीय एटलस एवं थिमैटिक मानचित्रण संगठन कलकत्ता, 1988.

Prakash Rao, V.L.S.: *Soil survey and Landuse analysis, Indian Geographical journal 1947.*

Landuse survey in India, Its scope and Problems, Proceedings of International Geog. Seminar, India, 1956.

Powers, W.L.: *Soil and Land Capability in Iraq Geographical Review, 1954.*

पाण्डेय, श्री कान्त: फरेन्दा तहसील (जनपद गोरखपुर) में भूमि उपयोग (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध) गोरखपुर विश्वविद्यालय ।

Roy, B.K.: *Crop Association on and Changing Pattern of Crops in Ganga-Ghaghra Doab East, N.G.J.I. 1967.*

Ronald, R. Renna: *Land Economics Principles, Problema and Policies in Utilization of Land Resources, Harper Brothers, New York, 1947.*

Ram Chandran, R.: *Crop Regions of India The Indian Geographical Journal, 1963.*

Stamp, L.D.: *The Land of Britain: Its Use and Misuse, 1962.*

Sauer, C.O.: *Mapping The Utilization of Land, Geographical Review 1919, New York.*

Salter, C.S.: *The flow of water trough soil, Agr. Eng. Vol. 31, 1950.*

Spate O.H.K.: India and Pakistan, 1954.

Singh R.L.: India - A Regional Geography, 1956.

Shafi M.: Land utilization in Eastern Uttar Pradesh Aligarh, 1960.

Measurement of Agricultural Sufficiency in Uttar Pradesh, Economic Geog. 1960.

Agricultural Efficiency in Relation to landuse in Uttar Pradesh, Geographical Outlook, 1962.

Singh Jasbir: A New Technique of Measuring Agricultural Productivity in Haryana (India) The Geographer, 1972.

Agricultural Atlas of India, Kure Keshetra, 1974.

Singh Harpal: Crop Combination Region in Malwa Treet of Punjab, Deccan Geographer, 1965.

Sharma,S.C.: Land Utilization in Sadabad Tahsil (Mathura), U.P. India, 1966, Unpublished Ph.D.Thesis, Agra, University.

Singh Surendra and Chauhan V.S. Measurement of Agricultural Productivity in U.P., Geog. Rev. of India, 1977.

Sinha B.N.: Agricultural Efficiency in India, Vol. 4, Chap.X, Perspective in Agricultural Geog, 1980.

Singh B.B. Land use Efficiency, Stage and Optimum land use Uttar Bharat Bhoogol Patrika, Gorakhpur, 1971.

सिंह, ब्रजभूषण: कृषि भूगोल, 1979

सिंह, बी0एन0. देवरिया तहसील में कृषि भूमि उपयोग (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध), 1984 इलाहाबाद विश्वविद्यालय ।

Tyagi B.S.: Agricultural Intensity in Chunar Tahsil, Distt. Mirzapur, N.G.J.I. 1972.

*Tripathi, **V.B. and Agarwal** U.: Changing Pattern of Crop land use in lower Ganga Yamuna Doab, The Geographer, 1968.*

*Tewari, **P.S.**: Agricultural Atlas of Uttar Pradesh, 1970.*

*Tandon R.K. **and** Dhondyal S.P.: Principles and Methods of Farm Management 1967.*

*Thunen, J.H. **Van**: Der Isolier to statt in Bexiehung aut land wirts chaft land National Okonomic, hombure, 1857.*

***Vanjetti C.**: Landuse and Natioanl Vegetation in International Geography Edited by **W.Peter** Admas and Fredrick, M. Helleiver, Toranto University, 1977.*

***Wood,** H.A.: A Classification of Agricultural Landuse for Development Planning International Geography (22.L.G.U.) Canada University of Toranto, 1972).*

***Whittlessey,** D.: Major Agricultural Regions of the Earth, Annals, Asso. Amer. Geogrs. Vol. 26, 1936.*

***Weaver,** J.C.: Crop Combination Regions in Middle West, Geographical Review, 1954.*

PLAN REPORTS

First five years plan

Second five years plan

Fifty five years plan

Eights five years plan

CENSUS

Distt. Census handbook Purnea, 1956.

Distt. Census handbook Purnea, 1961.

Distt. Census Handbook Purnea, 1971.

Distt. Census handbook Katihar, 1981.

GAZETTEER

Bihar District Gazetteer Purnea, 1963.

हस्त पुस्तिका

1. जिला सांख्यिकी हस्त पुस्तिका, कटिहार, 1990
2. कटिहार: एक झलक 1987, 86, 85, 84, 83, 82, 81.
3. अखिल भारतीय पंचम शिक्षा सर्वेक्षण, कटिहार . जिला का संक्षिप्त प्रतिवेदन, 1986/87 ।
4. रबी उत्पादन योजना - 1992-92.
5. खरीफ उत्पादन योजना 1991-92
6. गरमा उत्पादन योजना योजना 1991-92
7. बिहार राज्य: भूमि उपयोग सर्वेक्षण पुस्तिका, 1975-76.

दैनिक समाचार पत्र

1. सन्ध्या प्रहरी (कटिहार)
2. हिन्दुस्तान
3. दैनिक जागरण
4. आज

xxxxxxxxx
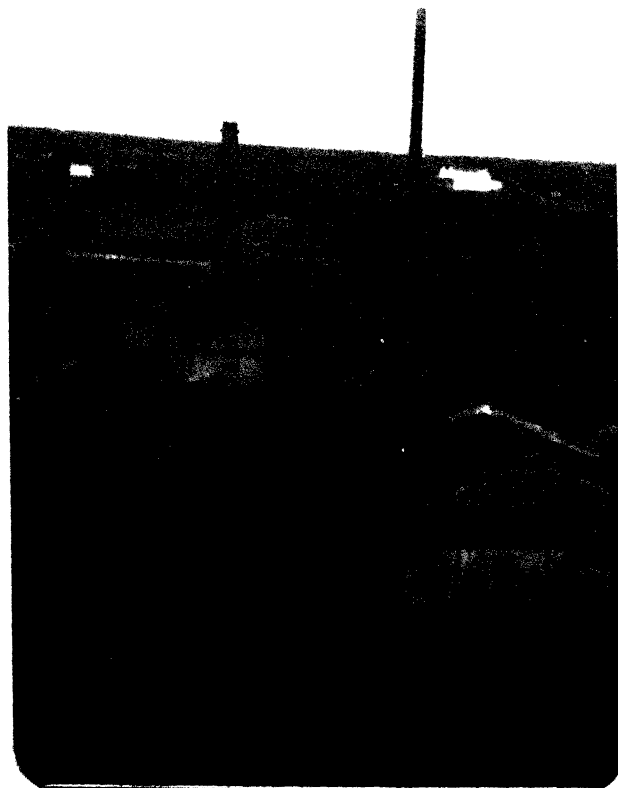
A view of Jute Factory (Katihar)

A view of Flour Mills {Katihar}
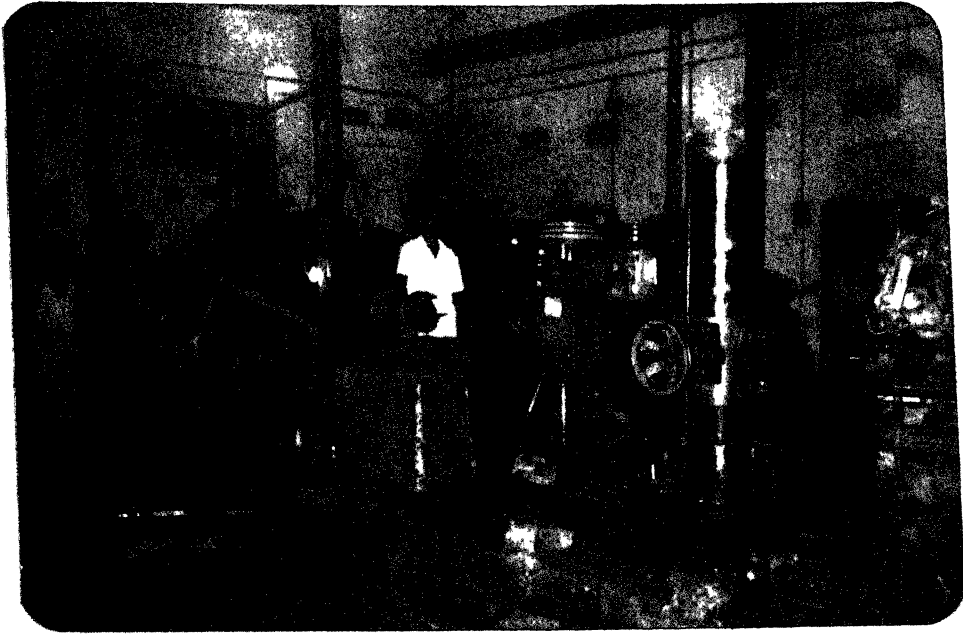
A view of Engineering Workshop (Katihar)

A view of Silicate Industry (Katihar)

A view of
River Kosi
(Katihar)

view of
ood and
oded Areas

A view of
to Collecting
Fodder in rainy
Season.

A view of Paddy Field

A view of Jute Cultivation

A view of Plantation Agriculture (Banana)

A view of Newl·y Planted Banana Plants

A vıew of
BAZAR SAMAIT
Katihar

A view of
Village Market
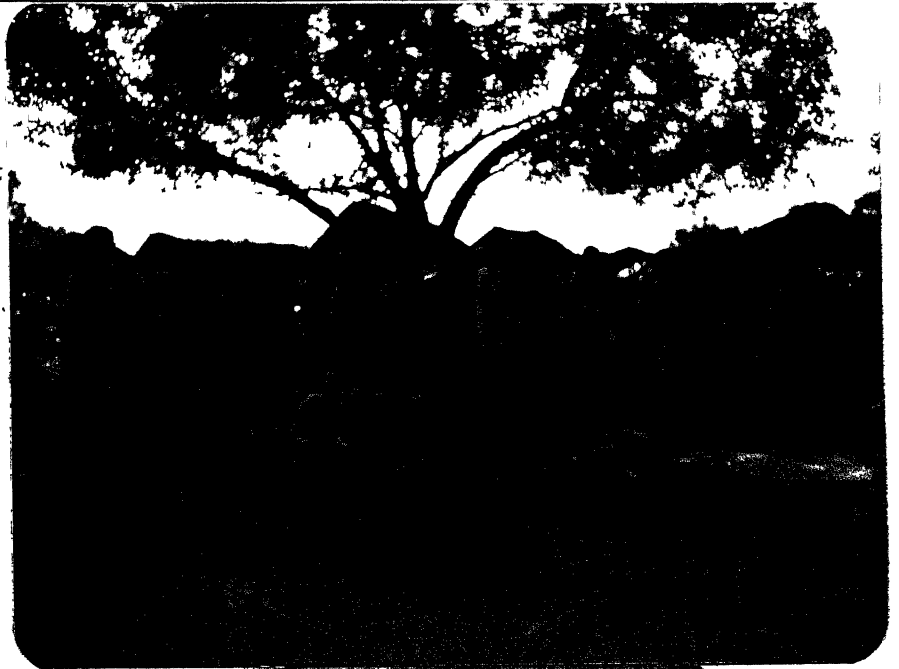
A view of
Mandi Samiti
(Katihar)